आर्य मंतव्य
arya mantavya

AryaMantavya
Make The Whole World Noble

* ओ३म् *

यजुर्वेदभाषाभाष्य

अर्थात्

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मित

संस्कृतभाष्य का

भाषानुवाद।

(२) भाग.

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर.

संवत् १९७९ विक्रमाब्द, दयानन्दाब्द ३९.

आर्यसंवत् १९७२९४९०२४.

[illegible] } —:०:— { दोनों भागों का मूल्य ८॥) डाकव्यय ॥)

अथ षोडशोऽध्याय आरभ्यते ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

नमस्त इत्यस्य परमेष्ठी कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता ।

आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं ॥

इस के प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

नम॑स्ते रुद्र म॒न्यव॑ उ॒तो त॒ इष॑वे॒ नमः॑ । बा॒हुभ्या॑मु॒त ते॒ नमः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्ट शत्रुओं को रुलानेहारे राजन् (ते) तेरे (मन्यवे) क्रोधयुक्त वीरपुरुष के लिये (नमः) वज्र प्राप्त हो (उतो) और (इषवे) शत्रुओं को मारनेहारे (ते) तेरे लिये (नमः) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) तेरे (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (नमः) वज्र शत्रुओं को प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो राज्य किया चाहें वे हाथ पांव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शस्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें ॥ १ ॥

या त इत्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता ।

आर्षी स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब शिक्षक और शिष्य का व्यवहार अगले मंत्र में क० ॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूरघो॒राऽपा॑पकाशिनी । तया॑ नस्त॒न्वा॒ शन्त॑मया॒ गिरि॑शन्ता॒भि चा॑कशीहि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (गिरिशन्त) मेघ वा सत्य उपदेश से सुख पहुंचाने वाले (रुद्र) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वन् (या) जो (ते) आप-

की (अघोरा) घोर उपद्रव से रहित (अपापकाशिनी) सत्य धर्मों को प्रकाशित करनेहारी (शिवा) कल्याणकारिणी (तनूः) देह वा विस्तृत उपदेशरूप नीति है (तया) उस (शन्तमया) अत्यन्त सुख प्राप्ति कराने वाली (तन्वा) देह वा विस्तृत उपदेश की नीति से (नः) हम लोगों को आप (अभि, चाकशीहि) सब ओर से शीघ्र शिक्षा कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याणरूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ॥ २ ॥

यामिषुमित्यस्य परमेष्ठी वा कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता ।
विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंᳬसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (गिरिशन्त) मेघ द्वारा सुख पहुंचाने वाले सेनापति जिस कारण तू (अस्तवे) फेंकने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) बाण को (हस्ते) हाथ में (बिभर्षि) धारण करता है इसलिये (ताम्) उस को (शिवाम्) मङ्गलकारी (कुरु) कर हे (गिरित्र) विद्या के उपदेशको वा मेघों की रक्षा करने हारे राजपुरुष तू (पुरुषम्) पुरुषार्थयुक्त मनुष्यादि (जगत्) संसार को (मा) मत (हिंसीः) मार ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि युद्धविद्या को जान और शस्त्र अस्त्रों को धारण करके मनुष्यादि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें किन्तु मङ्गलरूप आचरण से सब की रक्षा करें ॥ ३ ॥

शिवेनेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब वैद्य का कृत्य अगले मन्त्र में क० ॥

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मᳬसुमना असत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (गिरिश) पर्वत वा मेघों में सोने वाले रोगनाशक वैद्यराज तू (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होकर आप (यथा) जैसे (नः) हमारा (सर्वम्) सब (जगत्) मनुष्यादि जङ्गम और स्थावर राज्य (अयक्ष्मम्) क्षयी आदि राजरोगों से

रहित (असत्) हो वैसे (इव) ही (शिवेन) कल्याणकारी (वचसा) वचन से (त्वा) तुझ को हम लोग (अच्छवदामसि) अच्छा कहते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पुरुष वैद्यकशास्त्र को पढ़ पर्वतादि स्थानों की ओषधियों वा जलों की परीक्षा कर और सब के कल्याण के लिये निष्कपटता से रोगों को निवृत्त करके प्रियवाणी से वर्त्ते उस वैद्य का सब लोग सत्कार करें ॥ ४ ॥

अध्यवोचदित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः । एकरुद्रो देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

अध्य॑वोचदधिव॒क्ता प्र॑थ॒मो दै॑व्यो॑ भि॒षक् । अहीँ॑श्च॒ सर्वा॑ञ्ज॒म्भय॒न्त्सर्वा॑श्च यातुधा॒न्यो॒ऽधरा॒चीः परा॑ सुव ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे रुद्र रोगनाशक वैद्य जो (प्रथमः) मुख्य (दैव्यः) विद्वानों में प्रसिद्ध (अधिवक्ता) सब से उत्तम कक्षा के वैद्यक शास्त्र को पढ़ाने तथा (भिषक्) निदान आदि को जान के रोगों को निवृत्त करने वाले आप (सर्वान्) सब (अहीन्) सर्प के तुल्य प्राणान्त करनेहारे रोगों को (च) निश्चय से (जम्भयन्) ओषधियों से हटाते हुए (अध्यवोचत्) अधिक उपदेश करें सो आप जो (सर्वाः) सब (अधराचीः) नीच गति को पहुंचाने वाली (यातुधान्यः) रोगकारिणी ओषधी वा व्यभिचारिणी स्त्रियां हैं उनको (परा) दूर (सुव) कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—राजादि सभासद् लोग सब के अधिष्ठाता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा ओषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रख के बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें ॥ ५ ॥

असावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी वही राजधर्म का वि० ॥

अ॒सौ यस्ता॒म्रो अ॑रु॒ण उ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गलः॑ । ये चै॑नꣳ रु॒द्रा अ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षा॒ꣳ हेड॑ ईमहे ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ मनुष्यो (यः) जो (असौ) वह (ताम्रः) ताम्रवत् दृढाङ्गयुक्त (हेडः) दुष्टों का अनादर करनेहारा (अरुणः) सुन्दरगौराङ्ग (बभ्रुः) किञ्चित् पीला वा भूरेवर्ण युक्त (उत) और (सुमंगलः) सुन्दर कल्याणकारी राजा हो (च)

और (ये) जो (सहस्रशः) हजारहों (रुद्राः) दुष्ट कर्म करने वालों को रुलानेहारे (अभितः) चारों ओर (दिक्षु) पूर्वादि दिशाओं में (एनम्) इस राजा के (श्रिताः) आश्रम से बसते हों (एषाम्) इन वीरों का आश्रय लेके हम लोग (अवेमहे) विरुद्धाचरण की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो राजा अग्नि के समान दुष्ट को भस्म करता चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठों को सुख देता न्यायकारी शुभलक्षणयुक्त और जो इसके तुल्य भृत्य राज्य में सर्वत्र बसें विचरें वा समीप में रहें उनका सत्कार करके उनसे दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो ॥ ६ ॥

असौ य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(यः) जो (असौ) वह (नीलग्रीवः) नीलमणियों की माला पहिने (विलोहितः) विविध प्रकार के शुभ गुण कर्म और स्वभाव से युक्त श्रेष्ठ (रुद्रः) शत्रुओं का हिंसक सेनापति (अवसर्पति) दुष्टों से विरुद्ध चलता है । जिस (एनम्) इस को (गोपाः) रक्षक भृत्य (अदृश्रन्) देखें (उत) और (उदहार्य्यः) जल लाने वाली कहारी स्त्रियां (अदृश्रन्) देखें (सः) वह सेनापति (दृष्टः) देखा हुआ (नः) हम सब धार्मिकों को (मृडयाति) सुखी करे ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न करे वह शत्रुओं को जीत सके ॥ ७ ॥

नमोऽस्त्वित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहन्तेभ्योऽकरन्नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(नीलग्रीवाय) जिस का कण्ठ और स्वर शुद्ध हो, उस (सहस्राक्षाय) हजारहों भृत्यों के कार्य देखने वाले (मीढुषे) पराक्रमयुक्त सेनापति के लिये मेरा दिया (नमः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो (अथो) इस के अनन्तर (ये) जो (अस्य)

इस सेनापति के अधिकार में (सत्वानः) सत्व गुण तथा बल से युक्त पुरुष हैं (तेभ्यः) उन के लिये भी (अहम्) मैं (नमः) अन्नादि पदार्थों को (अकरम्) सिद्ध करूं ॥८॥

भावार्थः—सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥ ८ ॥

प्रमुञ्चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

प्रमु॑ञ्च॒ धन्व॑न॒स्त्वमु॒भयो॒रार्त्न्यो॒र्ज्याम् । याश्च॑ ते॒ हस्त॒ इष॑वः॒ परा॒ ता भ॑गवो वप ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सेनापते (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (याः) जो (इषवः) बाण हैं (ताः) उन को (धन्वनः) धनुष् के (उभयोः) दोनों (आर्त्न्योः) पूर्व पर किनारों की (ज्याम्) प्रत्यञ्चा में जोड़ के शत्रुओं पर (त्वम्) तू (प्र, मुञ्च) बल के साथ छोड़ (च) और जो तेरे पर शत्रुओं ने बाण छोड़े हुए हों उन को (परा,वप) दूर कर ॥ ९ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि धनुष् से बाण चला कर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

विज्यं॒ धनुः॑ कप॒र्दिनो॒ विश॑ल्यो॒ बाण॑वाँ२॥ उ॒त । अने॑शन्नस्य॒ या इष॑व आ॒भुर॑स्य निषङ्ग॒धिः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे धनुर्वेद को जानने हारे पुरुषो (अस्य) इस (कपर्दिनः) प्रशंसित जटा-जूट को धारण करने हारे सेनापति का (धनुः) धनुष् (विज्यम्) प्रत्यञ्चा से रहित न होवे तथा यह (विशल्यः) बाण के अग्रभाग से रहित और (आभुः) आयुधों से खाली मत हो (उत) और (अस्य) इस अस्त्र शस्त्रों को धारण करने वाले सेनापति का निषङ्गधिः) बाणादि शस्त्रास्त्र कोष खाली मत हो तथा यह (बाणवान्) बहुत बाणों से युक्त होवे (याः) जो (अस्य) इस सेनापति के (इषवः) बाण (अनेशन्) नष्ट होजावें वे इस को तुम लोग नवीन देओ ॥ १० ॥

भावार्थः—युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि को दृढ़ और बहुतसे बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उन के पास बाणादि युद्ध के साधन न रहें तो फिर २ भी दिया करें॥१०॥

या त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सेनापति आदि किनसे कैसे उपदेश करने योग्य हैं यह वि० ॥

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त वीर्य के सेचक सेनापते (या) जो (ते) तेरी सेना है और जो (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (धनुः) धनुष् तथा (हेतिः) वज्र (बभूव) हो (तया) उस (अयक्ष्मया) पराजय आदि की पीड़ा निवृत्त करने हारी सेना से और उस धनुष् आदि से (अस्मान्) हम प्रजा और सेना के पुरुषों को (त्वम्) तू (विश्वतः) सब ओर से (परि) अच्छे प्रकार (भुज) पालना कर ॥ ११ ॥

भावार्थः—विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है उससे सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥ ११ ॥

परीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये यह वि० ॥

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे सेनापति जो (ते) आप के (धन्वनः) धनुष् की (हेतिः) गति है उस से (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वतः) सब ओर से (आरे) दूर में आप (परिवृणक्तु) त्यागिये (अथो) इसके पश्चात् (यः) जो (तव) आप का (इषुधिः) बाण रखने का घर अर्थात् तर्कस है (तम्) उस को (अस्मत्) हमारे समीप से (नि, धेहि) निरन्तर धारण कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—राज और प्रजाजनों को चाहिये कि युद्ध और शस्त्रों का अभ्यास कर

के शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें उन सामग्रियों से एक दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें ॥ १२ ॥

अवतत्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य्य शल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (सहस्राक्ष) असंख्य युद्ध के कार्यों को देखने हारे (शतेषुधे) शस्त्र अस्त्रों के असंख्य प्रकाश से युक्त सेना के अध्यक्ष पुरुष (त्वम्) तू (धनुः) धनुष् और (शल्यानाम्) शस्त्रों के (मुखा) अग्रभागों का (अवतत्य) विस्तार कर तथा उनसे शत्रुओं को (निशीर्य) अच्छे प्रकार मार के (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—राजपुरुष साम दाम दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान पूर्ण शस्त्र अस्त्रों का संचय कर और उन को तीक्ष्ण कर के शत्रुओं में कठोरचित्त दुःखदायी और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देनेवाले निरन्तर हों ॥१३॥

नमस्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे सभापति (आयुधाय) युद्ध करने (अनातताय) अपने आशय को गुप्त संकोच में रखने और (धृष्णवे) प्रगल्भता को प्राप्त होने वाले (ते) आप के लिये (नमः) अन्न प्राप्त हो (उत) और (ते) भोजन करने हारे आप के लिये अन्न देता हूं (तव) आप के (उभाभ्याम्) दोनों (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (धन्वने) योद्धा पुरुष के लिये (नमः) अन्न को नियुक्त करूं ॥ १४ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अध्यक्ष और योद्धा दोनों को शस्त्र देके शत्रुओं से निःशङ्क अच्छे प्रकार युद्ध करावें ॥ १४ ॥

मा नो महान्तमित्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिये यह वि० ॥

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्। मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॑ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) युद्ध की सेना के अधिकारी विद्वन् पुरुष आप (नः) हमारे (महान्तम्) उत्तम गुणों से युक्त पूज्य पुरुष को (मा) मत (उत) और (अर्भकम्) छोटे क्षुद्र पुरुष को (मा) मत (नः) हमारे (उक्षन्तम्) गर्भाधान करनेहारे को (मा) मत (उत) और (नः) हमारे (उक्षितम्) गर्भ को (मा) मत (नः) हमारे (पितरम्) पालन करनेहारे पिता को (मा) मत (उत) और (नः) हमारी (मातरम्) मान्य करानेहारी माता को भी (मा) मत (वधीः) मारिये। और (नः) हमारे (प्रियाः) स्त्री आदि के पियारे (तन्वः) शरीरों को (मा) मत (रीरिषः) मारिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—योद्धा लोगों को चाहिये कि युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटने वालों, ज्वानों, गर्भों, योद्धाओं के माता पितरों, सब स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करने वालों और दूतों को न मारें किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥ १५ ॥

मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रो देवता। निचृदार्षी जगतीच्छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः। मा नो॑ वी॒रान् रु॑द्र भा॒मिनो॑ वधीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित् त्वा॑ हवामहे ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) सेनापते तू (नः) हमारे (तोके) तत्काल उत्पन्न हुए सन्तान को (मा) मत (नः) हमारे (तनये) पांच वर्ष से ऊपर अवस्था के बालक को (मा) मत (नः) हमारी (आयुषि) अवस्था को (मा) मत (नः) हमारे (गोषु) गौ भेड़ बकरी आदि को (मा) मत (नः) हमारे और (अश्वेषु) घोड़े हाथी और ऊंट आदि को (मा) मत (रीरिषः) मार और (नः) हमारे (भामिनः) क्रोध को प्राप्त हुए (वीरान्) शूरवीरों को (मा) मत (वधीः) मार इससे (हविष्मन्तः) बहुतसे देने योग्य वस्तुओं से युक्त हम लोग (सदम्) न्याय में स्थिर (त्वा) तुझ को (इत्) ही (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालकों कुमार और गौ घोड़े आदि वीर उपकारी जीवों की कभी हत्या न करें और बाल्यावस्था में विवाह कर व्यभिचार से अवस्था की हानि भी न करें गौ आदि पशु दूध आदि पदार्थों को देने से जो सब का उपकार करते हैं उससे उन की सदैव वृद्धि करें ॥ १६ ॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

राज प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

नमो हिर॑ण्यबाहवे सेना॒न्ये॒ दि॒शां च॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यः प॒शू॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ । श॒ष्पिञ्ज॑राय॒ त्विषी॑मते प॒थी॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॒ हरि॑केशायोपवी॒तिने॑ पु॒ष्टा॒नां पत॑ये॒ नमः॑ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे शत्रुताड़क सेनाधीश (हिरण्यबाहवे) ज्योति के समान तीव्र तेजयुक्त भुजावाले (सेनान्ये) सेना के शिक्षक तेरे लिये (नमः) वज्र प्राप्त हो (च) और (दिशाम्) सर्व दिशाओं के राज्य भागों के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ मिले (हरिकेशेभ्यः) जिन में हरणशील सूर्य्य की किरण प्राप्त हों ऐसे (वृक्षेभ्यः) आम्रादि वृक्षों को काटने के लिये (नमः) वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) सत्कार प्राप्त हो (शष्पिञ्जराय) विषयादि के बन्धनों से पृथक् (त्विषीमते) बहुत न्याय के प्रकाशों से युक्त तेरे लिये (नमः) नमस्कार और अन्न हो (पथीनाम्) मार्ग में चलने हारों के (पतये) रक्षक तेरे लिये (नमः) आदर प्राप्त हो (हरिकेशाय) हरे केशों वाले (उपवीतिने) सुन्दर यज्ञोपवीत से युक्त तेरे लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों और (पुष्टानाम्) नीरोगी पुरुषों की (पतये) रक्षा करने हारे के लिये (नमः) नमस्कार प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि श्रेष्ठों के सत्कार भूख से पीड़ितों को अन्न देने शत्रुविजय राज्य की शिक्षा पशुओं की रक्षा जाने आने वालों को डांकू और चोर आदि से बचाने यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें ॥ १७ ॥

नमो वञ्चुशायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नमो वञ्चुशायं व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायांततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ॥ १८ ॥

पदार्थः—राजपुरुष आदि मनुष्यों को चाहिये कि (वञ्चुशाय) राज्यधारक पुरुषों में सोते हुए (व्याधिने) रोगी के लिये (नमः) अन्न देवें (अन्नानाम्) गेहूं आदि अन्न के (पतये) रक्षक का (नमः) सत्कार करें (भवस्य) संसार की (हेत्यै) वृद्धि के लिये (नमः) अन्न देवें (जगताम्) मनुष्यादि प्राणियों के (पतये) स्वामी का (नमः) सत्कार करें (रुद्राय) शत्रुओं को रुलाने और (आततायिने) अच्छे प्रकार विस्तृत शत्रुसेना को प्राप्त होने वाले को (नमः) अन्न देवें (क्षेत्राणाम्) धान्यादि युक्त खेतों के (पतये) रक्षक को (नमः) अन्न देवें (सूताय) क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में उत्पन्न हुए प्रेरक वीर पुरुष और (अहन्त्यै) किसी को न मारने हारी राजपत्नी के लिये (नमः) अन्न देवें और (वनानाम्) जङ्गलों की (पतये) रक्षा करने हारे पुरुष को (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो अन्नादि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वे जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥ १८ ॥

नमो रोहितायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । विराडतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर वही विषय अगले मं० ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमं उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

पदार्थः—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि (रोहिताय) सुखों की वृद्धि के कर्त्ता और (स्थपतये) स्थानों के स्वामी रक्षक सेनापति के लिये (नमः) अन्न (वृक्षाणाम्) आम्रादि वृक्षों के (पतये) अधिष्ठाता को (नमः) अन्न (भुवन्तये)

आचारवान् (वारिवस्कृताय) सेवन करने हारे भृत्य को (नमः) अन्न और (ओषधीनाम्) सोमलतादि औषधियों के (पतये) रक्षक वैद्य को (नमः) अन्न देवें (मंत्रिणे) विचार करने हारे राजमंत्री और (वाणिजाय) वैश्यों के व्यवहार में कुशल पुरुष का (नमः) सत्कार करें (कक्षाणाम्) घरों में रहने वालों के (पतये) रक्षक को (नमः) अन्न और (उच्चैर्घोषाय) ऊंचे स्वर से बोलने तथा (आक्रन्दयते) दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का (नमः) सत्कार और (पत्तीनाम्) सेना के अवयवोंकी (पतये) रक्षा करने हारे पुरुष का (नमः) सत्कार करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वन आदि के रक्षक मनुष्यों को अन्नादि पदार्थ देके वृक्षों और ओषधि आदि पदार्थों की उन्नति करें ॥ १९ ॥

नमः कृत्स्नायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में क० ॥

नमः॑ कृत्स्नाय॒तया॒ धाव॑ते॒ सत्व॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॒ सह॑मानाय निव्या॒धिन॑ आव्या॒धिनी॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ ककु॒भाय॑ स्ते॒नानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निचे॒रवे॑ परिच॒रायार॑ण्याना॒ं पत॑ये॒ नमः॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—मनुष्य लोग (कृत्स्नायतया) सम्पूर्ण प्राप्ति के अर्थ (धावते) इधर उधर जाने आने वाले को (नमः) अन्न देवें (सत्वनाम्) प्राप्त पदार्थों की (पतये) रक्षा करने हारे का (नमः) सत्कार करें (सहमानाय) बलयुक्त और (निव्याधिने) शत्रुओं को निरंतर ताड़ना देने हारे पुरुष को (नमः) अन्न देवें (आव्याधिनीनाम्) अच्छे प्रकार शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के (पतये) रक्षक सेनापति का (नमः) आदर करें (निषङ्गिणे) बहुतसे अच्छे बाण तलवार भुशुण्डी शतघ्नी अर्थात् बन्दूक तोप और तोमर आदि शस्त्र जिस के हों उस को (नमः) अन्न देवें (निचेरवे) निरन्तर पुरुषार्थ के साथ विचरने तथा (परिचराय) धर्म, विद्या, माता, स्वामी और मित्रादि की सब प्रकार सेवा करने वाले (ककुभाय) प्रसन्नमूर्ति पुरुष को (नमः) सत्कार करें (स्तेनानाम्) अन्याय से परधन लेने हारे प्राणियों को (पतये) जो दंड आदि से शुष्क करता हो उस को (नमः) वज्र से मारें (अरण्यानाम्) वन जंगलों के (पतये) रक्षक पुरुष को (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें ॥ २० ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि पुरुषार्थियों का उत्साह के लिये सत्कार प्राणियों के ऊपर दया, अच्छी शिक्षितसेना को रखना, चोर आदि को दण्ड, सेवकों की रक्षा और वनों को नहीं काटना इस सब को कर राज्य की वृद्धि करें ॥ २० ॥

नमो वञ्चत इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

पदार्थः—राजपुरुष वंचते छल से दूसरों के पदार्थों को हरने वाले (परिवंचते) सब प्रकार कपट के साथ वर्त्तमान पुरुष को (नमः) वज्र का प्रहार और (स्तायूनाम्) चोरी से जीने वालों के (पतये) स्वामी को (नमः) वज्र से मारें (निषङ्गिणे) राज्यरक्षा के लिये निरन्तर उद्यत (इषुधिमते) प्रशंसित बाणों को धारण करने हारे को (नमः) अन्न देवें (तस्कराणाम्) चोरी करने हारों को (पतये) उस कर्म के चलाने हारे को (नमः) वज्र और (सृकायिभ्यः) वज्र से सज्जनों को पीड़ित करने को प्राप्त होने और (जिघांसद्भ्यः) मारने की इच्छा वालों को (नमः) वज्र से मारें (मुष्णताम्) चोरी करते हुओं को (पतये) दंडप्रहार से पृथिवी में गिराने हारे का (नमः) सत्कार करें (असिमद्भ्यः) प्रशंसित खड्गों के सहित (नक्तम्) रात्रि में (चरद्भ्यः) घूमने वाले लुटेरों को (नमः) शस्त्रों से मारें और (विकृन्तानाम्) विविध उपायों से गांठ काट के पर पदार्थों को लेने हारे गठकटों को (पतये) मार के गिराने हारे का (नमः) सत्कार करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि कपट व्यवहार से छलने और दिन या रात में अनर्थ करने हारों को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन किया करें ॥ २१ ॥

नम उष्णीषिण इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुम-

द्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः। प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः॥ २२ ॥

पदार्थः—हम राज और प्रजा के पुरुष (उष्णीषिणे) प्रशंसित पगड़ी को धारण करने वाले ग्रामपति और (गिरिचराय) पर्वतों में विचरने वाले जंगली पुरुष का (नमः) सत्कार और (कुलुञ्चानाम्) बुरे स्वभाव से दूसरों के पदार्थ खोंसने वालों को (पतये) गिराने हारे का (नमः) सत्कार करते (इषुमद्भ्यः) बहुत बाणों वाले को (नमः) अन्न (च) तथा (धन्वायिभ्यः) धनुषों को प्राप्त होने वाले (वः) तुम लोगों के लिये (नमः) अन्न (आतन्वानेभ्यः) अच्छे प्रकार सुख के फैलाने हारों का (नमः) सत्कार (च) और (प्रतिदधानेभ्यः) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करनेहारे (वः) तुम को (नमः) सत्कार प्राप्त (आयच्छद्भ्यः) दुष्टों को बुरे कर्मों से रोकने वालों को (नमः) अन्न देते (च) और (अस्यद्भ्यः) दुष्टों पर शस्त्रादि को छोड़ने वाले (वः) तुम्हारे लिये (नमः) सत्कार करते हैं॥ २२॥

भावार्थः—राज और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि प्रधान पुरुष आदि का वस्त्र और अन्नादि के दान से सत्कार करें॥ २२॥

नमो विसृजद्भ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः। निचृदतिजगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥
फिर भी वही वि०॥

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः॥ २३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम ऐसा सबको जनाओ कि हम लोग (विसृजद्भ्यः) शत्रुओं पर शस्त्रादि छोड़ने वालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (च) और (विध्यद्भ्यः) शस्त्रों से शत्रुओं को मारते हुए (वः) तुमको (नमः) अन्न (स्वपद्भ्यः) सोते हुओं के लिये (नमः) वज्र (च) और (जाग्रद्भ्यः) जागते हुए (वः) तुम को (नमः) अन्न (शयानेभ्यः) निद्रालुओं को (नमः) अन्न (च) और (आसीनेभ्यः) आसनपर बैठे हुए (वः) तुम को (नमः) अन्न (तिष्ठद्भ्यः) खड़े हुओं को (नमः) अन्न (च) और (धावद्भ्यः) शीघ्र चलते हुए (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवेंगे॥ २३॥

भावार्थः-गृहस्थों को चाहिये कि करुणामय वचन बोल और अन्नादि पदार्थ देके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ २३ ॥

नमः सभाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को सब के प्रति ऐसे कहना चाहिये कि हम लोग (सभाभ्यः) न्याय आदि के प्रकाश से युक्त स्त्रियों का (नमः) सत्कार (च) और (सभापतिभ्यः) सभाओं के रक्षक (वः) तुम राजाओं का (नमः) सत्कार करें, (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (नमः) अन्न (च) और (अश्वपतिभ्यः) घोड़ों के रक्षक (वः) तुम को (नमः) अन्न तथा (आव्याधिनीभ्यः) शत्रुओं की सेनाओं को मारने हारी अपनी सेनाओं के लिये (नमः) अन्न देवें (च) और (विविध्यन्तीभ्यः) शत्रुओं के वीरों को मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों का (नमः) सत्कार करें (उगणाभ्यः) विविधतर्कों वाली स्त्रियों को (नमः) अन्न (च) और (तृंहतीभ्यः) युद्ध में मारती हुई (वः) तुम स्त्रियों के लिये (नमः) अन्न देवें तथा यथायोग्य सत्कार किया करें ॥ २४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सभा और सभापतियों से ही राज्य की व्यवस्था करें। कभी एक राजा की आधीनता से स्थिर न हों क्योंकि एक पुरुष से बहुतों के हिताहित का विचार कभी नहीं हो सकता इससे ॥ २४ ॥

नमो गणेभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः ।
भुरिक् शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वही वि० ॥

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (गणेभ्यः) सेवकों को (नमः) अन्न (च)

और (गणपतिभ्यः) सेवकों के रक्षक (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्न देवें (व्रातेभ्यः) मनुष्यों का (नमः) सत्कार (च) और (व्रातपतिभ्यः) मनुष्यों के रक्षक (वः) तुम्हारा (नमः) सत्कार (गृत्सेभ्यः) पदार्थों के गुणों को प्रकट करने वाले विद्वानों का (नमः) सत्कार (च) तथा (गृत्सपतिभ्यः) बुद्धिमानों के रक्षक (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार (विरूपेभ्यः) विविधरूप वालों का (नमः) सत्कार (च) और (विश्वरूपेभ्यः) सब रूपों से युक्त (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करें वैसे तुम लोग भी देओ, सत्कार करो ॥ २५ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार विद्वानों का सङ्ग समग्र शोभा और विद्याओं को धारण करके सन्तुष्ट हों ॥ २५ ॥

नमः सेनाभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः ।
भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्योऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे राज और प्रजा के पुरुषो जैसे हम लोग (सेनाभ्यः) शत्रुओं को बांधने हारे सेनास्थ पुरुषों का (नमः) सत्कार करते (च) और (वः) तुम (सेनानिभ्यः) सेना के नायक प्रधान पुरुषों का (नमः) अन्न देते हैं (रथिभ्यः) प्रशंसित रथों वाले पुरुषों का (नमः) सत्कार (च) और (वः) तुम (अरथेभ्यः) रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं (क्षत्तृभ्यः) क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए वर्णसंकर के लिये (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (संग्रहीतृभ्यः) अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री का ग्रहण करने हारों का (नमः) सत्कार करते हैं (महद्भ्यः) विद्या और अवस्था से वृद्ध पूजनीय महाशयों को (नमः) अच्छा पकाया हुआ अन्नादि पदार्थ देते (च) और (वः) तुम (अर्भकेभ्यः) क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का (नमः) निरन्तर सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी दिया, किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षापूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म से राज्य का पालन करें ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृच्छक्वरी
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिये यह वि० ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे राजा आदि हम लोग (तक्षभ्यः) पदार्थों को सूक्ष्मक्रिया से बनाने हारे तुम को (नमः) अन्न देते (च) और (रथकारेभ्यः)बहुतसे विमानादि यानों को बनानेहारे (वः) तुम लोगों का (नमः) परिश्रमादि का धन देके सत्कार करते हैं (कुलालेभ्यः) प्रशंसित मट्टी के पात्र बनाने वालों को (नमः) अन्नादि पदार्थ देते (च) और (कर्मारेभ्यः) खड्ग बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनाने वाले (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करते हैं (निषादेभ्यः) वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना देने वाले तुम को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पुञ्जिष्ठेभ्यः) श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण (वः) तुम्हारा (नमः) सत्कार करते हैं (श्वनिभ्यः) कुत्तों को शिक्षा करने हारे तुम को (नमः) अन्नादि देते (च) और (मृगयुभ्यः) अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का (नमः)सत्कार करते हैं वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जो पदार्थविद्या को जान के अपूर्व कारीगरीयुक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषिक आदि दे के प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥ २७ ॥

नमः श्वभ्य इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें यह वि० ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम परीक्षक लोग (श्वभ्यः) कुत्तों को (नमः) अन्न देवें (च) और (वः) तुम (श्वपतिभ्यः) कुत्तों को पालने वालों को (नमः) अन्न देवें तथा सत्कार करें (च) तथा (भवाय) जो शुभगुणों में प्रसिद्ध हो उस जन

का (नमः) सत्कार (च) और (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने हारे वीर का सत्कार (च) तथा (शर्वाय) दुष्टों को मारने वालों को (नमः) अन्नादि देते (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं के पालक को अन्न (च) और (नीलग्रीवाय) सुन्दर वर्ण वाले कण्ठ से युक्त (च) और (शितिकण्ठाय) तीक्ष्ण वा काले कण्ठ वाले को (नमः) अन्न देते और सत्कार करते हैं वैसे तुम भी दिया किया करो ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से बढ़ा के उनसे उपकार लेवें और पशुओं के रक्षकों का सत्कार भी करें ॥ २८ ॥

नमः कपर्दिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रो देवता । भुरिगति-
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिये यह वि० ॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥ २९ ॥

पदार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि (कपर्दिने) जटाधारी ब्रह्मचारी (च) और (व्युप्तकेशाय) समस्त केश मुड़ाने हारे संन्यासी (च) और संन्यास चाहते हुए को (नमः) अन्न देवें (च) तथा (सहस्राक्षाय) असंख्य शास्त्र के विषयादि को देखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का (च) और (शतधन्वने) धनुष् आदि असंख्य शस्त्र विद्याओं के शिक्षक क्षत्रिय का (नमः) सत्कार करें (गिरिशयाय) पर्वतों के आश्रय से सोने हारे वानप्रस्थ का (च) और (शिपिविष्टाय) पशुओं के पालक वैश्य आदि (च) और शूद्र का (नमः) सत्कार करें (मीढुष्टमाय) वृक्ष बगीचा और खेत आदि को अच्छे प्रकार सींचने वाले किसान लोगों (च) और माली आदि को (इषुमते) प्रशंसित बाणों वाले वीर पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें और सत्कार करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—गृहस्थों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्यादान करें और करावें तथा संन्यासी आदि की सेवा करके विशेष विज्ञान का ग्रहण किया करें ॥२९॥

नमो ह्रस्वायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । विराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी वही वि० ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

पदार्थः—जो गृहस्थ लोग (ह्रस्वाय) बालक (च) और (वामनाय) प्रशंसित ज्ञानी (च) तथा मध्यम विद्वान् को (नमः) अन्न देते हैं (बृहते) बड़े (च) और (वर्षीयसे) विद्या में अतिवृद्ध (च) तथा विद्यार्थी का (नमः) सत्कार (वृद्धाय) अवस्था में अधिक (च) और (सवृधे) अपने समानों के साथ बढ़ने वाले (च) तथा सब के मित्र का (नमः) सत्कार (च) और (अग्र्याय) सत्कर्म करने में सब से पहिले उद्यत होने वाले (च) तथा (प्रथमाय) प्रसिद्ध पुरुष का (नमः) सत्कार करते रहैं ॥ ३० ॥

भावार्थः—गृहस्थ मनुष्यों को उचित है कि अन्नादि पदार्थों से बालक आदि का सत्कार करके अच्छे व्यवहार की उन्नति करें ॥ ३० ॥

नम आशवे इत्यस्य कुत्स ऋषिः। रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उद्योग कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो तुम लोग (आशवे) वायु के तुल्य मार्ग में शीघ्रगामी (च) और (अजिराय) असवारों को फेंकने वाले घोड़े (च) तथा हाथी आदि को (नमः) अन्न (शीघ्र्याय) शीघ्र चलने में उत्तम (च) और (शीभ्याय) शीघ्रता करनेहारों में प्रसिद्ध (च) तथा मध्यस्थ जन को (नमः) अन्न (ऊर्म्याय) जल तरङ्गों में वायु के समान वर्त्तमान (च) और (अवस्वन्याय) अनुत्तम शब्दों में प्रसिद्ध होने वाले के लिये (च) तथा दूर से सुनने हारे को (नमः) अन्न (नादेयाय) नदी में रहने (च) और (द्वीप्याय) जल के बीच टापू में रहने (च) तथा उनके संबन्धियों को (नमः) अन्न देते रहो तो आप लोगों को संपूर्ण आनन्द प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो क्रियाकौशल से बनाये विमानादि यानों और घोड़ों से शीघ्र चलते हैं वे किस २ द्वीप वा देश को न जाके राज्य के लिये धन को नहीं प्राप्त होते किन्तु सर्वत्र जा आ के सब को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

नमो ज्येष्ठायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों यह वि० ॥

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (ज्येष्ठाय) अत्यन्त वृद्धों (च) और (कनिष्ठाय) अतियालकों का (नमः) सत्कार और अन्न (च) तथा (पूर्वजाय) ज्येष्ठभ्राता वा ब्राह्मण (च) और (अपरजाय) छोटे भाई वा नीच का (च) भी (नमः) सत्कार वा अन्न (मध्यमाय) बन्धु, क्षत्रिय वा वैश्य (च) और (अपगल्भाय) ढीठपन छोड़े हुए सरल स्वभाव वाले (च) इन सब का (नमः) सत्कार आदि (च) (जघन्याय) नीच कर्म कर्त्ता शूद्र वा म्लेच्छ (च) तथा (बुध्न्याय) अन्तरिक्ष में हुए मेघ के तुल्य वर्त्तमान दाता पुरुष का (नमः) अन्नादि से सत्कार करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब (नमस्ते) इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों बड़े छोटों नीच उत्तमों उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणों ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें सब लोग इसी वेदोक्तप्रमाण से सर्वत्र शिष्टाचार में इसी वाक्य का प्रयोग करके परस्पर एक दूसरे का सत्कार करने से प्रसन्न होवें ॥ ३२ ॥

नमः सोभ्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥३३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सोभ्याय) ऐश्वर्ययुक्तों में प्रसिद्ध (च) और (प्रतिसर्याय) धर्मात्माओं में उत्पन्न हुए (च) तथा धनी धर्मात्माओं को (नमः) अन्न दे (याम्याय) न्यायकारियों में उत्तम (च) और (क्षेम्याय) रक्षा करने वालों में चतुर (च) और न्यायाधीशादि को (नमः) अन्न दे और (श्लोक्याय) वेदवाणी में प्रवीण (च) और (अवसान्याय) कार्यसमाप्ति व्यवहार में कुशल (च) तथा आरम्भ करने में उत्तम पुरुष का (नमः) सत्कार (उर्वर्याय) महान् पुरुषों के स्वामी (च) और (खल्याय)

अच्छे अन्नादि पदार्थों के संचय करने में प्रवीण (च) और व्यय करने में विचक्षण पुरुष का (नमः) सत्कार कर के इन सब को आप लोग आनन्दित करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनेक चकारों से और भी उपयोगी अर्थ लेना और उन का सत्कार करना चाहिये प्रजास्थपुरुष न्यायाधीशों, न्यायाधीश प्रजास्थों का सत्कार पति आदि स्त्री आदि की और स्त्री आदि पति आदि पुरुषों की प्रसन्नता करें ॥ ३३ ॥

नमो वन्यायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रा देवताः ।
स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

नमो॒ वन्या॑य च॒ कक्ष्या॑य च॒ नमः॑ श्र॒वाय॑ च प्रतिश्र॒वाय॑ च॒ नम॑ आ॒शुषे॑णाय चा॒शुर॑थाय च॒ नमः॒ शूरा॑य चावभेदि॒ने च ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो लोग (वन्याय) जङ्गल में रहने (च) और (कक्ष्याय) वन के समीप कक्षाओं में (च) तथा गुफा आदि में रहने वालों का (नमः) अन्न देवें (श्रवाय) सुनने वा सुनाने के हेतु (च) और (प्रतिश्रवाय) प्रतिज्ञा करने (च) तथा प्रतिज्ञा को पूरी करने हारे का (नमः) सत्कार करें । (आशुषेणाय) शीघ्रगामिनी सेना वाले (च) और (आशुरथाय) शीघ्र चलने हारे रथों के स्वामी (च) तथा सारथि आदि को (नमः) अन्न देवें (शूराय) शत्रुओं को मारने (च) और (अवभेदिने) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (च) तथा दूतादि का (नमः) सत्कार करें उन का सर्वत्र विजय होवे ॥ ३४ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि वन तथा कक्षाओं में रहने वाले अध्येता और अध्यापकों, बलिष्ठ सेनाओं, शीघ्र चलने हारे यानों में बैठने वाले वीरों और दूतों को अन्न धनादि से सत्कारपूर्वक उत्साह देके सदा विजय को प्राप्त हों ॥ ३४ ॥

नमो बिल्मिन इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
योद्धाओं की रक्षा कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च व॒रूथिने॑ च॒ नमः॑ श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्याय॑ चाहन॒न्याय॑ च ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे राजन् और प्रजा के अध्यक्ष पुरुषो आप लोग (बिल्मिने) प्रशंसित साधारण वा पोषण करने (च) और (कवचिने) शरीर के रक्षक कवच को धारण करने (च) तथा उन के सहायकारियों का (नमः) सत्कार करें (वर्मिणे) शरीर रक्षा के बहुत साधनों से युक्त (च) और (वरूथिने) प्रशंसित घरों वाले (च) तथा घर

आदि के रक्षकों को (नमः) अन्नादि देवें (श्रुताय) शुभगुणों में प्रख्यात (च) और (श्रुतसेनाय) प्रख्यात सेना वाले (च) तथा सेनास्थों का (नमः) सत्कार (च) और (दुन्दुभ्याय) बाजे बजाने में चतुर बजन्तरी (च) तथा (आहनन्याय) वीरों को युद्ध में उत्साह बढ़ने के बाजे बजाने में कुशल पुरुष का (नमः) सत्कार कीजिये जिससे तुम्हारा पराजय कभी न हो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—राजा और प्रजा के पुरुषों को चाहिये कि योद्धा लोगों की सब प्रकार रक्षा, सब के सुखदायी घर, खाने पीने के योग्य पदार्थ, प्रशंसित पुरुषों का सङ्ग और अत्युत्तम बाजे आदि देके अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें ॥ ३५ ॥

नमो धृष्णव इत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

पदार्थः—जो राज और प्रजा के अधिकारी लोग (धृष्णवे) दृढ़ (च) और (प्रमृशाय) उत्तम विचारशील (च) तथा कोमल स्वभाव वाले पुरुष को (नमः) अन्न देवें (निषङ्गिणे) बहुत शस्त्रों वाले (च) और (इषुधिमते) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र और कोश वाले का (च) भी (नमः) सत्कार और (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्ण शस्त्र अस्त्रों से युक्त (च) और (आयुधिने) अच्छे प्रकार तोप आदि से लड़ने वाले वीरों से युक्त अध्यक्ष पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (स्वायुधाय) सुन्दर आयुधों वाले (च) और (सुधन्वने) अच्छे धनुषों से युक्त (च) तथा उन के रक्षकों को (नमः) अन्न देवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ कर्म करें सो अच्छे प्रकार विचार और दृढ़ उत्साह से करें क्योंकि शरीर और आत्मा के बल के विना शस्त्रों का चलाना और शत्रुओं का जीतना कभी नहीं कर सकते इसलिये निरन्तर सेना की उन्नति करें ॥ ३६ ॥

नमः स्रुत्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें यह वि० ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (स्रुत्याय) स्रोता नाले आदि में रहने (च) और (पथ्याय) मार्ग में चलने (च) तथा मार्गादि को शोधने वाले को (नमः) अन्न दे (काट्याय) कूप आदि में प्रसिद्ध (च) और (नीप्याय) बड़े जलाशय में होने (च) तथा उस के सहायी का (नमः) सत्कार (कुल्याय) नहरों का प्रबन्ध करने (च) और (सरस्याय) तालाव के काम में प्रसिद्ध होने वाले का (नमः) सत्कार (च) और (नादेयाय) नदियों के तट पर रहने (च) और (वैशन्ताय) छोटे २ जलाशयों के जीवों को (च) और वापी आदि के प्राणियों को (नमः) अन्नादि देके दया प्रकाशित करें॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नदियों के मार्गों बंबों कूपों जलप्रायः देशों बड़े और छोटे तालावों के जल को चला जहां कहीं बांध और खेत आदि में छोड़ के पुष्कल अन्न फल वृक्ष लता गुल्म आदि को अच्छे प्रकार बढ़ावें ॥ ३७ ॥

नमः कूप्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

नमः॑ कूप्या॑य चावट्या॑य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चात॒प्याय च॒ नमो॒ मेघ्या॑य च विद्युत्या॑य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चाव॒र्ष्याय॑ च ॥ ३८ ॥

पदार्थः—मनुष्य लोग (कूप्याय) कूप के (च) और (अवट्याय) गड्ढों (च) तथा जङ्गलों के जीवों को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वीध्र्याय) विविध प्रकाशों में रहने (च) और (आतप्याय) घाम में रहने वाले वा (च) खेती आदि के प्रबन्ध करने वाले को (नमः) अन्न दे (मेघ्याय) मेघ में रहने (च) और (विद्युत्याय) बिजुली से काम लेने वाले को (च) तथा अग्निविद्या के जानने वाले को (नमः) अन्नादि दे (च) और (वर्ष्याय) वर्षा में रहने (च) तथा (अवर्ष्याय) वर्षारहित देश में वसने वाले का (नमः) सत्कार करके आनन्दित होवें ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य कूपादि से कार्यसिद्धि होने के लिये भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम २ कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥ ३८ ॥

नमो वात्यायेत्यस्य कुत्स ऋषिः । रुद्रा देवताः । स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें इस वि० ॥

नमो॒ वात्या॑य च॒ रेष्म्या॑य च॒ नमो॑ वास्त॒व्या॑य च वास्तुपाय॑ च॒ नमः॒ सोमा॑य च॒ रुद्राय॑ च॒ नमस्ताम्राय॑ चारु॒णाय॑ च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (वात्याय) वायुविद्या में कुशल (च) और (रेष्म्याय) मारने वालों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (वास्तव्याय) निवास के स्थानों में हुए (च) और (वास्तुपाय) निवासस्थान के रक्षक का (नमः) सत्कार करें (च) तथा (सोमाय) धनाढ्य (च) और (रुद्राय) दुष्टों को रोदन कराने हारे को (नमः) अन्नादि देवें (च) तथा (ताम्राय) बुरे कामों से ग्लानि करने (च) और (अरुणाय) अच्छे पदार्थों को प्राप्त कराने हारे का (नमः) सत्कार करें वे लक्ष्मी से सम्पन्न होवें ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जान के व्यवहारों में लगावें तब अनेक सुखों को प्राप्त हों ॥ ३९ ॥

नमः शङ्गव इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥
मनुष्यों को कैसे सन्तोषी होना चाहिये यह वि० ॥

नमः॑ शङ्ग॒वे॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नम॑ उ॒ग्राय॑ च भी॒मायं च॒ नमो॑ऽग्रेव॒धायं च दूरेव॒धायं च॒ नमो॑ ह॒न्त्रे च॒ हनी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ता॒राय॑ ॥ ४० ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शङ्गवे) सुख को प्राप्त होने (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं की रक्षा करने वाले को (च) और गौ आदि को भी (नमः) अन्नादि पदार्थ देवें (उग्राय) तेजस्वी (च) और (भीमाय) डर दिखाने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें (अग्रेवधाय) पहिले शत्रुओं को बांधने हारे (च) और (दूरेवधाय) दूर पर शत्रुओं को बांधने वा मारने वाले को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (हन्त्रे) दुष्टों को मारने (च) और (हनीयसे) दुष्टों का अत्यन्त निर्मूल विनाश करने हारे को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (वृक्षेभ्यः) शत्रु को काटने वालों को वा वृक्षों का और (हरिकेशेभ्यः) हरे केशों वाले ज्वानों वा हरे पत्तों वाले वृक्षों का (नमः) सत्कार करें वा जलादि देवें और (ताराय) दुःख से पार करने वाले पुरुष को (नमः) अन्नादि देवें वे सुखी हों ॥ ४० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर जीवों की शान्ति करने से सन्तोष करें ॥ ४० ॥

नमः शम्भवायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
स्वराडार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये यह वि० ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शम्भवाय) सुख को प्राप्त कराने हारे परमेश्वर (च) और (मयोभवाय) सुखप्राप्ति के हेतु विद्वान् (च) का भी (नमः) सत्कार (शङ्कराय) कल्याण करने (च) और (मयस्कराय) सब प्राणियों को सुख पहुंचाने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार (शिवाय) मङ्गलकारी (च) और (शिवतराय) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रेमभक्ति के साथ सब मङ्गलों के दाता परमेश्वर की ही उपासना और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें जिससे अपने अभीष्ट कार्य सिद्ध हों ॥ ४१ ॥

नमः पार्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही वि० ॥

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पार्याय) दुःखों से पार हुए (च) और (अवार्याय) इधर के भाग में हुए का (च) भी (नमः) सत्कार (च) तथा (प्रतरणाय) उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुंचे वा पहुंचाने (च) और (उत्तरणाय) इस पार से उस पार पहुंचने वा पहुंचाने वाले का (नमः) सत्कार करें (तीर्थ्याय) वेदविद्या के पढ़ाने वालों और सत्यभाषणादि कामों में प्रवीण (च) और (कूल्याय) समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (शष्प्याय) तृण आदि कार्यों में साधु (च) और (फेन्याय) फेन बुद्बुदादि के कार्यों में प्रवीण पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इस पार उस पार जा आके देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥ ४२ ॥

नमः सिकत्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (सिकत्याय) वालू से पदार्थ निकालने में चतुर (च) और (प्रवाह्याय) बैल आदि के चलाने वालों में प्रवीण को (च) भी (नमः) अन्न (किंशिलाय) शिलावृत्ति करने (च) और (क्षयणाय) निवासस्थान में रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न (कपर्दिने) जटाधारी (च) और (पुलस्तये) बड़े २ शरीरों को फेंकने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (इरिण्याय) ऊसर भूमि से अति उपकार लेने वाले (च) और (प्रपथ्याय) उत्तम धर्म के मार्गों में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें वे सब के प्रिय होवें ॥ ४३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि भूगर्भविद्यानुसार वालू मट्टी आदि से सुवर्णादि धातुओं को निकाल बहुत ऐश्वर्य को बढ़ा के अनाथों का पालन करें ॥ ४३ ॥

नमो व्रज्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कैसे मनुष्य सुखी होते हैं यह वि० ॥

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥ ४४ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (व्रज्याय) क्रियाओं में प्रसिद्ध (च) और (गोष्ठ्याय) गौ आदि के स्थानों के उत्तम प्रबन्धकर्ता को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें (तल्प्याय) खट्वादि के निर्माण में प्रवीण (च) और (गेह्याय) घर में रहने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (हृदय्याय) हृदय के विचार में कुशल (च) और (निवेष्प्याय) विषयों में निरन्तर व्याप्त होने में प्रवीण पुरुष का (च) भी (नमः) सत्कार करें (काट्याय) आच्छादित गुप्त पदार्थों को प्रकट करने (च) और (गह्वरेष्ठाय) गहन अतिकठिन गिरिकन्दराओं में उत्तम रहने वाले पुरुष को (च) भी (नमः) अन्नादि देवें वे सुख को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मेघ से उत्पन्न वर्षा और वर्षा से उत्पन्न हुए तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ावें वे पुष्कल भोग को प्राप्त होवें ॥ ४४ ॥

नमः शुष्क्यायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाᳬसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमः ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥

पदार्थः— जो मनुष्य (शुष्क्याय) नीरस पदार्थों में रहने (च) और (हरित्याय) सरस पदार्थों में प्रसिद्ध को (च) भी (नमः) जलादि देवें (पांसव्याय) धूलि में रहने (च) और (रजस्याय) लोक लोकान्तरों में रहने वाले का (च) भी (नमः) मान करें (लोप्याय) छेदन करने में प्रवीण (च) और (उलप्याय) फेंकने में कुशल पुरुष का (च) भी (नमः) मान करें (ऊर्व्याय) मारने में प्रसिद्ध (च) और (सूर्व्याय) सुन्दरता से ताड़ना करने वाले का (च) भी (नमः) सत्कार करें उन के सब कार्य्य सिद्ध होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—मनुष्य सुखाने और हरापन आदि करने वाले वायुओं को जान के अपने कार्य सिद्ध करें ॥ ४५ ॥

नमः पर्णायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
स्वराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वही वि० ॥

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬहृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

पदार्थः— जो मनुष्य (पर्णाय) प्रत्युपकार से रक्षक को (च) और (पर्णशदाय) पत्तों को काटने वाले को (च) भी (नमः) अन्न (उद्गुरमाणाय) उत्तम प्रकार से उद्यम करने (च) और (अभिघ्नते) सन्मुख होके दुष्टों को मारने वाले को (च) भी (नमः) अन्न देवें (आखिदते) दीन निर्धनी (च) और (प्रखिदते)

अति दरिद्री जन का (च) भी (नमः) सत्कार करें (इषुकृद्भ्यः) बाणों को बनवाने वाले को (नमः) अन्नादि देवें (च) और (धनुष्कृद्भ्यः) धनुष् बनाने वाले (वः) तुम लोगों का (नमः) सत्कार करें (देवानाम्) विद्वानों को (हृदयेभ्यः) अपने आत्मा के समान प्रिय (किरिकेभ्यः) बाण आदि शस्त्र फेंकने वाले (वः) तुम लोगों को (नमः) अन्नादि देवें (विचिन्वत्केभ्यः) शुभगुणों वा पदार्थों का संचय करने वालों का (नमः) सत्कार (विक्षिणत्केभ्यः) शत्रुओं के नाशक जनों का (नमः) सत्कार और (आनिर्हतेभ्यः) अच्छे प्रकार पराजय को प्राप्त हुए लोगों का (नमः) सत्कार करें वे सब ओर से धनी होते हैं ॥ ४६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब ओषधियों से अन्नादि उत्तम पदार्थों का ग्रहण कर अनाथ मनुष्यादि प्राणियों को देके सब को आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

द्रापे इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः।
भुरिगार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर वही वि० ॥

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किं चनाममत्॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (द्रापे) निन्दित गति से रक्षक (अन्धसः) अन्न आदि के (पते) स्वामी (दरिद्र) दरिद्रता को प्राप्त हुए (नीललोहित) नील वर्णयुक्त पदार्थों का सेवन करने हारे राजा वा प्रजा के पुरुष तू (आसाम्) इन प्रत्यक्ष (प्रजानाम्) मनुष्यादि (च) और (एषाम्) इन (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के रक्षक होके इन से (मा) (भेः) मत भय को प्राप्त कर (मा) (रोक्) मत रोग को प्राप्त कर (नः) हम को और अन्य (किम्) किसी को (च न) भी (मा) (आममत्) रोगी करे ॥ ४७ ॥

भावार्थः—जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजा के पशुओं को कभी न मारें जिससे प्रजा में सब प्रकार सब का सुख बढ़े ॥४७॥

इमा रुद्रायेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः।
आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे शत्रुरोदक वीरपुरुष (यथा) जैसे (अस्मिन्) इस (ग्रामे) ब्रह्माण्ड-समूह में (अनातुरम्) दुःखरहित (पुष्टम्) रोगरहित होने से बलवान् (विश्वम्) सब जगत् (शम्) सुखी (असत्) हो वैसे हम लोग (द्विपदे) मनुष्यादि (चतुष्पदे) गौ आदि (तवसे) बली (कपर्दिने) ब्रह्मचर्य को सेवन किये (क्षयद्वीराय) दुष्टों के नाशक वीरों से युक्त (रुद्राय) पापी को रुलाने हारे सेनापति के लिये (इमाः) इन (मतीः) बुद्धिमानों का (प्रभरामहे) अच्छे प्रकार धारण पोषण करते हैं वैसे तू भी उस को धारण कर ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि जैसे प्रजाओं में स्त्री पुरुष बुद्धिमान् हों वैसा अनुष्ठान कर मनुष्य पश्वादियुक्त राज्य को रोगरहित पुष्टियुक्त और निरन्तर सुखी करें ॥ ४८ ॥

यातेरुद्र इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूः शि॒वा वि॒श्वाहा॑ भेष॒जी । शि॒वा रु॒तस्य॑ भेष॒जी तया॑ नो मृड जी॒वसे॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (रुद्र) राजा के वैद्य तू (या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याण करने वाली (तनूः) देह वा विस्तारयुक्त नीति (शिवा) देखने में प्रिय (भेषजी) ओषधियों के तुल्य रोगनाशक और (रुतस्य) रोगी को (शिवा) सुखदायी (भेषजी) पीड़ा हरने वाली है (तया) उस से (जीवसे) जीने के लिये (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम को (मृड) सुखी कर ॥ ४९ ॥

भावार्थः—राजा के वैद्य आदि विद्वानों को चाहिये कि धर्म की नीति, ओषधि के दान, हस्तक्रिया की कुशलता और शस्त्रों के छेदन, भेदन करके रोगों से बचा के सब सेना और प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥ ४९ ॥

परि न इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
राजपुरुषों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

परि॑ नो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्वृ॑णक्तु॒ परि॑ त्वे॒षस्य॑ दुर्म॒तिर॑घा॒योः । अव॑ स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृड ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (मीढुव) सुख वर्षाने हारे राजपुरुष आप जो (रुद्रस्य) सभापति राजा का (हेतिः) वज्र है उस से (त्वेषस्य) क्रोधादि प्रज्वलित (अघायोः) अपने आत्मा से दुराचार करने हारे पुरुष के सम्बन्ध से (नः) हम लोगों को (परि, वृणक्तु) सब प्रकार पृथक् कीजिये । जो (दुर्मतिः) दुष्टबुद्धि है उस से भी हम को बचाइये और जो (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धन वालों से प्राप्त हुई (स्थिरा) स्थिर बुद्धि है उस को (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (तनयाय) कुमार पुरुष के लिये (परि, तनुष्व) सब ओर से विस्तृत करिये और इस बुद्धि से सब को निरन्तर (अव, मृड) सुखी कीजिये ॥ ५० ॥

भावार्थः—राजपुरुषों का धर्मयुक्त पुरुषार्थ यही है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टों का मारना हो इस से श्रेष्ठ वैद्य लोग सब को आरोग्य और स्वतन्त्रता के सुख की उन्नति करें जिससे सब सुखी हों ॥ ५० ॥

मीढुष्टम इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (शिवतम) अति कल्याणकारी सभा वा सेना के पति आप (नः) हमारे लिये (सुमनाः) प्रसन्नचित्त से (शिवः) सुखकारी (भव) हूजिये (आयुधम्) खड्ग भुशुण्डी और शतघ्नी आदि शस्त्रों का (निधाय) ग्रहण कर (कृत्तिम्) मृगचर्मादि की अंगरखे को (वसानः) शरीर में पहिने (पिनाकम्) आत्मा के रक्षक धनुष् वा बखतर आदि को (बिभ्रत्) धारण किये हुए हम लोगों की रक्षा के लिये (आगहि) आइये (परमे) प्रबल (वृक्षे) काटने योग्य शत्रु की सेना में (आचर) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—सभा और सेना के अध्यक्ष आदि लोग अपनी प्रजाओं में मंगलचारी और दुष्टों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी दाहक हों जिससे सब लोग धर्म मार्ग को छोड़ के अधर्म का आचरण कभी न करें ॥ ५१ ॥

विकिरिद्रेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳ हेतयो-ऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (विकिरिद्र) विशेष कर सूअर के समान सोने वा उत्तम सूअर की निन्दा करने वाले (विलोहित) विविध पदार्थों को आरूढ़ (भगवः) ऐश्वर्ययुक्त सभापते राजन् (ते) आप को (नमः) सत्कार प्राप्त (अस्तु) हो जिससे (ते) आप के (याः) जो (सहस्रम्) असंख्यात प्रकार की (हेतयः) उन्नति वा वज्रादि शस्त्र हैं (ताः) वे (अस्मत्) हम से (अन्यम्) भिन्न दूसरे शत्रु को (निवपन्तु) निरन्तर छेदन करें ॥ ५२ ॥

भावार्थः—प्रजा के लोग राजपुरुषों से ऐसे कहें कि जो आप लोगों की उन्नति और शस्त्र अस्त्र हैं वे हम लोगों को सुख में स्थिर करें और इतर हमारे शत्रुओं का निवारण करें ॥ ५२ ॥

सहस्राणीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः।
निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (भगवः) भाग्यशील सेनापते जो (तव) आप के (बाह्वोः) भुजाओं की सम्बन्धिनी (सहस्राणि) असंख्य (हेतयः) वज्रों की प्रबल गति हैं (तासाम्) उनके (ईशानः) स्वामीपन को प्राप्त आप (सहस्रशः) हज़ारों शत्रुओं के (मुखा) मुख (पराचीना) पीछे फेर के दूर (कृधि) कीजिये ॥ ५३ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को उचित है कि बाहुबल से राज्य को प्राप्त हो और असंख्य शूरवीर पुरुषों की सेनाओं को रखके सब शत्रुओं के मुख फेरें ॥ ५३ ॥

असंख्यातेत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः। रुद्रा देवताः।
विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें यह वि० ॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (ये) जो (असंख्याता) संख्यारहित

(सहस्राणि) हज़ारहां (रुद्राः) जीवों के सम्बन्धी वा पृथक् प्राणादि वायु (भूम्याम्) पृथिवी (अधि) पर हैं (तेषाम्) उन के सम्बन्ध से (सहस्रयोजने) असंख्य चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों का (अव, तन्मसि) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी विस्तार करो ॥ ५४ ॥

भावार्थः— मनुष्यों को चाहिये कि प्रति शरीर में विभाग को प्राप्त हुए पृथिवी के सम्बन्धी असंख्य जीवों और वायुओं को जानें उन से उपकार लें और उनके कर्त्तव्य को भी ग्रहण करें ॥ ५४ ॥

अस्मिन्नित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवता । भुरिगा-
र्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि । तेषांᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग जो (अस्मिन्) इस (महति) व्यापकता आदि बड़े बड़े गुणों से युक्त (अर्णवे) बहुत जलों वाले समुद्र के समान अगाध (अन्तरिक्षे) सब के बीच अविनाशी आकाश में (भवाः) वर्त्तमान जीव और वायु हैं (तेषाम्) उनको उपयोग में लाके (सहस्रयोजने) असंख्यात चार कोश के योजनों वाले देश में (धन्वानि) धनुषों वा अन्नादि धान्यों को (अवतन्मसि) अधिकता के साथ विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जैसे पृथिवी के जीव और वायुओं से कार्य सिद्ध करते हैं वैसे आकाशस्थों से भी किया करें ॥ ५५ ॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । बहुरुद्रा देवता । निचृदार्ष्य-
नुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवᳬ रुद्रा उपश्रिताः । तेषांᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग जो (नीलग्रीवाः) कण्ठ में नील वर्ण से युक्त (शितिकण्ठाः) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले (दिवम्) सूर्य्य को बिजुली जैसे वैसे (उपश्रिताः) आश्रित (रुद्राः) जीव वा वायु हैं (तेषाम्) उन के उपयोग से (सहस्रयोजने) असंख्य योजन वाले देश में (धन्वानि) शस्त्रादि को (अव, तन्मसि) विस्तार करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ ५६ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि अग्निस्थ वायु में और जीवों का ज्ञान और उपयोग में लाके आग्नेय आदि अस्त्रों को सिद्ध करें ॥ ५६ ॥

नीलग्रीवा इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः । तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (नीलग्रीवाः) नीली ग्रीवा वाले तथा (शितिकण्ठाः) काले कण्ठ वाले (शर्वाः) हिंसक जीव और (अधः) नीचे को वा (क्षमाचराः) पृथिवी में चलने वाले जीव हैं (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में दूर करने के लिये (धन्वानि) धनुषों को हम लोग (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि को आते जाते हैं उन में जो अग्नि और पृथिवी आदि के अवयव रहते हैं उन का ज्ञान और उपयोग में लाके कार्य सिद्ध करें ॥ ५७ ॥

ये वृक्षेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें इस वि० ॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (ये) जो (वृक्षेषु) आम्रादि वृक्षों में (शष्पिञ्जराः) रूप दिखाने से भय के हेतु (नीलग्रीवाः) नीली ग्रीवायुक्त काटखाने वाले (विलोहिताः) अनेक प्रकार के काले आदि वर्णों से युक्त सर्प आदि हिंसक जीव हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में निकाल देने के लिये (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करें वैसा आचरण तुम लोग भी करो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो वृक्षादि में वृद्धि से जीने वाले सर्प हैं उन का भी यथायोग्य निवारण करें ॥ ५८ ॥

ये भूतानामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य लोग पढ़ना और उपदेश किससे ग्रहण करें यह वि० ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषांऽ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (ये) जो (भूतानाम्) प्राणी तथा अप्राणियों के (अधिपतयः) रक्षक स्वामी (विशिखासः) शिखारहित संन्यासी और (कपर्दिनः) जटाधारी ब्रह्मचारी लोग हैं (तेषाम्) उन के हितार्थ (सहस्रयोजने) हज़ार योजन के देश में हम लोग सर्वथा सर्वदा भ्रमण करते हैं और (धन्वानि) अविद्यादि दोषों के निवारणार्थ विद्यादि शस्त्रों का (अव, तन्मसि) विस्तार करते हैं वैसे हे राजपुरुषो तुम लोग भी सर्वत्र भ्रमण किया करो ॥ ५९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जो सूत्रात्मा और धनंजय वायु के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग सब के शरीर तथा आत्मा की पुष्टि करते हैं उन से पढ़ और उपदेश सुन कर सब लोग अपनी वृद्धि तथा शरीर की पुष्टि करें ॥ ५९ ॥

ये पथामित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः । तेषांऽ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (पथाम्) मार्गों के सम्बन्धी तथा (पथिरक्षयः) मार्गों में विचरने वाले जनों के रक्षकों के तुल्य (ऐलबृदाः) पृथिवी सम्बन्धी पदार्थों के वर्धक (आयुर्युधः) पूर्णायु वा अवस्था के साथ युद्ध करनेहारे भृत्य हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥ ६० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे राजपुरुष दिन रात प्रजाजनों की यथावत् रक्षा करते हैं वैसे पृथिवी और जीवनादि की रक्षा वायु करते हैं ऐसा जानें ॥ ६० ॥

ये तीर्थानीत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषांऽ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (वज्राहस्ताः) हाथों में वज्र धारण किये हुए (निषङ्गिणः) प्रशंसित बाण और कोश से युक्त जनों के समान (तीर्थानि) दुःखों से पार करनेहारे वेद आचार्य सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यादि अच्छे नियम अथवा जिनसे समुद्रादिकों को पार करते हैं उन नौका आदि तीर्थों का (प्रचरन्ति) प्रचार करते हैं (तेषाम्) उन के (सहस्रयोजने) हज़ार योजन के देश में (धन्वानि) शस्त्रों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥ ६१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उन में पहिले तो वे जो ब्रह्मचर्य गुरु की सेवा वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सत्सङ्ग ईश्वर की उपासना और सत्यभाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने आने को समर्थ हों ॥ ६१ ॥

येऽन्नेष्वित्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् । तेषांᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (अन्नेषु) खाने योग्य पदार्थों में वर्तमान (पात्रेषु) पात्रों में (पिबतः) पीते हुए (जनान्) मनुष्यादि प्राणियों को (विविध्यन्ति) बाण के तुल्य घायल करते हैं (तेषाम्) उन को हटाने के लिये (सहस्रयोजने) असंख्य योजन देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव, तन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥ ६२ ॥

भावार्थः—जो पुरुष अन्न को खाते और जलादि को पीते हुए जीवों को विष आदि से मार डालते हैं उन से सब लोग दूर बसें ॥ ६२ ॥

य एतावन्त इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

य एतावन्तश्च भूयाᳫंसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हम लोग (ये) जो (एतावन्तः) इतने व्याख्यान किये (च) और (रुद्राः) प्राण वा जीव (भूयांसः) इन से भी अधिक (च) सब प्राण तथा जीव (दिशः) पूर्वादि दिशाओं में (वितस्थिरे) विविध प्रकार से स्थित हैं (तेषाम्)

उन के (सहस्रयोजने) हजार योजन के देश में (धन्वानि) आकाश के अवयवों को (अव, तन्मसि) विरुद्ध विस्तृत करते हैं ॥ ६३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब दिशाओं में स्थित जीवों वा वायुओं को यथावत् उपयोग में लाते हैं उन के सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ६३ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
निचृदष्टिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर भी वही वि० ॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये दि॒वि येषां॑ व॒र्षमिष॑वः । तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः । तेभ्यो॒ नमो॑ अस्तु ते नो॑ऽवन्तु ते नो॑ मृडयन्तु ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(ये) जो सर्वहितकारी (दिवि) सूर्यप्रकाशादि के तुल्य विद्या और विनय में वर्त्तमान हैं (येषाम्) जिन के (वर्षम्) वृष्टि के समान (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी सत्पुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे हम लोग (यम्) जिस से (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिलाव के मुख में मूसे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥ ६४ ॥

भावार्थः—जैसे वायुओं के सम्बन्ध से वर्षा होती है वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठित हों वे वीर पुरुष पूर्वादि दिशाओं में हमारे रक्षक हों हम लोग जिस को विरोधी जानें उस को सब ओर से घेर के वायु के समान बांधें ॥ ६४ ॥

नमोस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर वही वि० ॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये॑ऽन्तरि॑क्षे॒ येषां॒ वात॒ इष॑वः । तेभ्यो॒ दश॒

प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(ये) जो विमानादि यानों में बैठ के (अन्तरिक्षे) आकाश में विचरते हैं (येषाम्) जिन के (वातः) वायु के तुल्य (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हमारा किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व (दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं में व्याप्त हुए हैं (तेभ्यः) उन सर्व-हितैषियों को (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिससे (द्विष्मः) अप्रीति करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उस को (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाल के मुख में मूसे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य आकाश में रहने वाले शुद्ध कारीगरों का सेवन करते हैं उन को ये सब ओर से बलवान् करके शिल्पविद्या की शिक्षा करें ॥ ६५ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्य इत्यस्य परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवा ऋषयः । रुद्रा देवताः ।
धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(ये) जो भूविमान आदि में बैठ के (पृथिव्याम्) विस्तृत भूमि में विचरते हैं (येषाम्) जिन के (अन्नम्) खाने योग्य तण्डुलादि (इषवः) बाणरूप हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणादि के तुल्य वर्त्तमान पुरुषों के लिये हम लोगों का किया (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो जो (दश) दश प्रकार (प्राचीः) पूर्व

(दश) दश प्रकार (दक्षिणाः) दक्षिण (दश) दश प्रकार (प्रतीचीः) पश्चिम (दश) दश प्रकार (उदीचीः) उत्तर और (दश) दश प्रकार (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशाओं को व्याप्त होते हैं (तेभ्यः) उन सर्वहितैषी राजपुरुषों के लिये हमारा (नमः) अन्नादि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो जो ऐसे पुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी सब ओर से (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नः) हम को (मृडयन्तु) सुखी करें (ते) वे और हम लोग (यम्) जिस को (द्विष्मः) अप्रसन्न करें (च) और (यः) जो (नः) हम को (द्वेष्टि) दुःख दे (तम्) उसको (एषाम्) इन वायुओं की (जम्भे) बिडाली के मुख में मूषे के तुल्य पीड़ा में (दध्मः) डालें ॥ ६६ ॥

भावार्थः—जो पृथिवी पर अनाथों पुरुष हैं उन का अच्छे प्रकार पोषण कर उन्नति करनी चाहिये ॥ ६६ ॥

इस अध्याय में वायु जीव ईश्वर और वीर पुरुष के गुण, यथा कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥ ६६ ॥
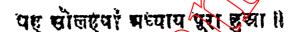
यह सोलहवां अध्याय पूरा हुआ ॥

ओ३म्

अथ सप्तदशोऽध्याय आरम्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

अश्मन्नूर्जमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । मरुतो देवता । अतिशक्वरी छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है।
इस के पहिले मंत्र में वर्षा की विद्या का उपदेश किया है ॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतं पयः । तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणाः । अश्मँस्ते क्षुन्मयि त ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (संरराणाः) सम्यक् दानशील (मरुतः) वायुओं के तुल्य क्रिया करने में कुशल मनुष्यो तुम लोग (पर्वते) पहाड़ के समान आकार वाले (अश्मन्) मेघ के (शिश्रियाणाम्) अवयवों में स्थिर बिजुली तथा (ऊर्जम्) पराक्रम और अन्न को (नः) हमारे लिये (अधि, धत्त) अधिकता से धारण करो और (अद्भ्यः) जलाशयों (ओषधिभ्यः) जौ आदि ओषधियों और (वनस्पतिभ्यः) पीपल आदि वनस्पतियों से (सम्भृतम्) सम्यक् धारण किये (पयः) रसयुक्त जल (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम और (ताम्) उस पूर्वोक्त विद्युत् को धारण करो हे मनुष्य जो (ते) तेरा (अश्मन्) मेघविषय में (ऊर्क्) रस वा पराक्रम है सो (मयि) मुझ में तथा जो (ते) तेरी (क्षुत्) भूख है वह मुझ में भी हो अर्थात् समान सुख दुःख मान के हम लोग एक दूसरे के सहायक हों और (यम्) जिस दुष्ट को हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे सूर्य जलाशय और ओषध्यादि से रस का हरण कर मेघमण्डल में स्थापित कर के पुनः वर्षाता है उस से अन्नादि पदार्थ होते हैं उस के भोजन से क्षुधा की निवृत्ति, क्षुधा की निवृत्ति से बल की बढ़ती, उस से दुष्टों की निवृत्ति और दुष्टों की निवृत्ति से सज्जनों के शोक का नाश होता है वैसे अपने समान दूसरों का सुख दुःख मान सब के मित्र हो के एक दूसरे के दुःख का विनाश कर के सुख की निरन्तर उन्नति करें ॥ १ ॥

इमा मे इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्विकृतिश्छन्दः ॥

मध्यमः स्वरः ॥

अथ इष्टका आदि के दृष्टान्त से गणित विद्या का उप० ॥

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जैसे (मे) मेरी (इमाः) ये (इष्टकाः) इष्ट सुख को सिद्ध करनेहारी यज्ञ की सामग्री (धेनवः) दुग्ध देने वाली गौओं के समान (सन्तु) होवें आप के लिये भी वैसी हों जो (एका) एक (च) दशगुणा (दश) दश (च) और (दश) दश (च) दशगुणा (शतम्) सौ (च) और (शतम्) सौ (च) दशगुणा (सहस्रम्) हज़ार (च) और (सहस्रम्) हज़ार (च) दशगुणा (अयुतम्) दश हज़ार (च) और (अयुतम्) दश हज़ार (च) दशगुणा (नियुतम्) लाख (च) और (नियुतम्) लाख (च) दशगुणा (प्रयुतम्) दश लाख (च) इसका दशगुणा क्रोड़ इस का दशगुणा (अर्बुदम्) दश क्रोड़ इस का दश० (न्यर्बुदम्) अर्ब (च) इस का दशगुणा खर्व इस का दशगुणा निखर्व इसका दशगुणा महापद्म इस का दशगुणा शंकु इस का दशगुणा (समुद्रः) समुद्र (च) इस का दशगुणा (मध्यम्) मध्य (च) इस का दशगुणा (अन्तः) अन्त और (च) इस का दशगुणा (परार्द्धश्च) परार्द्ध (एताः) ये (मे) मेरी (अग्ने) हे विद्वान् (इष्टकाः) वेदी की ईंटें (धेनवः) गौओं के तुल्य (अमुष्मिन्) परोक्ष (लोके) देखने योग्य (अमुत्र) अगले जन्म में सन्तु हों वैसा प्रयत्न कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे अच्छे प्रकार सेवन की हुई गौ दुग्ध आदि के दान से सब को प्रसन्न करती हैं वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा की हेतु हो के वर्षादि के द्वारा सब को सुखी करती हैं मनुष्यों को चाहियें कि एक १ संख्या को दश वार गुणने से १० दश, दश को दश बार गुणने से सौ १०० उस को दश वार गुणने से हज़ार १००० उस को द० गु० से दश हज़ार १०००० उस को द० गु० से लाख १००००० उस को द० गु० से दश लाख १०००००० इस को द० गु० से क्रोड़ १००००००० इस को द० गु० से दश क्रोड़ १०००००००० इसको द० गु० से अर्व १०००००००००० इस को द० गु० से दश अर्व १००००००००००० इस को द० गु० से खर्व १०००००००००००० इस को द० गु० से दस खर्व १००००००००००००० इस को द० गु० से नील १०००००००००००००० इसको द० गु० से दश नील १००००००००००००००० इस को द० गु० से एक पद्म १०००००००००००००००० इस को द० गु० से दश पद्म १००००००००००००००००० इस को द० गु० से एक शङ्ख १०००००००००००००००००० इस को दश वार गुणने से दश शंख १००००००००००००००००००० इन संख्याओं की संज्ञा पड़ती हैं ये इतनी संख्या तो कहीं परन्तु अनेक चकारों के होने से और भी अङ्कगणित, वीजगणित और रेखागणित आदि की संख्याओं को यथावत् समझें जैसे इस भूलोक में ये संख्या हैं वैसे अन्य लोकों में भी हैं जैसे यहां इन संख्याओं से गणना की और अच्छे कारीगरों ने चिनी हुई ईंटें घर के आकार को शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती हैं वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियां जल, वायु और ओषधियों के साथ मिल के सब को आनन्दित करती हैं ॥ २ ॥

ऋतव इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

स्त्री लोग पति आदि के साथ कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

ऋतवः स्थ ऋतावृधं ऋतुष्ठाः स्थं ऋतावृधः । घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो जो तुम लोग (ऋतवः) वसन्तादि ऋतुओं के समान (स्थः) हो तथा जो (ऋतावृधः) उदक से नदियों के तुल्य सत्य के साथ उन्नति को प्राप्त होने वा (ऋतुष्ठाः) वसन्तादि ऋतुओं में स्थित होने और (ऋतावृधः) सत्य को

बढ़ाने वाली (स्थ) हो और जो तुम (घृतश्च्युतः) जिन से घी निकले उन (मधुश्च्युतः) मधुर रस से प्राप्त हुई (अक्षीयमाणाः) रक्षा करने योग्य (विराजः) विविध प्रकार के गुणों से प्रकाशमान तथा (कामदुघाः) कामनाओं को पूर्ण करने हारी (नाम) प्रसिद्ध गौओं के सदृश होवे तुम लोग हम लोगों को सुखी करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ऋतु और गौ अपने२ समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे ही अच्छी स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि सब पुरुषों को तृप्त कर आनन्दित करें ॥ ३ ॥

समुद्रस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
सभापति को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी सभापते जैसे हम लोग (समुद्रस्य) आकाश के बीच (अवकया) जिस से रक्षा करते हैं उस क्रिया के साथ वर्त्तमान (त्वा) आपको (परि, व्ययामसि) सब ओर से प्राप्त होते हैं वैसे (पावकः) पवित्रकर्त्ता आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मनुष्य लोग समुद्र के जीवों की रक्षा कर सुखी करते हैं वैसे धर्मात्मा रक्षक सभापति अपनी प्रजाओं की रक्षा कर निरन्तर सुखी कर ॥४॥

हिमस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

हिमस्य त्वा जरायुणाऽग्ने परि व्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन सभापते हम लोग (हिमस्य) शीतल को (जरायुणा) जीर्ण करने वाले वस्त्र वा अग्नि से (त्वा) आप को (परि, व्ययामसि) सब प्रकार आच्छादित करते हैं वैसे (पावकः) पवित्रस्वरूप आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलमय (भव) हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे सभापते जैसे अग्नि वा वस्त्र शीत से पीड़ित प्राणियों को जाड़े से छुड़ा के प्रसन्न करता है वैसे ही आपका आश्रय किये हुए हम लोग दुःख से छूटे हुए सुख सेवने वाले होवें ॥ ५ ॥

उपज्मन्नित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

उप॒ज्मन्नुप॑ वेत॒सेऽव॑ तर न॒दीष्वा । अग्ने॑ पि॒त्तम॒पाम॑सि॒ मण्डू॑कि॒ ताभि॒राग॑हि॒ सेमं नो॑ य॒ज्ञं पा॑व॒कव॑र्णꣳशि॒वं कृ॑धि ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विनी विदुषि (मण्डूकि) अच्छे प्रकार अलङ्कारों से शोभित विदुषि स्त्री तू (ज्मन्) पृथिवी पर (नदीषु) नदियों तथा (वेतसे) पदार्थों के विस्तार में (अव, तर) पार हो जैसे अग्नि (अपाम्) प्राण वा जलों के (पित्तम्) तेज का रूप (असि) है वैसे तू (ताभिः) उन जल वा प्राणों के साथ (उप, आ, गहि) हम को समीप प्राप्त हो (सा) सो तू (नः) हमारे (इमम्) इस (पावकवर्णम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यज्ञम्) गृहाश्रमरूप यज्ञ को (शिवम्) कल्याणकारी (उप, आ, कृधि) अच्छे प्रकार कर ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-स्त्री और पुरुष गृहाश्रम में प्रयत्न के साथ सद् कार्य्यों को सिद्ध कर शुद्ध आचरण के सहित कल्याण को प्राप्त हों ॥ ६ ॥

अपामिदमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

गृहस्थ को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

अ॒पामि॒दं न्यय॑नꣳ समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम् । अ॒न्याँस्ते॑ अ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तयः॑ पाव॒को अ॒स्मभ्य॑ꣳशि॒वो भ॑व ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो (इदम्) यह आकाश (अपाम्) जलों वा प्राणों का (न्ययनम्) निश्चित स्थान है उस आकाशस्थ (समुद्रस्य) समुद्र की (निवेशनम्) स्थिति के तुल्य गृहाश्रम को प्राप्त हो के (पावकः) पवित्र कर्म करने हारे होते हुए आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये (ते) आपके (हेतयः) वज्र वा उन्नति (अस्मत्) हम लोगों से (अन्यान्) अन्य दुष्टों को (तपन्तु) दुखी करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग जैसे जलों का आधार समुद्र सागर का आधार भूमि उस का आधार आकाश है वैसे गृहस्थी के पदार्थों के आधार घर को बना और मंगलरूप आचरण करके श्रेष्ठों की रक्षा किया तथा डाकुओं को पीड़ा दिया करें ॥ ७ ॥

अग्ने पावकेत्यस्य वसुयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥
आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने॑ पावक रो॒चिषा॑ म॒न्द्रया॑ देव जि॒ह्वया॑ । आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (पावक) मनुष्यों के हृदयों को शुद्ध करने वाले (देव) सुन्दर (अग्ने) विद्या का प्रकाश वा उपदेश करने हारे पुरुष आप (मन्द्रया) आनन्द को सिद्ध करने हारी (जिह्वया) सत्य प्रियवाणी वा (रोचिषा) प्रकाश से (देवान्) विद्वान् वा दिव्यगुणों को (आ, वक्षि) उपदेश करते (च) और (यक्षि) समागम करते हो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रसन्न करता है; वैसे आप्त उपदेशक विद्वान् सब प्राणियों को प्रसन्न करें ॥ ८ ॥

स न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ२॥ इ॒हाव॑ह । उप॑ य॒ज्ञꣳ ह॒विश्च॑ नः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र (दीदिवः) तेजस्विन् वा शत्रुदाहक (अग्ने) सत्यासत्य का विभाग करनेहारे विद्वान् (सः) पूर्वोक्त गुण वाले आप जैसे यह अग्नि (नः) हमारे लिये अच्छे गुणों वाले (हविः) हवन किये सुगन्धित द्रव्य को प्राप्त करता है वैसे (इह) इस संसार में (यज्ञम्) गृहाश्रम (च) और (देवान्) विद्वानों को (नः) हम लोगों के लिये (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त करें ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे यह अग्नि अपने सूर्य्यादि रूप से सब पदार्थों से रस को ऊपर लेजा और वर्षा के उत्तम सुखों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्यारूप रस को उन्नति दे के सब सुखों को उत्पन्न करें ॥ ९ ॥

पावकयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

सेनापति को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

पा॒व॒कया॒ यश्चि॒तय॑न्त्या कृ॒पा क्षाम॑न् रुरु॒चऽउ॒षसो॒ न भा॒नुना॑ ।
तूर्व॒न्न याम॒न्नेत॑शस्य॒ नू रण॒ आ यो घृ॒णे न त॑तृषा॒णो अ॒जरः॑ ॥ १० ॥

पदार्थः—(यः) जो (पावकया) पवित्र करने और (चितयन्त्या) चेतनता कराने हारी (कृपा) शक्ति के साथ वर्त्तमान सेनापति जैसे (भानुना) दीप्ति से (उषसः) प्रभात समय शोभित होते हैं (न) वैसे (क्षामन्) राज्यभूमि में (रुरुचे) शोभित होता वा (यः) जो (यामन्) मार्ग वा प्रहर में जैसे (एतशस्य) घोड़े के बलों को (नु) शीघ्र (तूर्वन्) मारता है (न) वैसे (घृणे) प्रदीप्त (रणे) युद्ध में (ततृषाणः) प्यासे के (न) समान (अजरः) अजर अजेय ज्वान निर्भय (आ) अच्छे प्रकार होता वह राज्य करने को योग्य होता है ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०-जैसे सूर्य और चन्द्रमा अपनी दीप्ति से शोभित होते हैं वैसे ही सती स्त्री के साथ उत्तम पति और उत्तम सेना से सेनापति अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥ १० ॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

नम॑स्ते॒ हर॑से शो॒चिषे॒ नम॑स्ते अस्त्व॒र्चिषे॑ । अ॒न्याँस्ते॑ अ॒स्मत्त॑पन्तु
हे॒तयः॑ पाव॒को अ॒स्मभ्य॑ᳬ शि॒वो भ॑व ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे सभापते (हरसे) दुःख हरने वाले (ते) तेरे लिये हमारा किया (नमः) सत्कार हो तथा (शोचिषे) पवित्र (अर्चिषे) सत्कार के योग्य (ते) तेरे लिये हमारा कहा (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो जो (ते) तेरी (हेतयः) वज्रादि शस्त्रों से युक्त सेना हैं वे (अस्मत्) हम लोगों से भिन्न (अन्यान्) अन्य शत्रुओं को (तपन्तु) दुःखी करें (पावकः) शुद्धि करने हारे आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः) न्यायकारी (भव) हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अन्तःकरण के शुद्ध मनुष्यों को न्यायाधीश बनाकर और दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें ॥ ११ ॥

नृषद इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड्बर्हिषदे वेड्वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे सभापति आप (नृषदे) नायकों में स्थिर पुरुष होने के लिये (वेट्) न्यायासन पर बैठने (अप्सुषदे) जलों के बीच नौकादि में स्थिर होने वाले के लिये (वेट्) न्याय गद्दी पर बैठने (बर्हिषदे) प्रजा को बढ़ाने हारे व्यवहार में स्थिर होने के लिये (वेट्) अधिष्ठाता होने (वनसदे) वनों में रहने वाले के लिये (वेट्) न्याय में प्रवेश करने और (स्वर्विदे) सुख को जानने हारे के लिये (वेट्) उत्साह में प्रवेश करने वाले हूजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जिस देश में न्यायाधीश, नौकाओं के चलाने, प्रजाओं को बढ़ाने, वन में रहने, सेनादि के नायक और सुख पहुंचाने हारे विद्वान् होते हैं वहां सब सुखों की वृद्धि होती है ॥ १२ ॥

ये देवा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अब संन्यासियों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬं संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १३ ॥

पदार्थः—ये जो (देवानाम्) विद्वानों में (अहुतादः) विना हवन किये हुए पदार्थ का भोजन करने हारे (देवाः) विद्वान् (यज्ञियानाम्) वा यज्ञ करने में कुशल पुरुषों में (यज्ञियाः) योगाभ्यासादि यज्ञ के योग्य विद्वान् लोग (संवत्सरीणम्) वर्ष भर पुष्ट किये (भागम्) सेवने योग्य उत्तम परमात्मा की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) समागमरूप यज्ञ में (मधुनः) सहत (घृतस्य) जल और (हविषः) हवन के योग्य पदार्थों के भाग को (स्वयम्) अपने आप (पिबन्तु) सेवन करें ॥ १३ ॥

७४

भावार्थः—जो विद्वान् लोग इस संसार में अग्निक्रिया से रहित अर्थात् आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि संबन्धी बाह्य कर्मों को छोड़ के आभ्यन्तर अग्नि का धारण करने वाले संन्यासी हैं वे होम को नहीं किये भोजन करते हुए सर्वत्र विचर के सब मनुष्यों को वेदार्थ का उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ये इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । प्राणो देवता । आर्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं यह वि० ॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरएतारो अस्य । येभ्यो न ऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४ ॥

पदार्थः—(ये) जो (देवाः) पूर्ण विद्वान् (देवेषु, अधि) विद्वानों में सब से उत्तम कक्षा में विराजमान (देवत्वम्) अपने गुण कर्म और स्वभाव को (आयन्) प्राप्त होते हैं और (ये) जो (अस्य) इस (ब्रह्मणः) परमेश्वर को (पुरएतारः) पहिले प्राप्त होने वाले हैं (येभ्यः) जिनके (ऋते) विना (किम्) (चन) कोई भी (धाम) सुख का स्थान (न) नहीं (पवते) पवित्र होता (ते) वे विद्वान् लोग (न) न (दिवः) सूर्यलोक के प्रदेशों और (न) न (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि, स्नुषु) किसी भाग में अधिक बसते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो इस जगत् में उत्तम विद्वान् योगिराज यथार्थता से परमेश्वर को जानते हैं वे संपूर्ण प्राणियों को शुद्ध करने और जीवन्मुक्तिदशा में परोपकार करते हुए विदेहमुक्ति अवस्था में न सूर्यलोक और न पृथिवी पर नियम से बसते हैं किन्तु ईश्वर में स्थिर हो के अव्याहतगति से सर्वत्र विचरा करते हैं ॥ १४ ॥

प्राणदा इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वान् और राजा कैसे हों यह वि० ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्च्चोदा वरिवोदाः । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳशिवो भव ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् (ते) आप की जो उन्नति वा शस्त्रादि (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (प्राणदाः) जीवन तथा बल को देने वा (अपानदाः) दुःख दूर करने के साधन को देने वा (व्यानदाः) व्याप्ति और विज्ञान को देने (वर्च्चोदाः) सब विद्याओं के पढ़ने का हेतु को देने और (वरिवोदाः) सत्य धर्म और विद्वानों की सेवा को

व्याप्त कराने वाली (हेतयः) वज्रादि शस्त्रों की उन्नतियां (अस्मत्) हम से (अन्यान्) अन्य दुष्ट शत्रुओं को (तपन्तु) दुःखी करें उन के सहित (पावकः) शुद्धि का प्रचार करते हुए आप हम लोगों के लिये (शिवः) मंगलकारी (भव) हूजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—वही राजा है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जनाने वाला हो और वह राजा नहीं जो कि प्रजा को पीड़ा दे और वह विद्वान् भी नहीं जो दूसरे को विद्वान् न करे और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें ॥ १५ ॥

अग्निर्दिवस्य भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

विद्वान् कैसा हो इस वि० ॥

अ॒ग्निर्दि॒वेन॑ शो॒चिषा॒ या॑सद्वि॒श्वन्न्य॒त्रिण॑म्। अ॒ग्निर्नो॑ वनते र॒यिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से (अत्रिणम्) भोगने योग्य (विश्वम्) सब को (यासत्) प्राप्त होता है कि जैसे (अग्निः) विद्युत् अग्नि (नः) हमारे लिये (रयिम्) धन को (नि, वनते) निरन्तर विभागकर्त्ता है वैसे हमारे लिये आप भी हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि जैसे अग्नि अपने तेज से सूखे गीले सब तृणादि को जला देता है वैसे हमारे सब दोषों को भस्म कर गुणों को प्राप्त करें जैसे बिजुली सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे हम को सब विद्या का सेवन करा के अविद्या से पृथक् किया करें ॥ १६ ॥

य इमा इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

य इ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि॒ जुह्व॒दृषि॒र्होता॒ न्यसी॑दत्पि॒ता नः॑। स आ॒शिषा॒ द्रवि॑णमि॒च्छमा॑नः प्रथम॒च्छदव॑राँ२॥ऽआ वि॑वेश ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (ऋषिः) ज्ञानस्वरूप (होता) सब पदार्थों को देने वा ग्रहण करने हारा (नः) हम लोगों का (पिता) रक्षक परमेश्वर (इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को व्याप्त होके (न्यसीदत्) निरन्तर स्थित और

जो सब लोकों का (जुहृत्) धारणकर्त्ता है (सः) वह (आशिषा) आशीर्वाद से हमारे लिये (द्रविणम्) धन को (इच्छमानः) चाहता और (प्रथमच्छत्) विस्तृत पदार्थों को आच्छादित करता हुआ (अवरान्) पूर्ण आकाशादि को (आविवेश) अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है यह तुम जानो ॥ १७ ॥

भावार्थः—सब मनुष्य लोग जो सब जगत् को रचने धारण करने पालने तथा विनाश करने और सब जीवों के लिये सब पदार्थों को देने वाला परमेश्वर अपनी व्याप्ति से आकाशादि में व्याप्त हो रहा है उसी की उपासना करें ॥ १७ ॥

किं स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं स्वित्) क्या आश्चर्यरूप (आसीत्) है तथा (आरम्भणम्) इस कार्य जगत् की रचना का आरंभ कारण (कतमत्) बहुत उपादानों में क्या और वह (कथा) किस प्रकार से (स्वित्) तर्क के साथ (आसीत्) है कि (यतः) जिस से (विश्वकर्मा) सब सत्कर्मों वाला (विश्वचक्षाः) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) पृथिवी और (द्याम्) सूर्यादि लोक को (जनयन्) उत्पन्न करता हुआ (महिना) अपनी महिमा से (व्यौर्णोत्) विविध प्रकार से आच्छादित करता है ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को यह जगत् कहां बसता क्या इस का कारण और किस लिये उत्पन्न होता है इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि जो जगदीश्वर कार्य जगत् को उत्पन्न तथा अपनी व्याप्ति से सब का आच्छादन करके सर्वज्ञता से सब को देखता है वह इस जगत् का आधार और निमित्तकारण है वह सर्वशक्तिमान् रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है जीवों को पाप पुण्य का फल देने भोगवाने के लिये इस सब संसार को रचा है ऐसा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

विश्वत इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो (विश्वतश्चक्षुः) सब संसार को देखने (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से सब को उपदेश करने द्वारा (विश्वतोबाहुः) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्ति वाला (एकः) अद्वितीय सहायरहित (देवः) अपने आप प्रकाशस्वरूप (पतत्रैः) क्रियाशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य और पृथिवी लोक को (सं, जनयन्) कार्यरूप प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्तबल पराक्रम से सब जगत् को (सं, धमति) सम्यक् प्राप्त हो रहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्य देव जानो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा, निराकार, अनन्त सामर्थ्य वाला सर्वत्र अभिव्याप्त प्रकाशस्वरूप अद्वितीय परमात्मा है वही अतिसूक्ष्म कारण से स्थूल कार्यरूप जगत् के रचने और विनाश करने को समर्थ है। जो पुरुष इस को छोड़ अन्य की उपासना करता है उससे अन्य जगत् में भाग्यहीन कौन पुरुष है ? ॥ १६ ॥

किंछ स्विदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

किᳬस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः। मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥

पदार्थः—(प्रश्न) हे (मनीषिणः) मन का निग्रह करने वाले योगीजनो तुम लोग (मनसा) विज्ञान के साथ विद्वानों के प्रति (किं, स्वित्) क्या (वनम्) सेवने योग्य कारणरूप वन तथा (कः) कौन (उ) वितर्क के साथ (सः) वह (वृक्ष) छियमान अनित्य कार्यरूप संसार (आस) है ऐसा (पृच्छत) पूछो कि (यतः) जिस से (द्यावापृथिवी) विस्तारयुक्त सूर्य और भूमि आदि लोकों को किसने (निष्टतक्षुः) भिन्न २ बनाया है (उत्तर) (यत्) जो (भुवनानि) प्राणियों के रहने के स्थान लोक लोकान्तरों को (धारयन्) वायु विद्युत् और सूर्यादि से धारण कराता हुआ (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता है (तत्) (इत्) उसी (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म को इस सब का कर्त्ता जानो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र के तीन पादों से प्रश्न और अन्त्य के एक पाद से उत्तर दिया है। वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का ग्रहण है जैसे सब पदार्थों को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत् और बिजुली को वायु धारण करता है वैसे ही इन सब को ईश्वर धारण करता है ॥ २० ॥

या त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (विश्वकर्मन्) सब उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर (ते) आप की सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम (या) जो (अवमा) निकृष्ट (या) जो (मध्यमा) मध्य कक्षा के (धामानि) सब पदार्थों के आधारभूत जन्म स्थान तथा नाम हैं (इमा) इन सब को (हविषि) देने लेने योग्य व्यवहार में (स्वयम्) आप (यजस्व) संगत कीजिये (उत) और हमारे (तन्वम्) शरीर की (वृधानः) उन्नति करते हुए (सखिभ्यः) आप की आज्ञापालक हम मित्रों के लिये (शिक्ष) शुभ-गुणों का उपदेश कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—जैसे इस संसार में ईश्वर ने निकृष्ट मध्यम और उत्तम वस्तु तथा स्थान रचे हैं वैसे ही सभापति आदि को चाहिये कि तीन प्रकार के स्थान रच वस्तुओं को प्राप्त हो ब्रह्मचर्य से शरीर का बल बढ़ा और मित्रों को अच्छी शिक्षा दे के ऐश्वर्ययुक्त होवें ॥२१॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् । मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) संपूर्ण उत्तम कर्म करनेहारे सभापति (हविषा) उत्तम गुणों के ग्रहण से (वावृधानः) उन्नति को प्राप्त हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यादि लोक को संगत करता है वैसे आप (स्वयम्) आप ही (यजस्व) सब से समागम कीजिये (इह) इस जगत् में (मघवा) प्रशंसित धनवान् पुरुष (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हो जिससे (अस्माकम्) हमारे (अन्ये) और (सपत्नाः) शत्रुजन (अभितः) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिये जो पदार्थ रचा है उस को वैसा जान के उपकार लेते हैं उन की दरिद्रता और आलस्यादि दोषों का नाश होने से शत्रुओं का प्रलय होता और वे आप भी विद्वान् हो जाते हैं ॥ २२ ॥

वाचस्पतिमित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस वि० ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये जिस (वाचस्पतिम्) वेदवाणी के रक्षक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों में कुशल महात्मा पुरुष को (वाजे) संग्राम आदि कर्म में (हुवेम) बुलावें (सः) वह (विश्वशम्भूः) सब के लिये सुखप्रापक (साधुकर्मा) धर्मयुक्त कर्मों का सेवन करने हारा विद्वान् (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्रहण करने योग्य कर्मों को (जोषत्) सेवन करे ॥ २३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिसने ब्रह्मचर्य नियम के साथ सब विद्या पढ़ी हों जो धर्मात्मा आलस्य और पक्षपात को छोड़ के उत्तम कर्मों का सेवन करता तथा शरीर और आत्मा के बल से पूरा हो उस को सब प्रजा की रक्षा करने में अधिपति राजा बनावें ॥ २३ ॥

विश्वकर्मन्नित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिये इस वि० ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे (विश्वकर्मन्) सम्पूर्ण शुभकर्मों का सेवन करने हारे सब सभाओं के पति राजा आप (हविषा) ग्रहण करने योग्य (वर्द्धनेन) वृद्धि से जिस (अवध्यम्) मारने के अयोग्य (त्रातारम्) रक्षक (इन्द्रम्) उत्तम सम्पत्ति वाले पुरुष को राजकार्य में सम्मतिदाता मन्त्री (अकृणोः) करो (तस्मै) उस के लिये (पूर्वीः) पहिले न्याया-

धीशों ने प्राप्त कराई (विशः) प्रजाओं को (समनमन्त) अच्छे प्रकार नम्र करो (यथा) जैसे (अयम्) यह मन्त्री (उग्रः) मारने में तीक्ष्ण (विहव्यः) विविध प्रकार के साधनों से स्वीकार करने योग्य (असत्) होवे वैसा कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है-सब सभाओं के अधिष्ठाता के सहित सब सभासद् उस पुरुष को राज्य का अधिकार देवें कि जो पक्षपाती न हो जो पिता के समान प्रजाओं की रक्षा न करें उन को प्रजा लोग भी कभी न मानें और जो पुत्र के तुल्य प्रजा की न्याय से रक्षा करें उन के अनुकूल प्रजा निरन्तर हों ॥ २४ ॥

चक्षुष इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने । यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे प्रजा के पुरुषो आप लोग जो (चक्षुषः) न्याय दिखाने वाले उपदेशक का (पिता) रक्षक (मनसा) योगाभ्यास से शान्त अन्तःकरण (हि) ही से (धीरः) धीरजवान् (घृतम्) घी को (अजनत्) प्रकट करता है उस को अधिकार देके (एने) राज और प्रजा के दल (नम्नमाने) नम्र के तुल्य आचरण करते हुए (पूर्वे) पहिले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) प्रकाश और पृथिवी के समान मिले हुए जैसे (अप्रथेताम्) प्रख्यात होवें वैसे (इत्) ही (यदा) जब (अन्ताः) अन्त्य के अवयवों के तुल्य (अददृहन्त) वृद्धि को प्राप्त हों तब (आत्) उस के पश्चात् (इत्) ही स्थिरराज्य वाले होओ ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जब मनुष्य राज और प्रजा के व्यवहार में एक सम्मति होकर सदा प्रयत्न करें तभी सूर्य और पृथिवी के तुल्य स्थिरसुख वाले होवें ॥ २५ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब अगले मन्त्र में परमेश्वर कैसा है यह वि० ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् । तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (विश्वकर्मा) जिस का समस्त जगत् का बनाना क्रियमाण काम और जो (विमनाः) अनेक प्रकार के विज्ञान से युक्त (विहायाः) विविध प्रकार के पदार्थों में व्याप्त (धाता) सब का धारण पोषण करने (विधाता) और रचने वाला (संदृक्) अच्छे प्रकार सब को देखता (परः) और सब से उत्तम है तथा जिस को (एकम्) अद्वितीय (आहुः) कहते अर्थात् जिस में दूसरा कहने में नहीं आता (आत्) और (यत्र) जिस में (सप्त ऋषीन्) पांच प्राण सूत्रात्मा और धनञ्जय इन सात को प्राप्त होकर (इषा) इच्छा से जीव (सं, मदन्ति) अच्छे प्रकार आनन्द को प्राप्त होते (उत्) और जो (तेषाम्) उन जीवों के (परमा) उत्तम (इष्टानि) सुख सिद्ध करने वाले कामों को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब जगत् का बनाने, धारण, पालन और नाश करनेहारा एक अर्थात् जिस का दूसरा कोई सहायक नहीं हो सकता उसी परमेश्वर की उपासना अपने चाहे हुए काम के सिद्ध करने के लिये करना चाहिये ॥ २६ ॥

यो न इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

यो नः॑ पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ । यो दे॒वानां॑ नाम॒धा एक॑ ए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (नः) हमारा (पिता) पालन और (जनिता) सब पदार्थों का उत्पादन करने हारा तथा (यः) जो (विधाता) कर्मों के अनुसार फल देने तथा जगत् का निर्माण करने वाला (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों और (धामानि) जन्म-स्थान वा नाम को (वेद) जानता (यः) जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का (नामधाः) अपनी विद्या से नाम धरने वाला (एकः) एक अर्थात् असहाय (एव) ही है जिस को (अन्या) और (भुवना) लोकस्थ पदार्थ (यन्ति) प्राप्त होते जाते हैं (संप्रश्नम्) जिस के निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो (तम्) उस को तुम लोग जानो ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो पिता के तुल्य समस्त विश्व का पालने और सब को जानने हारा एक परमेश्वर है उस के ओर उस की सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिल के प्रश्न और उत्तर करें ॥ २७ ॥

त आयजन्त इत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

त आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना । असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २८ ॥

पदार्थः—(ये) जो (पूर्वे) पूर्ण विद्या से सब की पुष्टि (जरितारः) और स्तुति करने वाले के (न) समान (ऋषयः) वेदार्थ के जानने वाले (भूना) बहुतसे (असूर्ते) परोक्ष अर्थात् अप्राप्त हुए वा (सूर्ते) प्रत्यक्ष अर्थात् पाये हुए (निषत्ते) स्थित वा स्थापित किये हुए (रजसि) लोक में (इमानि) इन प्रत्यक्ष (भूतानि) प्राणियों को (समकृण्वन्) अच्छे प्रकार शिक्षित करते हैं (ते) वे (अस्मै) इस ईश्वर की आज्ञा पालने के लिये (द्रविणम्) धन को (सम्, आ, यजन्त) अच्छे प्रकार संगत करें ॥२८॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमात्मा की आज्ञा पालने के लिये सृष्टिक्रम से तत्त्वों को जानते हैं वैसे ही अन्य लोग आचरण करें जैसे धार्मिक जन धर्म के आचरण से धन को इकट्ठा करते हैं वैसे ही सब लोग उपार्जन करें ॥ २८ ॥

परो दिवेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति । कꣳस्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (एना) इस (दिवा) सूर्य्य आदि लोकों से (परः) परे अर्थात् अत्युत्तम (पृथिव्या) पृथिवी आदि लोकों से (परः) परे (देवेभिः) विद्वान् वा दिव्य प्रकाशित प्रजाओं और (असुरैः) अविद्वान् तथा कालरूप प्रजाओं से (परः) परे (अस्ति) है (यत्र) जिस में (आपः) प्राण (कं, स्वित्) किसी (प्रथमम्) विस्तृत (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (दध्रे) धारण करते हुए वा (यत्) जिस को (पूर्वे) पूर्णविद्या के अध्ययन करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (समपश्यन्त) अच्छे

प्रकार ज्ञानचक्षु से देखते हैं यह ब्रह्म है यह तुम लोग जानो ॥२६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब से सूक्ष्म बड़ा, अतिश्रेष्ठ सब का धारणकर्त्ता, विद्वानों का विषय अर्थात् समस्त विद्याओं का समाधानरूप अनादि और चेतनमात्र है वही ब्रह्म उपासना करने के योग्य है अन्य नहीं ॥ २९ ॥

तमिदित्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

तमिद्गर्भं॑प्रथमन्द॑ध्र आपो॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒मग॑च्छन्त॒ विश्वे॑ । अ॒जस्य॒ नाभा॒वध्येक॒मर्पि॑तं॒ यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि त॒स्थुः ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्र) जिस ब्रह्म में (आपः) कारणमात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) विस्तारयुक्त अनादि (गर्भम्) सब लोकों की उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को (दध्रे) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अन्तःकरणयुक्त योगीजन (समगच्छन्त) प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य) अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारण समूह के (नाभौ) मध्य में (अधि) अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान (एकम्) आप ही सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) समस्त (भुवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं तुम लोग (तमित्) उसी को परमात्मा जानो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जगत् का आधार योगियों को प्राप्त होने योग्य, अन्तर्यामी आप अपना आधार सब में व्याप्त है उसी का सेवन सब लोग करें ॥ ३० ॥

न तं विदाथेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मंत्र में कहा है ॥

न तं वि॑दाथ॒ य इ॒मा ज॒जाना॒न्यद्यु॒ष्माक॒मन्त॑रं बभूव । नी॒हारे॑ण॒ प्रावृ॑ता॒ जल्प्या॑ चासु॒तृप॑ उक्थ॒शास॑श्चरन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष (नीहारेण) धूम के आकार कुहर के समान अज्ञानरूप अन्धकार से (प्रावृताः) अच्छे प्रकार ढके हुए (जल्प्या) थोड़े सत्य असत्य वादानुवाद में स्थिर रहने वाले (असुतृपः) प्राणपोषक (च) और

(उक्थशासः) योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन मण्डन में रमण करते हुए (चरन्ति) विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग (तम्) उस परमात्मा को (नः) नहीं (विदाथ) जानते हो (यः) जो (इमा) इन प्रजाओं को (जजान) उत्पन्न करता और जो ब्रह्म (युष्माकम्) तुम अधर्मी अज्ञानियों के सकाश से (अन्यत्) अर्थात् कार्य्यकारणरूप जगत् और जीवों से भिन्न (अन्तरम्) तथा सभों में स्थिर भी दूरस्थ (बभूव) होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म के अनुष्ठान सत्सङ्ग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञानरूप अन्धकार में दबे हुए ब्रह्म को नहीं जान सकते जो ब्रह्म जीवों से पृथक् अन्तर्यामी सब का नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है उस के जानने को जिनका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥ ३१ ॥

विश्वकर्मेत्यस्य भुवनपुत्रो विश्वकर्मर्षिः । विश्वकर्मा देवता ।
स्वराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

वि॒श्वक॑र्मा॒ ह्यज॑निष्ट दे॒व आदिद्ग॑न्ध॒र्वोऽअ॑भवद् द्वि॒तीयः॑ । तृ॒तीयः॑ पि॒ता ज॑नि॒तौष॑धीनाम॒पां गर्भं॒ व्य॑दधात्पुरु॒त्रा ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो इस जगत् में (विश्वकर्मा) जिस के समस्त शुभ काम हैं वह (देवः) दिव्यस्वरूप वायु प्रथम (हि) ही (अजनिष्ट) होता है (आत्) इस के अनन्तर (गन्धर्वः) जो पृथिवी को धारण करता है वह सूर्य वा सूत्रात्मा वायु (अजनिष्ट) उत्पन्न और (ओषधीनाम्) यव आदि ओषधियों (अपाम्) जलों और प्राणों का (पिता) पालन करने हारा (हि) ही (द्वितीयः) दूसरा अर्थात् धनञ्जय तथा जो प्राणों के (गर्भम्) गर्भ अर्थात् धारण को (व्यदधात्) विधान करता है वह (पुरुत्रा) बहुतों का रक्षक (जनिता) जलों का धारण करनेहारा मेघ (तृतीयः) तीसरा उत्पन्न होता है इस विषय को आप लोग जानो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में सब कामों के सेवन करने हारे जीव पहिले बिजुली अग्नि वायु और सूर्य्य पृथिवी आदि लोकों के धारण करनेहारे हैं वे दूसरे और मेघ आदि तीसरे हैं उन में पहिले जीव अज अर्थात् उत्पन्न नहीं होते और दूसरे तीसरे उत्पन्न हुए हैं परन्तु वे भी कारणरूप से नित्य हैं ऐसा जानें ॥ ३२ ॥

आशुः शिशान इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब सेनापति के कृत्य का उपदेश अ० ॥

आशुः शिशा॑नो वृष॒भो न भी॒मो घ॑नाघ॒नः क्षोभ॑णश्चर्षणी॒नाम् ।
सं॒क्रन्द॑नोऽनिमि॒ष ए॑कवी॒रः श॒तꣳ सेना॑ अजयत्सा॒कमिन्द्रः॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो तुम लोग जो (चर्षणीनाम्) सब मनुष्यों का उन की सम्बन्धिनी सेनाओं में (आशुः) शीघ्रकारी (शिशानः) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (वृषभः) बलवान् बैल के (न) समान (भीमः) भयङ्कर (घनाघनः) अत्यन्त आवश्यकता के साथ शत्रुओं का नाश करने (क्षोभणः) उन को कंपाने (संक्रन्दनः) अच्छे प्रकार शत्रुओं को रुलाने और (अनिमिषः) रात्रि दिन प्रयत्न करने हारा (एकवीरः) अकेला वीर (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेना का अधिपति पुरुष हम लोगों के (साकम्) साथ (शतम्) अनेकों (सेनाः) उन सेनाओं को जिनसे शत्रुओं को बांधते हैं (अजयत्) जीतता है उसी को सेनाधीश करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो धनुर्वेद और ऋग्वेदादि शास्त्रों का जानने वाला निर्भय सब विद्याओं में कुशल अति बलवान् धार्मिक अपने स्वामी के राज्य में प्रीति करने वाला जितेन्द्रिय शत्रुओं का जीतनेहारा तथा अपनी सेना को सिखाने और युद्ध कराने में कुशल वीर पुरुष हो उसको सेनापति के अधिकार पर नियुक्त करें ॥ ३३ ॥

संक्रन्दनेनेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

सं॒क्रन्द॑नेनानिमि॒षेण॑ जि॒ष्णुना॑ युत्का॒रेण॑ दुश्च्यव॒नेन॑ धृ॒ष्णुना॑ ।
तदिन्द्रे॑ण जयत॒ तत्स॑हध्वं॒ युधो॑ नर॒ इषु॑हस्तेन॒ वृष्णा॑ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (युधः) युद्ध करने हारे (नरः) मनुष्यो तुम (अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करते हुए (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को कष्ट प्राप्त करने वाले (धृष्णुना) दृढ़ उत्साही (युत्कारेण) विविध प्रकार की रचनाओं से योद्धाओं को मिलाने और न मिलाने हारे (वृष्णा) बलवान् (इषुहस्तेन) बाण आदि शस्त्रों को हाथ में रखने (संक्रन्द-

सेन) और दुष्टों को अत्यन्त रुलानेहारे (जिष्णुना) जयशील शत्रुओं को जीतने और वा (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य करनेहारे (तत्) उस पूर्वोक्त सेनापति आदि के साथ वर्त्तमान हुए शत्रुओं को (जयत) जीतो और (तत्) उस शत्रु की सेना के वेग वा युद्ध से हुए दुःख को (सहध्वम्) सहो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग युद्धविद्या में कुशल सर्व शुभ लक्षण और बल पराक्रमयुक्त मनुष्य को सेनापति करके उस के साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत के निष्कंटक चक्रवर्त्ती राज्य भोगो ॥ ३४ ॥

स इषुहस्तैरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(सः) वह सेनापति (इषुहस्तैः) शस्त्रों को हाथों में रखने हारे और अच्छे सिखाये हुए बलवान् (निषङ्गिभिः) जिन के भुशुंडी (बन्दूक) शतघ्नी (तोप) और आग्नेय आदि बहुत अस्त्र विद्यमान हैं उन भृत्यों के साथ वर्त्तमान (सः) वह (संस्रष्टा) श्रेष्ठ मनुष्यों तथा शस्त्र और अस्त्रों का सम्बन्ध करने वाला (वशी) अपने इन्द्रिय और अन्तःकरण को जीते हुए जो (संसृष्टजित्) प्राप्त शत्रुओं को जीतता (सोमपाः) बलिष्ठ ओषधियों के रस को पीता (बाहुशर्द्धी) भुजाओं में जिसके बल विद्यमान हो और (उग्रधन्वा) जिसका तीक्ष्ण धनुष है (सः) वह (युधः) युद्धशील (अस्ता) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को मारने वाला और (गणेन) अच्छे सीखे हुए भृत्यों वा सेना वीरों ने (प्रतिहिताभिः) प्रत्यक्षता से स्वीकार किई सेना के साथ वर्त्तमान होता हुआ जनों को जीते ॥ ३५ ॥

भावार्थः—सब का ईश राजा वा सब सेनाओं का अधिपति अच्छे सीखे हुए वीर भृत्यों की सेना के साथ वर्त्तमान दुःख से जीतने योग्य शत्रुओं को भी जीत सकें वैसे सब को करना चाहिये ॥ ३५ ॥

बृहस्पत इत्यस्य प्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

बृह॑स्पते॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॑२॥ अप॒बाध॑मानः। प्र॒भ॒ञ्जन्त्सेनाः॑ प्रमृ॒णो यु॒धा जय॑न्न॒स्माक॑मेध्यवि॒ता रथा॑नाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) धार्मिकों वृद्धों वा सेनाओं के रक्षक जन (रक्षोहा) जो दुष्टों को मारने (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) दूर करने (प्रमृणः) अच्छे प्रकार मारने और (सेनाः) उन की सेनाओं को (प्रभञ्जन्) भग्न करने वाला तू (रथेन) रथ समूह से (युधा) युद्ध में शत्रुओं को (परि, दीया) सब ओर से काटता है सो (जयन्) उत्कर्ष अर्थात् जय को प्राप्त होता हुआ (अस्माकम्) हम लोगों के (रथानाम्) रथों की (अविता) रक्षा करने वाला (एधि) हो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—राजा सेनापति और अपनी सेना को उत्साह कराता तथा शत्रु सेना को मारता हुआ धर्मात्मा प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे ॥ ३६ ॥

बलविज्ञाय इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रो देवता।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
फिर भी उसी वि० ॥

ब॒ल॒वि॒ज्ञा॒यः स्थवि॑रः॒ प्रवी॑रः॒ सह॑स्वान् वा॒जी सह॑मान उ॒ग्रः। अ॒भिवी॑रो अ॒भिस॑त्वा सहो॒जा जैत्र॑मिन्द्र॒ रथ॒मा ति॑ष्ठ गो॒वित् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) युद्ध की उत्तम सामग्रीयुक्त सेनापति (बलविज्ञायः) जो अपनी सेना को बली करना जानता (स्थविरः) वृद्ध (प्रवीरः) उत्तम वीर (सहस्वान्) अत्यन्त बलवान् (वाजी) जिस को प्रशंसित शास्त्रबोध है (सहमानः) जो सुख और दुःख को सहने तथा (उग्रः) दुष्टों के मारने में तीव्र तेज वाला (अभिवीरः) जिस के अभीष्ट अर्थात् तत्काल चाहे हुए काम के करने वाले वा (अभिसत्वा) सब ओर से युद्धविद्या में कुशल रक्षा करनेहारे वीर हैं (सहोजाः) बल से प्रसिद्ध (गोवित्) वाणी गौओं वा पृथिवी को प्राप्त होता हुआ ऐसा तू युद्ध के लिये (जैत्रम्) जीतने वाले वीरों से घेरे हुए (रथम्) पृथिवी समुद्र और आकाश में चलने वाले रथ को (आ, तिष्ठ) आकर स्थित हो अर्थात् उस में बैठ ॥ ३७ ॥

भावार्थः—सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओं से युद्ध की इच्छा करें तब परस्पर सब ओर से रक्षा और रक्षा के साधनों का संग्रह कर विचार और उत्साह के साथ वर्त्तमान आलस्यरहित होते हुए शत्रुओं को जीतने में तत्पर हों ॥ ३७ ॥

गोत्रभिदमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

गो॒त्र॒भिदं॑ गो॒विदं॒ वज्र॑बाहुं॒ जय॑न्त॒मज्म॑ प्रमृ॒णन्त॒मोज॑सा । इ॒मᳬं स॑जाता॒ अनु॑ वीरयध्व॒मिन्द्र॑ᳬं सखा॒यो अनु॒ सᳬं र॑भध्वम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (सजाताः) एक देश में उत्पन्न (सखायः) परस्पर सहाय करने वाले मित्रो तुम लोग (ओजसा) अपने शरीर और बुद्धि बल वा सेनाजनों से (गोत्रभिदम्) जो कि शत्रुओं के गोत्रों अर्थात् समुदायों को छिन्न भिन्न करता उन की जड़ काटता (गोविदम्) शत्रुओं की भूमि को लेलेता (वज्रबाहुम्) अपनी भुजाओं में शस्त्रों को रखता (प्रमृणन्तम्) अच्छे प्रकार शत्रुओं को मारता (अज्म) जिस से वा जिस में शत्रुजनों को पटकते हैं उस संग्राम में (जयन्तम्) वैरियों को जीत लेता और (इमम्, इन्द्रम्) उन को विदीर्ण करता है इस सेनापति को (अनु, वीरयध्वम्) प्रोत्साहित करो और (अनु, संरभध्वम्) अच्छे प्रकार युद्ध का आरम्भ करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि तथा सेना के भृत्य परस्पर मित्र होकर एक दूसरे को अनुमोदन करा युद्ध का आरम्भ और विजय कर शत्रुओं के राज्य को पा और न्याय से प्रजा को पालन करके निरन्तर सुखी हों ॥ ३८ ॥

अभिगोत्राणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

अ॒भि गो॒त्राणि॒ सह॑सा॒ गाह॑मानोऽद॒यो वी॒रः श॒तम॑न्यु॒रिन्द्रः॑ । दु॒श्च्य॒व॒नः पृ॑तना॒षाड॑यु॒ध्यो॒ऽस्माक॒ᳬं सेना॑ अवतु॒ प्र यु॒त्सु ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (युत्सु) जिन से अनेक पदार्थों का मेल अमेल करें उन युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रुओं के कुलों को (प्र, गाहमानः) अच्छे यत्न से गाहता हुआ (अदयः) निर्दय (शतमन्युः) जिस को सैकड़ों प्रकार का क्रोध विद्यमान है (दुश्च्यवनः) जो दुःख से शत्रुओं के गिराने योग्य (पृतनाषाट्) शत्रु की सेना को सहता है (अयुध्यः) और जो शत्रुओं के युद्ध करने योग्य नहीं है (वीरः) तथा शत्रुओं को विदीर्ण करता है वह (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं को (अभि, अवतु) सब ओर से पाले और (इन्द्रः) सेनाधिपति हो ऐसी आज्ञा तुम देओ ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जो धार्मिकजनों में करुणा करने वाला और दुष्टों में दयारहित सब ओर से सब की रक्षा करने वाला मनुष्य हो वही सेना के पालने में अधिकारी करने योग्य है ॥३९॥

इन्द्र आसामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः । देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—युद्ध में (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रुओं की सेनाओं को सब ओर से मारती (जयन्तीनाम्) और शत्रुओं को जीतने से उत्साह को प्राप्त होती हुई (आसाम्) इन (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं का (नेता) नायक (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला शिक्षक सेनापति पीछे (यज्ञः) सब को मिलने वाला (पुरः) प्रथम (बृहस्पतिः) सब अधिकारियों का अधिपति (दक्षिणा) दाहिनी ओर और (सोमः) सेना को प्रेरणा अर्थात् उत्साह देने वाला बाईं ओर (एतु) चले तथा (मरुतः) पवनों के समान वेग वाले बली शूरवीर (अग्रम्) आगे को (यन्तु) जावें ॥ ४० ॥

भावार्थः—जब राजपुरुष शत्रुओं के साथ युद्ध किया चाहें तब सब दिशाओं में अध्यक्ष तथा शूरवीरों को आगे और डरपने वालों को बीच में ठीक स्थापन कर भोजन आच्छादन वाहन अस्त्र और शस्त्रों के योग से युद्ध करें और वहां विद्वानों की सेना के आधीन मूर्खों की सेना करनी चाहिये उन सेनाओं को विद्वान् लोग अच्छे उपदेश से उत्साह देवें और सेनाध्यक्षादि पद्मव्यूह आदि बांध के युद्ध करावें ॥ ४० ॥

इन्द्रस्येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्द्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(वृष्णः) वीर्यवान् (इन्द्रस्य) सेनापति (वरुणस्य) सब से उत्तम (राज्ञः) न्याय और विनय आदि गुणों से प्रकाशमान सब के अधिपति राजा के (भुवनच्यवानाम्) जो उत्तम घरों को प्राप्त होते (महामनसाम्) बड़े २ विचार वाले वा

(जयताम्) शत्रुओं के जीतने को समर्थ (आदित्यानाम्) जिन्होंने ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य किया हो (महताम्) और जो पूर्ण विद्या बलयुक्त हैं उन (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों का (उग्रम्) जो शत्रुओं को असह्य (शब्दः) बल (घोषः) शूरता और उत्साह उत्पन्न करने वाला विचित्र बाजों का स्वरालाप शब्द है वह युद्ध के प्रारम्भ से पहिले (उदस्थात्) उठे ॥ ४१ ॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि शिक्षा और युद्ध के समय मनोहर वीरभाव को उत्पन्न करने वाले अच्छे बाजों के बजाये हुए शब्दों से वीरों को हर्षित करावें तथा जो बहुत कालपर्यन्त ब्रह्मचर्य और अधिक विद्या से शरीर और आत्मबलयुक्त हैं वे ही योद्धाओं की सेनाओं के अधिकारी करने योग्य हैं ॥ ४१ ॥

उद्धर्षयेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—सेना के पुरुष अपने स्वामी से ऐसे कहें कि हे (वृत्रहन्) मेघ को सूर्य के समान शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाले (मघवन्) प्रशंसित धनयुक्त सेनापति आप (मामकानाम्) हम लोगों के (सत्वनाम्) सेनास्थ वीरपुरुषों के (आयुधानि) जिन से अच्छे प्रकार युद्ध करते हैं उन शस्त्रों का (उद्धर्षय) उत्कर्ष कीजिये हमारे सेनास्थ जनों के (मनांसि) मनों को (उत्) उत्तम हर्षयुक्त कीजिये हमारे (वाजिनाम्) घोड़ों के (वाजिनानि) शीघ्र चालों को (उत्) बढ़ाइये । तथा आप की कृपा से हमारे (जयताम्) विजय कराने वाले (रथानाम्) रथों के (घोषाः) शब्द (उद्यन्तु) उठें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—सेनापति और शिक्षक जनों को चाहिये कि योद्धाओं के चित्तों को नित्य हर्षित करें और सेना के अङ्गों को अच्छे प्रकार उन्नति देकर शत्रुओं को जीतें ॥ ४२ ॥

अस्माकमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ२॥ उ देवा अवता हवेषु ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विजय चाहने वाले विद्वानो तुम (अस्माकम्) हम लोगों के (समृतेषु) अच्छे प्रकार सत्य न्याय प्रकाश करने हारे चिह्न जिन में हों उन (ध्वजेषु) अपने वीर जनों के निश्चय के लिये रथ आदि यानों के ऊपर एक दूसरे से भिन्न स्थापित किये हुए ध्वजा आदि चिह्नों में नीचे अर्थात् उन की छाया में वर्त्तमान जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य करने वाला सेना का ईश और (अस्माकम्) हम लोगों की (याः) जो (इषवः) प्राप्त सेना है वह इन्द्र और (ताः) वे सेना (इषेषु) जिन में ईर्षा से शत्रुओं को बुलावें उन संग्रामों में (जयन्तु) जीतें (अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर जन (उत्तरे) विजय के पीछे जीवनयुक्त (भवन्तु) हों (अस्मान्) हम लोगों की (उ) सब जगह युद्ध समय में (अवत) रक्षा करो ॥ ४३ ॥

भावार्थः—सेनाजन और सेनापति आदि को चाहिये कि अपने २ रथ आदि में भिन्न २ चिह्न को स्थापन करें जिस से यह इसका रथ आदि है ऐसा सब जानें और जैसे अपने तथा वीरों का अधिक विनाश न हो वैसा ढंग करें क्योंकि परस्पर के पराक्रम के क्षय होने से निश्चल विजय नहीं होता यह जानें ॥ ४३ ॥

अमीषामित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि । अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (अप्वे) शत्रुओं के प्राणों को दूर करने हारी राणी क्षत्रिया वीर स्त्री (अमीषाम्) उन सेनाओं के (चित्तम्) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) प्रत्यक्ष में लुभाने वाली जो अपनी सेना है उस के (अङ्गानि) अंगों को तू (गृहाण) ग्रहण कर अधर्म से (परेहि) दूर हो अपनी सेना को (अभि, प्रेहि) अपना अभिप्राय दिखा और शत्रुओं को (निर्दह) निरन्तर जला जिस से ये (अमित्राः) शत्रु जन (हृत्सु) अपने हृदयों में (शोकैः) शोकों से (अन्धेन) आच्छादित हुए (तमसा) रात्रि के अन्धकार के साथ (सचन्ताम्) संयुक्त रहें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—सभापति आदि को योग्य है कि जैसे अतिप्रशंसित हृष्ट पुष्ट अंग उपांगादियुक्त शूरवीर पुरुषों की सेना का स्वीकार करें वैसे शूरवीर स्त्रियों की भी सेना स्वीकार करें और जिस स्त्री सेना में व्यभिचारिणी स्त्री रहें और उस सेना से शत्रुओं को वश में स्थापन करें ॥ ४४ ॥

अवसृष्टेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इषुर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अव॑सृष्टा॒ परा॑ पत॒ शर॑व्ये॒ ब्रह्म॑सꣳशिते । गच्छा॒मित्रा॒न् प्र प॑द्यस्व॒ मामीषां॒ कञ्च॒नोच्छि॑षः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (शरव्ये) बाण विद्या में कुशल (ब्रह्मसंशिते) वेदवेत्ता विद्वान् से प्रशंसा और शिक्षा पाये हुए सेनाधिपति की स्त्री तू (अवसृष्टा) प्रेरणा को प्राप्त हुई (परा, पत) दूर जा (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त हो और उन के मारने से विजय को (प्र, पद्यस्व) प्राप्त हो (अमीषाम्) उन दूर देश में ठहरे हुए शत्रुओं में से मारने के विना (कं, चन) किसी को (मा) (उच्छिषः) मत छोड़ ॥ ४५ ॥

भावार्थः—सभापति आदि को जैसे युद्धविद्या से पुरुषों को शिक्षा करें वैसे स्त्रियों को भी शिक्षा करें जैसे वीर पुरुष युद्ध करें वैसे स्त्री भी करें जो युद्ध में मारे जावें उनसे शेष अर्थात् बचे हुए कातरों को निरन्तर कारागार में स्थापन करें ॥ ४५ ॥

प्रेताजयतेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । योद्धा देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

प्रेता॒ जय॑ता नर॒ इन्द्रो॑ वः॒ शर्म॑ यच्छतु । उ॒ग्रा वः॑ सन्तु बा॒हवो॑ऽनाधृ॒ष्या यथाऽस॑थ ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (नरः) अनेक प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त करने वाले मनुष्यो तुम (यथा) जैसे शत्रुजनों को (इत) प्राप्त होओ और उन्हें (जयत) जीतो तथा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेनापति (वः) तुम लोगों के लिये (शर्म) घर (प्र-यच्छतु) देवे (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजा (उग्राः) दृढ़ (सन्तु) हों और (अनाधृष्याः) शत्रुओं से न धमकाने योग्य (असथ) होओ वैसा प्रयत्न करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो शत्रुओं को जीतने वाले वीर हों उन का सेनापति धन अन्न गृह और वस्त्रादिकों से निरन्तर सत्कार करे तथा सेनास्थ जन जैसे बली हों वैसा व्यवहार अर्थात् व्यायाम और शस्त्र अस्त्रों का चलाना सीखें ॥ ४६ ॥

असौ येत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । मरुतो देवता । निचृदार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना। तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यन्न जानन् ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो तुम (या) जो (असौ) वह (परेषाम्) शत्रुओं की (स्पर्द्धमाना) ईर्षा करती हुई (सेना) सेना (ओजसा) बल से (नः) हम लोगों के (अभि, आ, एति) सन्मुख सब ओर से प्राप्त होती है (ताम्) उस को (अपव्रतेन) छेदनरूप कठोर कर्म से और (तमसा) तोप आदि शस्त्रों के उठे हुए धूम वा मेघ पहाड़ के आकार जो अस्त्र का धूम होता है उससे (गूहत) ढांपो (अमी) ये शत्रु सेनास्थ जन (यथा) जैसे (अन्यः, अन्यम्) परस्पर एक दूसरे को (न) न (जानन्) जानें वैसा पराक्रम करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—जब युद्ध के लिये प्राप्त हुई शत्रुओं की सेनाओं में होते युद्ध करें तब सब ओर से शस्त्र और अस्त्रों के प्रहार से उठी धूम धूली आदि से उस को ढांपकर जैसे ये शत्रुजन परस्पर अपने दूसरे को न जानें वैसा दक्ष सेनापति आदि को करना चाहिये ॥ ४७ ॥

यत्र बाणा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। इन्द्रबृहस्पत्यादयो देवताः।
पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(यत्र) जिस संग्राम में (विशिखाइव) विना चोटी के वा बहुत चोटियों वाले (कुमाराः) बालकों के समान (बाणाः) बाण आदि शस्त्र अस्त्रों के समूह (संपतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्) वहां (बृहस्पतिः) बड़ी सभा वा सेना का पालने वाला (इन्द्रः) सेनापति (शर्म) आश्रय वा सुख को (यच्छतु) देवे और (अदितिः) नित्य सभासदों से शोभायमान सभा (विश्वाहा) सब दिन (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख सिद्ध करने वाले घर को (यच्छतु) देवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे बालक इधर उधर दौड़ते हैं वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें जो युद्ध में घायल, क्षीण, थके, पसीजे, छिदे, भिदे, कटे, फटे अंग वाले और मूर्छित हों उन को युद्धभूमि से शीघ्र उठा सुखालय (सफाखाने) में पहुंचा औषध पट्टी कर स्वस्थ करें और जो मरजावें उनको विधि से दाह दें राजजन उन के माता पिता स्त्री और बालकों की सदा रक्षा करें ॥ ४८ ॥

मर्माणीत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । सोमवरुणदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे युद्ध करने वाले शूरवीर मैं (ते) तेरे (मर्माणि) मर्मस्थलों अर्थात् जो ताड़ना किये हुए शीघ्र मरण उत्पन्न करने वाले शरीर के अङ्ग हैं उनको (वर्मणा) देह की रक्षा करने हारे कवच से (छादयामि) ढांपता हूं । यह (सोमः) शांति आदि गुणों से युक्त (राजा) और विद्या न्याय तथा विनय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा (अमृतेन) समस्त रोगों के दूर करने वाली अमृतरूप ओषधि से (त्वा) तुझ को (अनु, वस्ताम्) पीछे ढांपे (वरुणः) सब से उत्तम गुणों वाला राजा (ते) तेरे (उरोः) बहुत गुण और ऐश्वर्य से भी (वरीयः) अत्यन्त ऐश्वर्य को (कृणोतु) करे तथा (जयन्तम्) दुष्टों को पराजित करते हुए (त्वा) तुझे (देवाः) विद्वान् लोग (अनु, मदन्तु) अनुमोदित करें अर्थात् उत्साह देवें ॥ ४९ ॥

भावार्थः—सेनापति आदि को चाहिये कि सब युद्धकर्त्ताओं के शरीर आदि की रक्षा सब ओर से करके इन को निरन्तर उत्साहित और अनुमोदित करें जिस से निश्चय कर के सबसे विजय को पावें ॥ ४९ ॥

उदेनमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (घृतेन, आहुत) घृत से तृप्ति को प्राप्त हुए (अग्ने) प्रकाशयुक्त सेनापति तू (एनम्) इस जीतने वाले वीर को (उत्तराम्) जिससे उत्तमता से संग्राम को तरें विजय को प्राप्त हुई उस सेना को (उत्, नय) उत्तम अधिकार में पहुंचा (रायः, पोषेण) राजलक्ष्मी की पुष्टि से (सम्, सृज) अच्छे प्रकार युक्त कर (च) और (प्रजया) बहुत सन्तानों से (बहुम्) अधिकता को प्राप्त (कृधि) कर ॥ ५० ॥

भावार्थः—जो सेना का अधिकारी वा भृत्य धर्मयुक्त युद्ध से दुष्टों को जीते उस को सभा सेना के पति धनादिकों से बहुत प्रकार सत्कार करें ॥ ५० ॥

इन्द्रेममित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । सम॑नं वर्चसा सृज देवानां भागदा असत् ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुखों के धारण करने हारे सेनापति तू (सजातानाम्) समान अवस्था वाले (देवानाम्) विद्वान् योद्धाओं के बीच (इमम्) विजय को प्राप्त होते हुए इस वीरजन को (प्रतराम्) जिससे शत्रुओं के बलों को हटावें उस नीति को (नय) प्राप्त कर जिस से यह (वशी) इन्द्रियों का जीतने वाला (असत्) हो और (एनम्) इस को (वर्चसा) विद्या के प्रकाश से (सं, सृज) संसर्ग करा जिससे यह (भागदाः) अलग २ यथायोग्य भागों का देने वाला (असत्) हो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—युद्ध में भृत्यजन शत्रुओं के जिन पदार्थों को पावें उन सभों को सभापति राजा स्वीकार न करे किन्तु उन में से यथायोग्य सत्कार के लिये योद्धाओं को सोलहवां भाग देवे वे भृत्यजन जितना कुछ भाग पावें उस का सोलहवां भाग राजा के लिये जो सब सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो उनका कभी पराजय न हो जो सभापति अपने हित को किया चाहें तो लड़ने हारे भृत्यों का भाग आप न लेवे ॥ ५१ ॥

यस्य कुर्म इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप्
छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अब पुरोहित ऋत्विज् और यजमान के कृत्य को अगले० ॥

यस्य॑ कुर्मो गृहे हविस्तम॑ग्ने वर्द्धया त्वम् । तस्मै॑ देवा अधि॑ब्रुवन्न॒यं च॒ ब्रह्म॑णस्पतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरोहित हम लोग (यस्य) जिस राजा के (गृहे) घर में (हविः) होम (कुर्मः) करें (तम्) उस को (त्वम्) तू (वर्द्धय) बढ़ा अर्थात् उत्साह दे तथा (देवाः) दिव्य २ गुण वाले ऋत्विज् लोग (तस्मै) उस को (अधि, ब्रुवन्) अधिक उपदेश करें (च) और (अयम्) यह (ब्रह्मणः) वेदों का (पतिः) पालन करनेहारा यजमान भी उन को शिक्षा देवे ॥ ५२ ॥

भावार्थः—पुरोहित का वह काम है कि जिससे यजमान की उन्नति हो और जो जिस का जितना जैसा काम करे उस को उसी ढंग उतना ही नियम किया हुआ मासिक धन देना चाहिये सब विद्वान् जन सब के प्रति सत्य का उपदेश करें और राजा भी सत्योपदेश करे ॥ ५२ ॥

उदुत्वेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सभापति के विषय को अगले० ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् सभापति जिस (त्वा) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (चित्तिभिः) अच्छे २ ज्ञानों से (उद्भरन्तु) उत्कृष्टता पूर्वक धारण और उद्धार करें अर्थात् अपनी शिक्षा से तेरे अज्ञान को दूर करें (सः, उ) सो ही (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) मंगल करने हारा (सुप्रतीकः) अच्छी प्रतीति करने वाले ज्ञान से युक्त (विभावसुः) तथा विविध प्रकार के विद्या सिद्धान्तों में स्थिर (भव) हो ॥ ५३ ॥

भावार्थः—जो जिन को विद्या देवें वे विद्या लेने वाले उन के सेवक हों ॥ ५३ ॥

पञ्चदिश इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । दिग् देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ स्त्री पुरुष के कृत्य को अग० ॥

पञ्च दिशो दैवीर्य्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(अप, अमतिम्) अत्यन्त अज्ञान और (दुर्मतिम्) दुष्ट बुद्धि को (बाधमानः) अलग करती हुई (दैवीः) विद्वानों की ये (देवीः) दिव्य गुण वाली पंडिता ब्रह्मचारिणी स्त्री (पञ्च, दिशः) पूर्व आदि चार और एक मध्यस्थ पांच दिशाओं के तुल्य अलग २ कामों में बढ़ी हुई (रायः,पोषे) धन की पुष्टि करने के निमित्त (यज्ञपतिम्) गृहकृत्य वा राज्यपालन करने वाले अपने स्वामी को (आभजन्तीः) सब प्रकार सेवन करती हुई (यज्ञम्) संगति करने योग्य गृहाश्रम को (अवन्तु) चाहें । जिस से वह (यज्ञः) गृहाश्रम (रायः, पोषे) धन की पुष्टाई में (अधि, अस्थात्) अधिकता से स्थिर हो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में लुप्तोपमालं०—जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसा

युक्त पंडिता स्त्री होती हैं वहां दुष्ट काम नहीं होते जो सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा होवें तो राजा के समीप औरों से अधिक ऐश्वर्य्य होवे ॥ ५४ ॥

समिद्ध इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

यज्ञ कैसा करना चाहिये इस वि० ॥

समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतः। तुप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयंजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जैसे (देवाः) विद्वान्जन (समिद्धे) अच्छे जलते हुए (अग्नौ) अग्नि में (यत्) जिस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (अयजन्त) करते हैं वैसे जो (अधि, मामहानः) अधिक और अत्यन्त सत्कार करने योग्य (उक्थपत्रः) जिस के कहने योग्य विद्यायुक्त वेद के स्तोत्र हैं (ईड्यः) जो स्तुति करने तथा चाहने योग्य (गृभीतः) वा जिस को सज्जनों ने ग्रहण किया है उस (तप्तम्) तापयुक्त (घर्मम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (ऊर्जा) बल से (परिगृह्य) ग्रहण करके (अयजन्त) किया करो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि संसार के उपकार के लिये जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र आदि यज्ञ का आचरण करते हैं वैसे अनुष्ठान किया करें ॥ ५५ ॥

दैव्यायेत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब यज्ञ कैसे करना चाहिये यह वि० ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः। परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अध्वर्यन्तः) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले (देवाः) विद्या के दाता विद्वान् लोग (देवेभ्यः) विद्वानों की प्रसन्नता के लिये गृहाश्रम वा अग्निहोत्रादि यज्ञ में (अस्थुः) स्थिर हों वा जैसे (दैव्याय) अच्छे २ गुणों में प्रसिद्ध हुए (धर्त्रे) धारणशील (जोष्ट्रे) तथा प्रीति करने वाले होता के लिये (देवश्रीः) जो सेवन की जाती वह विद्यारूप लक्ष्मी विद्वानों में जिस की विद्यमान हो (श्रीमनाः) जिस का

कि लक्ष्मी में मन (शतपयाः) और जिस के सैकड़ों दूध आदि वस्तु हैं वह यजमान वर्तमान है वैसे (देवाः) विद्या के दाता तुम लोग विद्या को (परिगृह्य) ग्रहण करके (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य गृहाश्रम वा अग्निहोत्र आदि को (आयन्) प्राप्त होओ ॥५६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धनप्राप्ति के लिये सदैव उद्योग करें जैसे विद्वान् लोग धनप्राप्ति के लिये प्रयत्न करें वैसे उन के अनुकूल अन्य मनुष्यों को भी यत्न करना चाहिये ॥ ५६ ॥

वीतमित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर भी उसी विषय को अगले० ॥

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति। ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (शमिता) शान्ति आदि गुणों से युक्त गृहाश्रमी (यजध्यै) यज्ञ करने के लिये (वीतम्) गमनशील (शमितम्) दुर्गुणों की शान्ति कराने वाले (हविः) होम करने योग्य पदार्थ को अग्नि में छोड़ता है जो (तुरीयः) चौथा (यज्ञः) प्राप्त करने योग्य यज्ञ है तथा (यत्र) जहां (हव्यम्) होम करने योग्य पदार्थ (एति) प्राप्त होता है (ततः) उन सभों से (वाकाः) जो कही जाती हैं वे (आशिषः) इच्छासिद्धि (नः) हम लोगों को (जुषन्ताम्) सेवन करें ऐसी इच्छा करो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—अग्निहोत्र आदि यज्ञ में चार पदार्थ होते हैं अर्थात् बहुतसा पुष्टि सुगन्धि मिष्ट और रोगविनाश करने वाला होम का पदार्थ, उस का शोधन, यज्ञ का करने वाला तथा वेदी आग लकड़ी आदि। यथाविधि से हवन किया हुआ पदार्थ आकाश को जाकर फिर वहां से पवन वा जल के द्वारा आकर इच्छा की सिद्धि करने वाला होता है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ५७ ॥

सूर्यरश्मिरित्यस्याप्रतिरथ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में सूर्यलोक के स्वरूप का कथन किया है ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२॥ अजस्रम्।

तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥५८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पुरस्तात्) पहिले से (सविता) सूर्य्यलोक (ज्योतिः) प्रकाश को देता है जिस से (हरिकेशः) हरे रंगवाली (सूर्य्यरश्मिः) सूर्य्य की किरण वर्त्तमान हैं जो (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (अजस्रम्) निरन्तर (पूषा) पुष्टि करने वाला है जिस को (विद्वान्) विद्यायुक्त पुरुष (संपश्यन्) अच्छे प्रकार देखता हुआ उस की विद्या को (याति) प्राप्त होता है (तस्य) उस के सकाश से (गोपाः) संसार की रक्षा करने वाले पृथिवी आदि लोक और तारागण भी (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को (उद्यान्) प्रकाशित करते हैं वह सूर्य्य मण्डल अतिप्रकाशमय है यह तुम जानो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जो यह सूर्य्यलोक है उसके प्रकाश में श्वेत और हरे रंग विरङ्ग अनेक किरणें हैं जो सब लोकों की रक्षा करते हैं इसी से सब की सब प्रकार से सदा रक्षा होती है यह जानने योग्य है ॥ ५८ ॥

विमान इत्यस्य विश्वावसुर्ऋषिः । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर ने किसलिये सूर्य्य का निर्माण किया है इस वि० ॥

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—विद्यमान पुरुष जो (एषः) यह सूर्य्यमण्डल (दिवः) प्रकाश के (मध्ये) बीच में (विमानः) विमान अर्थात् जो आकाशादि मार्गों में आश्चर्य्यरूप चलने हारा है उस के समान और (रोदसी) प्रकाश भूमि और (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (आपप्रिवान्) अपने तेज से व्याप्त हुआ (आस्ते) स्थिर हो रहा है (सः) वह (विश्वाचीः) जो संसार को प्राप्त होतीं अर्थात् अपने उदय से प्रकाशित करतीं वा (घृताचीः) जल को प्राप्त कराती हैं उन अपनी द्युतिओं अर्थात् प्रकाशों को विस्तृत करता है (पूर्वम्) आगे दिन (अपरम्) पीछे रात्रि (च) और अन्तरा दोनों के बीच में (केतुम्) सब लोकों के प्रकाशक तेज को (अभिचष्टे) देखता है उसे जाने ॥ ५९ ॥

भावार्थः—जो सूर्य्यलोक ब्रह्माण्ड के बीच स्थित हुआ अपने प्रकाश से सब को व्याप्त हो रहा है वह सब का अच्छा आकर्षण करने वाला है ऐसा मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

उक्षा इत्यस्याप्रतिरथ ऋषिः । आदित्यो देवता ।
निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश । मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो परमेश्वर ने (दिवः) प्रकाश के (मध्ये) बीच में (निहितः) स्थापित किया हुआ (उक्षा) वृष्टि जल से सींचने वाला (समुद्रः) जिससे कि अच्छे प्रकार जल गिरते हैं (अरुणः) जो लाल रंग वाला (सुपर्णः) तथा जिससे कि अच्छी पालना होती है (पृश्निः) वह विचित्र रंग वाला सूर्य्य रूप तेज और (अश्मा) मेघ (रजसः) लोकों को (अन्तौ) बन्धन के निमित्त (वि, चक्रमे) अनेक प्रकार घूमता तथा (पाति) रक्षा करता है (पूर्वस्य) तथा जो पूर्ण (पितुः) इस सूर्य्यमण्डल के तेज उत्पन्न करने वाला बिजुलीरूप अग्नि है उस के (योनिम्) कारण में (आ, विवेश) प्रवेश करता है वह सूर्य्य और मेघ अच्छे प्रकार उपयोग करने योग्य है ॥ ६० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को ईश्वर के अनेक धन्यवाद कहने चाहियें क्योंकि जिस ईश्वर ने अपने जनाने के लिये जगत् की रक्षा का कारणरूप सूर्य्य आदि दृष्टान्त दिखाया है वह कैसे न सर्वशक्तिमान् हो ॥ ६० ॥

इन्द्रं विश्वेत्यस्य मधुच्छन्दाः सुतजेता ऋषिः । इन्द्रो देवता ।
निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर जगत् बनाने वाले ईश्वर के गुणों को अगले० ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जिस (समुद्रव्यचसम्) अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले (रथीनाम्) प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त (वाजानाम्) ज्ञानी आदि गुणी जनों के (पतिम्) स्वामी (सत्पतिम्) विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालने हारे (इन्द्रम्) परमात्मा को (विश्वाः) समस्त (गिरः) वाणी (अवीवृधन्) बढ़ती अर्थात् विस्तार से कहती हैं उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सब वेद जिस की प्रशंसा करते योगीजन जिस की उपासना करते और मुक्त पुरुष जिसको प्राप्त होकर आनन्द भोगते हैं उसी को उपासना के योग्य इष्ट देव मानें ॥ ६१ ॥

देवहूरित्यस्य विभूतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ२॥ आ च वक्षत् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (देवहूः) विद्वानों को बुलाने वाला (यज्ञः) पूजा करने योग्य ईश्वर हम लोगों को सत्य (आ, वक्षत्) उपदेश करे (च) और असत्य से हमारा उद्धार करे वा जो (सुम्नहूः) सुखों को बुलाने वाला (यज्ञः) पूजन करने योग्य ईश्वर हम लोगों के लिये सुखों को (आ, वक्षत्) प्राप्त करे (च) और दुःखों का विनाश करे वा जो (अग्निः) आप प्रकाशमान (देवः) समस्त सुख का देने वाला ईश्वर हम लोगों को (देवान्) उत्तम गुणों वा भोगों को (यक्षत्) देवे (च) और (आ, वक्षत्) पहुंचावे अर्थात् कार्य्यान्तर से प्राप्त करे उस को आप लोग निरन्तर सेवो ॥ ६२ ॥

भावार्थः—जो उत्तम शास्त्र जानने वाले विद्वानों से उपासना किया जाता तथा जो सुखस्वरूप और मङ्गल कार्य्यों का देने वाला परमेश्वर है उस की समाधियोग से मनुष्य उपासना करें ॥ ६२ ॥

वाजस्येत्यस्य विभूतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२॥ अकः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्रः) पालन करने वाला (वाजस्य) विशेष ज्ञान का (प्रसवः) उत्पन्न करने वाला ईश्वर (मा) मुझे (उद्ग्राभेण) अच्छे ग्रहण करने के साधन (उत्, अग्रभीत्) ग्रहण करे वैसे जो (अध) इस के पीछे उस के अनुसार पालना करने और विशेषज्ञान सिखाने वाला पुरुष (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (निग्राभेण) पराजय से (अधरान्) नीचे गिराया (अकः) करे उस को तुम लोग भी सेनापति करो ॥ ६३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे ईश्वर पालना करे वैसे जो मनुष्य पालना के लिये धार्मिक मनुष्यों को अच्छे प्रकार ग्रहण करते और दण्ड देने के लिये दुष्टों को निग्रह अर्थात् नीचा दिखाते हैं वे ही राज्य कर सकते हैं ॥ ६३ ॥

उद्ग्राभमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर अगले मन्त्र में राजधर्म का उप० ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन् । अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वान् जन (उद्ग्राभम्) अत्यन्त उत्साह से ग्रहण (च) और (निग्राभं, च) त्याग भी करके (ब्रह्म) धन को (अवीवृधन्) बढ़ावें (अध) इस के अनन्तर (इन्द्राग्नी) बिजुली और आग के समान दो सेनापति (मे) मेरे (विषूचीनान्) विरोधभाव को वर्त्तने वाले (सपत्नान्) वैरियों को (व्यस्यताम्) अच्छे प्रकार उठा २ के पटकें ॥ ६४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार और दुष्टों को पीट मार धन को बढ़ा निष्कण्टक राज्य का सम्पादन करते हैं वे ही प्रशंसित होते हैं जो राजा राज्य में बसने हारे सज्जनों का सत्कार और दुष्टों का निरादर करके अपने तथा प्रजा के ऐश्वर्य को बढ़ाता है उसी के सभा और सेना की रक्षा करने वाले जन शत्रुओं का नाश कर सकें ॥ ६४ ॥

क्रमध्वमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳ हस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठꣳ स्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे वीरो तुम (अग्निना) बिजुली से (नाकम्) अत्यन्तसुख और (उख्यम्) पात्र में पकाये हुए चावल दाल तर्कारी कढ़ी आदि भोजन को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) धारण किये हुए (क्रमध्वम्) पराक्रम करो (देवेभिः) विद्वानों से (मिश्राः) मिले हुए (दिवः) न्याय और विनय आदि गुणों के प्रकाश से उत्पन्न हुए दिव्य (पृष्ठम्) चाहे हुए (स्वः) सुख को (गत्वा) प्राप्त होकर (आध्वम्) स्थित होओ ॥ ६५ ॥

भावार्थः—राजपुरुष विद्वानों के साथ सम्बन्ध कर आग्नेय आदि अस्त्रों से शत्रुओं में पराक्रम करें तथा स्थिरसुख को पाकर बारंवार अच्छा यत्न करें ॥ ६५ ॥

प्राचीमित्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मं० ॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह । विश्वा आशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) शत्रुओं के जलाने हारे सभापति तू (प्राचीम्) पूर्व (प्रदिशम्) दिशा की ओर को (अनु, प्र, इहि) अनुकूलता से प्राप्त हो (इह) इस राज्यकर्म (अग्नेः) आग्नेय अस्त्र आदि के योग से (पुरो अग्निः) अग्नि के तुल्य अग्रगामी (विद्वान्) कार्य के जानने वाले विद्वान् (भव) होओ (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं को (दीद्यानः) निरन्तर प्रकाशित करते हुए सूर्य के समान हम लोगों के (द्विपदे) मनुष्यादि और (चतुष्पदे) गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) अन्नादि पदार्थ को (धेहि) धारण कर तथा विद्या विनय और पराक्रम से अभय का (वि, भाहि) प्रकाश कर ॥ ६६ ॥

भावार्थः—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं का अभ्यास कर युद्ध विद्याओं को जान सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं वे मनुष्यों और पशुओं के खाने योग्य पदार्थों की उन्नति और रक्षा का विधान कर आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ६६ ॥

पृथिव्या इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर योगियों के गुणों का उपदेश अगले० ॥

पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् । दिवो नाकस्य पृष्ठात्स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे किये हुए योग के अङ्गों के अनुष्ठान समय सिद्ध अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि में परिपूर्ण (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उद्, आ, अरुहम्) उठजाऊं वा (अन्तरिक्षात्) आकाश से (दिवम्) प्रकाशमान सूर्यलोक को (आ, अरुहम्) चढ़ जाऊं वा (नाकस्य) सुख कराने हारे (दिवः) प्रकाशमान उस सूर्यलोक के (पृष्ठात्) समीप से (स्वः) अत्यन्त सुख और (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त होऊं वैसा तुम भी आचरण करो ॥ ६७ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा के योग को प्राप्त होता है तब अणिमादि सिद्धि उत्पन्न होती है उस के पीछे कहीं से न रुकने वाली गति से अभीष्ट स्थानों को जा सकता है, अन्यथा नहीं ॥ ६७ ॥

स्वर्यन्त इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में० ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(ये) जो (सुविद्वांसः) अच्छे पंडित योगी जन (यन्तः) योगाभ्यास के पूर्ण नियम करते हुओं के (न) समान (स्वः) अत्यन्त सुख की (अप, ईक्षते) अपेक्षा करते हैं वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, रोहन्ति) चढ़ जाते अर्थात् लोकान्तरों में इच्छापूर्वक चले जाते वा (द्याम्) प्रकाशमय योगविद्या और (विश्वतोधारम्) सब ओर से सुशिक्षायुक्त वाणी है जिस में (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य उस यज्ञादि कर्म का (वितेनिरे) विस्तार करते हैं वे अविनाशी सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे सारथि घोड़ों को अच्छे प्रकार सिखा और अभीष्ट मार्ग में चलाकर सुख से अभीष्ट स्थान को शीघ्र जाता है वैसे ही अच्छे विद्वान् योगी जन जितेन्द्रिय होकर नियम से अपने को अभीष्ट परमात्मा को पाकर आनन्द का विस्तार करते हैं ॥ ६८ ॥

अग्न इत्यस्य विधृतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के व्यवहार का उप० ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् । इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (देवयताम्) कामना करते हुए जनों के बीच तू (प्रथमः) पहिले (प्रेहि) प्राप्त हो जिससे (देवानाम्) विद्वान् (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों का तू व्यवहार देखने वाला है जिससे (इयक्षमाणाः) यज्ञ की इच्छा करने वाले (सजोषाः) एक सी प्रीतियुक्त (यजमानाः) सब को सुख देने हारे जन (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (स्वस्ति) सामान्य सुख और (स्वः) अत्यन्त सुख को (यन्तु) प्राप्त हों वैसा तू भी हो ॥ ६९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीति से बातचीत कर के सुख को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ६६ ॥

नक्तोषासेत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची । द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥७०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जैसे (समनसा) एक से विज्ञानयुक्त (समीची) एकता चाहती हुई (विरूपे) अलग २ रूप वाली धाय और माता दोनों (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दुग्ध पिलाती हैं वैसे (नक्तोषासा) रात्रि और प्रातःकाल की वेला जगत् को (धापयेते) दुग्धसा पिलाती हैं अर्थात् अति आनन्द देती हैं वा जैसे (रुक्मः) प्रकाशमान अग्नि (द्यावाक्षामा, अन्तः) ब्रह्माण्ड के बीच में (वि, भाति) विशेष करके प्रकाश करता है उस (अग्निम्) अग्नि को (द्रविणोदाः) द्रव्य के देने वाले (देवाः) शास्त्र पढ़े हुए जन (धारयन्) धारण करते हैं वैसे वर्त्ताव वर्त्तो ॥ ७० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि जैसे संसार में रात्रि और प्रातःसमय की वेला अलग रूपों से वर्त्तमान और जैसे बिजुली अग्नि सर्व पदार्थों में व्याप्त वा जैसे प्रकाश और भूमि अतिसहनशील हैं वैसे अत्यन्त विवेचना करने और शुभगुणों में व्यापक होने वाले होकर पुत्र के तुल्य संसार को पालें ॥ ७० ॥

अग्न इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर योगी के कर्मों के फलों का उप० ॥

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वꣳ साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै ते विधेम वाजाय स्वाहा ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे (सहस्राक्ष) हजारहों व्यवहारों में अपना विशेषज्ञान वा (शतमूर्द्धन्) सैकड़ों प्राणियों में मस्तक वाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान योगिराज जिस (ते) आपके (शतम्) सैकड़ों (प्राणाः) जीवन के साधन (सहस्रम्) (व्यानाः) सब क्रियाओं के निमित्त शरीरस्थ वायु तथा जो (त्वम्) आप (साहस्रस्य) हजारहों

७८

जीव और पदार्थों का आधार जो जगत् उस के (रायः) धन के (ईशिषे) स्वामी हैं (तस्मै) उस (दाशाय) विशेष ज्ञान वाले (ते) आप के लिये हम लोग (स्वाहा) सत्यवाणी से (विधेम) सत्कारपूर्वक व्यवहार करें ॥ ७१ ॥

भावार्थः—जो योगी पुरुष तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान आदि योग के साधनों से योग (धारणा, ध्यान, समाधिरूप संयम) के बल को प्राप्त हो और अनेक प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करके अनेक शिर नेत्र आदि अंगों से देखने आदि कार्यों को कर सकता है। अनेक पदार्थों वा धनों का स्वामी भी हो सकता है। उस का हम लोगों को अवश्य सेवन करना चाहिये ॥ ७१ ॥

सुपर्ण इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

सुपर्णोऽसि गुरुत्मा॑न् पृष्ठे पृ॑थिव्याः सी॑द। भासान्तरि॑क्षमा पृ॑ण ज्योति॑षा दिव॑मुत्त॑भान तेज॑सा दिश॒ उद्दृ॑ꣳह ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् योगीजन आप (भासा) प्रकाश से (सुपर्णः) अच्छे अच्छे पूर्ण शुभलक्षणों से युक्त और (गरुत्मान्) बड़े मन तथा आत्मा के बल से युक्त (असि) हैं अतिप्रकाशमान आकाश में वर्त्तमान सूर्यमण्डल के तुल्य (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) ऊपर (सीद) स्थिर हो वा वायु के तुल्य प्रजा को (आ, पृण) सुख दे। वा जैसे सूर्य (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (दिवम्) प्रकाशमय (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को वैसे तू राजनीति के प्रकाश से राज्य को (उत्, स्तभान) उन्नति पहुंचा वा जैसे आग अपने (तेजसा) अतितीक्ष्ण तेज से (दिशः) दिशाओं को वैसे अपने तीक्ष्ण तेज से प्रजाजनों को (उद्, दृंह) उन्नति दे ॥ ७२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब मनुष्य राग अर्थात् प्रीति और द्वेष वैर से रहित परोपकारी होकर ईश्वर के समान सब प्राणियों के साथ वर्त्तें तब सब सिद्धि को प्राप्त होवें ॥ ७२ ॥

आजुह्वान इत्यस्य कुत्स ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् गुणीजन कैसे हों यह वि० ॥

आजुह्वा॑नः सुप्रती॑कः पुरस्ता॒दग्ने॒ स्वं योनि॒मा सी॑द साधुया। अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ अध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा यज॑मानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मायुक्त (पुरस्तात्) प्रथम से (आजुह्वानः) सत्कार के साथ बुलाये (सुप्रतीकः) शुभ गुणों को प्राप्त हुए (यजमानः) योगविद्या के देने वाले आचार्य्य आप (साधुया) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मिन्) इस(सधस्थे) एक साथ के स्थान में (स्वम्) अपने (योनिम्) परमात्मा रूप घर में (आ, सीद) स्थिर हो (च) और हे (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा वाले योगीजनो आप लोग श्रेष्ठ कामों से (उत्तरस्मिन्) उत्तर समय एक साथ सत्य सिद्धान्त पर (अधि, सीदत) अधिक स्थित होओ ॥ ७३ ॥

भावार्थः—जो अच्छे कामों को करके योगाभ्यास करने वाले विद्वान् के संग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं वे सब के अधिष्ठान परमात्मा को प्राप्त होकर सिद्ध होते हैं ॥ ७३ ॥

ताᳪं सवितुरित्यस्य कण्व ऋषिः । सविता देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ कौन ईश्वर को पा सकता है यह वि० ॥

ताᳪं स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यस्य चि॒त्रामा॒हं वृ॑णे सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम् । याम॑स्य॒ कण्वो॒ अदु॑ह॒त्प्रपी॑नाᳪं स॒हस्र॑धारां॒ पय॑सा म॒हीं गाम् ॥ ७४ ॥

पदार्थः—जैसे (कण्वः) बुद्धिमान् पुरुष (अस्य) इस (वरेण्यस्य) स्वीकार करने योग्य (सवितुः) योग के ऐश्वर्य के देने हारे ईश्वर की (याम्) जिस (चित्राम्) अद्भुत आश्चर्यरूप वा (विश्वजन्याम्) समस्त जगत् को उत्पन्न करती (प्रपीनाम्) अति उन्नति के साथ बढ़ती (सहस्रधाराम्) हजारह पदार्थों को धारण करने हारी (सुमतिम्) और यथातथ्य विषय को प्रकाशित करती हुई उत्तम बुद्धि तथा (पयसा) अन्न आदि पदार्थों के साथ (महीम्) बड़ी (गाम्) वाणी को (अदुहत्) परिपूर्ण करता अर्थात् क्रम से ज्ञान अपने योगविषयक करता है वैसे (ताम्) उस को (अहम्) मैं (आ, वृणे) अच्छे प्रकार स्वीकार करता हूं ॥ ७४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे मेधावी जन जगदीश्वर की विद्या को पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही इस को प्राप्त होकर और सामान्य जन को भी विद्या और योगवृद्धि के लिये उद्युक्त होना चाहिये ॥ ७४ ॥

विधेमेत्यस्य गृत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे। यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) योगी जन (ते) तेरे (परमे) सब से अति उत्तम योग के संस्कार से उत्पन्न हुए पूर्व (जन्मन्) जन्म में वा (त्वे) तेरे वर्त्तमान जन्म में (अवरे) न्यून (सधस्थे) एक साथ स्थान में वर्त्तमान हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (विधेम) सत्कारपूर्वक तेरी सेवा करें तू हम लोगों को (यस्मात्) जिस (योनेः) स्थान से (उदारिथ) अच्छे २ साधनों के सहित प्राप्त हो (तम्) उस स्थान को मैं (प्र, यजे) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं और जैसे होम करने वाले लोग (समिद्धे) अच्छे प्रकार जलते हुए अग्नि में (हवींषि) होम करने योग्य वस्तुओं को (जुहुरे) होमते हैं वैसे योगाग्नि में हम लोग दुःखों के होम का (विधेम) विधान करें ॥ ७५ ॥

भावार्थः—इस संसार में योग के संस्कार से युक्त जिस जीव का पवित्र भाव से जन्म होता है वह संस्कार की प्रबलता से योग ही के जानने की चाहना करने वाला होता है और उसका जो सेवन करते हैं वे भी योग की चाहना करने वाले होते हैं उक्त सब योगीजन जैसे अग्नि इन्धन को जलाता है वैसे समस्त दुःख अशुद्धि भाव को योग से जलाते हैं ॥७५॥

प्रेद्ध इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त तरुण (अग्ने) आग के समान दुःखों के विनाश करने हारे योगीजन आप (पुरः) पहिले (प्रेद्धः) अच्छे तेज से प्रकाशमान हुए (अजस्रया) नाशरहित निरन्तर (सूर्म्या) ऐश्वर्य के प्रवाह से (नः) हम लोगों को (दीदिहि) चाहें (शश्वन्तः) निरन्तर वर्त्तमान (वाजाः) विशेषज्ञान वाले (त्वाम्) आप को (उप, यन्ति) प्राप्त होवें ॥ ७६ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य शुद्धात्मा होकर औरों का उपकार करते हैं तब वे भी सर्वत्र उपकारयुक्त होते हैं ॥ ७६ ॥

अग्ने तमित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के समान पराक्रमवाले विद्वान् जो (अश्वम्) घोड़े के (न) समान वा (क्रतुम्) बुद्धि के (न) समान (भद्रम्) कल्याण और (हृदिस्पृशम्) हृदय में स्पर्श करने वाला है (तम्) उस पूर्व मन्त्र में कहे तुझ को (स्तोमैः) स्तुतियों से (अद्य) आज प्राप्त होकर (ते) आप के (ओहैः) पालन आदि गुणों से (ऋध्याम) वृद्धि को पावें ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे शरीर आदि में स्थिर हुए बिजुली आदि से वृद्धि वेग और बुद्धि के सुख बढ़ें वैसे विद्वानों की सिखावट और पालन आदि से मनुष्य आदि सब वृद्धि को पाते हैं ॥ ७७ ॥

चित्तिमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। विराडतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः। पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यꣳ हविः ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे मैं (मनसा) विज्ञान वा (घृतेन) घी से (चित्तिम्) जिस क्रिया से संचय करते हैं उस को (जुहोमि) ग्रहण करता हूं वा जैसे (इह) इस जगत् में (वीतिहोत्राः) सब ओर से प्रकाशमान जिनका यज्ञ है वे (ऋतावृधः) सत्य से बढ़ते और (देवाः) कामना करते हुए विद्वान् लोग (भूमनः) अनेक रूप वाले (विश्वस्य) समस्त संसार के (विश्वकर्मणे) सब के करने योग्य काम को जिसने किया है उस (पत्ये) पालने हारे जगदीश्वर के लिये (अदाभ्यम्) नष्ट न करने और (हविः) होमने योग्य सुख करने वाले पदार्थ का (विश्वाहा) सब दिनों होम करने को (आगमन्) आते हैं और मैं होमने योग्य पदार्थों को (जुहोमि) होमता हूं वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥ ७८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे काष्ठों में चिना हुआ अग्नि घी से बढ़ता है वैसे विज्ञान से बढ़ूं वा जैसे ईश्वर की उपासना करने हारे विद्वान् संसार के कल्याण करने को प्रयत्न करते हैं वैसे मैं भी यत्न करूं ॥ ७८ ॥

सप्त त इत्यस्य सप्तऋषय ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सप्त ते अग्ने सुमिधः सप्त जिह्वाः सप्तऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा॥ ७९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वन् जैसे आग के (सप्त, समिधः) सात जलाने वाले (सप्त, जिह्वाः) वा सात काली कराली आदि लपटरूप जीभ वा (सप्त, ऋषयः) सात प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, देवदत्त, धनञ्जय वा (सप्त, धाम, प्रियाणि) सात पियारे धाम अर्थात् जन्मस्थान, नाम, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष वा (सप्त, होत्राः) सात प्रकार के ऋतु २ में यज्ञ करने वाले हैं वैसे (ते) तेरे हों जैसे विद्वान् इस अग्नि को (सप्तधा) सात प्रकार से (यजन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे (त्वा) तुझ को प्राप्त होवें जैसे यह अग्नि (घृतेन) घी से और (स्वाहा) उत्तम वाणी से (सप्त, योनीः) सात संचयों को सुख से प्राप्त होता है वैसे तू (आ, पृणस्व) सुख से प्राप्त हो॥ ७९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे इंधन से अग्नि बढ़ता है वैसे विद्या आदि शुभगुणों से समस्त मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होवें जैसे विद्वान् जन अग्नि में घी आदि को होम के जगत् का उपकार करते हैं वैसे हम लोग भी करें॥ ७९॥

शुक्रज्योतिरित्यस्य सप्तर्षय ऋषयः। मरुतो देवताः। आर्ष्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ ईश्वर कैसा है यह वि०॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च। शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहाः॥ ८०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (शुक्रज्योतिः) शुद्ध जिस का प्रकाश (च) और (चित्रज्योतिः) अद्भुत जिसका प्रकाश (च) और (सत्यज्योतिः) विनाशरहित जिस का प्रकाश (च) और (ज्योतिष्मान्) जिस के बहुत प्रकाश हैं (च) और (शुक्रः) शीघ्र करने वाला वा शुद्धस्वरूप (च) और (अत्यंहाः) जिसने दुष्ट काम को दूर किया (च) और (ऋतपाः) सत्य की रक्षा करने वाला ईश्वर है वैसे तुम लोग भी होओ॥ ८०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे इस जगत् में बिजुली वा सूर्य्य आदि प्रभा और शुद्धि के करने वाले पदार्थों को बनाकर ईश्वर ने जगत् शुद्ध किया है वैसे ही शुद्धि सत्य और विद्या के उपदेश की क्रियाओं से विद्वान् जनों को मनुष्यादि शुद्ध करने चाहिये इस मन्त्र में अनेक चकारों के होने से यह भी ज्ञात होता है कि सब के ऊपर प्रीति आदि गुण भी विधान करने चाहिये ॥ ८० ॥

ईदृङ्चेत्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । मरुतो देवताः । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च । मितश्च संमितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—जो पुरुष (ईदृङ्) इस के तुल्य (च) भी (अन्यादृङ्) और के समान (च) भी (सदृङ्) समान देखने वाला (च) भी (प्रतिसदृङ्) उस २ के प्रति सदृश देखने वाला (च) भी (मितः) मान को प्राप्त (च) भी (संमितः) अच्छे प्रकार परिमाण किया गया (च) और जो (सभराः) समान धारणा को करने वाले वर्त्तमान हैं वे व्यवहार-सम्बन्धी कार्य्यसिद्धि कर सकते हैं ॥ ८१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम और ईश्वर के समान काम को करके सत्य का धारण करता और असत्य का त्याग करता है वही योग्य है ॥ ८१ ॥

ऋतश्चेत्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । मरुतो देवताः । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है यह अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋतः) सत्य का जानने वाला (च) भी (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (च) भी (ध्रुवः) दृढ निश्चययुक्त (च) भी (धरुणः) सब का आधार (च) भी (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) भी (विधर्त्ता) विशेष करके धारण करने वाला अर्थात् धारकों का धारक (च) भी और (विधारयः) विशेष करके सब व्यवहार का धारण कराने वाला परमात्मा है सब लोग उसी की उपासना करें ॥ ८२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या उत्साह सज्जनों का संग और पुरुषार्थ से सत्य और

विशेष ज्ञान को धारण कर अच्छे स्वभाव का धारण करते हैं वे ही आप सुखी हो सकते और दूसरों को कर भी सकते हैं ॥ ८२ ॥

ऋतजिदित्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । मरुतो देवताः । भुरिगा-
र्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग कैसे हों यह वि० ॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरे अमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

पदार्थः—जो (ऋतजित्) विशेष ज्ञान को बढ़ाने हारा (च) और (सत्यजित्) कारण तथा धर्म को उन्नति देने वाला (च) और (सेनजित्) सेना को जीतने हारा (च) और (सुषेणः) सुन्दर सेना वाला (च) और (अन्तिमित्रः) समीप में सहाय करने हारे मित्र वाला (च) और (दूरे अमित्रः) शत्रु जिस से दूर भाग गये हों (च) और अन्य भी जो इस प्रकार का हो वह (गणः) गिनने योग्य होता है ॥ ८३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कामों की उन्नति करें तथा मित्रों की सेवा और शत्रुओं से वैर करें वे ही लोक में प्रशंसा योग्य होते हैं ॥ ८३ ॥

ईदृक्षास इत्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । मरुतो देवताः । निचृदार्षी जगती
छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ईदृक्षास एतादृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन । मितासश्च संमितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे अस्मिन् ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो जो (ईदृक्षासः) इस लक्षण से युक्त (एतादृक्षासः) इन पहिले कहे हुओं के सदृश (सदृक्षासः) पक्षपात को छोड़ समान दृष्टि वाले (प्रतिसदृक्षासः) शास्त्रों को पढ़े हुए सत्य बोलने वाले धर्मात्माओं के सदृश हैं वे आप (नः) हम लोगों को (सु, आ, इतन) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (उ) वा (मितासः) परिमाणयुक्त जानने योग्य (संमितासः) तुला के समान सत्य झूठ को पृथक् २ करने (च) और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (सभरसः) अपने समान प्राणियों की पुष्टि पालना करने वाले हों वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों की रक्षा करें और उन का हम लोग भी निरन्तर सत्कार करें ॥ ८४ ॥

भावार्थः—जब धार्मिक विद्वान् जन कहीं मिलें जिन के समीप जावें पढ़ावें और शिक्षा देवें तब वे उन सब लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ८४ ॥

स्वतवानित्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । चाप्तुर्मास्या मरुतो देवताः । स्वराडार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो यह वि० ॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥

पदार्थः—जो (स्वतवान्) अपनों की वृद्धि कराने वाला (च) और (प्रघासी) जिस के बहुत भोजन करने योग्य पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा (च) और (सान्तपनः) अच्छे प्रकार शत्रुजनों को तपाने (च) और (गृहमेधी) जिस का प्रशंसायुक्त घर में संग ऐसा (च) और (क्रीडी) अवश्य खेलने का स्वभाव वाला (च) और (शाकी) अवश्य शक्ति रखने का स्वभाव वाला (च) भी हो वह (उज्जेषी) मन से अत्यन्त जीतने वाला हो ॥ ८५ ॥

भावार्थः—जो बहुत बल और अन्न के सामर्थ्य से युक्त गृहस्थ होता है वह सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥ ८५ ॥

इन्द्रमित्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । मरुतो देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्तें यह वि० ॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् । एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

पदार्थः—हे राजन्! आप ऐसे अपना वर्ताव कीजिये (यथा) जैसे (दैवीः) विद्वान् जनों के ये (विशः) प्रजाजन (मरुतः) ऋतु २ में यज्ञ कराने वाले विद्वान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्ययुक्त राजा के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल मार्ग से चलने वाले (अभवन्) होवें वा जैसे (मरुतः) प्राण के समान प्यारे (दैवीः) शास्त्र जानने वाले दिव्य (विशः) प्रजाजन (इन्द्रम्) समस्त ऐश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल आचरण करने हारे (अभवन्) हों (एवम्) ऐसे (दैवीः) शास्त्र पढ़े हुए (च) और (मानुषीः) मूर्ख (च) ये दोनों (विशः) प्रजाजन (इमम्) इस (यजमानम्) विद्या और अच्छी

शिक्षा से सुख देनेहारे सज्जन के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल आचरण करने वाले (भवन्तु) हों ॥ ८६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे प्रजाजन आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्तें वैसे ये लोग भी प्रजाजनों के अनुकूल वर्तें जैसे अध्यापन और उपदेश करने वाले सब के सुख के लिये प्रयत्न करें वैसे सब लोग इन के सुख के लिये प्रयत्न करें ॥ ८६ ॥

इममित्यस्य सप्तर्षय ऋषयः । अग्निर्देवता ।
आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिये यह वि० ॥

इमᳪ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये । उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियᳪ सदनमा विशस्व ॥ ८७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान पुरुष तू (प्रपीनम्) अच्छे दूध से भरे हुए (स्तनम्) स्तन के समान (इमम्) इस (ऊर्जस्वन्तम्) प्रशंसित बल करते हुए (अपाम्) जलों के रस को (धय) पी (सरिरस्य) जलों के (मध्ये) बीच में (मधुमन्तम्) प्रशंसित मधुरतादि गुणयुक्त (उत्सम्) जिस से पदार्थ गीले होते हैं उस कूप को (जुषस्व) सेवन कर वा हे (अर्वन्) घोड़ों के समान वर्त्ताव रखने हारे जन तू (समुद्रियम्) समुद्र में हुए स्थान कि (सदनम्) जिसमें जाते हैं उस में (आ, विशस्व) अच्छे प्रकार प्रवेश कर ॥ ८७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बालक और बछड़े स्तन के दूध को पी के बढ़ते हैं वा जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है वैसे मनुष्य यथायोग्य भोजन और शयनादि आराम से बढ़े हुए वेग से चलें जैसे जलों से भरे हुए समुद्र के बीच नौका में स्थित होकर जाते हुए सुखपूर्वक पारावार अर्थात् इस पार से उस पार पहुंचते हैं वैसे ही अच्छे साधनों से व्यवहार के पार और अवार को प्राप्त होवें ॥ ८७ ॥

घृतमित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को अग्नि कहां २ खोजना चाहिये इस वि० ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम । अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

पदार्थः—हे समुद्र में जाने वाले मनुष्य ! आप (घृतम्) जल को (मिमिक्षे) सींचना चाहो (उ) वा (अस्य) इस आग का (घृतम्) घी (योनिः) घर है जो

(घृते) घी में (श्रितः) आश्रय को प्राप्त हो रहा है वा (घृतम्) जल (अस्य) इस आग का (धाम) धाम अर्थात् ठहरने का स्थान है उस अग्नि को तू (अनुष्वधम्) अन्न की अनुकूलता को (आ, वह) पहुंचा। हे (वृषभः) वर्षाने वाले जन तू जिस कारण (स्वाहाकृतम्) वेदवाणी से सिद्ध किये (हव्यम्) लेने योग्य पदार्थ को (वक्षि) चाहता वा प्राप्त होता है इसलिये हम लोगों को (मादयस्व) आनन्दित कर॥ ८८॥

भावार्थः—जितना अग्नि जल में है उतना जलाधिकरण अर्थात् जल में रहने वाला कहाता है जैसे घी से अग्नि बढ़ता है वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं और अन्न के अनुकूल वी आनन्द कराने वाला होता है इस से उक्त व्यवहार की चाहना सब लोगों को करनी चाहिये॥ ८८॥

समुद्रादित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिये इस वि०॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२॥ उदारदुपाᳬंशुना सममृतत्वमानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥ ८९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! आप लोग जो (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (अंशुना) किरणसमूह के साथ (मधुमान्) मिठास लिये हुए (ऊर्मिः) जलतरङ्ग (उदारत्) ऊपर को पहुंचे वह (सममृतत्वम) अच्छे प्रकार अमृतरूप स्वाद के (उपानट्) समीप में व्याप्त हो अर्थात् अतिस्वाद को प्राप्त होवे (यत्) जो (घृतस्य) जल का (गुह्यम्) गुप्त (नाम) नाम (अस्ति) है और जो (देवानाम्) विद्वानों की (जिह्वा) वाणी (अमृतस्य) मोक्ष का (नाभिः) प्रबन्ध करने वाली है इस सब का सेवन करो॥ ८९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे अग्नि मिले हुए जल और भूमि के विभाग से अर्थात् उन में से जल पृथक् कर मेघमण्डल को प्राप्त करा उस को भी मीठा कर देता है (तथा) जो जलों का कारणरूप नाम है वह गुप्त अर्थात् कारणरूप जल अत्यन्त छिपे हुए और जो मोक्ष है यह सब विद्वानों के उपदेश से ही मिलता है ऐसा जानना चाहिये॥ ८९॥

वयमित्यस्य वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि०॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ॥ ९० ॥

पदार्थः—जिस को (चतुः शृङ्गः) जिस के चारों वेद सींगों के समान उत्तम हैं वह (गौरः) वेदवाणी में रमण करने वा वेदवाणी को देने और (ब्रह्मा) चारों वेदों को जानने वाला विद्वान् (अवमीत्) उपदेश करे वा (उप, शृणवत्) समीप में सुने वह (घृतस्य) घी वा जल का (शस्यमानम्) प्रशंसित हुआ गुप्त (नाम) नाम है (एतत्) इस को (वयम्) हम लोग औरों के प्रति (प्र, ब्रवाम) उपदेश करें और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) गृहाश्रम-व्यवहार में (नमोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (धारयाम) धारण करें ॥ ९० ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग मनुष्य देह को पाकर सब पदार्थों के नाम और अर्थों को पढ़ाने वालों से सुन कर औरों के लिये कहें और इस सृष्टि में स्थित पदार्थों से समस्त कामों की सिद्धि करावें ॥ ९० ॥

चत्वारीत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप्
छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अत्र यज्ञ के गुणों वा शब्दशास्त्र के गुणों को अगले० ॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२॥ आविवेश ॥ ९१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जिस (अस्य) इस के (त्रयः) प्रातःसवन मध्यन्दिन-सवन और सायंसवन ये तीन (पादाः) प्राप्ति के साधन (चत्वारि) चारवेद (शृङ्गा) सींग (द्वे) दो (शीर्षे) अस्तकाल और उदयकाल शिर वा जिस (अस्य) इसके (सप्त-हस्तासः) गायत्री आदि छन्द सात हाथ हैं वा जो (त्रिधा) मन्त्र ब्राह्मण और कल्प इन तीन प्रकारों से (बद्धः) बंधा हुआ (महः) बड़ा (देवः) प्राप्त करने योग्य (वृषभः) सुखों को सब ओर से वर्षाने वाला यज्ञ (रोरवीति) प्रातः, मध्य और सायंसवन क्रम से शब्द करता हुआ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (आ, विवेश) अच्छे प्रकार प्रवेश करता है उस का अनुष्ठान करके सुखी होओ ॥ ९१ ॥

द्वितीयपक्ष—हे मनुष्यो ! तुम जिस (अस्य) इस के (त्रयः) भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान तीन काल (पादाः) पग (चत्वारि) नाम आख्यात उपसर्ग और निपात चार

(शृङ्गा) सींग (हे) दो (शीर्षे) नित्य और कार्य्य शिर वा जिस (अस्य) इस के (सप्त, हस्तासः) प्रथमा आदि सात विभक्ति सात हाथ वा जो (त्रिधा, बद्धः) हृदय कण्ठ और शिर इन तीन स्थानों में बंधा हुआ (महः) बड़ा (देवः) शुद्ध अशुद्ध का प्रकाशक (वृषभः) सुखों का दर्शाने वाला शब्दशास्त्र (रोरवीति) ऋक् यजुः साम और अथर्ववेद से शब्द करता हुआ (मर्त्यान्) मनुष्यों को (आ, विवेश) प्रवेश करता है उस का अभ्यास करके विद्वान् होओ ॥ ९१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उभयोक्ति अर्थात् उपमान के न्यूनाधिक धर्मों के कथन से रूपक और श्लेषालंकार है-जो मनुष्य यज्ञविद्या और शब्दविद्या को जानते हैं वे महाशय विद्वान् होते हैं ॥ ९१ ॥

त्रिधेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अथ मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् । इन्द्र एकᳫं सूर्य एकञ्जजान वेनादेकᳫं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ९२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (देवासः) विद्वान् जन (पणिभिः) व्यवहार के ज्ञाता स्तुति करने वालों ने (त्रिधा) तीन प्रकार से (हितम्) स्थित किये और (गवि) वाणी में (गुह्यमानम्) छिपे हुए (घृतम्) प्रकाशित ज्ञान को (अनु, अविन्दन्) खोजने के पीछे पाते हैं (इन्द्रः) बिजुली जिस (एकम्) एक विज्ञान और (सूर्यः) सूर्य (एकम्) एक विज्ञान को (जजान) उत्पन्न करते तथा (वेनात्) अतिसुन्दर मनोहर बुद्धिमान् से तथा (स्वधया) अपने धारण की हुई क्रिया से (एकम्) अद्वितीय विज्ञान को (निः) निरन्तर (ततक्षुः) अतितीक्ष्ण सूक्ष्म करते हैं वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥ ९२ ॥

भावार्थः—तीन प्रकार के स्थूल सूक्ष्म और कारण के ज्ञान कराने हारे बिजुली तथा सूर्य के प्रकाश के तुल्य प्रकाशित बोध को प्राप्त अर्थात् उत्तम शास्त्रज्ञ विद्वानों से जो मनुष्य प्राप्त हों वे अपने ज्ञान को व्याप्त करें ॥ ९२ ॥

एता इत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिये यह वि० ॥

एता अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे । घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥ ९३ ॥

पदार्थः—जो (रिपुणा) शत्रु चोर से (न, अवचक्षे) न काटने योग्य (शतव्रजाः) सैकड़ों जिन के मार्ग हैं (एताः) वे वाणी (हृद्यात्, समुद्रात्) हृदयाकाश से (अर्षन्ति) निकलती हैं (आसाम्) इन वैदिकधर्मयुक्त वाणियों के (मध्ये) बीच जो अग्नि में (घृतस्य) घी की (धाराः) धाराओं के समान मनुष्यों में गिरी हुई प्रकाशित होती हैं उन को (हिरण्ययः) तेजस्वी (वेतसः) अतिसुन्दर मैं (अभि, चाकशीमि) सब ओर से शिक्षा करता हूं ॥ ९३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे उपदेशक विद्वान् लोग जो वाणी पवित्र विज्ञानयुक्त अनेक मार्गों वाली शत्रुओं से अखण्डय और घी का प्रवाह अग्नि को जैसे उत्तेजित करता है वैसे श्रोताओं को प्रसन्न करने वाली हैं उन वाणियों को प्राप्त होते हैं वैसे सब मनुष्य अच्छे यत्न से इन को प्राप्त होवें ॥ ९३ ॥

सम्यगित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुम्यक् स्रवन्ति सुरितो न धेनां अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा इव क्षिपुणोरीषमाणाः ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अन्तः, हृदा) शरीर के बीच में (मनसा) शुद्ध अन्तःकरण से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणी (सरितः) नदियों के (न) समान (सम्यक्) अच्छे प्रकार (स्रवन्ति) प्रवृत्त होती हैं उन को जो (एते) ये वाणी के द्वारा (घृतस्य) प्रकाशित आन्तरिक ज्ञान की (ऊर्मयः) लहरें (क्षिपणोः) हिंसकजन के भय से (ईषमाणाः) भागते हुए (मृगा इव) हरिणों के तुल्य (अर्षन्ति) उठती तथा सब को प्राप्त होती हैं उन को भी तुम लोग जानो ॥ ९४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमा और वाचकलु०—जैसे नदी समुद्रों को जाती हैं वैसे ही आकाशस्थ शब्द समुद्र से आकाश का शब्द गुण है इससे वाणी विचरती हैं तथा जैसे समुद्र की तरङ्गें चलती हैं वा जैसे बहेलिये से डरपे हुए मृग इधर उधर भागते हैं वैसे ही सब प्राणियों की शरीरस्थ विद्यान से पवित्र हुई वाणी प्रचार को प्राप्त होती हैं जो लोग शास्त्र के अभ्यास और सत्य वचन आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं ॥ ९३ ॥

सिन्धोरित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः। घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥९५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (प्राध्वने) जल चलने के उत्तम मार्ग में (सिन्धोरिव) नदी की जैसे (शूघनासः) शीघ्र चलनेहारी (वातप्रमियः) वायु से जानने योग्य लहरें और और (न) जैसे (काष्ठाः) संग्राम के प्रदेशों को (भिन्दन्) विदीर्ण करता तथा (ऊर्मिभिः) शत्रुओं को मारने के श्रम से उठने पसीने रूप जल से पृथिवी को (पिन्वमानः) सींचता हुआ (अरुषः) चालाक (वाजी) वेगवान् घोड़ा गिरे वैसे जो (यह्वाः) बड़ी गंभीर (घृतस्य) विज्ञान की (धाराः) वाणी (पतयन्ति) उपदेशक के मुख से निकल के श्रोताओं पर गिरती हैं उन को तुम जानो ॥ ९५ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में भी दो उपमालं०-जो नदी के समान कार्यसिद्धि के लिये शीघ्र धावने वाले वा घोड़े के समान वेग वाले जन जिन की सब दिशाओं में कीर्त्ति प्रवर्त्तमान हो रही है और परोपकार के लिये उपदेश से बड़े २ दुःख सहते हैं वे तथा उन के श्रोताजन संसार के स्वामी होते हैं और नहीं ॥ ९५ ॥

अभिप्रवन्तेत्यस्य वामदेव ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर वही वि० ॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्। घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥९६॥

पदार्थः—(स्मयमानासः) किञ्चित् हंसने से प्रसन्नता करने (कल्याण्यः) कल्याण के लिये आचरण करने तथा (समनेव, योषाः) एक से चित्त वाली स्त्रियां जैसे पतियों को प्राप्त हों वैसे जो (समिधः) शब्द अर्थ और सम्बन्धों से सम्यक् प्रकाशित (घृतस्य) शुद्ध ज्ञान की (धाराः) वाणी (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अभि, प्रवन्त) सब ओर से पहुंचती और (नसन्त) प्राप्त होती हैं (ताः) उन वाणियों का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (जातवेदाः) ज्ञानी विद्वान् (हर्यति) कान्ति को प्राप्त होता है॥९६॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे प्रसन्नचित्त आनंद को प्राप्त सौभाग्यवती स्त्रियां अपने २ पतियों को प्राप्त होती हैं वैसे ही विद्या तथा विज्ञानरूप आभूषण से शोभित वाणी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होती है ॥ ९६ ॥

कन्या इवेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कन्याऽइव वहतुमेतवाऽउऽअञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

पदार्थः—(अञ्जि) चाहने योग्य रूप को (अंजानाः) प्रकट करती हुई (वहतुम्) प्राप्त होने वाले पति को (एतवै) प्राप्त होने के लिये (कन्या इव) जैसे कन्या शोभित होती हैं वैसे (यत्र) जहां (सोमः) बहुत ऐश्वर्य (सूयते) उत्पन्न होता (उ) और (यत्र) जहां (यज्ञः) यज्ञ होता है (तत्) वहां जो (घृतस्य) ज्ञान की (धाराः) वाणी (अभि, पवन्ते) सब ओर से पवित्र होती हैं उन को मैं (अभिचाकशीमि) अच्छे प्रकार वारवार प्राप्त होता हूं ॥ ९७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे कन्या स्वयंवर के विधान से अपनी इच्छा के अनुकूल पतियों का स्वीकार करके शोभित होती हैं वैसे ऐश्वर्य उत्पन्न होने के अवसर और यज्ञसिद्धि में विद्वानों की वाणी पवित्र हुई शोभायमान होती हैं ॥ ९७ ॥

अभ्यर्षतेत्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

पदार्थः—हे विवाहित स्त्रीपुरुषो ! तुम उत्तम वर्त्ताव से (सुष्टुतिम्) अच्छी प्रशंसा तथा (आजिम्) जिस से उत्तम कामों को जानते हैं उस संग्राम और (गव्यम्) वाणी में होने वाले बोध वा गौ में होने वाले दूध दही घी आदि को (अभ्यर्षत) सब ओर से प्राप्त होओ (देवता) विद्वान् जन (अस्मासु) हम लोगों में (भद्रा) अति आनन्द कराने वाले (द्रविणानि) धनों को (धत्त) स्थापित करो (नः) हम लोगों को (इमम्) इस (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य गृहाश्रम-व्यवहार को (नयत) प्राप्त करावें जो (घृतस्य) प्रकाशित विज्ञान से युक्त (धाराः) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी विद्वानों को (मधुमत्) मधुर आलाप जैसे हो वैसे (पवन्ते) प्राप्त होती हैं उन वाणियों को हम को प्राप्त करो ॥ ९८ ॥

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि परस्पर मित्र होकर संसार में विख्यात होवें जैसे अपने लिये वैसे औरों के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनों को उन्नतियुक्त करें परमपुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें ॥ ९८ ॥

धामन्नित्यस्य वामदेव ऋषिः । यज्ञपुरुषो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर और राजा का वि० ॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥ ९९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जिस (ते) आप के (धामन्) जिस में कि समस्त पदार्थों को आप धरते हैं (अन्तः, समुद्रे) उस आकाश के तुल्य सब के बीच व्याप्त स्वरूप में (विश्वम्) सब (भुवनम्) प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान संसार (अधि, श्रितम्) आश्रित हो के स्थित है उस को हम लोग (अश्याम) प्राप्त होवें । हे सभापते (ते) तेरे (अपाम्) प्राणों के (अन्तः) बीच (हृदि) हृदय में तथा (आयुषि) जीवन के हेतु प्राणधारियों के (अनीके) सेना और (समिथे) संग्राम में (यः) जो भार (आभृतः) भलीभांति धरा है (तम्) उस को तथा (मधुमन्तम्) प्रशंसायुक्त मधुरगुणों से भरे हुए (ऊर्मिम्) बोध को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ९९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जगदीश्वर की सृष्टि में परम प्रयत्न से मित्रों की उन्नति करें और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्यता का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें ॥ ९९ ॥

इस अध्याय में सूर्य मेघ गृहाश्रम और गणित की विद्या तथा ईश्वर आदि की पदार्थविद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ एकता है यह समझना चाहिये ॥

यह सत्रहवां अध्याय पूरा हुआ ॥ १७ ॥

ओ३म्

अथाष्टादशोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद् भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥

वाजश्च म इत्यस्य देवा ऋषयः । अग्निर्देवता ।

शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अठारहवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या २ सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्वर॑श्च मे॒ श्लोक॑श्च मे श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वाजः) अन्न (च) विशेषज्ञान (मे) मेरा (प्रसवः) ऐश्वर्य्य (च) और उस के ढङ्ग (मे) मेरा (प्रयतिः) जिस व्यवहार से अच्छा यत्न बनता है सो (च) और उस के साधन (मे) मेरा (प्रसितिः) प्रबन्ध (च) और रक्षा (मे) मेरी (धीतिः) धारणा (च) और ध्यान (मे) मेरी (क्रतुः) श्रेष्ठबुद्धि (च) उत्साह (मे) मेरी (स्वरः) स्वतन्त्रता (च) उत्तम तेज (मे) मेरी (श्लोकः) पदरचना करनेहारी वाणी (च) कहना (मे) मेरा (श्रवः) सुनना (च) और सुनाना (मे) मेरी (श्रुतिः) जिससे समस्त विद्या सुनी जाती हैं वह वेदविद्या (च) और उस के अनुकूल स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र (मे) मेरी (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश होना (च) और दूसरे की विद्या का प्रकाश करना (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और अन्य का सुख (यज्ञेन) सेवन करने योग्य परमेश्वर वा जगत् के उपकारी व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम को अन्न आदि पदार्थों से सब के सुख के लिये ईश्वर की उपासना और जगत् के उपकारक व्यवहार की सिद्धि करनी चाहिये जिससे सब मनुष्यादिकों की उन्नति हो ॥ १ ॥

प्राणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। अतिजगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥
फिर उसी वि०॥

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ २॥

पदार्थः—(मे) मेरा (प्राणः) हृदय जीवनमूल (च) और कण्ठ देश में रहने वाला पवन (मे) मेरा (अपानः) नाभि से नीचे को जाने (च) और नाभि में ठहरने वाला पवन (मे) मेरे (व्यानः) शरीर की सन्धियों में व्याप्त (च) और धनंजय जो कि शरीर के रुधिर आदि को बढ़ाता है वह पवन (मे) मेरा (असुः) नाग आदि प्राण का भेद (च) तथा अन्य पवन (मे) मेरी (चित्तम्) स्मृति अर्थात् सुधिरहनी (च) और बुद्धि (मे) मेरा (आधीतम्) अच्छे प्रकार किया हुआ निश्चित ज्ञान (च) और रक्षा किया हुआ विषय (मे) मेरी (वाक्) वाणी (च) और सुनना (मे) मेरी (मनः) संकल्प विकल्परूप अन्तःकरण की वृत्ति (च) अहंकारवृत्ति (मे) मेरा (चक्षुः) जिस से मैं देखता हूं वह नेत्र (च) और प्रत्यक्ष प्रमाण (मे) मेरा (श्रोत्रम्) जिस से कि मैं सुनता हूं वह कान (च) और प्रत्येक विषय पर वेद का प्रमाण (मे) मेरी (दक्षः) चतुराई (च) और तत्काल भान होना तथा (मे) मेरा (बलम्) बल (च) और पराक्रम ये सब (यज्ञेन) धर्म के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों॥ २॥

भावार्थः—मनुष्य लोग साधनों के सहित अपने प्राण आदि पदार्थों को धर्म के आचरण करने में संयुक्त करें॥ २॥

ओजश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। स्वराडतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥
फिर उसी वि०॥

ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च म आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ ३॥

पदार्थः—(मे) मेरे (ओजः) शरीर का तेज (च) और मेरी सेना (मे) मेरे (सहः) शरीर का बल (च) तथा मन (मे) मेरा (आत्मा) स्वरूप और (च) मेरा

सामर्थ्य (मे) मेरा (तनूः) शरीर (च) और सम्बन्धीजन (मे) मेरा (शर्म) घर (च) और घर के पदार्थ (मे) मेरी (वर्म) रक्षा जिस से हो वह बख्तर (च) और शस्त्र अस्त्र (मे) मेरे (अंगानि) शिर आदि अंग (च) और अङ्गुली आदि प्रत्यंग (मे) मेरे (अस्थीनि) हाड़ (च) और भीतर के अङ्ग प्रत्यङ्ग अर्थात् हृदय मांस नसें आदि (मे) मेरे (परूंषि) मर्मस्थल (च) और जीवन के कारण (मे) मेरे (शरीराणि) सम्बन्धियों के शरीर (च) और अत्यन्त छोटे २ देह के अंग (मे) मेरी (आयुः) उमर (च) तथा जीवन के साधन अर्थात् जिन से जीते हैं (मे) मेरा (जरा) बुढ़ापा (च) और ज्वानी ये सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्कार के योग्य परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ ३ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि धार्मिक सज्जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्ड देने के लिये बली सेना आदि जनों को प्रवृत्ति करें ॥ ३ ॥

ज्यैष्ठ्यं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(मे) मेरी (ज्यैष्ठ्यम्) प्रशंसा (च) और उत्तम पदार्थ (मे) मेरा (आधिपत्यम्) स्वामीपन (च) और स्वकीय द्रव्य (मे) मेरा (मन्युः) अभिमान (च) और शांति (मे) मेरा (भामः) क्रोध (च) और उत्तम शील (मे) मेरा (अमः) न्याय से पाये हुए गृहादि (च) और पाने योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अम्भः) जल (च) और दूध दही घी आदि पदार्थ (मे) मेरा (जेमा) जीत का होना (च) और विजय (मे) मेरा (महिमा) वड़प्पन (च) प्रतिष्ठा (मे) मेरी (वरिमा) वड़ाई (च) और उत्तम वर्त्ताव (मे) मेरा (प्रथिमा) फैलाव (च) और फैले हुए पदार्थ (मे) मेरा (वर्षिमा) बुढ़ापा (च) और लड़काई (मे) मेरी (द्राघिमा) बढ़वार (च) और छुटाई (मे) मेरा (वृद्धम्) प्रभुता को प्राप्त हुए बहुत प्रकार का धन आदि पदार्थ (च) और थोड़ा पदार्थ तथा (मे) मेरी (वृद्धिः) जिस अच्छी क्रिया से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वह (च) और उस से उत्पन्न हुआ सुख उक्त समस्त पदार्थ (यज्ञेन) धर्म की रक्षा करने से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मित्रजनो तुम यज्ञ की सिद्धि और समस्त जगत् के हित के लिये प्रशंसित पदार्थों को संयुक्त करो ॥ ४ ॥

सत्यञ्चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । अत्यष्टिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स॒त्यं च॑ मे श्र॒द्धा च॑ मे॒ जग॑च्च मे॒ धनं॑ च मे॒ विश्वं॑ च मे॒ मह॑श्च मे क्री॒डा च॑ मे॒ मोद॑श्च मे जा॒तं च॑ मे जनि॒ष्यमा॑णं च मे सू॒क्तं च॑ मे सुकृ॒तं च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (सत्यम्) यथार्थ विषय (च) और सब का हित करना (मे) मेरी (श्रद्धा) श्रद्धा अर्थात् जिस के सत्य को धारण करते हैं (च) और उक्त श्रद्धा की सिद्धि देने वाले पदार्थ (मे) मेरा (जगत्) चेतन सन्तान आदि वर्ग (च) और उस में स्थिर हुए पदार्थ (मे) मेरा (धनम्) सुवर्ण आदि धन (च) और धान्य अर्थात् अनाज आदि (मे) मेरा (विश्वम्) सर्वस्व (च) और सभी पर उपकार (मे) मेरी (महः) बड़ाई से भरी हुई प्रशंसा करने योग्य वस्तु (च) और सत्कार (मे) मेरा (क्रीड़ा) खेलना विहार (च) और उसके पदार्थ (मे) मेरा (मोदः) हर्ष (च) और अतिहर्ष (मे) मेरा (जातम्) उत्पन्न हुआ पदार्थ (च) तथा जो होता है (मे) मेरा (जनिष्यमाणम्) जो उत्पन्न होने वाला (च) और जितना उससे सम्बन्ध रखने वाला (मे) मेरा (सूक्तम्) अच्छे प्रकार कहा हुआ (च) और अच्छे प्रकार विचारा हुआ (मे) मेरा (सुकृतम्) उत्तमता से किया हुआ काम (च) और उसके साधन ये उक्त सब पदार्थ (यज्ञेन) सत्य और धर्म की उन्नति करने रूप उपदेश से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या का पठन पाठन श्रवण और उपदेश करते व कराते हैं वे नित्य उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

ऋतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति

शक्वरी छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋ॒तं च॑ मे॒ऽमृतं॑ च मेऽय॒क्ष्मं च॑ मेऽना॑मयच्च मे जी॒वातु॑श्च मे दी-

र्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे युज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च) और उस की सिद्धि करने वाला पदार्थ (मे) मेरा (अमृतम्) आत्मस्वरूप वा यज्ञ से बचा हुआ अन्न (च) तथा पीने योग्य रस (मे) मेरा (अयक्ष्मम्) यक्ष्मा आदि रोगों से रहित शरीर आदि (च) और रोगविनाशक कर्म्म (मे) मेरा (अनामयत्) रोग आदि रहित आयु (च) और इस की सिद्धि करने वाली ओषधियां (मे) मेरा (जीवातुः) जिस से जीते हैं वा जो जिलाता है वह व्यवहार (च) और पथ्य भोजन (मे) मेरा (दीर्घायुत्वम्) अधिक आयु का होना (च) ब्रह्मचर्य्य और इन्द्रियों को अपने वश में रखना आदि कर्म (मे) मेरा (अनमित्रम्) मित्र (च) और पक्षपात को छोड़ के काम (मे) मेरा (अभयम्) न डरपना (च) और शूरपन (मे) मेरा (सुखम्) अति उत्तम आनन्द (च) और इस को सिद्ध करने वाला (मे) मेरा (शयनम्) सोजाना (च) और इस काम की सिद्धि कराने वाला पदार्थ (मे) मेरा (सूषाः) वह समय कि जिसमें अच्छी प्रातःकाल की वेला हो (च) और उक्त काम का सम्बन्ध करने वाली क्रिया तथा (मे) मेरा (सुदिनम्) सुदिन (च) और उपयोगी कर्म ये सब (यज्ञेन) सत्य वचन बोलने आदि व्यवहारों से (कल्पन्ताम्) समर्थित होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कामों को करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥ ६ ॥

यन्ता चेत्यस्य देवा ऋषयः। प्रजापतिर्देवता। निचृद् भुरिगतिजगती छन्दः।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे युज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (यन्ता) नियम करने वाला (च) और नियमित पदार्थ (मे) मेरा (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) और धारण किया हुआ पदार्थ (मे) मेरी (क्षेमः) रक्षा (च) और रक्षा करने वाला (मे) मेरी (धृतिः) धारणा (च)

स्थात् । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा क्षामद्देवोऽति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

पृतना-जितम् । सहमानम् । अग्निम् । उक्थैः । हवामहे । परमात् । सध-स्थात् । सः । नः । पर्षत् । अति । दुः-गानि । विश्वा । क्षामत् । देवः । अति । दुः-इतानि । अग्निः ॥ १ ॥

भाषार्थ—(पृतनाजितम्) संग्राम जीतने वाले, (सहमानम्) विजयी, (अग्निम्) अग्नि समान तेजस्वी सेनापति को (उक्थैः) स्तुतियों के साथ [उसके] (परमात्) बहुत ऊंचे (सधस्थात्) निवास स्थान से (हवामहे) हम बुलाते हैं। (सः) वह (देवः) व्यवहार कुशल (अग्निः) तेजस्वी सेनापति (विश्वा) सब (दुर्गाणि) दुर्गों को (अति) उलांघ कर और (दुरितानि) विघ्नों को (अति) हटाकर (नः) हमें (पर्षत्) पार लगावे, और (क्षामत्) समर्थ करे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो शूर सेनापति शत्रुओं के गढ़ तोड़ कर विजय पाता है वही प्रजापालन में समर्थ होता है ॥१॥

सूक्तम् ६४ ॥

१-२ ॥ १ आपः; २ अग्निर्देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥

शत्रुभ्यो रक्षोपदेशः—शत्रुओं से रक्षा का उपदेश ॥

इदं यद् कृष्णः शकुनिरभिनिष्पतन्नपीपतत् ।
आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् पान्त्वंहसः ॥१॥

१—(पृतनाजितम्) संग्रामजेतारम् (सहमानम्) षह अभिभवने नैरुक्तो धातुः । अभिभवन्तम् । विजयिनम् (अग्निम्) अग्निवत्तेजस्विनं सेनापतिम् (उक्थैः) वक्तव्यैः स्तोत्रैः (हवामहे) आह्वयामः (परमात्) उत्कृष्टात् (सधस्थात्) निवासात् (सः) (नः) अस्मान् (पर्षत्) अ० ६ । ३४ । १ । पारयेत् (अति) उल्लंघ्य (दुर्गाणि) दुर्गमनान् शत्रुकोष्टान् (विश्वा) सर्वाणि (क्षामत्) क्षमूष् सहने णिचि, लेटि,' अडागमः । क्षामयेत समर्थयेत् (देवः) व्यवहारकुशलः (अति) अतीत्य (दुरितानि) विघ्नान् (अग्निः) सेनापतिः ॥

ऊर्क् चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर वही वि० ॥

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पर्यश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च म औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (ऊर्क्) अच्छा संस्कार किया अर्थात् बनाया हुआ अन्न (च) और सुगन्धि आदि पदार्थों से युक्त व्यञ्जन (मे) मेरी (सूनृता) प्रियवाणी (च) और सत्य वचन (मे) मेरा (पयः) दूध (च) और उत्तम पकाये औषधि आदि पदार्थ (मे) मेरा (रसः) सब पदार्थों का सार (च) और बड़ी २ औषधियों से निकाला हुआ रस (मे) मेरा (घृत) घी (च) और उस का संस्कार करने तपाने आदि से सिद्ध हुआ पक्वान्न (मे) मेरा (मधु) सहत (च) और खांड गुड़ आदि (मे) मेरा (सग्धिः) एकसा भोजन (च) और उत्तम भोग साधन (मे) मेरी (सपीतिः) एकसा जिस में जल का पान (च) और जो चूसने योग्य पदार्थ (मे) मेरी (कृषिः) भूमि की जुताई (च) और गेहूं आदि अन्न (मे) मेरी (वृष्टिः) वर्षा (च) और होम की आहुतियों से पवन आदि की शुद्धि करना (मे) मेरा (जैत्रम्) जीतने का स्वभाव (च) और अच्छे शिक्षित सेना आदि जन तथा (मे) मेरे (औद्भिद्यम्) भूमि को तोड़ फोड़ के निकलने वाले वृक्षों वा वनस्पतियों का होना (च) और फूल फल ये सब पदार्थ (यज्ञेन) समस्त रस और पदार्थों की बढ़ती करने वाले कर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्य समस्त उत्तम रसयुक्त पदार्थों को इकट्ठा करके उन को समय २ के अनुकूल होमादि उत्तम व्यवहारों में लगावें ॥ ९ ॥

रयिश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । आत्मा देवता । निचृच्छक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(मे) मेरी (रयिः) विद्या की कान्ति (च) और पुरुषार्थ (मे) मेरे (रायः) प्रशंसित धन (च) और पक्वान्न आदि (मे) मेरे (पुष्टम्) पुष्ट पदार्थ (च) और आरोग्यपन (मे) मेरी (पुष्टिः) पुष्टि (च) और पथ्य भोजन (मे)

मेरा (विभु) सब विषयों में व्याप्त मन आदि (च) परमात्मा का ध्यान (मे) मेरा (प्रभु) समर्थ व्यवहार (च) और सब सामर्थ्य (मे) मेरा (पूर्णम्) पूर्ण काम का करना (च) और उसका साधन (मे) मेरे (पूर्णतरम्) आभूषण गौ बैल घोड़ा छेरी तथा धन आदि पदार्थ (च) और सब का उपकार करना (मे) मेरा (कुयवम्) निन्दित यवों से न मिला हुआ अन्न (च) और धान चावल आदि अन्न (मे) मेरा (अक्षितम्) अक्षय पदार्थ (च) और तृप्ति (मे) मेरा (अन्नम्) खाने योग्य अन्न (च) और मसाला आदि तथा (मे) मेरी (अक्षुत्) क्षुधा की तृप्ति (च) और प्यास आदि की तृप्ति ये सब पदार्थ (यज्ञेन) प्रशंसित धनादि देने वाले परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परम पुरुषार्थ और ईश्वर की भक्ति प्रार्थना से विद्या आदि धन पाकर सब का उपकार सिद्ध करना चाहिये ॥ १० ॥

वित्तं चेत्यस्य देवाः ऋषयः । श्रीमदात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वित्तम्) विचारा हुआ विषय (च) और विचारा (मे) मेरा (वेद्यम्) विचारने योग्य विषय (च) और विचारने वाला (मे) मेरा (भूतम्) व्यतीत हुआ विषय (च) और वर्तमान (मे) मेरा (भविष्यत्) होने वाला (च) और सब समय का उत्तम व्यवहार (मे) मेरा (सुगम्) सुगम मार्ग (च) और उत्तम कर्म (मे) मेरा (सुपथ्यम्) सुगम शुद्ध आहार विहार का होना (च) और सब कामों में प्रथम करना (मे) मेरा (ऋद्धम्) अच्छी वृद्धि को प्राप्त पदार्थ (च) और सिद्धि (मे) मेरी (ऋद्धिः) धन से पाई हुई अच्छी वृद्धि (च) और तुष्टि अर्थात् सन्तोष (मे) मेरा (क्लृप्तम्) सामर्थ्य को प्राप्त हुआ काम (च) और करना (मे) मेरी (क्लृप्तिः) सामर्थ्य की कल्पना (च) और तर्क (मे) मेरा (मतिः) विचार (च) और पदार्थ २ का विचार करना (मे) मेरी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि तथा (च) अच्छी शिक्षा ये सब (यज्ञेन) शम दम आदि नियमों से युक्त योगाभ्यास से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो शम आदि नियमों से युक्त संयम को प्राप्त योग का अभ्यास करते और ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त हुए हैं वे औरों को भी अच्छे प्रकार ऋद्धि सिद्धि दे सकते हैं ॥ ११ ॥

व्रीहयश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। धान्यदा आत्मा देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(मे) मेरे (व्रीहयः) चावल (च) और साठी के धान (मे) मेरे (यवाः) जौ (च) और अरहर (मे) मेरे (माषाः) उरद (च) और मटर (मे) मेरा (तिलाः) तिल (च) और नारियल (मे) मेरे (मुद्गाः) मूंग (च) और उस का बनाना (मे) मेरे (खल्वाः) चणे (च) और इन का सिद्ध करना (मे) मेरी (प्रियंगवः) कंगुनी (च) और उसका बनाना (मे) मेरे (अणवः) सूक्ष्म चावल (च) और उनका पाक (मे) मेरा (श्यामाकाः) समा (च) और मडुआ पटेरा चेना आदि छोटे अन्न (मे) मेरा (नीवाराः) पसाई के चावल जो कि विना बोए उत्पन्न होते हैं (च) और इनका पाक (मे) मेरे (गोधूमाः) गेहूं (च) और इनका पकाना तथा (मे) मेरी (मसूराः) मसूर (च) और इनका सम्बन्धी अन्य अन्न ये सब (यज्ञेन) सब अन्नों के दाता परमेश्वर से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि में होम करें तथा आप खावें औरों को खवावें ॥ १२ ॥

अश्मा चेत्यस्य देवा ऋषयः। रत्नवान्धनवानात्मा देवता। भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अश्मा) पत्थर (च) और हीरा आदि रत्न मेरी (मृत्तिका)

अच्छी माटी (च) और साधारण माटी (मे) मेरे (मिरयः) मेघ और (च) बद्दल (मे) मेरे (पर्वताः) बड़े छोटे पर्वत (च) और पर्वतों में होने वाले पदार्थ (मे) मेरी (सिकताः) बड़ी वालू (च) और छोटी २ बालू (मे) मेरे (वनस्पतयः) बड़ आदि वृक्ष (च) और आम आदि वृक्ष (मे) मेरा (हिरण्यम्) सब प्रकार का धन (च) तथा चांदी आदि (मे) मेरा (अयः) लोहा (च) और शस्त्र (मे) मेरा (श्यामम्) नीलमणि वा लहसुनिया आदि (च) और चन्द्रकान्तमणि (मे) मेरा (लोहम्) सुवर्ण (च) तथा कान्तीसार आदि (मे) मेरा (सीसम्) सीसा (च) और लाख (मे) मेरा (त्रपु) जस्ता (च) और पीतल आदि ये सब (यज्ञेन) संग करने योग्य व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १३ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग पृथिवीस्थ पदार्थों को अच्छी परीक्षा से जान के इन से रत्न और अच्छे अच्छे धातुओं को पाकर सब के हित के लिये उपयोग में लावें ॥ १३ ॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । अग्न्यादियुक्तात्मा देवता ।

भुरिगतिशक्वरी छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निश्च॑ मे॒ आप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च मे॒ ओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मेऽकृष्टप॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ आर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तं च॑ मे॒ वित्ति॑श्च मे भू॒तं च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अग्निः) अग्नि (च) और विजुली आदि (मे) मेरे (आपः) जल (च) और जल में होने वाले रत्न मोती आदि (मे) मेरे (वीरुधः) लता गुच्छा (च) और शाक आदि (मे) मेरी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधि (च) और फल पुष्पादि (मे) मेरे (कृष्टपच्याः) खेतों में पकते हुए अन्न आदि (च) और उत्तम अन्न (मे) मेरे (अकृष्टपच्याः) जो जंगल में पकते हैं वे अन्न (च) और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न (मे) मेरे (ग्राम्याः) गांव में हुए गौ आदि (च) और नगर में रहते हुए तथा (मे) मेरे (आरण्याः) वन में होने हारे मृग आदि (च) और सिंह आदि (पशवः) पशु (मे) मेरा (वित्तम्) पाया हुआ पदार्थ (च) और सब धन (मे) मेरी (वित्तिः) प्राप्ति (च) और पाने योग्य (मे) मेरा (भूतम्) रूप (च)

और नाना प्रकार का पदार्थ तथा (मे) मेरा (भूतिः) ऐश्वर्य (च) और उसका साधन ये सब पदार्थ (यज्ञेन) मेल करने योग्य शिल्पविद्या से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या से संगति करने योग्य शिल्पविद्या रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥

वसु चेत्यस्य देवा ऋषयः । धनादियुक्त आत्मा देवता । निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (वसु) वस्तु (च) और विविध पदार्थ वा पियारा काम (मे) मेरी (वसतिः) जिस में वसते हैं वह वस्ती (च) और भृत्य (मे) मेरा (कर्म) काम (च) और करने वाला (मे) मेरा (शक्तिः) सामर्थ्य (च) और प्रेम (मे) मेरा (अर्थः) सब पदार्थों का इकट्ठा करना (च) और इकट्ठा करने वाला (मे) मेरा (एमः) अच्छा यत्न (च) और बुद्धि (मे) मेरी (इत्या) वह रीति जिस से व्यवहारों को जानता हूं (च) और युक्ति तथा (मे) मेरी (गतिः) चाल (च) और उछलना आदि क्रिया ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो मनुष्य समस्त अपना सामर्थ्य आदि सब के हित के लिये ही करते हैं वे ही प्रशंसायुक्त होते हैं ॥ १५ ॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । अग्न्यादिविद्याविदात्मा देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥ १६ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अग्निः) प्रसिद्ध सूर्यरूप अग्नि (च) और पृथिवी पर मिलने वाला भौतिक (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुली रूप अग्नि (च) तथा पवन (मे) मेरा (सोमः) शांतिगुण वाला पदार्थ वा मनुष्य (च) और वर्षा मेघजल (मे) मेरा (इन्द्रः) अन्याय को दूर करने वाला सभापति (च) और सभासद् (मे) मेरा

(सविता) ऐश्वर्य्ययुक्त काम (च) और इसके साधन (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त अविद्या का नाश करने वाला अध्यापक (च) और विद्यार्थी (मे) मेरा (सरस्वती) प्रशंसित बोध वा शिक्षा से भरी हुई वाणी (च) और सत्य बोलने वाला (मे) मेरे (इन्द्रः) विद्यार्थी की जड़ता का विनाश करने वाला उपदेशक (च) सुनने वाले (मे) मेरा (पूषा) पुष्टि करने वाला (च) और योग्य आहार भोजन विहार सेना आदि (मे) मेरा जो (इन्द्रः) पुष्टि करने की विद्या में रम रहा है वह (च) और वैद्य (मे) मेरा (बृहस्पतिः) बड़े २ व्यवहारों की रक्षा करने वाला (च) और राजा तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य्य का बढ़ाने वाला उद्योगी और (च) सेनापति ये सब (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य्य की उन्नति करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को अच्छे विचार से अपने सब पदार्थ उत्तमों का पालन करने और दुष्टों को शिक्षा देने के लिये निरन्तर युक्त करने चाहियें ॥ १६ ॥

मित्रश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । मित्रैश्वर्य्यादिहित आत्मा देवता ।
स्वराट् शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

मित्रश्च॑ मे इन्द्र॑श्च मे वरु॑णश्च मे इन्द्र॑श्च मे धाता च॑ मे इन्द्र॑श्च मे त्वष्टा॑ च मे इन्द्र॑श्च मे मरुत॑श्च मे इन्द्र॑श्च मे विश्वे॑ च मे देवा इन्द्र॑श्च मे यज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (मित्रः) प्राण अर्थात् हृदय में रहने वाला पवन (च) और समान नाभिस्थ पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) बिजुलीरूप अग्नि (च) और तेज (मे) मेरा (वरुणः) उदान अर्थात् कण्ठ में रहने वाला पवन (च) और समस्त शरीर में विचरने हारा पवन (मे) मेरा (इन्द्रः) सूर्य्य (च) और धारणाकर्षण (मे) मेरा (धाता) धारण करनेहारा (च) और धीरज (मे) मेरा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य का प्राप्त कराने वाला (च) और न्याययुक्त पुरुषार्थ (मे) मेरा (त्वष्टा) पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि (च) और शिल्प अर्थात् कारीगरी (मे) मेरा (इन्द्रः) शत्रुओं को विदीर्ण करनेहारा राजा (च) तथा कारीगरी (मे) मेरे (मरुतः) इस ब्रह्माण्ड में रहने वाले और पवन (च) और शरीर के धातु (मे) मेरी (इन्द्रः) सर्वत्र व्यापक बिजुली (च) और उसका काम (मे) मेरे (विश्वे) समस्त पदार्थ (च) और सर्वस्व (देवाः) उत्तम गुणयुक्त पृथिवी आदि (मे) मेरे लिये (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य का दाता (च)

और उसका उपयोग ये सब (यज्ञेन) पवन की क्रिया के विधान करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्य प्राण और बिजुली की क्रिया को जान और इनकी सब जगह सब ओर से व्याप्ति को जान अपने बहुत जीवन को सिद्ध करें ॥ १७ ॥

पृथिवी चेत्यस्य देवा ऋषयः । राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा देवता ।
भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(मे) मेरी (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि (च) और उस में स्थित जो पदार्थ (मे) मेरी (इन्द्रः) बिजुलीरूप क्रिया (च) और बल देने वाली व्यायाम आदि क्रिया (मे) मेरा (अन्तरिक्षम्) विनाशरहित आकाश (च) और आकाश में ठहरे हुए सब पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) समस्त ऐश्वर्य का आधार (च) और उसका कर्त्ता (मे) मेरी (द्यौः) प्रकाश के काम कराने वाली क्रिया (च) और उसके सिद्ध करने वाले पदार्थ (मे) मेरा (इन्द्रः) सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य्य आदि (च) और छिन्न भिन्न करने योग्य पदार्थ (मे) मेरी (समाः) वर्षें (च) और क्षण, पल, विपल, घटी, मुहूर्त, दिन आदि (मे) मेरा (इन्द्रः) समय के ज्ञान का निमित्त (च) और गणितविद्या (मे) मेरे (नक्षत्राणि) नक्षत्र अर्थात् जो कारणरूप से स्थिर रहते किन्तु नष्ट नहीं होते वे लोक (च) और उन के साथ सम्बन्ध रखने वाले प्राणी आदि (मे) मेरी (इन्द्रः) लोकलोकान्तरों में स्थित होने वाली बिजुली (च) और बिजुली से संयोग करते हुए उन लोकों में रहने वाले पदार्थ (मे) मेरी (दिशः) पूर्व आदि दिशा (च) और उन में ठहरी हुई वस्तु तथा (मे) मेरा (इन्द्रः) दिशाओं के ज्ञान को देने वाला (च) और ध्रुव का तारा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पृथिवी और समय के विशेष ज्ञान देने वाले काम से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १८ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग पृथिवी आदि पदार्थों और उन में ठहरी हुई बिजुली आदि को जबतक नहीं जानते तबतक ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते ॥ १८ ॥

अंशुश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । पदार्थविदात्मा देवता । निचृदत्य-

त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च म उपा॒ꣳशुश्च॑ मे॒ऽन्तर्या॒मश्च॑ म ऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म आश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (अंशुः) व्याप्ति वाला सूर्य (च) और उस का प्रताप (मे) मेरा (रश्मिः) भोजन करने का व्यवहार (च) और अनेक प्रकार का भोजन (मे) मेरा (अदाभ्यः) विनाशरहित (च) और रक्षा करने वाला (मे) मेरा (अधिपतिः) स्वामी (च) और जिस में स्थिर हो वह स्थान (मे) मेरा (उपांशुः) मन में जप का करना (च) और एकान्त का विचार (मे) मेरा (अन्तर्यामः) मध्य में जाने वाला पवन (च) और बल (मे) मेरा (ऐन्द्रवायवः) बिजुली और पवन के साथ सम्बन्ध करने वाला काम (च) और जल (मे) मेरा (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान के साथ चलने द्वारा वायु (च) और व्यान पवन (मे) मेरा (आश्विनः) सूर्य चन्द्रमा के बीच में रहने वाला तेज (च) और प्रभाव (मे) मेरा (प्रतिप्रस्थानः) चलने २ के प्रति वर्त्ताव रखने वाला (च) भ्रमण (मे) मेरा (शुक्रः) शुद्धस्वरूप (च) और वीर्य्य करने वाला तथा (मे) मेरा (मन्थी) विलोने के स्वभाव वाला (च) और दूध वा काष्ठ आदि ये सब पदार्थ (यज्ञेन) अग्नि के उपयोग से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्यप्रकाशादिकों से भी उपकारों को लेवें तो विद्वान् होकर क्रिया की चतुराई को क्यों न पावें ॥ १६ ॥

आग्रयणश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञानुष्ठानात्मा देवता ।

स्वराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ॒ग्र॒य॒णश्च॑ मे वैश्वदे॒वश्च॑ मे ध्रु॒वश्च॑ मे वैश्वान॒रश्च॑ म ऐन्द्रा॒ग्नश्च॑ मे म॒हावै॑श्वदेवश्च मे मरुत्व॒तीया॑श्च मे निष्कै॑वल्यश्च मे सा॒वि॒त्रश्च॑ मे सारस्व॒तश्च॑ मे पात्नीव॒तश्च॑ मे हारियोज॒नश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (आग्रयणः) अगहन आदि महीनों में सिद्ध हुआ यज्ञ (च) और इस की सामग्री (मे) मेरा (वैश्वदेवः) समस्त विद्वानों से सम्बन्ध करने वाला विचार (च) और इस का फल (मे) मेरा (ध्रुवः) निश्चल व्यवहार (च) और इस के के साधन (मे) मेरा (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का सत्कार (च) तथा सत्कार करने वाला (मे) मेरा (ऐन्द्राग्नः) पवन और बिजुली से सिद्ध काम (च) और इस के साधन (मे) मेरा (महावैश्वदेवः) समस्त बड़े लोगों का यह व्यवहार (च) इन के साधन (मे) मेरे (मरुत्वतीयाः) पवनों का संबन्ध करने हारे व्यवहार (च) तथा इन का फल (मे) मेरा (निष्केवल्यः) निरन्तर केवल सुख हो जिस में वह काम (च) और इसके साधन (मे) मेरा (सावित्रः) सूर्य का यह प्रभाव (च) और इस से उपकार (मे) मेरा (सारस्वतः) वाणी-सम्बन्धी व्यवहार (च) और इन का फल (मे) मेरा (पात्नीवतः) प्रशंसित यज्ञसंबन्धिनी स्त्री वाले का काम (च) इस के साधन (मे) मेरा (हारियोजनः) घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले का यह आरंभ (च) इस की सामग्री (यज्ञेन) पदार्थों के मेल करने से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्य्य काल की क्रिया और विद्वानों के संग का आश्रय लेकर विवाहित स्त्री का नियम किये हों वे पदार्थविद्या को क्यों न जानें ॥ २० ॥

स्रुचश्चेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठानात्मा देवता।
विराड्धृतिश्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(मे) मेरे (स्रुचः) स्रुवा आदि (च) और उन की शुद्धि (मे) मेरे (चमसाः) यज्ञ वा पाक बनाने के पात्र (च) और उन के पदार्थ (मे) मेरे (वायव्यानि) पवनों में अच्छे पदार्थ (च) और पवनों की शुद्धि करने वाले काम (मे) मेरा (द्रोणकलशः) यज्ञ की क्रिया का कलश (च) और विशेष परिमाण (मे) मेरे (ग्रावाणः) शिलबट्टा आदि पत्थर (च) और उखली मूशल (मे) मेरे (अधिषवणे) सोमवल्ली आदि ओषधी जिन से कूटी पीसी जावे साधन (च) और कूटना पीसना (मे) मेरा (पूतभृत्) पवित्रता जिस से मिलती हो वह सूप आदि (च) और बुहारी आदि (मे)

मेरा (आधवनीयः) अच्छे प्रकार धोने आदि का पात्र (च) और नलिका आदि यन्त्र अर्थात् जिस नली नरकुल की चोगी आदि से तारागणों को देखते हैं वह (मे) मेरी (वेदिः) होम करने की वेदि (च) और चौकोना आदि (मे) मेरा (बर्हिः) समीप में वृद्धि देने वाला वा कुशसमूह (च) और जो यज्ञ-समय के योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अवभृथः) यज्ञसमाप्तिसमय का स्नान (च) और चन्दन आदि का अनुलेपन करना तथा (मे) मेरा (स्वगाकारः) जिससे अपने पदार्थों को प्राप्त होते हैं उस कर्म को जो करे वह (च) और पदार्थ को पवित्र करना ये सब (यज्ञेन) होम करने की क्रिया से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २१ ॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य यज्ञ करने को समर्थ होते हैं जो साधन उपसाधनरूप यज्ञ के सिद्ध करने की सामग्री को पूरी करते हैं ॥ २१ ॥

अग्निश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञवानात्मा देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(मे) मेरे (अग्निः) आग (च) और उस का काम में लाना (मे) मेरा (घर्मः) घाम (च) और शांति (मे) मेरी (अर्कः) सत्कार करने योग्य विशेष सामग्री (च) और उस की शुद्धि करने का व्यवहार (मे) मेरा (सूर्यः) सूर्य (च) और जीविका का हेतु (मे) मेरा (प्राणः) जीवन का हेतु वायु (च) और बाहर का पवन (मे) मेरे (अश्वमेधः) राज्यदेश (च) और राजनीति (मे) मेरी (पृथिवी) भूमि (च) और इस में स्थिर सब पदार्थ (मे) मेरी (अदितिः) अखण्ड नीति (च) और इंद्रियों को वश में रखना (मे) मेरी (दितिः) खंडित सामग्री (च) और अनित्य जीवना वा शरीर आदि (मे) मेरे (द्यौः) धर्म का प्रकाश (च) और दिन रात (मे) मेरा (अङ्गुलयः) अंगुली (शक्वरयः) शक्ति (दिशः) पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण दिशा (च) और ईशान वायव्य नैर्ऋत्य आग्नेय उपदिशा ये सब (यज्ञेन) मेल करने योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो प्राणियों के सुख के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वे महाशय होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ २२ ॥

व्रतं चेत्यस्य देवा ऋषयः । कालविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

व्रतं च म ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(मे) मेरे (व्रतम्) सत्य आचरण के नियम की पालना (च) और सत्य कहना और सत्य उपदेश (मे) मेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (च) और उत्तरायण दक्षिणायन (मे) मेरा (तपः) प्राणायाम (च) तथा धर्म का आचरण शीत उष्ण आदि का सहना (मे) मेरा (संवत्सरः) साल (च) तथा कल्प महाकल्प आदि (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन रात (ऊर्वष्ठीवे) जंघा और घोंटू (बृहद्रथन्तरे) बड़ा पदार्थ अत्यन्त सुन्दर रथ तथा (च) घोड़े वा बैल (यज्ञेन) धर्मज्ञान आदि के आचरण और कालचक्र के भ्रमण के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो पुरुष नियम किये हुए समय में काम और निरन्तर धर्म का आचरण करते हैं वे चाही हुई सिद्धि को पाते हैं ॥ २३ ॥

एका चेत्यस्य देवा ऋषयः । विषमाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः । एकविंशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ गणितविद्या के मूल का उप० ॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म एकविंशतिश्च म एकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च

मे नवविंशतिश्च मे एकत्रिंशच्च मे एकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने से (मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और दो (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) फिर (मे) मेरी (तिस्रः) तीन (च) और दो (मे) मेरी (पञ्च) पांच (च) फिर (मे) मेरी (पंच) पांच (च) और दो (मे) मेरी (सप्त) सात (च) फिर (मे) मेरी (सप्त) सात (च) और दो (मे) मेरी (नव) नौ (च) फिर (मे) मेरी (नव) नौ (च) और दो (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) फिर (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह (च) फिर (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह (च) और दो (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) फिर (मे) मेरी (सप्तदश) सत्रह (च) और दो (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस, (च) फिर (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) और दो (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) फिर (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) फिर (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चविंशतिः) पच्चीस (च) फिर (मे) मेरी (पञ्चविंशतिः) पच्चीस (च) और दो (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (च) फिर (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस (च) और दो (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) और दो (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस (च) और आगे भी इसी प्रकार संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों। यह एक योग पक्ष है ॥

अब दूसरा पक्ष।

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और संख्या दो के वियोग अर्थात् अन्तर से (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस संख्या (च) दो के देने अर्थात् वियोग से (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) फिर (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) फिर (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनतीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस समर्थ हों ऐसे सब संख्याओं में जानना चाहिये॥ यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥

अब तीसरा पक्ष ॥

(मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) परस्पर गुणी, (मे) मेरी (तिस्रः) तीन संख्या (च) और (मे) मेरी (पञ्च) पांच संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (पञ्च) पांच संख्या (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (सप्त) सात संख्या (च) और (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) परस्पर गुणित, (मे) मेरी (नव) नव संख्या (च) और (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह संख्या (च) परस्पर गुणित इस प्रकार अन्य संख्या (यज्ञेन) उक्त वार २ योग अर्थात् गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों । यह गुणन विषय से तीसरा पक्ष है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (यज्ञेन) इस पद से जोड़ना घटाना लिये जाते हैं क्योंकि जो यज धातु का संगतिकरण अर्थ है उससे संग कर देना अर्थात् किसी संख्या को किसी संख्या से योग कर देना वा यज धातु का जो दान अर्थ है उससे ऐसी संभावना करनी चाहिये कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय करना निकाल डालना यही अन्तर है इस प्रकार गुणन, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल भागजाति, प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं वे योग और अन्तर ही उत्पन्न होते हैं क्योंकि किसी संख्या को किसी संख्या से एक वार मिला दे तो योग कहाता है जैसे २+४=६ अर्थात् २ में ४ जोड़े तो ६ होते हैं ऐसे यदि अनेक वार संख्या में संख्या जोड़े तो उस को गुणन कहते हैं जैसे २×४=८ अर्थात् २ को ४ वार अलग २ जोड़े वा २ को ४ चार से गुणे तो ८ होते हैं । ऐसे ही ४ को ४ चौगुना कर दिया तो ४ का वर्ग १६ हुए ऐसे ही अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि निष्पन्न होते हैं अर्थात् किसी संख्या में किसी संख्या को जोड़ देवे वा किसी प्रकारान्तर से घटा देवे इसी योग वा वियोग से बुद्धिमानों को यथामति कल्पना से व्यक्त अव्यक्त अङ्कगणित और बीजगणित आदि समस्त गणित क्रिया उत्पन्न होती हैं इस कारण इस मन्त्र में दो के योग से उत्तरोत्तर संख्या वा दो के वियोग से पूर्व २ संख्या अच्छे प्रकार दिखलाई हैं वैसे गुणन का भी कुछ प्रकार दिखलाया है यह जानना चाहिये ॥ २४ ॥

चतस्रश्चेत्यस्य पूर्वदेवा ऋषयः । समाङ्कगणितविद्याविदात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । चतुर्विंशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ सम अङ्कों के गणित वि० ॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विथ्शतिश्च मे विथ्शतिश्च मे चतुर्विथ्शतिश्च मे चतुर्विथ्शतिश्च मेऽष्टाविथ्शतिश्च मेऽष्टाविंथ्शतिश्च मे द्वात्रिंथ्शच्च मे द्वात्रिंथ्शच्च मे षट्त्रिंथ्शच्च मे षट्त्रिंथ्शच्च मे चत्वारिंथ्शच्च मे चत्वारिंथ्शच्च मे चतुश्चत्वारिंथ्शच्च मे चतुश्चत्वारिंथ्शच्च मेऽष्टाचत्वारिंथ्शच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(यज्ञेन) मेल करने अर्थात् योग करने में (मे) मेरी (चतस्रः) चार संख्या (च) और चारि संख्या (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या, (च) फिर (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या (च) और चारि (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) फिर (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और चारि (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) फिर (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और चारि (मे) मेरी (विंशतिः) वीस (च) फिर (मे) मेरी (विंशतिः) वीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौवीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौवीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस (च) फिर (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अट्ठाईस (च) और चारि (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) और (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) और चारि (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) और चारि (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) और चारि (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) और आगे भी उक्त विधि से संख्या (कल्पन्ताम्) समर्थ हों यह प्रथम योगपक्ष है ॥ २५ ॥

अथ दूसरा पक्ष ॥

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोगमार्ग से विपरीत संगृहीत (च) और २ संख्या चारि के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों वैसे (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) फिर (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) चारि के

वियोग से (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) फिर (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) फिर (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) चारि के वियोग से (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस इस प्रकार सब संख्याओं में जानना चाहिये ॥ यह वियोग से दूसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

अब तीसरा पक्ष ॥

(मे) मेरी (चतस्रः) चारि संख्या (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) परस्पर गुणी (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) परस्पर गुणी (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) परस्पर गुणी (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च और (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) परस्पर गुणी इस प्रकार संख्या आगे भी (यज्ञेन) उक्त बार २ गुणन से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ यह गुणनविषय से तीसरा पक्ष है ॥ २५ ॥

भावार्थः—पिछले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो के योग वियोग से विषम संख्या कहीं इस से पूर्व मन्त्र में क्रम से आई हुई एक दो और तीन संख्या को छोड़ इस मन्त्र में चारि के योग वा वियोग से चौथी संख्या को लेकर सम संख्या प्रतिपादन की। इन दोनों मन्त्रों से विषम संख्या और सम संख्याओं का भेद जान के बुद्धि के अनुकूल कल्पना से सब गणितविद्या जाननी चाहिये ॥ २५ ॥

त्र्यविश्चेत्यस्य देवा ऋषयः । पशुविद्याविदात्मा देवता ।

ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पशुपालन वि० ॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(मे) मेरा (त्र्यविः) तीन प्रकार का भेड़ों वाला (च) और इस से भिन्न सामग्री (मे) मेरी (त्र्यवी) तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इन से उत्पन्न हुए घृतादि (मे) मेरे (दित्यवाट्) खंडित क्रियाओं में हुए विघ्नों को पृथक् करने वाला (च) और इस के संबन्धी (मे) मेरी (दित्यौही) उन्हीं क्रियाओं को प्राप्त कराने हारी गाय आदि (च) और उसकी रक्षा (मे) मेरी (पंचाविः)

पांच प्रकार की भेड़ों वाला (च) और उस के घृतादि (मे) मेरी (पंचावी) पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री (च) और इस के उद्योग आदि (मे) मेरा (त्रिवत्सः) तीन बछड़े वाला (च) और उस के (मे) मेरी (त्रिवत्सा) तीन बछड़े वाली गौ (च) और उस के घृतादि (मे) मेरा (तुर्य्यवाट्) चौथे वर्ष को प्राप्त हुआ बैल आदि (च) और इस को काम में लाना (मे) मेरी (तुर्य्यौही) चौथे वर्ष को प्राप्त गौ (च) और इस की शिक्षा ये सब पदार्थ (यज्ञेन) पशुओं के पालन के विधान से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में गौ छाग और भेड़ के उपलक्षण से अन्य पशुओं का भी ग्रहण होता है। जो मनुष्य पशुओं को बढ़ाते हैं वे इन के रसों से आढ्य होते हैं ॥ २६ ॥

पष्ठवाट्चेत्यस्य देवा ऋषयः। पशुपालनविद्याविदात्मा देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—(मे) मेरे (पष्ठवाट्) पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि (च) और उन के सम्बन्धी (मे) मेरी (पष्ठौही) पीठ से भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी आदि (च) और उन से उठाये गये पदार्थ (मे) मेरा (उक्षा) वीर्यसेचन में समर्थ वृषभ (च) और वीर्य धारण करनेवाली गौ आदि (मे) मेरी (वशा) वन्ध्या गौ (च) और वीर्य्यहीन बैल (मे) मेरा (ऋषभः) समर्थ बैल (च) और बलवती गौ (मे) मेरी (वेहत्) गर्भ गिराने वाली (च) और सामर्थ्यहीन गौ (मे) मेरा (अनड्वान्) हल और गाड़ी आदि को चलाने में समर्थ बैल (च) और गाड़ीवान आदि (मे) मेरी (धेनुः) नवीन ब्यानी दूध देनेहारी गाय (च) और उस को दोहने वाला जन वे सब (यज्ञेन) पशुशिक्षारूप यज्ञकर्म से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो पशुओं को अच्छी शिक्षा दे के कार्यों में संयुक्त करते हैं वे अपने प्रयोजन सिद्ध करके सुखी होते हैं ॥ २७ ॥

वाजायेत्यस्य देवा ऋषयः। संग्रामादिविदात्मा देवता। पूर्वस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः। पंचमः स्वरः ॥

इयमित्युत्तरस्यार्ची बृहती छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

अब कैसी वाणी का स्वीकार करना चाहिये यह वि० ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ऽह॒र्पत॑ये॒ स्वाहाह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॑ वैनꣳशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ꣳशिन॑ आन्त्याय॒नाय॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ । इ॒यं ते॑ रा॒ण्मि॒त्राय॑ य॒न्तासि॒ यम॑न ऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जानां॒ त्वाधि॑पत्याय ॥ २८ ॥

पदार्थः—जिस विद्वान् में (वाजाय) संग्राम के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (प्रसवाय) ऐश्वर्य वा सन्तानोत्पत्ति के अर्थ (स्वाहा) पुरुषार्थ बलयुक्त सत्य वाणी (अपिजाय) ग्रहण करने के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) विज्ञान के लिये (स्वाहा) योगाभ्यासादि क्रिया (वसवे) निवास के लिये (स्वाहा) धनप्राप्ति करानेहारी क्रिया (अहर्पतये) दिनों के पालन करने हारे के लिये (स्वाहा) कालविज्ञान को देने हारी क्रिया (अह्ने) दिन के लिये वा (मुग्धाय) मूढ़जन के लिये (स्वाहा) वैराग्ययुक्त क्रिया (मुग्धाय) मोह को प्राप्त हुए के लिये (वैनंशिनाय) विनाशी अर्थात् विनष्ट होने हारे को जो बोध उस के लिये (स्वाहा) सत्यहितोपदेश करने वाली वाणी (विनंशिने) विनाश होने वाले स्वभाव के अर्थ वा (आन्त्यायनाय) अन्त में घर जिस का हो उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (आन्त्याय) नीच वर्ण में उत्पन्न हुए (भौवनाय) भुवनसम्बन्धी के लिये (स्वाहा) उत्तम उपदेश (भुवनस्य) जिस संसार में सब प्राणीमात्र होते हैं उस के (पतये) स्वामी के अर्थ (स्वाहा) उत्तम वाणी (अधिपतये) पालने वालों को अधिष्ठाता के अर्थ (स्वाहा) राजव्यवहार को जनाने हारी क्रिया तथा (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले के अर्थ (स्वाहा) राजधर्म प्रकाश करने हारी नीति स्वीकार की जाती है तथा जिस (ते) आपकी (इयम्) यह (राट्) विशेष प्रकाशमान नीति है और जो (यमनः) अच्छे गुणों के ग्रहणकर्त्ता आप (मित्राय) मित्र के लिये (यन्ता) उचित सत्कार करने हारे (असि) हैं उन (त्वा) आप को (ऊर्जे) पराक्रम के लिये (त्वा) आप को (वृष्ट्यै) वर्षा के लिये और (त्वा) आपको (प्रजानाम्) पालने के

योग्य प्रजाओं के (आधिपत्याय) अधिपति होने के लिये हम स्वीकार करते हैं ॥२८॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और क्रिया से सहित वर्त्तमान रहते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं और जो जितेन्द्रिय होते हैं वे राज्य के पालन में समर्थ होते हैं ॥२८॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य देवा ऋषयः। यज्ञानुष्ठातात्मा देवता। पूर्वस्य स्वराड्विकृतिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अथ क्या २ यज्ञ की सिद्धि के लिये युक्त करना चाहिये यह० ॥

ओ३म् आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च। स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य तेरे प्रजाजनों के स्वामी होने के लिये (आयुः) जिस से जीवन होता है वह आयुर्दा (यज्ञेन) परमेश्वर और अच्छे महात्माओं के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण वायु (यज्ञेन) संग करने से (कल्पताम्) समर्थ होवे (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) परमेश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो (श्रोत्रम्) कान (यज्ञेन) ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो (वाक्) वाणी (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (मनः) संकल्पविकल्प करने वाला मन (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (आत्मा) जो कि शरीर इन्द्रिय तथा प्राण आदि पवनों को व्याप्त होता है वह आत्मा (यज्ञेन) ईश्वर० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने वाला विद्वान् (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) न्याय का प्रकाश (यज्ञेन) ईश्वर० वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्वः) सुख (यज्ञेन) ईश्वर वा वि० से (कल्पताम्) समर्थ हो (पृष्ठम्) जानने की इच्छा (यज्ञेन) पठनरूप यज्ञ से (कल्पताम्) समर्थ हो (यज्ञः) पाने योग्य धर्म (यज्ञेन) सत्यव्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ हो (स्तोमः)

८३

जिस में स्तुति होती है वह अथर्ववेद (च) और (यजुः) जिस से जीव सत्कार आदि करता है वह यजुर्वेद (च) और (ऋक्) स्तुति का साधक ऋग्वेद (च) और (साम) सामवेद (च) और (बृहत्) अत्यन्त बड़ा वस्तु (च) और सामवेद का (रथन्तरम्) रथन्तर नाम वाला स्तोत्र (च) भी ईश्वर वा विद्वान् के सत्कार से समर्थ हो। हे (देवाः) विद्वानो जैसे हम लोग (अमृताः) जन्म मरण के दुःख से रहित हुए (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्राप्त हों वा। प्रजापतेः) समस्त संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः) पालने योग्य प्रजा (अभूम) हों तथा (वेट्) उत्तम क्रिया और (स्वाहा) सत्यवाणी से युक्त (अभूम) हों वैसे तुम भी होओ ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-यहां पूर्व मंत्र से (ते, आधिपत्याय) इन दो पदों की अनुवृत्ति आती है। मनुष्य धार्मिक विद्वान् जनों के अनुकरण से यज्ञ के लिये सब समर्पण कर परमेश्वर और प्रजा को न्यायाधीश मान के न्याय परायण होकर निरन्तर सुखी हो ॥ २९ ॥

वाजस्येत्यस्य देवा ऋषयः। राज्यवानात्मा देवता। स्वराड्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे किस की उपासना करना चाहिये यह वि० ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म्म साविषत् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(वाजस्य) विविध प्रकार के उत्तम अन्न के (प्रसवे) उत्पन्न करने में (नु) ही वर्त्तमान हम लोग (मातरम्) मान्य की हेतु (अदितिम्) कारणरूप से नित्य (महीम्) भूमि को (नाम) प्रसिद्धि में (वचसा) वाणी से (करामहे) युक्त करें (यस्याम्) जिस पृथिवी में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) स्थूल जगत् (आविवेश) व्याप्त है (तस्याम्) उस पृथिवी में (सविता) समस्त ऐश्वर्य-युक्त (देवाः) शुद्धस्वरूप ईश्वर (नः) हमारी (धर्म) उत्तम कर्मों की धारणा को (साविषत्) उत्पन्न करे ॥ ३० ॥

भावार्थः—जिस जगदीश्वर ने सब का आधार जो भूमि बनाई और वह सब को धारण करती है वही ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने योग्य है ॥ ३० ॥

विश्वे अद्येत्यस्य देवा ऋषयः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ अगले मन्त्र में प्राणियों के कर्त्तव्य वि० ॥

विश्वे॑ अ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः । विश्वे॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ अ॒स्मे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—इस पृथिवी में (अद्य) आज (विश्वे) सब (मरुतः) पवन (विश्वे) सब प्राणी और पदार्थ (विश्वे) सब (समिद्धाः) अच्छे प्रकार लपट दे रहे हुए (अग्नयः) अग्नियों के समान मनुष्य लोग (नः) हमारी (ऊती) रक्षा आदि के साथ (भवन्तु) प्रसिद्ध हों (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) पालन आदि से सहित (आ, गमन्तु) आवें अर्थात् आकर हम लोगों की रक्षा करें जिस से (अस्मे) हम लोगों के लिये (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य को छोड़ विद्वानों का संग कर इस पृथिवी में प्रयत्न करते हैं वे समस्त अति उत्तम पदार्थों को पाते हैं ॥ ३१ ॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः । अन्नवान् विद्वान् देवता ।
निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वान् और प्रजाजन कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वतः॑ । वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑साताावि॒हाव॑तु ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (विश्वैः) सब (देवैः) विद्वानों के साथ (वाजः) अन्नादि (इह) इस लोक में (धनसातौ) धन के विभाग करने में (नः) हम लोगों को (अवतु) प्राप्त होवे (वा) अथवा (नः) हम लोगों का (वाजः) शास्त्रज्ञान और वेग (सप्त) सात (प्रदिशः) जिन का अच्छे प्रकार उपदेश किया जाय उन लोक लोकान्तरों वा (परावतः) दूर २ जो (चतस्रः) पूर्व आदि चार दिशा उन को पाले अर्थात् उक्त सब पदार्थों की रक्षा करें वैसे इन की रक्षा तुम भी निरन्तर किया करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत अन्न से अपनी रक्षा तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं में अच्छी कीर्ति हो इस प्रकार सत्पुरुषों का सन्मान किया करें ॥ ३२ ॥

वाजो न इत्यस्य देवा ऋषयः । अन्नपतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ चाहने योग्य है यह वि० ॥

वाजो॑ नो अ॒द्य प्र सु॑वाति दा॒नं वाजो॑ दे॒वाँ२॥ ऋ॒तुभिः॑ कल्पयाति। वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं ज॒जान॒ विश्वा॒ आशा॒ वाज॑पतिर्जयेयम्॥२३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्य) आज जो (वाजः) अन्न (नः) हमारे लिये (दानम्) दान दूसरे को देना (प्रसुवाति) चिताये और (वाजः) वेगरूपगुण (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (देवान्) अच्छे २ गुणों को (कल्पयाति) प्राप्त होने में समर्थ करे वा जो (हि) ही (वाजः) अन्न (सर्ववीरम्) सब वीर जिससे हों ऐसे अतिवलवान् (मा) मुझ को (जजान) प्रसिद्ध करे उस सब से ही मैं (वाजपतिः) अन्नादि का अधिष्ठाता होकर (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं को (जयेयम्) जीतूं वैसे तुम भी जीता करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जितने इस पृथिवी में पदार्थ हैं उन सभों में अन्न ही अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हैं जिस से अन्नवान् पुरुष सब जगह विजय को प्राप्त होता है ॥ २३ ॥

वाजः पुरस्तादित्यस्य देवा ऋषयः। अन्नपतिर्देवता।
त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥
अन्न ही सब की रक्षा करता है यह वि० ॥

वाजः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नो॒ वाजो॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ वर्द्धयाति। वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं च॒कार॒ सर्वा॒ आशा॒ वाज॑पतिर्भवेयम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—जो (वाजः) अन्न (हविषा) देने लेने और खाने से (पुरस्तात्) पहिले (उत) और (मध्यतः) बीच में (नः) हम लोगों को (वर्द्धयाति) बढ़ावे तथा जो (वाजः) अन्न (देवान्) दिव्यगुणों को बढ़ावे जो (हि) ही (वाजः) अन्न (मा) मुझ को (सर्ववीरम्) जिस से समस्त वीर पुरुष होते हैं ऐसा (चकार) करता है उससे मैं (वाजपतिः) अन्न आदि पदार्थों की रक्षा करने वाला (भवेयम्) होऊं और (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को जीतूं ॥ २४ ॥

भावार्थः—अन्न ही सब प्राणियों को बढ़ाता है अन्न से ही प्राणी सब दिशाओं में भ्रमते हैं अन्न के विना कुछ भी नहीं कर सकते ॥ २४ ॥

सं मा सृजामीत्यस्य देवा ऋषयः। रसविद्याविद्विद्वान् देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥
फिर मनुष्य क्या करें यह वि० ॥

सं मा सृजामि पर्यसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः । सोऽहं वाजंᳬसनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) रसविद्या के जानने हारे विद्वान् जो मैं (पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) रस के साथ (मा) अपने को (सं, सृजामि) मिलाता हूं वा (अद्भिः) अच्छे शुद्ध जल और (ओषधीभिः) सोमलता आदि ओषधियों के साथ (मा) अपने को (संसृजामि) मिलाता हूं (सः) सो (अहम्) मैं (वाजम्) अन्न का (सनेयम्) सेवन करूं इसी प्रकार तू भी आचरण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे मैं वैद्यक शास्त्र की रीति से अन्न और पान आदि को करके सुखी होता हूं वैसे तुम लोग भी प्रयत्न किया करो ॥ ३५ ॥

पयः पृथिव्यामित्यस्य देवा ऋषयः । रसविद्विद्वान्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों यह वि० ॥

पर्यः पृथिव्यां पय ओषधीषु पर्यो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पर्यस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् तू (पृथिव्याम्) पृथिवी पर जिस (पयः) जल वा दुग्ध आदि के रस (ओषधीषु) ओषधियों में जिस (पयः) रस (दिवि) शुद्ध निर्मल प्रकाश वा (अन्तरिक्षे) सूर्य और पृथिवी के बीच में जिस (पयः) रस को (धाः) धारण करता है उस सब (पयः) जल वा दुग्ध के रस को मैं भी धारण करूं जो (प्रदिशः) दिशा विदिशा (पयस्वतीः) बहुत रस वाली तेरे लिये (सन्तु) हों वे (मह्यम्) मेरे लिये भी हों ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जल आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्न और रसों का संग्रह करके खाते और पीते हैं वे नीरोग होकर सब दिशाओं में कार्य की सिद्धि कर तथा जा आ सकते और बहुत आयु वाले होते हैं ॥ ३६ ॥

देवस्य त्वेत्यस्य देवा ऋषयः । सम्राड् राजा देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे को राजा मानें यह वि० ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् जैसे मैं (त्वा) आप को (सवितुः) सकल ऐश्वर्य की

प्राप्ति कराने हारा जो (देवस्य) आप ही प्रकाश को प्राप्त परमेश्वर उस के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलपन के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (पूष्णः) पुष्टि करने वाले प्राण के धारण और खींचने के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से (सरस्वत्यै) विज्ञान वाली (वाचः) वाणी के (यन्तुः) नियम करने वाले (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि की (यंत्रेण) कारीगरी से उत्पन्न किये हुए (साम्राज्येन) सब भूमि के राजपन से (अभिषिञ्चामि) अभिषेक करता हूं अर्थात् अधिकार देता हूं वैसे आप सुख से मेरा अभिषेक करें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि समस्त विद्या के जानने हारे हो के सूर्य आदि के गुण कर्म सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें ॥ ३७ ॥

ऋताषाडित्यस्य देवा ऋषयः । ऋतुविद्याविद्विद्वान्देवता । विराडार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर राजा क्या करे यह वि० ॥

ऋताषाडृतधा॑मा॒ग्निर्ग॑न्ध॒र्वस्तस्यौष॑धयोऽप्स॒रसो॒ मुदो॒ नाम॑ । स न॑ इ॒दं ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं पा॑तु॒ तस्मै॒ स्वाहा॒ वाट् ताभ्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ऋताषाट्) सत्य व्यवहार को सहने वाला (ऋतधामा) जिस के ठहरने के लिये ठीक २ स्थान हैं वह (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (अग्निः) आग के समान है वह (तस्य) उस की (ओषधयः) ओषधि (अप्सरसः) जो कि जलों में पौंड़ती हैं वे (मुदः) जिन में आनन्द होता है ऐसे (नाम) नाम वाली हैं (सः) वह (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्रह्म को जानने वालों के कुल और (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियों के कुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (वाट्) जिस से कि व्यवहारों को यथायोग्य वर्त्ताव में लाता है और (ताभ्यः) उक्त उन ओषधियों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया हो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के समान दुष्ट शत्रुओं के कुल को दुःखरूपी अग्नि में जलाने वाला और ओषधियों के समान आनन्द का करने वाला हो वही समस्त राज्य की रक्षा कर सकता है ॥ ३८ ॥

सछंहित इत्यस्य देवा ऋषयः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी
त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जो (संहितः) सब मूर्तिमान् वस्तु वा सत्पुरुषों के साथ मिला हुआ (सूर्यः) सूर्य (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला है (तस्य) उसकी (मरीचयः) किरणें (अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में जाती आती हैं वे (आयुवः) सब ओर से संयोग और वियोग करने वाली (नाम) प्रसिद्ध हैं अर्थात् जल आदि पदार्थों का संयोग करती और छोड़ती हैं (ताभ्यः) उन अन्तरिक्ष में जाने आने वाली किरणों के लिये (विश्वसामा) जिस के समीप सामवेद विद्यमान वह आप (स्वाहा) उत्तम क्रिया से कार्य सिद्धि करो जिस से वे यथायोग्य काम में आवें जो आप (तस्मै) उस सूर्य के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करते हो (सः) वह आप (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वानों और (क्षत्रम्) शूरवीरों के कुल तथा (वाट्) कामों के निर्वाह करने को (पातु) रक्षा करो ॥ ३९ ॥

भावार्थः—मनुष्य सूर्य की किरणों का युक्ति के साथ सेवन कर विद्या और शूरवीरता को बढ़ा के अपने प्रयोजन को सिद्ध करें ॥ ३९ ॥

सुषुम्ण इत्यस्य देवा ऋषयः । चन्द्रमा देवता । निचृदार्षी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिये यह वि० ॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (सूर्यरश्मिः) सूर्य्य की किरणों वाला (सुषुम्णः) जिस से उत्तम सुख होता (गन्धर्वः) और जो सूर्य्य की किरणों को धारण किये है वह (चन्द्रमाः) सब को आनन्दयुक्त करने वाला चन्द्रलोक है (तस्य) उस के जो (नक्षत्राणि) अश्विनी आदि नक्षत्र और (अप्सरसः) आकाश में विद्यमान किरणें (भेकुरयः) प्रकाश को करने वाला (नाम) प्रसिद्ध हैं वे चन्द्र की अप्सरा हैं (सः) वह जैसे (नः) हम लोगों के

(इदम्) इस (ब्रह्म) पढ़ाने वाले ब्राह्मण और (क्षत्रम्) दुष्टों के नाश करने हारे क्षत्रिय-कुल की (पातु) रक्षा करे (तस्मै) उक्त उस प्रकार के चन्द्रलोक के लिये (वाट्) कार्य-निर्वाहपूर्वक (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ताभ्यः) उन किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तुम लोगों को प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से भी उन की विद्या से सुख सिद्ध करना चाहिये ॥ ४० ॥

इषिर इत्यस्य देवा ऋषयः । वातो देवता । ब्राह्मयुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेना चाहिये यह वि० ॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापोऽअप्सरसऽऊर्जो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इषिरः) जिससे इच्छा करते (विश्वव्यचाः) वा जिस की सब संसार में व्याप्ति है वह (गन्धर्वः) पृथिवी और किरणों को धारण करता (वातः) सब जगह भ्रमण करने वाला पवन है (तस्य) उस के जो (आपः) जल और प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान आदि भाग हैं वे (अप्सरसः) अन्तरिक्ष जल में जाने आने वाले और (ऊर्जः) बल पराक्रम के देने वाले (नाम) प्रसिद्ध हैं ऐसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) सत्य के उपदेश से सब की वृद्धि करने वाले ब्राह्मणकुल तथा (क्षत्रम्) विद्या के बढ़ाने वाले राजकुल की (पातु) रक्षा करे वैसे तुम लोग भी आचरण करो (तस्मै) और उक्त पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति तथा (ताभ्यः) उन जल आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा उत्तम वाणी को युक्त करो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—शरीर में जितनी चेष्टा और बल पराक्रम उत्पन्न होते हैं वे सब पवन से होते हैं और पवन ही प्राणरूप और जल गन्धर्व अर्थात् सब को धारण करने वाले हैं यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

भुज्युरित्यस्य देवा ऋषयः । यज्ञो देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग यज्ञ का अनुष्ठान करें यह वि० ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (भुज्युः) सुखों के भोगने और (सुपर्णः) उत्तम २ पालना का हेतु (गन्धर्वः) वाणी को धारण करने वाला (यज्ञः) संगति करने योग्य यज्ञकर्म है (तस्य) उस की (दक्षिणाः) जो सुपात्र अच्छे २ धर्मात्मा विद्वानों को दक्षिणा दी जाती हैं वे (अप्सरसः) प्राणों में पहुंचने वाली (स्तावाः) जिन की प्रशंसा की जाती है ऐसी (नाम) प्रसिद्ध हैं (सः) वह जैसे (नः) हमारे लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वान् ब्राह्मण और (क्षत्रम्) चक्रवर्त्ती राजा की (पातु) रक्षा करे वैसा तुम लोग भी अनुष्ठान करो (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की (वाट्) प्राप्ति (ताभ्यः) उक्त दक्षिणाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से उत्तम क्रिया को संयुक्त करो ॥४२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते हैं यह जानना चाहिये ॥ ४२ ॥

प्रजापतिरित्यस्य देवा ऋषयः। विश्वकर्मा देवता। विराडार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस वि० ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जो (विश्वकर्मा) समस्त कामों का हेतु (प्रजापतिः) और जो प्रजा का पालने वाला स्वामी मनुष्य है (तस्य) उस के (गन्धर्वः) जिस से वाणी आदि को धारण करता है (मनः) ज्ञान की सिद्धि करने हारा मन (ऋक्सामानि) ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्र, (अप्सरसः) हृदयाकाश में व्याप्त प्राण आदि पदार्थों में जाती हुई क्रिया (एष्टयः) जिन से विद्वानों का सत्कार सत्य का संग और विद्या का दान होता है वे सब (नाम) प्रसिद्ध हैं जैसे (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (इदम्) इस (ब्रह्म) वेद और (क्षत्रम्) धनुर्वेद की (पातु) रक्षा करे वैसे (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (वाट्) धर्म की प्राप्ति और (ताभ्यः) उन उक्त पदार्थों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से उपकार को करो ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी विचारशील वेदविद्या के जानने वाले होते हैं वे ही संसार के भूषण होते हैं ॥ ४३ ॥

स न इत्यस्य देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त उपरि गृहा यस्य वेह । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (भुवनस्य) घर के (पते) स्वामी (प्रजापते) प्रजा की रक्षा करने वाले पुरुष (इह) इस संसार में (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) अति उच्चता को देने-हारे उत्तम व्यवहार में (गृहाः) पदार्थों के ग्रहण करनेहारे गृहस्थ मनुष्य आदि (वा) वा (यस्य) जिस की सब उत्तम क्रिया हैं (सः) सो तू (नः) हमारे (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के जानने हारे मनुष्य तथा (अस्मै) इस (क्षत्राय) राजधर्म में निरन्तर स्थित क्षत्रिय के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से (महि) बहुत (शर्म) घर और सुख को (यच्छ) दे ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों और क्षत्रियों के कुल को नित्य बढ़ाते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

समुद्रोसीत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो तू (नभस्वान्) जिस के समीप बहुत जल (आर्द्रदानुः) और शीतल गुणों का देने वाला (समुद्रः) और जिस में उलट पलट जल गिरते उस समुद्र के समान (असि) है वह (स्वाहा) सत्य क्रिया से (शम्भूः) उत्तम सुख और (मयोभूः) सामान्य सुख उत्पन्न कराने वाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो जो तू (मारुतः) पवनों का संबन्धी जाननेहारा (मरुताम्) विद्वानों के (गणः) समूह के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष परजन्म के सुख और (मयोभूः) इस जन्म

में सामान्य सुख का उत्पन्न करने वाला होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो जो तूं (दुवस्वान्) प्रशंसित सत्कार से युक्त (अवस्यूः) अपनी. रक्षा चाहने वाले के समान (असि) है वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (शम्भूः) विशेष सुख और (मयोभूः) सामान्य अपने सुख का उत्पन्न करने हारा. होता हुआ (मा) मुझ को (अभि, वाहि) सब ओर से प्राप्त हो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर और रत्नों से युक्त कोमल पवन के तुल्य बलवान् विद्वानों के तुल्य परोपकारी और अपने आत्मा के तुल्य सब की रक्षा करते हैं वे ही सब के कल्याण और सुखों को कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

यास्त इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

यास्ते॑ अग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ । ताभि॑र्नो॒ अ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वान् (याः) जो (सूर्ये) सूर्य्य वा प्राण में (रुचः) दीप्ति वा प्रीति हैं और जो (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर से फैलाती हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब (ते) अपनी दीप्ति वा प्रीतियों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को संयुक्त करो और (रुचे) प्रीति करने हारे (जनाय) मनुष्य के अर्थ (नः) हम लोगों को (कृधि) नियत करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जैसे परमेश्वर सूर्य्य आदि प्रकाश करने हारे लोकों का भी प्रकाश करने हारा है वैसे सब शास्त्र को यथावत् कहने वाला विद्वान् विद्वानों को भी विद्या देने हारा होता है जैसे ईश्वर इस संसार में सब प्राणियों की सत्य में रुचि और असत्य में अप्रीति को उत्पन्न करता है वैसा विद्वान् भी आचरण करे ॥ ४६ ॥

या व इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

या वो॑ देवाः॒ सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑ । इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभिः॒ सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े २ पदार्थों की पालना करने हारे ईश्वर और (देवाः) विद्वान् मनुष्यो (याः) जो (वः) तुम सभों की (सूर्ये) चराचर में व्याप्त परमेश्वर में अर्थात् ईश्वर की अपने में और तुम विद्वानों की ईश्वर में (रुचः) प्रीति हैं वा (याः) जो इन (गोषु) किरण इन्द्रिय और दुग्धदेने वाली गौ और (अश्वेषु) अग्नि तथा घोड़ा आदि में (रुचः) प्रीति हैं वा जो इन में (इन्द्राग्नी) प्रसिद्ध बिजुली और आग वर्तमान हैं वे भी (ताभिः उन (सर्वाभिः) सब प्रीतियों से (नः) हम लोगों में (रुचम्) प्रीति को (धत्त) स्थापन करो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जैसे परमेश्वर गौ आदि की रक्षा और पदार्थविद्या में सब मनुष्यों को प्रेरणा देता है वैसे ही विद्वान् लोग भी आचरण किया करें ॥ ४७ ॥

रुचन्न इत्यस्य शुनशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वन् आप (नः) हम लोगों के (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) धरो स्थापन करो (नः) हम लोगों के (राजसु) राजपूत क्षत्रियों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (कृधि) करो (विश्येषु) प्रजाजनों में हुए वैश्यों में तथा (शूद्रेषु) शूद्रों में प्रीति से (रुचम्) प्रीति को और (मयि) मुझ में भी प्रीति से (रुचम्) प्रीति को (धेहि) स्थापन करो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मण आदि वर्णों में समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें जो ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्तमान हैं वे सब नीच और तिरस्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४८ ॥

तत्त्वेत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानुस्तदा शास्ते यजमानो हुविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे (उरुशंस) बहुतों की प्रशंसा करने हारे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (यजमानः) यज्ञ करने वाला (अहेडमानः) सत्कार को प्राप्त हुआ पुरुष (हविर्भिः) होम करने के योग्य अच्छे बनाये हुए पदार्थों से जो (आ, शास्ते) आशा करता है (तत्) उस को मैं (यामि) प्राप्त होऊं तथा जिस उत्तम (आयुः) सौ वर्ष की आयुर्दा को (त्वा) तेरा आश्रय कर के मैं प्राप्त होऊं (तत्) उस को तू भी प्राप्त हो तू (इह) इस संसार में उक्त आयुर्दा को (बोधि) जान और तू (नः) हमारी उस आयुर्दा को (मा, प्र, मोषीः) मत चोर ॥ ४६ ॥

भावार्थः—सत्यवादी शास्त्रवेत्ता सज्जन विद्वान् जो चाहे वही चाहना मनुष्यों को भी करनी चाहिये किसी को किन्हीं विद्वानों का अनादर न करना चाहिये तथा स्त्रीपुरुषों को ब्रह्मचर्यत्याग अयोग्य आहार, विहार, व्यभिचार, अत्यन्त विषयासक्ति आदि खोटे कामों से आयुर्दा का नाश कभी न करना चाहिये ॥ ४६ ॥

स्वर्णघर्म इत्यस्य शुनःशेप ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

कैसे जन पदार्थों को शुद्ध करते हैं इस वि० ॥

स्व॒र्ण घ॒र्मः स्वाहा॑ । स्व॒र्णार्कः स्वाहा॑ । स्व॒र्ण शु॒क्रः स्वाहा॑ । स्व॒र्ण ज्योतिः॒ स्वाहा॑ । स्व॒र्ण सूर्य॑ः स्वाहा॑ ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (घर्मः) प्रताप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) तुल्य (अर्कः) अग्नि (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) सदृश (शुक्रः) वायु (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (ज्योतिः) बिजुली की चमक (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (सूर्यः) सूर्य हो वैसे तुम भी आचरण करो ॥५०॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—यज्ञ के करने वाले मनुष्य सुगन्धियुक्त आदि पदार्थों के होम से समस्त वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं जिससे रोग क्षय होकर सब की बहुत आयुर्दा हो ॥ ५० ॥

अग्निमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

कैसे नर सुखी होते हैं इस वि० ॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳसुपर्णं वयसा बृहन्तम्। तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳस्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

पदार्थः—मैं (वयसा) आयु की व्याप्ति से (बृहन्तम्) बड़े हुए (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में प्रसिद्ध होने वाले (सुपर्णम्) अच्छे प्रकार रक्षा करने में परिपूर्ण (अग्निम्) अग्नि को (शवसा) बलदायक (घृतेन) घी आदि सुगन्धित पदार्थों से (युनज्मि) युक्त करता हूं (तेन) उस से (स्वः) सुख को (रुहाणाः) आरूढ़ हुए (वयम्) हम लोग (ब्रध्नस्य) बड़े से बड़े के (विष्टपम्) उस व्यवहार को कि जिसमें सामान्य और विशेष भाव से प्रवेश हुए जीवों की पालना की जाती है और (उत्तमम्) उत्तम (नाकम्) दुःखरहित सुखरूप स्थान है उस को (अधि, गमेम) प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अच्छे बनाए हुए सुगन्धि आदि से युक्त पदार्थों को आग में छोड़ कर पवन आदि की शुद्धि से सब प्राणियों को सुख देते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

इमावित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳरक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रताप वाले विद्वान् (ते) आपके जो (इमौ) ये (पतत्रिणौ) उत्तमश्रेणी को प्राप्त हुए (अजरौ) कभी नष्ट नहीं होते अजर अमर (पक्षौ) कार्य्य कारणरूप समीप के पदार्थ हैं (याभ्याम्) जिन से आप (रक्षांसि) दुष्ट प्राणियों वा दोषों को (अपहंसि) दूर बहा देते हैं (ताभ्याम्) उनसे (उ) ही उस (सुकृताम्) सुकृती सज्जनों के (लोकम्) देखने योग्य आनन्द को हम लोग (पतेम) पहुंचें (यत्र) जिस आनन्द में (प्रथमजाः) सर्वव्याप्त परमेश्वर में प्रसिद्ध वा अति विस्तारयुक्त वेद में प्रसिद्ध अर्थात् उस के जानने से कीर्त्ति पाये हुए (पुराणाः) पहिले पढ़ने के समय नवीन (ऋषयः) वेदार्थ जानने वाले विद्वान् ऋषिजन (जग्मुः) पहुंचे ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन दोषों को खोके धर्म आदि अच्छे गुणों का ग्रहण कर ब्रह्म को प्राप्त हो के आनन्दयुक्त होते हैं वैसे उन को पाकर मनुष्यों को भी सुखी होना चाहिये ॥ ५२ ॥

इन्दुरित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । इन्दुर्देवता । आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः । महान्त्स॒धस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् सभापति जो आप (इन्दुः) चन्द्रमा के समान शीतल स्वभावसहित (दक्षः) बल चतुराई युक्त (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी (ऋतावा) जिन का सत्य का सम्बन्ध विद्यमान है (हिरण्यपक्षः) और सुवर्ण के लाभ वाले (शकुनः) शक्तिमान् (भुरण्युः) सब के पालने हारे (महान्) सब से बड़े (सधस्थे) दूसरे के साथ स्थान में (आ, निषत्तः) निरन्तर स्थित (ध्रुवः) निश्चल हुए (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) मारो उन (ते) आप के लिये हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो ॥५३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—इस संसार में विद्वान् जन स्थिर होकर सब विद्यार्थियों को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिससे वे हिंसा करनेहारे न होवें ॥ ५३ ॥

दिव इत्यस्य गालव ऋषिः । इन्दुर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य दीर्घजीवी होता है इस वि० ॥

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो आप (दिवः) प्रकाश अर्थात् प्रताप के (मूर्द्धा) शिर के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभिः) बन्धन के समान (अपाम्) जलों और (ओषधीनाम्) ओषधियों के (ऊर्क्) रस के समान (विश्वायुः) पूर्ण सौ वर्ष जीने वाले और (सप्रथाः) कीर्तियुक्त (असि) हैं सो आप (पथे) सन्मार्ग के लिये (नमः) अन्न (शर्म) शरण और सुख को प्राप्त होओ ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य न्यायवान् सहनशील ओषध का सेवन करने और आहार विहार से यथायोग्य रहने वाला इन्द्रियों को वश में रखता है वह सौ वर्ष की अवस्थावाला होता है ॥ ५४ ॥

विश्वस्येत्यस्य गालव ऋषिः । इन्द्रुर्देवता । आर्षी जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तो-दधिं भिन्त दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो आप (विश्वस्य) सब संसार के (मूर्द्धन्) शिर पर (श्रितः) विराजमान सूर्य के समान (अधि,तिष्ठसि) अधिकार पाये हुए हैं जिन (ते) आप का (समुद्रे) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक परमेश्वर में (हृदयम्) मन (अप्सु) प्राणों में (आयुः) जीवन है उन (अपः) प्राणों को (दत्त) देते हो (उदधिम्) समुद्र का (भिन्त) भेदन करते हो जिस से सूर्य (दिवः) प्रकाश (अन्तरिक्षात्) आकाश (पर्जन्यात्) मेघ और (पृथिव्याः) भूमि से (वृष्ट्या) वर्षा के योग से सब चराचर प्राणियों की रक्षा करता है (ततः) इससे अर्थात् सूर्य के तुल्य (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा करो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के समान सुख वर्षाने और उत्तम आचरणों के करने हारे हैं वे सब को सुखी कर सकते हैं ॥ ५५ ॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः । तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (भृगुभिः) परिपूर्ण विज्ञान वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने (आशीर्दाः) इच्छासिद्धि को देने वाला (यज्ञः) यज्ञ (इष्टः) किया है (तस्य) उस (इष्टस्य) किये हुए (प्रीतस्य) मनोहर यज्ञ के सकाश से (इह) इस संसार में आप (नः) हम लोगों के (द्रविण) धन को (आ,गमेः) प्राप्त हूजिये ॥५६॥

भावार्थः—जो विद्वानों के तुल्य अच्छा यत्न करते हैं वे इस संसार में बहुत धन को प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥

इष्ट इत्यस्य गालव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

इष्टो अग्निराहुतः पिपर्त्तु न इष्टꣳहविः। स्वगेदन्देवेभ्यो नमः ॥५७॥

पदार्थः—(हविः) संस्कार किये पदार्थों से (आहुतः) अच्छे प्रकार तृप्त वा हवन किया (इष्टः) सत्कार किया वा आहुतियों से बढ़ाया हुआ (अग्निः) यह सभा आदि का अध्यक्ष विद्वान् वा अग्नि (नः) हमारे (इष्टम्) सुख वा सुख के साधनों को (पिपर्त्तु) पूरा करे वा हमारी रक्षा करे (इदम्) यह (स्वगा) अपने को प्राप्त होने वाला (नमः) अन्न वा सत्कार (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये हो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—मनुष्य अग्नि में अच्छे संस्कार से बनाये हुए जिस पदार्थ का होम करते हैं सो इस संसार में बहुत अन्न का उत्पन्न करने वाला होता है इस कारण उससे विद्वान् आदि सत्पुरुषों का सत्कार करना चाहिये ॥ ५७ ॥

यदेत्यस्य विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अथ विद्वानों के विषय में सत्य का निर्णय यह वि० ॥

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा।
तदनुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥५८॥

पदार्थः—हे सत्य असत्य का ज्ञान चाहते हुए मनुष्यो तुम लोग (यत्) जो (आकूतात्) उत्साह (हृदः) आत्मा (वा) वा प्राण (मनसः) मन (वा) वा बुद्धि आदि तथा (चक्षुषः) नेत्रादि इन्द्रियों से उत्पन्न हुए प्रत्यक्षादि प्रमाणों से (वा) वा कान आदि इन्द्रियों से (संभृतम्) अच्छे प्रकार धारण किया अर्थात् निश्चय से ठीक जाना सुना देखा और अनुमान किया है (तत्) वह (समसुस्रोत्) अच्छे प्रकार प्राप्त हो इस कारण (प्रथमजाः) हम लोगों से पहिले उत्पन्न हुए (पुराणाः) हम से प्राचीन (ऋषयः) वेदविद्या के जानने वाले परम योगी ऋषिजन (यत्र) जहां (जग्मुः) पहुंचे उस (सुकृताम्) सुकृति मोक्ष चाहते हुए सज्जनों के (उ) ही (लोकम्) अत्यन्त सुखसमूह वा मोक्षपद को (अनुप्रेत) अनुकूलता से पहुंचो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य सत्य असत्य के निर्णय के जानने की चाहना करें तब जो २ ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव से तथा सृष्टिक्रम प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से अच्छे सज्जनों के आचार से आत्मा और मन के अनुकूल हो वह २ सत्य उससे भिन्न और झूठ है यह निश्चय करें जो ऐसे परीक्षा करके धर्म का आचरण करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ५८ ॥

एतमित्यस्य प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

८५

फिर उसी वि० ॥

एतꣳसधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे ईश्वर के ज्ञान चाहने वाले मनुष्यो और हे (सधस्थ) समान स्थान वाले सज्जन (जातवेदाः) जिस को ज्ञान प्राप्त है वह वेदार्थ को जानने वाला (यज्ञपतिः) यज्ञ की पालना करने वाले के समान वर्त्तमान पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) सुखनिधि परमेश्वर को (आवहात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (एतम्) इस को (अत्र) इस (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं (ते) तेरे लिये जैसे (परि, ददामि) सब प्रकार से देता हूं उपदेश करता हूं (अन्वागन्ता) धर्म के अनुकूल चलने हारा मैं (वः) तुम सभों के लिये जिस परमेश्वर का (स्म) उपदेश करूं (तम्) उस को तुम (जानीत) जानो ॥ ५९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर के पाने को योग्य होते हैं ॥ ५९ ॥

एतमित्यस्य विश्वकर्मर्षिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य । यदागच्छात् पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे (सधस्थाः) एकसाथ स्थान वाले (देवाः) विद्वानो तुम (परमे) परम उत्तम (व्योमन्) आकाश में व्याप्त (एतम्) इस परमात्मा को (जानाथ) जानो (अस्य) और इस के व्यापक (रूपम्) सत्य चेतन्यमात्र आनन्दमय स्वरूप को (विद) जानो (यत्) जिस सच्चिदानन्द लक्षण परमेश्वर को (देवयानैः) धार्मिक विद्वानों के (पथिभिः), मार्गों से पुरुष (आगच्छात्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे (अस्मै) इस परमेश्वर के लिये (इष्टापूर्ते) वेदोक्त यज्ञादि कर्म और उस के साधक स्मार्त्त कर्म को (आविः) प्रकाशित (कृणवाथ) किया करो ॥ ६० ॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों के संग योगाभ्यास और धर्म के आचरण से परमेश्वर को अवश्य जानें ऐसा न करें तो यज्ञ आदि श्रौत स्मार्त्त कर्मों को नहीं सिद्ध करा सकें और न मुक्ति पा सकें ॥ ६० ॥

उद्बुध्यस्वेत्यस्य गालव ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वही विषय कहा जाता है ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳩसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान ऋत्विक् पुरुष (त्वम्) तू (उद्बुध्यस्व) उठ प्रबोध को प्राप्त हो (प्रति, जागृहि) यजमान को अविद्यारूप निद्रा से छुड़ा के विद्या में चेतन कर तू (च) और (अयम्) यह ब्रह्मविद्या का उपदेश करने हारा यजमान दोनों (इष्टापूर्ते) यज्ञसिद्धि कर्म और उस की सामग्री को (संसृजेथाम्) उत्पन्न करो हे (विश्वे) समग्र (देवाः) विद्वानो (च) और (यजमानः) विद्या देने तथा यज्ञ करने हारे यजमान तुम सब (अस्मिन्) इस (सधस्थे) एक साथ के स्थान में (उत्तरस्मिन्) उत्तम आसन (अधि,सीदत) पर बैठो ॥ ६१ ॥

भावार्थः-जो चैतन्य और बुद्धिमान् विद्यार्थी हों वे पढ़ाने वालों को अच्छे प्रकार पढ़ाने चाहियें जो विद्या की इच्छा से पढ़ाने हारों के अनुकूल आचरण करने वाले हों और जो उन के अनुकूल पढ़ाने हारे हों वे परस्पर प्रीति से निरन्तर विद्याओं की बढ़ती करें और जो इन पढ़ने पढ़ानें हारों से पृथक् उत्तम विद्वान् हों वे इन विद्यार्थियों की सदा परीक्षा किया करें जिससे ये अध्यापक और विद्यार्थी लोग विद्याओं की बढ़ती करने में निरन्तर प्रयत्न किया करें जैसे ऋत्विज् यजमान और सभ्य परीक्षक विद्वान् लोग यज्ञ की उन्नति किया करें ॥ ६१ ॥

येनेत्यस्य देवश्रवदेववातावृषी । विश्वकर्माग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पढ़ने वा पढ़ानेवाले पुरुष तू (येन) जिस पढ़ाने से (सहस्रम्) हजारों प्रकार के अतुल बोध को (सर्ववेदसम्) कि जिस में सब वेद जाने जाते हैं उस को (वहसि) प्राप्त होता और (येन) जिस पढ़ने से दूसरों को प्राप्त कराता है (तेन) उस से (इमम्) इस (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ानेरूप यज्ञ को (नः) हम लोगों को (देवेषु) दिव्यगुण वा विद्वानों में (स्वर्गन्तवे) सुख के प्राप्त होने के लिये (नय) पहुंचा ॥ ६२ ॥

भावार्थः—जो धर्म के आचरण और निष्कपटता से विद्या देते और ग्रहण करते हैं वे ही सुख के भागी होते हैं ॥ ६२ ॥

प्रस्तरेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिये यह वि० ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (वेद्या) जिसमें होम किया जाता है उस वेदी तथा (स्रुचा) होमने का साधन (बर्हिषा) उत्तम क्रिया (प्रस्तरेण) आसन (परिधिना) जो सब ओर धारण किया जाय उस यजुर्वेद (च) तथा (ऋचा) स्तुति वा ऋग्वेद आदि से (इमम्) इस पदार्थमय अर्थात् जिस में उत्तम भोजनों के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं उस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (देवेषु) दिव्यपदार्थ वा विद्वानों में (गन्तवे) प्राप्त होने के लिये (स्वः) संसारसम्बन्धी सुख (नः) हम लोगों को (नय) पहुंचाओ ॥ ६३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म से प्राये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं ॥ ६३ ॥

यद्दत्तमित्यस्य विश्वकमर्षिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्तं याश्च दक्षिणाः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ विद्वन् आपने (यत्) जो (दत्तम्) अच्छे धर्मात्माओं को दिया वा (यत्) जो (परादानम्) और से लिया वा (यत्) जो (पूर्त्तम्) पूर्ण सामग्री (याश्च) और जो कर्म के अनुसार (दक्षिणाः) दक्षिणा दी जाती है (तत्) उस सब (स्वः) इन्द्रियों के सुख को (वैश्वकर्मणः) जिस के समग्र कर्म विद्यमान हैं उस (अग्निः) अग्नि के समान गृहस्थ विद्वान् आप (देवेषु) दिव्य धर्मसंबन्धी व्यवहारों में (नः) हम लोगों को (दधत्) स्थापन करें ॥ ६४ ॥

भावार्थः—जो पुरुष और जो स्त्री गृहाश्रम किया चाहें वे विवाह से पूर्व प्रगल्भता अर्थात् अपने में बल पराक्रम परिपूर्णता आदि सामग्री कर ही के युवावस्था में स्वयंवरविधि के अनुकूल विवाह कर धर्म से दान आदान मान सन्मान आदि व्यवहारों को करें ॥ ६४ ॥

यत्र धारा इत्यस्य विश्वकर्मर्षिः । यज्ञो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये यह वि० ॥

यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(यत्र) जिस यज्ञ में (मधोः) मधुरादि गुणयुक्त सुगन्धित द्रव्यों (च) और (घृतस्य) घृत के (याः) जिन (अनपेताः) संयुक्त (धाराः) प्रवाहों को विद्वान् लोग करते हैं (तत्) उन धाराओं से (वैश्वकर्मणः) सब कर्म होने का निमित्त (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे लिये (देवेषु) दिव्यव्यवहारों में (स्वः) सुख को (दधत्) धारण करता है ॥ ६५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदी आदि को बना के सुगन्ध और मिष्टादियुक्त बहुत घृत को अग्नि में हवन करते हैं वे सब रोगों का निवारण करके अतुल सुख को उत्पन्न करते हैं ॥ ६५ ॥

अग्निरस्मीत्यस्य देवश्रवो देववातावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यज्ञ से क्या होता है इस वि० ॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥ ६६ ॥

पदार्थः—मैं (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मि) हूं जैसे अग्नि का (घृतम्) घृतादि (चक्षुः) प्रकाशक है वैसे (मे) मेरे लिये हो, जैसे अग्नि में अच्छे प्रकार संस्कार किया (हविः) हवन करने योग्य द्रव्य होमा हुआ (अमृतम्) सर्व रोगनाशक आनन्दप्रद होता है वैसे (मे) मेरे (आसन्) मुख में प्राप्त हो जैसे (त्रिधातुः) सत्त्व रज और तमोगुण तत्त्व जिस में हैं उस (रजसः) लोक लोकान्तर को (विमानः) विमान यान के समान धारण करता (अजस्रः) निरन्तर गमनशील (घर्मः) प्रकाश के समान यज्ञ कि जिससे सुगन्ध का ग्रहण होता है (अर्कः) जो सत्कार का साधन जिस का (नाम) प्रसिद्ध होना अच्छे प्रकार शोधा हुआ हवन करने योग्य पदार्थ है वैसे मैं (अस्मि) हूं ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अग्नि होम किये हुये पदार्थ को वायु में फैला कर दुर्गन्ध का निवारण सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को निर्मूल नष्ट कर के सब प्राणियों को सुखी करता है वैसे ही सब मनुष्यों को होना योग्य है ॥ ६६ ॥

ऋचो नामेत्यस्य देवश्रवो देवतावृषी। अग्निर्देवता। आर्षी जगती छन्दः।
निषादः स्वरः ॥
अब ऋग्वेद आदि को पढ़के क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ऋचो नामा॑स्मि॒ यजू॑छ॑षि॒ नामा॑स्मि॒ सामा॑नि॒ नामा॑स्मि। ये अ॒ग्नय॒: पाञ्च॑जन्या अ॒स्यां पृ॑थि॒व्यामधि॑। तेषा॑मसि॒ त्वमु॑त्त॒मः प्र नो॑ जी॒वात॑वे सुव ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो मैं (ऋचः) ऋचाओं की (नाम) प्रसिद्धकर्त्ता (अस्मि) हूं (यजूंषि) यजुर्वेद की (नाम) प्रख्यातिकर्त्ता (अस्मि) हूं (सामानि) सामवेद के मन्त्रगान का (नाम) प्रकाशकर्त्ता (अस्मि) हूं उस मुझ से वेदविद्या का ग्रहण कर (ये) जो (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पाञ्चजन्याः) मनुष्यों के हितकारी (अग्नयः) अग्नि (अधि) सर्वोपरि हैं (तेषाम्) उन के मध्य (त्वम्) तू (उत्तमः) अत्युत्तम (असि) है सो तू (नः) हमारे (जीवातवे) जीवन के लिये सत्कर्मों में (प्र, सुव) प्रेरणा कर ॥ ६७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी, जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी, जो सामवेद को पढ़ते वे सामवेदी और जो अथर्ववेद को पढ़ते हैं वे अथर्ववेदी, जो दो वेदों को पढ़ते वे द्विवेदी, जो तीन वेदों को पढ़ते वे त्रिवेदी और जो चार वेदों को पढ़ते हैं वे चतुर्वेदी जो किसी वेद को नहीं पढ़ते वे किसी संज्ञा को प्राप्त नहीं होते, जो वेदवित् होवें अग्निहोत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें जिससे उन की उत्तम कीर्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें ॥ ६७ ॥

वार्त्रहत्यायेत्यस्य इन्द्र ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥
सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो इस वि० ॥

वार्त्र॑हत्याय॒ शव॑से पृतना॒षाह्या॑य च। इन्द्र॒ त्वा व॑र्तयामसि ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनापते जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) विरुद्ध भाव से वर्त्तमान शत्रु के मारने में जो कुशल (शवसे) उत्तम बल (पृतनाषाह्याय) जिस से शत्रुसेना का बल सहन किया जाय उस से (च) और अन्य योग्य साधनों से युक्त (त्वा) तुझ को (आ, वर्त्तयामसि) चारों ओर से यथायोग्य वर्त्ताया करें वैसे तू यथायोग्य वर्त्ताकर ॥ ६८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो विद्वान् जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं के मारने को शूरवीरों की सेना का सत्कार करता है वह सदा विजयी होता है ॥ ६८ ॥

सहदानुमित्यस्येन्द्रविश्वामित्रावृषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत विद्वानों से सत्कार को प्राप्त (इन्द्र) शत्रुओं को नष्ट करनेहारे सेनापति जैसे सूर्य (सहदानुम्) साथ देने हारे (क्षियन्तम्) आकाश में निवास करने (कुणारुम्) शब्द करने वाले (अहस्तम्) हस्त से रहित (पियारुम्) पान करने हारे (अपादम्) पादेन्द्रियरहित (अभि, वर्द्धमानम्) सब ओर से बढ़े हुए (वृत्रम्) मेघ को (सं, पिणक्) अच्छे प्रकार चूर्णीभूत करता है वैसे हे (इन्द्र) सभापति आप शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्थ) मारा करो ॥ ६९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापयुक्त होते हैं वे शत्रुरहित होते हैं ॥ ६९ ॥

विन इत्यस्य शास ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ सेनापति कैसा हो इस वि० ॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो अस्माँ२॥ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम बलयुक्त सेना के पति तू (मृधः) संग्रामों को (वि, जहि) विशेष करके जीत (पृतन्यतः) सेनायुक्त (नः) हमारे शत्रुओं को (नीचा) नीचगति को (यच्छ) प्राप्त कर (यः) जो (अस्मान्) हम को (अभिदासति) नष्ट करने की इच्छा करता है उस को (अधरम्) अधोगतिरूप (तमः) अन्धकार को (गमय) प्राप्त कर ॥ ७० ॥

भावार्थः—सेनापति को योग्य है कि संग्रामों को जीते उस विजयकारक संग्राम से नीच-कर्म करनेहारों को निरोध करे राजा प्रजा में विरोध कराने हारे को अत्यन्त दंड देवे ॥ ७० ॥

मृगो नेत्यस्य जय ऋषिः । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः । सृकꣳ सꣳशायं पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रूँन्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेनाओं के पति तू (कुचरः) कुटिल चाल चलता (गिरिष्ठाः) पर्वतों में रहता (भीमः) भयंकर (मृगः) सिंह के (न) समान (परावतः) दूरदेशस्थ शत्रुओं को (आ, जगन्थ) चारों ओर से घेरे (परस्याः) शत्रु की सेना पर (तिग्मम्) अतितीव्र (पविम्) दुष्टों को दण्ड से पवित्र करने हारे (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (संशाय) सम्यक् तीव्र करके (शत्रून्) शत्रुओं को (वि, ताढि) ताड़ित कर और (मृधः) संग्रामों को (वि, नुदस्व) जीत कर अच्छे कर्मों में प्रेरित कर ॥ ७१ ॥

भावार्थः—जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम कर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं के सेनाङ्गों का छेदन कर संग्रामो को जीतते हैं वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त होते हैं इतर क्षुद्राशय मनुष्य विजय सुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकते ॥ ७१ ॥

वैश्वानरो न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥७२॥

पदार्थः—हे सेना सभा के पति जैसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण नरों में विराजमान (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (परावतः) दूर देशस्थ सब पदार्थों को प्राप्त होता है वैसे आप (ऊतये) रक्षादि के लिये (नः) हमारे समीप (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जैसे बिजुली सब में व्यापक होकर समीपस्थ रहती है वैसे (नः) हमारी (सुष्टुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उप) अच्छे प्रकार सुनिये ॥ ७२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जो पुरुष सूर्य्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्पुरुष प्रशंसित होता है वैसे ही राजपुरुषों को होना चाहिये ॥ ७२ ॥

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पृष्टो दिवि पृष्टोऽअग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वाऽओषधीराविवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥७३॥

पदार्थः—मनुष्यों से कि जो (दिवि) प्रकाशस्वरूप सूर्य (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) अग्नि (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पृष्टः) जानने को इष्ट अग्नि तथा जल और वायु में (पृष्टः) जानने के योग्य पावक (सहसा) बलादि गुणों से युक्त (वैश्वानरः) विश्व में प्रकाशमान (पृष्टः) जानने के योग्य (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (विश्वाः) समग्र (ओषधीः) ओषधियों में (आ, विवेश) प्रविष्ट हो रहा है (सः) सो अग्नि (दिवा) दिन और (सः) वह अग्नि (नक्तम्) रात्रि में जैसे रक्षा करता वैसे सेना के पति आप (नः) हम को (रिषः) हिंसक जन से निरन्तर (पातु) रक्षा करें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी में प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को विद्वानों से निश्चय कर कार्यों में संयुक्त करते हैं वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं ॥ ७३ ॥

अश्यामेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिꣳ रयिवः सुवीरम् ।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) युद्धविद्या के जानने हारे सेनापति हम लोग (तव) तेरी (ऊती) रक्षा आदि की क्रिया से (तम्) उस (कामम्) कामना को (अश्याम) प्राप्त हों हे (रयिवः) प्रशस्त धनयुक्त (सुवीरम्) अच्छे वीर प्राप्त होते हैं जिससे उस (रयिम्) धन को (अश्याम) प्राप्त हों (वाजयन्तः) संग्राम करते कराते हुए हम लोग (वाजम्) संग्राम में विजय को (अभ्यश्याम) अच्छे प्रकार प्राप्त हों हे (अजर) वृद्धापन से रहित सेनापते हम लोग (ते) तेरे प्रताप से (अजरम्) अक्षय (द्युम्नम्) धन और कीर्ति को (अश्याम) प्राप्त हों ॥ ७४ ॥

भावार्थः—प्रजा के मनुष्यों को योग्य है कि राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजन की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामों को प्राप्त हों ॥ ७४ ॥

वयमित्यस्योत्कील ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

व॒यं ते॑ अ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒सद्य॑ । यजि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ अग्ने ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (उत्तानहस्ताः) उत्कृष्टता से अभय देने हारे हस्तयुक्त (वयम्) हम लोग (ते) आपके (नमसा) सत्कार से (उपसद्य) समीप प्राप्त हो के (अद्य) आज ही (कामम्) कामना को (हि) निश्चय (ररिम) देते हैं जैसे (विप्रः) बुद्धिमान् (अस्रेधता) इधर उधर गमन अर्थात् चंचलतारहित स्थिर (मन्मना) ज्ञान और (यजिष्ठेन) अतिशय कर के संयमयुक्त (मनसा) चित्त से (देवान्) विद्वानों और शुभगुणों को प्राप्त होता है और जैसे तू (यक्षि) शुभकर्मों में युक्त हो हम भी वैसे ही संगत होवें ॥ ७५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थ से पूर्ण कामना वाले हों वे विद्वानों के संग से इस विषय को प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥ ७५ ॥

धामच्छदग्निरित्यस्योत्कील ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सब विद्वानों को जो करना चाहिये इस वि० ॥

धा॒म॒च्छद॒ग्निरिन्द्रो॑ ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑ । सचे॑तसो॒ विश्वे॑ दे॒वा य॒ज्ञं प्राव॑न्तु नः शु॒भे ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (देवः) विद्वान् (धामच्छत्) जन्मस्थान नाम का विस्तार करने हारे (अग्निः) पावक (इन्द्रः) विद्युत् के समान अमात्य और राजा (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने हारा (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पठन पाठन से पालन करने हारा (सचेतसः) विज्ञान वाले (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (यज्ञम्) विज्ञान योगरूप क्रिया को (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार कामना करें ॥ ७६ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यादि प्राणियों के कल्याणार्थ निरन्तर सत्य उपदेश करें ॥ ७६ ॥

त्वमित्यस्योशना ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सभापति तथा सेनापति के कर्तव्य को अगले मं० ॥

त्वं य॑विष्ठ दा॒शुषो॒ नॄँः पा॑हि शृणु॒धी गिरः॑ । रक्षा॑ तो॒कमु॒त त्मना॑ ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) पूर्णयुवावस्था को प्राप्त राजन् (त्वम्) तू (दाशुषः) विद्यादाता (नॄन्) मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर और इन की (गिरः) विद्या

शिक्षायुक्त वाणियों को (शृणुधि) सुन जो वीर पुरुष युद्ध में मर जावे उस के (तोकम्) छोटे सन्तानों की (उत) और स्त्री आदि की भी (त्मना) आत्मा से (रक्ष) रक्षा कर ॥ ७७ ॥

भावार्थः—सभा और सेना के अधिष्ठाताओं को दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं एक विद्वानों का पालन और इन के उपदेश का श्रवण दूसरा युद्ध में मरे हुओं के सन्तान स्त्री आदि का पालन, ऐसे आचरण करने वाले पुरुषों का सदैव विजय धन और सुख की वृद्धि होती है ॥ ७७ ॥

इस अठारहवें अध्याय में गणितविद्या राजा प्रजा और पढ़ने पढ़ाने हारे पुरुषों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों की पूर्व अध्याय में कहे हुए अर्थों के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

ओ३म्

अथैकोनविंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

स्वाद्वीमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये क्या करना चाहिये इस वि० ॥

स्वा॒द्वीं त्वा॑ स्वा॒दुना॑ ती॒व्रां ती॒व्रेणा॒मृता॑म॒मृते॑न॒ मधु॑मतीं॒ मधु॑मता सृ॒जामि॒ सꣳसोमे॑न॒ सोमो॑ऽस्य॒श्विभ्यां॑ पच्यस्व॒ सर॑स्वत्यै पच्यस्वेन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ पच्यस्व ॥ १ ॥

पदार्थः—हे वैद्यराज जो तू (सोमः) सोम के सदृश ऐश्वर्य्ययुक्त (असि) है उस (त्वा) तुझ को ओषधियों की विद्या में (सं, सृजामि) अच्छे प्रकार उत्तम शिक्षायुक्त करता हूं जैसे मैं जिस (स्वादुना) मधुर रसादि के साथ (स्वाद्वीम्) सुस्वादयुक्त (तीव्रेण) शीघ्रकारी तीक्ष्ण स्वभावसहित (तीव्राम्) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त को (अमृतेन) सर्वरोगापहारी गुण के साथ (अमृताम्) नाशरहित (मधुमता) स्वादिष्ठ गुणयुक्त (सोमेन) सोमलता आदि से (मधुमतीम्) प्रशस्त मीठे गुणों से युक्त ओषधि को सम्यक् सिद्ध करता हूं वैसे तू इसको (अश्विभ्याम्) विद्यायुक्त स्त्री पुरुषों सहित (पच्यस्व) पका (सरस्वत्यै) उत्तम शिक्षित वाणी से युक्त स्त्री के अर्थ (पच्यस्व) पका (सुत्राम्णे) सब को दुःख से अच्छे प्रकार बचाने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये (पच्यस्व) पका ॥ १ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि वैद्यक शास्त्र की रीति से अनेक मधुरादि प्रशंसित स्वादयुक्त अत्युत्तम ओषधों को सिद्ध कर उन के सेवन से आरोग्य को प्राप्त होकर धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये निरन्तर प्रयत्न किया करें ॥ १ ॥

परीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सोमो देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः । दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो (यः) जो (उत्तमम्) उत्तम श्रेष्ठ (हविः) खाने योग्य अन्न (सोमः) प्रेरणा करने हारा विद्वान् (इतः) प्राप्त होवे (यः) जो (नर्यः) मनुष्यों में उत्तम (दधन्वान्) धारण करता हुआ (अप्सु) जलों के (अन्तः) मध्य में (आसुषाव) सिद्ध करे उस (अद्रिभिः) मेघों में (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधिगण को तुम लोग (परिषिञ्चत) सब ओर से सींच के बढ़ाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम ओषधियों को जल में डाल मथन कर सार रस को निकाल इससे यथायोग्य जाठराग्नि को सेवन करके बल और आरोग्यता को बढ़ाया करें ॥ २ ॥

वायोरित्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (सोमः) सोमलतादि ओषधियों का गुण (प्राङ्) जो प्रकृष्टता से (अतिद्रुतः) शीघ्रगामी (वायोः) वायु से (पवित्रेण) शुद्ध करने वाले कर्म के (पूतः) पवित्र (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव का (युज्यः) योग्य (सखा) मित्र के समान रहता है और जो (सोमः) सिद्ध किया हुआ ओषधियों का रस (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष शरीरों से युक्त हो के (अतिद्रुतः) अत्यन्त वेग वाला (वायोः) वायु से (पवित्रेण) पवित्रता करके (पूतः) शुद्ध और (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त राजा का (युज्यः) अति योग्य (सखा) मित्र के समान है उसका तुम निरन्तर सेवन किया करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो ओषधि शुद्ध स्थल जल और वायु में उत्पन्न होती और पूर्व और पश्चात् होने वाले रोगों का शीघ्र निवारण करती हैं उन का मनुष्य लोग मित्र के समान सदा सेवन करें ॥ ३ ॥

पुनातीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पुनाति ते परिस्रुतथं सोमथं सूर्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (तना) विस्तीर्णप्रकाश से (सूर्यस्य) सूर्य की (दुहिता) कन्या के समान उषा (शश्वता) अनादि रूप (वारेण) ग्रहण करने योग्य स्वरूप से (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब ओर से प्राप्त (सोमम्) ओषधियों के रस को (पुनाति) पवित्र करती है उस में तू ओषधियों के रस का सेवन कर ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौचकर्म करके यथानुकूल ओषधि का सेवन करते हैं वे रोगरहित होकर सुखी होते हैं ॥ ४ ॥

ब्रह्मेत्यस्याभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । निचृज्जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियथं सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (देव) सुखदाता विद्वन् जो (शुक्रेण) शीघ्र शुद्ध करने हारे व्यवहार से (मदाय) आनन्द के लिये (सुरया) उत्पन्न होती हुई क्रिया से (सुतः) उत्पादित (आसुतः) अच्छे प्रकार रोगनिवारण के निमित्त सेवित (सोमः) ओषधियों का रस (तेजः) प्रगल्भता (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रियगण (ब्रह्म) ब्रह्मवित् कुल और (क्षत्रम्) न्यायकारी क्षत्रिय कुल को (पवते) पवित्र करता है उस (रसेन) रस से युक्त (अन्नम्) अन्न को (यजमानाय) धर्मात्मा जन के लिये (धेहि) धारण कर (देवताः) विद्वानों को (पिपृग्धि) प्रसन्न कर ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रस के विना अन्न खावे सदा विद्या शूरवीरता बल और बुद्धि की वृद्धि के लिये महौषधियों के सारों का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

कुविदङ्गेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (ये) जो (बर्हिषः) अन्नादि की प्राप्ति कराने वाले (यवमन्तः) यवादि धान्ययुक्त किसान लोग (नम, उक्तिम्) अन्नादि की वृद्धि के लिये उपदेश (यजन्ति) देते हैं (एषाम्) उन के पदार्थों का (इहेह) इस संसार और इस व्यवहार में तू (भोजनानि) पालन वा भोजन आदि (कृणुहि) क्रिया कर (यथा) जैसे ये किसान लोग (यवम्) यव को (चित्) भी (वियूय) तुषादि से पृथक् कर (अनुपूर्वम्) पूर्वापर की योग्यता से (दान्ति) काटते हैं वैसे तू इन के विभाग से (कुवित्) बड़ा बल प्राप्त कर जिस (ते) तेरी उन्नति का (एषः) यह (योनिः) कारण है उस (त्वा) तुझ को (अश्विभ्याम्) प्रकाश भूमि की विद्या के लिये (त्वा) तुझ को (सरस्वत्यै) कृषि-कर्म प्रचार करने हारी उत्तम वाणी के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) शत्रुओं के नाश करने वाले (सुत्राम्णे) अच्छे रक्षक के लिये (त्वा) तुझ को (तेजसे) प्रगल्भता के लिये (त्वा) तुझ को (वीर्याय) पराक्रम के लिये (त्वा) तुझ को (बलाय) बल के लिये जो प्रसन्न करते हैं वा जिन से तू (उपयामगृहीतः) श्रेष्ठ व्यवहारों से स्वीकार किया हुआ (असि) है उनके साथ तू विहार कर ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने, राज्य में कर देने और परिश्रम करने वाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं वे इस संसार में सौभाग्य वाले होते हैं ॥ ६ ॥

नानेत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराड् जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

राजा और प्रजा कैसे हों इस वि० ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा के जनो (नाना) अनेक प्रकार (सदः, कृतम्) स्थान किया हुआ (देवहितम्) विद्वानों को प्रियाचरण (वाम्) तुम दोनों को प्राप्त होवे जो (हि) निश्चय से (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण को (आविशन्ती) अच्छा प्रवेश करती हुई (शुष्मिणी) बहुत बल करने वाली (सुरा) सोमवल्ली आदि की लता है (त्वम्) वह (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) बुद्धिरूप अवकाश में वर्त्तमान (असि) है इस को तुम दोनों प्राप्त होओ और प्रमादकारी पदार्थों का (मा) मत (संसृक्षाथाम्)

संग किया करो हे विद्वन् पुरुष जो (एषः) यह (सोमः) सोमादि ओषधिगण है उस को तथा (मा) मुझ को तू (मा) मत (हिंसीः) नष्ट कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि, बल, आरोग्य और आयु बढ़ाने हारे ओषधियों के रसों का सदा सेवन करते और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नहीं करते वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ ७ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्याऽऽभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वाऽऽनन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे राजप्रजाजन जो तू (उपयामगृहीतः) प्राप्त धर्मयुक्त यमसम्बन्धी नियमों से संयुक्त (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है उस तेरा जो (आश्विनम्) सूर्य और चन्द्रमा के रूप के समान (तेजः) तीक्ष्ण कोमल तेज (सारस्वतम्) विज्ञानयुक्तवाणी का (वीर्यम्) तेज (ऐन्द्रम्) बिजुली के समान (बलम्) बल हो उस (त्वा) तुझ को (मोदाय) हर्ष के लिये (त्वा) तुझ को (आनन्दाय) परम सुख के अर्थ (त्वा) तुझे (महसे) महापराक्रम के लिये सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी विद्या पराक्रम वाले बिजुली के तुल्य अतिबलवान् होके आप आनन्दित हो और अन्य सब को आनन्द दिया करते हैं वे यहां परमानन्द को भोगते हैं ॥ ८ ॥

तेजोऽसीत्यस्य आभूतिर्ऋषिः । सोमो देवता । शक्वरीच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे सकल शुभगुणाकर राजन् जो तेरे में (तेजः) तेज (असि) है उस (तेजः) तेज को (मयि) मेरे में (धेहि) धारण कीजिये जो तेरे में (वीर्यम्) पराक्रम (असि) है उस (वीर्यम्) पराक्रम को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तेरे में (बलम्) बल (असि) है उस (बलम्) बल को (मयि) मुझ में

भी (धेहि) धरिये जो तेरे में (ओजः) प्राण का सामर्थ्य (असि) है उस (ओजः) सामर्थ्य को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (मन्युः) दुष्टों पर क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ में (धेहि) धरिये जो तुझ में (सहः) सहनशीलता (असि) है उस (सहः) सहनशीलता को (मयि) मुझ में भी (धेहि) धारण कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि जिन शुभ गुण कर्म स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उनको औरों में भी धारण करावें और जैसे दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करें वैसे धार्मिक मनुष्यों में प्रीति भी निरन्तर किया करें ॥ ६ ॥

या व्याघ्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । आर्च्युष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकञ्च रक्षति । श्येनं पतत्रिणꣳसिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ १० ॥

पदार्थः—(या) जो (विषूचिका) विविध अर्थों की सूचना करने हारी राजा की राणी (व्याघ्रम्) जो क्रूर के मारता है उस वाघ और (वृकम्) बकरे आदि को मारने हारा भेड़िया (उभौ) इन दोनों को (पतत्रिणम्) शीघ्र चलने के लिये बहुवेग वाले और (श्येनम्) शीघ्र धावन कर के अन्य पक्षियों को मारने हारे पक्षी और (सिंहम्) हस्ति आदि को (च) भी मारने वाले दुष्ट पशु को मार के प्रजा की (रक्षति) रक्षा करती है (सा) सो राणी (इमम्) इस राजा को (अंहसः) अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥ १० ॥

भावार्थः—जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्रादि को मारने न्याय से प्रजा की रक्षा करने और अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को समर्थ होता है वैसे ही राजा की राणी भी होवे जैसे अच्छे प्रिय आचरण से राणी अपने पति राजा को प्रमाद से पृथक् कर के प्रसन्न करती है वैसे राजा भी अपनी स्त्री को सदा प्रसन्न करे ॥ १० ॥

यदित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरीच्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
सन्तानों को अपने माता पिता के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये यह वि० ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त वि पृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (यत्) जो (प्रमुदितः) अत्यन्त आनन्दयुक्त (पुत्रः) पुत्र दुग्ध को (धयन्) पीता हुआ (मातरम्) माता को (आपिपेष) सब ओर से पीड़ित करता है उस पुत्र से मैं (अनृणः) ऋणरहित (भवामि) होता हूं जिससे मेरे (पितरौ) माता पिता (अहतौ) हननरहित और (मया) मुझ से (भद्रेण) कल्याण के साथ वर्त्तमान हों। हे मनुष्यो तुम (संपृचः) सत्यसम्बन्धी (स्थ) हो (मा) मुझ को कल्याण के साथ (सं, पृङ्क्त) संयुक्त करो और (पाप्मना) पाप से (विपृचः) पृथक् रहने हारे (स्थ) हो इसलिये (मा) मुझे भी इस पापहूं से (विपृङ्क्त) पृथक् कीजिये और (तदेतत्) परजन्म तथा इस जन्म के सुख को प्राप्त कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे माता पिता पुत्र का पालन करते हैं वैसे पुत्र को माता पिता की सेवा करनी चाहिये सब मनुष्यों को इस जगत् में यह ध्यान देना चाहिये कि हम माता पिता का यथावत् सेवन करके पितृऋण से मुक्त होवें जैसे विद्वान् धार्मिक माता पिता अपने सन्तानों को पापरूप आचरण से पृथक् करके धर्माचरण में प्रवृत्त करें वैसे सन्तान भी अपने माता पिता को वर्त्ताव करावें ॥ ११ ॥

देवा यज्ञमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वांसो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्त्तें यह वि० ॥

देवा युज्ञमतन्वत भेषुजं भिषजाश्विना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्रियाणि) उत्तम प्रकार विषयग्राहक नेत्र आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधतः) धारण करते हुए (भिषक्) चिकित्सा आदि वैद्यकशास्त्र के अङ्गों को जानने हारी (सरस्वती) प्रशस्त वैद्यकशास्त्र के ज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री और (भिषजा) आयुर्वेद के जानने हारे (अश्विना) औषधिविद्या में व्याप्त बुद्धि दो उत्तम विद्वान् वैद्य ये तीनों और (देवाः) उत्तम ज्ञानीजन (वाचा) वाणी से (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (भेषजम्) रोगविनाशक औषधरूप (यज्ञम्) सुख देने वाले यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करें वैसे ही तुम लोग भी करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य लोग पथ्य ओषधि और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर के आरोग्य बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते तब तक सब सुखों के प्राप्त होने को समर्थ नहीं होते ॥ १२ ॥

दीक्षायामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि । क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (प्रायणीयस्य) जिस व्यवहार से उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं उस में होने वाले की (दीक्षायै) यज्ञ के नियम रक्षा के लिये (रूपम्) सुन्दर रूप और (तोक्मानि) अपत्य (क्रयस्य) द्रव्यों के बेचने का (रूपम्) रूप (शष्पाणि) छांट फटक शुद्ध कर ग्रहण करने योग्य धान्य (सोमस्य) सोमलतादि के रस के सम्बन्धी (लाजाः) परिपक्व फूले हुए अन्न (सोमांशवः) सोम के विभाग और (मधु) सहत हैं उन को तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से "अतन्वत" इस क्रिया पद की अनुवृत्ति आती है जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

आतिथ्यरूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । अतिथ्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे जन कीर्त्ति वाले होते हैं यह वि० ॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मासरम्) जिससे अतिथि जन महीनों में रमण करते हैं ऐसे (आतिथ्यरूपम्) अतिथियों का होना वा उनका सत्काररूप कर्म वा बड़े वीर (महावीरस्य) पुरुष का (नग्नहुः) जो नग्न अकिञ्चनों का धारण करता है वह (रूपम्) रूप वा (उपसदाम्) गृहस्थादि के समीप में भोजनादि के अर्थ ठहरने हारे अतिथियों का (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रात्रियों में निवास कराना (एतत्) यह रूप वा (सुरा) सोम रस (आसुता) सब ओर से सिद्ध की हुई क्रिया है उन सब का तुम लोग ग्रहण करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक विद्वान् अतिथियों के सत्कार सङ्ग और उपदेशों को और वीरों के मान्य तथा दरिद्रों को वस्त्रादि दान अपने भृत्यों को निवास देना और सोमरस की सिद्धि को सदा करते हैं वे कीर्तिमान् होते हैं ॥ १४ ॥

सोमस्येत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

सोम॑स्य रू॒पं क्री॒तस्य॑ परि॒स्रुत्परि॑षिच्यते । अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भे॑ष॒जमिन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सर॑स्वत्या ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे स्त्री लोगो जैसे (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (क्रीतस्य) ग्रहण किये हुए (सोमस्य) सोमादि ओषधिगण का (परिस्रुत्) सब ओर से प्राप्त होने वाला रस (रूपम्) सुखरूप और (अश्विभ्याम्) वैदिक विद्या में पूर्ण दो विद्वानों के लिये (दुग्धम्) दुहा हुआ (भेषजम्) औषधरूप दूध तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (ऐन्द्रम्) विद्युत् सम्बन्धी विशेष ज्ञान (परिषिच्यते) सब ओर से सिद्ध किया जाता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण, धर्मविद्या और आयुर्वेदादि को पढ़ स्वयंवर विवाह कर औषधियों को और औषधिवत् अन्न और दाल कढ़ी आदि अच्छा पका उत्तम रसों से युक्त कर, पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल आरोग्य की सदा उन्नति किया करें ॥ १५ ॥

आसन्दीत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्य को कैसे कार्य्य साधना चाहिये इस वि० ॥

आ॒स॒न्दी रू॒पꣳ रा॑जास॒न्द्यै वेद्यै॑ कु॒म्भी सु॑रा॒धानी॑ । अन्त॑र उत्तरवे॒द्या रू॒पं का॑रो॒तरो॑ भि॒षक् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को योग्य है कि यज्ञ के लिये (आसन्दी) जो सब ओर से सेवन की जाती है वह (रूपम्) सुन्दर क्रिया (राजासन्द्यै) राजा लोग जिस में बैठते हैं उस (वेद्यै) सुख प्राप्ति कराने वाली वेदि के अर्थ (कुम्भी) धान्यादि पदार्थों का आधार (सुराधानी) जिस में सोम रस धरा जाता है वह गगरी (अन्तरः) जिस से जीवन होता है वह अन्नादि पदार्थ (उत्तरवेद्याः) उत्तर की वेदी के (रूपम्) रूप को (कारोतरः) कर्मकारी और (भिषक्) वैद्य इन सब का संग्रह करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्य जिस २ कार्य के करने की इच्छा करे उस २ के समस्त साधनों का सञ्चय करें ॥ १६ ॥

वेद्यावेदिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

किन जनों के कार्य्य सिद्ध होते हैं यह वि० ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् लोग (वेद्या) यज्ञ की सामग्री से (वेदिः) वेदि और (बर्हिषा) महान् पुरुषार्थ से (बर्हिः) बड़ा (इन्द्रियम्) धन (समाप्यते) अच्छी प्रकार प्राप्त किया जाता है (यूपेन) मिले हुए वा पृथक् २ व्यवहार से (यूपः) मिला हुआ व्यवहार के यत्न का प्रकाश और (अग्निना) बिजुली आदि अग्नि से (प्रणीतः) अच्छे प्रकार संमिलित (अग्निः) अग्नि (आप्यते) प्राप्त कराया जाता है । वैसे ही तुम लोग भी साधनों से साधन मिलाकर सब सुखों को प्राप्त हो ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य उत्तम साधन से साध्य कार्य को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे ही साध्य की सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ १७ ॥

हविर्धानमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे गृहस्थ पुरुषो जैसे विद्वान् (अश्विना) स्त्री और पुरुष (यत्) जो (हविर्धानम्) देने वा लेने योग्य पदार्थों का धारण जिस में किया जाता वह और (यत्) जो (सरस्वती) विदुषी स्त्री (आग्नीध्रम्) ऋत्विज् का शरण करती हुई तथा विद्वानों ने (इन्द्राय) ऐश्वर्य से सुख देने हारे पति के लिये (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य के सम्बन्धी (सदः) जिस में स्थित होते हैं उस सभा और (पत्नीशालम्) पत्नी की शाला घर को (कृतम्) किया है सो यह सब (गार्हपत्यः) गृहस्थ का संयोगी धर्म ही है वैसे उस सब कर्त्तव्य को तुम भी करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् लोग सामग्री का सञ्चय कर के यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष घर के कार्यों को नित्य सिद्ध किया करें ॥ १८ ॥

प्रैषेभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है इस वि० ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् (प्रैषेभिः) भेजने रूप कर्मों से (प्रैषान्) भेजने योग्य भृत्यों को (आप्रीभिः) सब ओर से प्रसन्नता करने हारी क्रियाओं से (आप्रीः) सर्वथा प्रीति उत्पन्न करने हारी परिचारिका स्त्रियों को (प्रयाजेभिः) उत्तम यज्ञ के कर्मों से (अनुयाजान्) अनुकूल यज्ञपदार्थों को और (यज्ञस्य) यज्ञ की (वषट्कारेभिः) क्रियाओं से (आहुतीः) अग्नि में छोड़ने योग्य आहुतियों को प्राप्त होता है वह सुखी रहता है ॥१९॥

भावार्थः—जो सुशिक्षित सेवकों तथा सेविकाओं वाला साधनों और उपसाधनों से युक्त श्रेष्ठ कार्यों को करता है वह सब को सुखी करने में समर्थ होता है ॥ १९ ॥

पशुभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यजमानो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳬष्या । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे सद्गृहस्थ (पशुभिः) गवादि पशुओं से (पशून्) गवादि पशुओं को (पुरोडाशैः) पचन क्रियाओं से पके हुए उत्तम पदार्थों से (हवींषि) हवन करने योग्य उत्तम पदार्थों को (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्दों की विद्या से (सामिधेनीः) जिन से अग्नि प्रदीप्त हों उन सुन्दर समिधाओं को (याज्याभिः) यज्ञ की क्रियाओं से (वषट्कारान्) जो धर्मयुक्त क्रिया को करते हैं उन को (आ, आप्नोति) प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो इस संसार में बहुत पशु वाला होम कर के हुतशेष का भोक्ता वेदवित् और सत्यक्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे सो प्रशंसा को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

धानाः करम्भ इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन पदार्थ होम के योग्य हैं इस वि० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि । सोमस्य रूपᳬ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (हविषः) होम करने योग्य (सोमस्य) यन्त्र द्वारा खींचने योग्य ओषधि रूप रस के (रूपम्) रूप को (धानाः) भुने हुए अन्न (करम्भः) मथन का साधन (सक्तवः) सत्तू (परीवापः) सब ओर से बीज का बोना (पयः) दूध (दधि) दही (आमिक्षा) दही दूध मीठे का मिलाया हुआ (वाजिनम्) प्रशस्त अन्नों की संबन्धी सार वस्तु (मधु) और सहत के गुण को जानो ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो पदार्थ पुष्टिकारक सुगन्धयुक्त मधुर और रोगनाशक गुणयुक्त हैं वे होम करने के योग्य हविः संज्ञक हैं ॥ २१ ॥

धानानामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य नीरोग होते हैं इस वि० ॥

धानानांᳬ रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः । सक्तूनाᳬ रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (धानानाम्) भुंजे हुए जौ आदि अन्नों का (कुवलम्) कोमल बेर सा रूप (परीवापस्य) पिसान आदि का (गोधूमाः) गेहूं (रूपम्) रूप (सक्तूनाम्) सत्तुओं का (बदरम्) बेर फल के समान रूप (करम्भस्य) दही मिले हुए सत्तू का (उपवाकाः) समीप प्राप्त जौ (रूपम्) रूप है ऐसा जाना करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब अन्नों का सुन्दर रूप करके भोजन करते और कराते हैं वे आरोग्य को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

पयसो रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य रूपं वाजिनᳬ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग (यत्) जो (यवाः) यव हैं उनको (पयसः) पानी वा दूध के (रूपम्) रूप (कर्कन्धूनि) मोटे पके हुए बेरी के फलों के समान (दध्नः) दही के (रूपम्) स्वरूप (वाजिनम्) बहुत अन्न के सार के समान (सोमस्य) सोम ओषधि के (रूपम्) स्वरूप और (आमिक्षा) दूध दही के संयोग से बने पदार्थ के समान (सौम्यस्य) सोमादि ओषधियों के सार होने के (रूपम्) स्वरूप को सिद्ध किया करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि जिस २ अन्न का सुन्दर-रूप जिस प्रकार हो उस २ के रूप को उसी प्रकार सदा सिद्ध करें ॥ २३ ॥

आ श्रावयेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे विद्वान् होते हैं इस वि० ॥

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः । यजेति धाय्यारूपं प्रगाथा येयजा महाः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् तू विद्यार्थियों को विद्या (आ, श्रावय) सब प्रकार से सुना जो (स्तोत्रियाः) स्तुति करने योग्य हैं उन को (प्रत्याश्रावः) पीछे सुनाया जाता है और (अनुरूपः) अनुकूल जैसा यज्ञ है वैसे (ये यजामहाः) जो यज्ञ करते हैं (इति) इस प्रकार अर्थात् उन के समान (प्रगाथाः) जो अच्छे प्रकार गान किये जाते हैं उन को (यजेति) संगत कर इस प्रकार (धाय्यारूपम्) धारण करने योग्य रूप को यथावत् जानें ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो परस्पर प्रीति से विद्या के विषयों को सुनते और सुनाते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥ २४ ॥

अर्द्धऽऋचैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । सोमो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अध्यापकों को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

अर्द्धऽऋचैरुक्थानांᳬ रूपं पदैराप्नोति निविदः । प्रणवैः शस्त्राणांᳬ रूपं पयसा सोम आप्यते ॥ २५ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् (अर्द्धऋचैः) ऋचाओं के अर्ध भागों से (उक्थानाम्) कथन करने योग्य वैदिक स्तोत्रों का (रूपम्) स्वरूप (पदैः) सुबन्त तिङन्त पदों और (प्रणवैः) ओंकारों से (शस्त्राणाम्) शस्त्रों (रूपम्) स्वरूप और (निविदः) जो निश्चय से प्राप्त होते हैं उनको (आप्नोति) प्राप्त होता है वा जिस विद्वान् से (पयसा) जल के साथ (सोमः) सोम ओषधि का रस (आप्यते) प्राप्त होता है सो वेद का जानने वाला कहाता है ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् के समीप वस के पद के वेदस्थ पद वाक्य मन्त्र विभागों के शब्द अर्थ और सम्बन्धों का यथावद्विज्ञान करते हैं वे इस संसार में अध्यापक होते हैं ॥२५॥

अश्विभ्यामित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिये यह वि० ॥

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् । वैश्वदेवᳬ सरस्वत्या तृतीयमाप्तᳬ सवनम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा से प्रथम (प्रातःसवनम्) प्रातःकाल यज्ञक्रिया की प्रेरणा (इन्द्रेण) बिजुली से (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्यका-

एक दूसरा (माध्यन्दिनम्) मध्याह्न में होने और (सवनम्) आरोग्यता करने वाला होमादि कर्म और (सरस्वत्या) सत्यवाणी से (वैश्वदेवम्) सम्पूर्ण विद्वानों के सत्काररूप (तृतीयम्) तीसरा सवन अर्थात् सायङ्काल की क्रिया को यथावत् (आप्तम्) प्राप्त किया है वे जगत् के उपकारक हैं ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों कालों में सब मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे जगत् में सत्पुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

वायव्यैरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

वा॒य॒व्यै᳖र्वाय॒व्या᳖न्याप्नोति॒ सते॑न द्रोणकल॒शम् । कु॒म्भीभ्या॑मम्भृ॒णौ सु॒ते स्था॒लीभिः॑ स्था॒लीरा॑प्नोति ॥ २७ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् (वायव्यैः) वायु में होने वाले गुणों वा वायु जिन का देवता दिव्यगुणोत्पादक है उन पदार्थों से (वायव्यानि) वायु में होने वा वायु देवता वाले कर्मों को (सतेन) विभागयुक्त कर्म से (द्रोणकलशम्) द्रोण परिमाण और कलश को (आप्नोति) प्राप्त होता है (कुम्भीभ्याम्) धान्य और जल के पात्रों से (अम्भृणौ) जिन से जल धारण किया जाता है उन (सुते) सिद्ध किये हुए दो प्रकार के रसों को (स्थालीभिः) जिन में पदार्थ धरते वा पकाते हैं उन स्थालियों से (स्थालीः) स्थालियों को (आप्नोति) प्राप्त होता है वही धनाढ्य होता है ॥ २७ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य वायु के कर्मों को न जानकर इस के कारण के विना परिमाणविद्या को इस विद्या के विना पाकविद्या को और इस के विना अन्न के संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

यजुर्भिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

सब लोग वेद का अभ्यास करें इस वि० ॥

यजु॑र्भिराप्यन्ते॒ ग्रहा॒ ग्रहैः॒ स्तोमा॑श्च॒ विष्टु॑तीः । छन्दो॑भिरुक्था॒ शस्त्रा॑णि॒ साम्ना॑वभृ॒थ आ॑प्यते ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को जिन (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त विद्या के अवयवों से (ग्रहाः) जिन से समस्त क्रियाकाण्ड का ग्रहण किया जाता है वे व्यवहार (ग्रहैः) ग्रहों से (स्तोमाः) पदार्थों के गुणों की प्रशंसा (च) और (विष्टुतीः) विविध स्तुतियां (छन्दोभिः) गायत्र्यादि छन्द वा विद्वान् और गुणों की स्तुति करने वालों से (उक्थाशस्त्राणि) कथन करने योग्य वेद के स्तोत्र और शस्त्र (आप्यन्ते) प्राप्त होते हैं तथा

(साम्ना) सामवेद से (अवभृथः) शोधन (आप्यते) प्राप्त होता है उन का उपयोग यथावत् करना चाहिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग वेद विद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता ॥ २८ ॥

इडाभिरित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इडा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः । शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा संस्थाम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् (इडाभिः) पृथिवियों से (भक्षान्) भक्षण करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (सूक्तवाकेन) जो सुन्दरता से कहा जाय उस के कहने से (आशिषः) इच्छा सिद्धियों को (शंयुना) जिस से सुख प्राप्त होता है उस से (पत्नीसंयाजान्) जो पत्नी के साथ मिलते हैं उन को (समिष्टयजुषा) अच्छे इष्ट सिद्ध करने वाले यजुर्वेद के कर्म से (संस्थाम्) अच्छे प्रकार रहने के स्थान को (आप्नोति) प्राप्त होता है वह सुखी क्यों न होवे ॥ २९ ॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग वेद-विज्ञान ही से पृथिवी के राज्यभोग की इच्छा और उस की सिद्धि को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

व्रतेनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये इस वि० ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

पदार्थः—जो बालक कन्या वा पुरुष (व्रतेन) ब्रह्मचर्य्यादि नियमों से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य्यादि सत्कर्मों के आरम्भरूप दीक्षा को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दीक्षया) उस दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा और धन को (आप्नोति) प्राप्त होता है (दक्षिणा) उस प्रतिष्ठा वा धनरूप से (श्रद्धाम्) सत्य के धारण में प्रीतिरूप श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है वा उस (श्रद्धया) श्रद्धा से जिसने (सत्यम्) नित्य पदार्थ वा व्यवहारों में उत्तम परमेश्वर वा धर्म्म की (आप्यते) प्राप्ति की है वह सुखी होता है ॥ ३० ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्या अच्छी शिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त होने और दुष्ट व्यवहारों के छोड़ने को समर्थ नहीं होता ॥ ३० ॥

एतावद्रूपमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य (यत्) जिस (देवैः) विद्वानों और (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चार वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ के (एतावत्) इतने (रूपम्) स्वरूप को (कृतम्) सिद्ध किया वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) समस्त को (सौत्रामणी) जिस में यज्ञोपवीतादि ग्रन्थियुक्त सूत्र धारण किये जाते हैं उस (सुते) सिद्ध किये हुए (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त होता है वह द्विज होने का आरम्भ करता है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि जितना यज्ञ के अनुष्ठान का अनुसन्धान किया जाता है उतना ही अनुष्ठान करके बड़े उत्तम यज्ञ के फल को प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

सुरावन्तमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
फिर भी उसी वि० ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः । दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (महिषाः) महान् पूजनीय (स्वर्काः) उत्तम अन्न आदि पदार्थों से युक्त (यजमानाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोग (नमोभिः) अन्नादि से (सुरावन्तम्) उत्तम सोमरसयुक्त (बर्हिषदम्) जो प्रशस्त आकाश में स्थिर होता उस (सुवीरम्) उत्तम शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त वीरों की प्राप्ति करने हारे (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं वे और (दिवि) शुद्ध व्यवहार में तथा (देवतासु) विद्वानों में (सोमम्) ऐश्वर्य और (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त जन को (दधानाः) धारण करते हुए हम लोग (मदेम) आनन्दित हों ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्नादि ऐश्वर्य का सञ्चय कर उससे विद्वानों को प्रसन्न और सत्य विद्यार्थों में शिक्षा ग्रहण कर के सब के हितैषी हों वे इस संसार में पुत्र स्त्री के आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३२ ॥

यस्ते रस इत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं इस वि० ॥

यत्ते॒ रस॒: सम्भृ॑त॒ ओष॑धीषु॒ सोम॑स्य॒ शुष्म॒: सुर॑या सु॒तस्य॑। तेन॑ जिन्व॒ यज॑मानं॒ मदे॑न॒ सर॑स्वतीम॒श्विना॒विन्द्र॑म॒ग्निम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यः) जो (ते) आप का (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में वर्त्तमान (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (सोमस्य) अंशुमान् आदि चौबीस प्रकार के भेद वाले सोम का (सुरया) उत्तम दानशील स्त्री ने (सम्भृतः) अच्छे प्रकार धारण किया हुआ (शुष्मः) बलकारी (रसः) रस है (तेन) उस (मदेन) आनन्ददायक रस से (यजमानम्) सब को सुख देने वाले यजमान (सरस्वतीम्) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री (अश्विनौ) विद्याव्याप्त अध्यापक और उपदेशक (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त सभा और सेना के पति और (अग्निम्) पावक के समान शत्रु को जलाने हारे योद्धा को (जिन्व) प्रसन्न कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य महौषधियों के सारों को आप सेवन कर अन्यों को सेवन कराके निरन्तर आनन्द बढ़ावें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥ ३३ ॥

यमश्विनेत्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

यम॒श्विना॒ नमु॑चेरासु॒राद॒धि सर॑स्वत्यसुनोदिन्द्रि॒याय॑। इ॒मन्तᳪ शु॒क्रम्मधु॑मन्त॒मिन्दुᳪ सोम॒ᳪ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (इह) इस संसार में (इन्द्रियाय) धन और इन्द्रिय-बल के लिये (यम्) जिस (नमुचेः) जल को जो नहीं छोड़ता (आसुरात्) उस मेघ व्यवहार से (अधि) अधिक (शुक्रम्) शीघ्र बलकारी (मधुमन्तम्) उत्तम मधुरादिगुणयुक्त (इन्दुम्) परमैश्वर्य करने हारे (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम ओषधि को (सरस्वती) विदुषी स्त्री (असुनोत्) सिद्ध करती तथा (अश्विना) सभा और सेना के पति सिद्ध करते हैं (तम्, इमम्) उस इस को मैं (भक्षयामि) भोग करता और भोगवाता हूं ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम अन्न रस के भोजन करने हारे होते हैं वे बलयुक्त इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द को भोगते हैं ॥ ३४ ॥

यदत्रमित्यस्य हैमवर्चिर्ऋषिः। सोमो देवता। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को चाहिये कि सब को आनन्द करें इस वि० ॥

यदत्र॑ रि॒प्तᳪ र॒सिन॑: सु॒तस्य॒ यदिन्द्रो॒ अपि॑ब॒च्छची॑भिः। अ॒हं तद॑स्य॒ मन॑सा शि॒वेन॒ सोम॒ᳪ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जैसे (अहम्) मैं (इह) इस संसार में (अस्य) इस (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (रसिनः) प्रशंसित रसयुक्त पदार्थ का (यत्) जो भाग (अत्र) इस संसार ही में (रिप्तम्) लिप्त प्राप्त है वा (इन्द्रः) सूर्य्य (शचीभिः) आकर्षणादि कर्मों के साथ (यत्) जो (अपिवत्) पीता है (तत्) उस को और (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) ओषधियों के रस को (शिवेन) कल्याणकारक (मनसा) मन से (भक्षयामि) भक्षण करता और पीता हूं वैसे तुम भी भक्षण किया और पिया करो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण कर और वर्षा के सब को सुखी करता है वैसे ही अनुकूल क्रियाओं से रसों का सेवन अच्छे प्रकार करके बल को बढ़ा कीर्त्ति से सब को तुम लोग आनन्दित करो ॥ ३५ ॥

पितृभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । निचृदष्टि त्रिष्टुप् छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः । पितरः शुन्धध्वम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हम पुत्र शिष्यादि मनुष्य (स्वधायिभ्यः) जिन स्वधा अन्न और जल को प्राप्त होने के स्वभाव वाले (पितृभ्यः) ज्ञानियों को (स्वधा) अन्न देते और (नमः) सत्कार करते (स्वधायिभ्यः) बहुत अन्न को चाहने वाले (पितामहेभ्यः) पिता के पिताओं को (स्वधा) सुन्दर अन्न देते तथा (नमः) सत्कार करते और (स्वधायिभ्यः) उत्तम अन्न के चाहने वाले (प्रपितामहेभ्यः) पितामह के पिताओं को (स्वधा) अन्न देते और उन का (नमः) सत्कार करते हैं वे हे (पितरः) पिता आदि ज्ञानियो आप लोग हमसे अच्छे प्रकार बनाये हुए अन्न आदि का (अक्षन्) भोजन कीजिये हे (पितरः) अध्यापक लोगो आप आनन्दित होके हम को (अमीमदन्त) आनन्दयुक्त कीजिये हे (पितरः) उपदेशक लोगो आप तृप्त होकर हम को (अतीतृपन्त) तृप्त कीजिये । हे (पितरः) विद्वानो आप लोग शुद्ध होकर हम को (शुन्धध्वम्) शुद्ध कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—हे पुत्र शिष्य और पुत्रवधू आदि लोगो तुम उत्तम अन्नादि पदार्थों से पिता आदि वृद्धों का निरन्तर सत्कार किया करो तथा पितर लोग तुम को भी आनन्दित करें जैसे माता पितादि बाल्यावस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही तुम लोग वृद्धावस्था में उन की सेवा यथावत् किया करो ॥ ३६ ॥

पुनन्तु मा पितर इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिगष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः । पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(सोम्यासः) ऐश्वर्य से युक्त वा चन्द्रमा के तुल्य शान्त (पितरः) ज्ञान देने से पालक पितर लोग (पवित्रेण) शुद्ध (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें अतिबुद्धिमान् चन्द्रमा के तुल्य आनन्दकर्त्ता (पितामहाः) पिताओं के पिता उस अतिशुद्ध सौ वर्षयुक्त आयु से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें । ऐश्वर्यदाता चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाले (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता लोग शुद्ध सौ वर्षपर्यन्त जीवन से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें । विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त वा शान्तस्वभाव (पितामहाः) पिताओं के पिता (पवित्रेण) अतीव शुद्धानन्दयुक्त (शतायुषा) शत वर्षपर्यन्त आयु से मुझ को (पुनन्तु) पवित्राचरणयुक्त करें । सुन्दर ऐश्वर्य के दाता वा शान्तियुक्त (प्रपितामहाः) पितामहों के पिता पवित्र धर्माचरणयुक्त सौ वर्षपर्यन्त आयु से मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें जिससे मैं (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) जीवन को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊं ॥ ३७ ॥

भावार्थः—पिता, पितामह और प्रपितामहों को योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को ब्रह्मचर्य अच्छी शिक्षा और धर्मोपदेश से संयुक्त करके विद्या और उत्तम शील से युक्त करें सन्तानों को योग्य है कि पितादि की सेवा और अनुकूल आचरण से पिता आदि सभों की नित्य सेवा करें ऐसे परस्पर उपकार से गृहाश्रम में आनन्द के साथ वर्त्तना चाहिये ॥ ३७ ॥

अग्न आयूंषि इत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्नी देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पिता, पितामह और प्रपितामह जो आप (नः) हमारे (आयूंषि) आयुर्दाओं को (पवसे) पवित्र करें सो आप (ऊर्जम्) पराक्रम

(च) और (इदम्) इच्छासिद्धि को (आ, सुव) चारों ओर से सिद्ध करिये और दूर और निकट वसने हारे (दुच्छुनाम्) दुष्ट कुत्तों के समान मनुष्यों के संग को (बाधस्व) छुड़ा दीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—पिता आदि लोग अपने सन्तानों में दीर्घ आयु पराक्रम और शुभ इच्छा का धारण करा के अपने सन्तानों को दुष्टों के संग से रोक और श्रेष्ठों के संग में प्रवृत्त कराके धार्मिक चिरंजीवी करें जिससे वे वृद्धावस्था में भी अविद्याचरण कभी न करें ॥ ३८ ॥

पुनन्तु मा देवजना इत्यस्य वैखानस ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्पन्न हुए जनों में ज्ञानी विद्वन् जैसे (देवजनाः) विद्वान् जन (मनसा) विज्ञान और प्रीति से (मा) मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें और हमारी (धियः) बुद्धियों को (पुनन्तु) पवित्र करें और (विश्वा) सम्पूर्ण (भूतानि) भूतप्राणिमात्र मुझ को (पुनन्तु) पवित्र करें वैसे आप (मा) मुझ को (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य यही है कि जो पुत्र और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य और सुशिक्षा से विद्वान् और विदुषी सुन्दर शीलयुक्त निरन्तर किया करें ॥ ३९ ॥

पवित्रेणेत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२॥ रनु ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (दीद्यत्) प्रकाशमान (देव) विद्या के देने हारे (अग्ने) विद्वन् आप (पवित्रेण) शुद्ध (शुक्रेण) वीर्य पराक्रम से स्वयं पवित्र होकर (मा) मुझ को इससे (अनु, पुनीहि) पीछे पवित्र कर अपनी (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और कर्म को पवित्र करके हमारी (क्रतून्) बुद्धियों वा कर्मों को पुनः २ पवित्र किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थः—पिता अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक और विद्वान् होकर अपने सन्तानों को भी ऐसे ही धार्मिक योग्य विद्वान् करें ॥ ४० ॥

यत्त इत्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे शुद्ध होना चाहिये इस वि० ॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तम॒न्तरा । ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु मा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (ते) तेरे (अर्चिषि) सत्कार करने योग्य शुद्ध तेज स्वरूप में (अन्तरा) सब से भिन्न (यत्) जो (विततम्) विस्तृत सब में व्याप्त (पवित्रम्) शुद्धस्वरूप (ब्रह्म) उत्तम वेदविद्या है (तेन) उस से (मा) मुझ को आप (पुनातु) पवित्र कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो तुम लोग जो देवों का देव पवित्रों का पवित्र व्यापकों में व्याप्त अन्तर्यामी ईश्वर और उसकी विद्या वेद है उस के अनुकूल आचरण से निरन्तर पवित्र हूजिये ॥ ४१ ॥

पवमान इत्यस्य वैखानस ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को पुत्रादि कैसे पवित्र करने चाहिये इस वि० ॥

पव॑मानः॒ सो अ॒द्य नः॑ प॒वित्रे॑ण॒ विच॑र्षणिः । यः पोता॒ स पु॑नातु मा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(यः) जो जगदीश्वर (नः) हमारे मध्य में (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पवमानः) पवित्र (विचर्षणिः) विविध विद्याओं का दाता है (सः) सो (अद्य) आज हमको पवित्र करने वाला और हमारा उपदेशक है (सः) सो (पोता) पवित्र स्वरूप परमात्मा (मा) मुझ को (पुनातु) पवित्र करे ॥ ४२ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानों को धर्मात्मा करें ऐसे किये विना अन्य मनुष्यों को भी वे पवित्र नहीं कर सकते ॥ ४२ ॥

उभाभ्यामित्यस्य वैखानस ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वर ॥

मनुष्यों को अधर्म से कैसे डरना चाहिये इस वि० ॥

उ॒भाभ्यां॑ देव सवितः प॒वित्रे॑ण स॒वेन॑ च । मां पु॑नीहि वि॒श्वतः॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (देव) सुख के देने हारे (सवितः) सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर आप (पवित्रेण) पवित्र वर्त्ताव (च) और (सवेन) सकलैश्वर्य्य तथा (उभाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (विश्वतः) सब ओर से (माम्) मुझ को (पुनीहि) पवित्र कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो ईश्वर सब मनुष्यों को शुद्धि और धर्म को ग्रहण कराता है उसी का आश्रय करके अधर्माचरण से सदा भय किया करो ॥ ४३ ॥

वैश्वदेवीत्यस्य वैखानस ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

राजा को कैसे राज्य बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमादेषु वयथं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वैश्वदेवी) सब विदुषी स्त्रियों में उत्तम (पुनती) सब को पवित्रता करती हुई (देवी) सकल विद्या और धर्म के आचरण से प्रकाशमान विद्याओं की पढ़ाने हारी ब्रह्मचारिणी कन्या हम को (आ, अगात्) प्राप्त होवे (यस्याम्) जिन के होने में (इमा) ये (बह्व्यः) बहुतसी (तन्वः) विस्तृत विद्यायुक्त (वीतपृष्ठाः) विविध प्रश्नों को जानने हारी हों (तया) उस से अच्छी शिक्षा को प्राप्त भार्य्याओं को प्राप्त होकर (वयम्) हम लोग (सधमादेषु) समान स्थानों में (मदन्तः) आनन्दयुक्त हुए (रयीणाम्) धनादि ऐश्वर्य्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जैसे राजा सब कन्याओं को पढ़ाने के लिये पूर्ण विद्या वाली स्त्रियों को नियुक्त करके सब बालिकाओं को पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त करे वैसे ही बालकों को भी किया करे जब ये सब पूर्णयुवावस्था वाले हों तभी स्वयंवर विवाह करावे ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करे ॥ ४४ ॥

ये समाना इत्यस्य वैखानस ऋषिः। पितरो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

कहां मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं इस वि० ॥

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य विज्ञानयुक्त (पितरः) प्रजा के रक्षक लोग (यमराज्ये) यथावन्न्यायकारी सभाधीश राजा के राज्य में हैं (तेषाम्) उन का (लोकः) सभा का दर्शन (स्वधा) अन्न (नमः) सत्कार और (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥ ४५ ॥

८९

भावार्थः—जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से संयुक्त सज्जनों से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही में जिनकी निष्ठा है उन विद्वानों की सभा सत्यन्याय को करती है उसी राज्य में सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख में निवास करते हैं ॥ ४५ ॥

ये समान इत्यस्य वैखानस ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
माता पिता और सन्तान आपस में कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

ये स॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः । तेषा॒ꣳश्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तꣳसमाः॑ ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवते हुओं में (समानाः) समान गुण कर्म स्वभाव वाले (समनसः) समान धर्म में मन रखने हारे (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीते हुए पिता आदि हैं (तेषाम्) उनकी (श्रीः) लक्ष्मी (मयि) मेरे समीप (शतम्) सौ (समाः) वर्ष पर्यन्त (कल्पताम्) समर्थ होवे ॥४६॥

भावार्थः—सन्तान लोग जब तक पिता आदि जीवें तब तक उन की सेवा किया करें पुत्र लोग जब तक पिता आदि की सेवा करें तब तक वे सत्कार के योग्य होवें और जो पिता आदि का धनादि वस्तु हो वह पुत्रों और जो पुत्रों का हो वह पिता आदि का रहे ॥४६॥

द्वे सृती इत्यस्य वैखानस ऋषिः । पितरो देवता । स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
जीवों के दो मार्ग हैं इस वि० ॥

द्वे सृ॒ती अ॑शृणवं पितॄ॒णाम॒हं दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम् । ताभ्या॑मि॒दं विश्व॒मेज॒त्समे॑ति॒ यद॑न्त॒रा पि॒तरं॑ मा॒तरं॑ च ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अहम्) मैं जो (पितॄणाम्) पिता आदि (मर्त्यानाम्) मनुष्यों (च) और (देवानाम्) विद्वानों की (द्वे) दो गतियों (सृती) जिन में आते जाते अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होते हैं उन को (अशृणवम्) सुनता हूं (ताभ्याम्) उन दोनों गतियों से (इदम्) यह (विश्वम्) सब जगत् (एजत्) चलायमान हुआ (समेति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है (उत) और (यत्) जो (पितरम्) पिता और (मातरम्) माता से (अन्तरा) पृथक् होकर दूसरे शरीर से अन्य माता पिता को प्राप्त होता है सो यह तुम लोग जानो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—दोही जीवों की गति हैं एक माता पिता से जन्म को प्राप्त होकर संसार में विषय सुख के भोग रूप और दूसरी विद्वानों के सङ्ग आदि से मुक्तिसुख के भोग रूप है, इन दोनों गतियों के साथ ही सब प्राणी विचरते हैं ॥ ४७ ॥

इदं हविरित्यस्य वैखानस ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

सन्तानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान पति (मे) मेरे लिये (बहुलाम्) बहुत सुख देने वाली (प्रजाम्) प्रजा को (करोतु) करे (मे) मेरा जो (इदम्) यह (प्रजननम्) उत्पत्ति करने का निमित्त (हविः) लेने देने योग्य (दशवीरम्) दश सन्तानों का उत्पन्न करने हारा (सर्वगणम्) सब समुदायों से सहित (आत्मसनि) जिस से आत्मा का सेवन (प्रजासनि) प्रजा का सेवन (पशुसनि) पशु का सेवन (लोकसनि) लोकों का अच्छे प्रकार सेवन और (अभयसनि) अभय का सम्बन्धरूप कर्म होता है उस सन्तान को करे वह (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्तु) होवे हे माता पिता आदि लोगो आप (अस्मासु) हमारे बीच में प्रजा (अन्नम्) अन्न (पयः) दूध और (रेतः) वीर्य को (धत्त) धारण करो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सकल विद्या की शिक्षाओं का संग्रह कर परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह कर के ऋतुगामी होकर विधिपूर्वक प्रजा की उत्पत्ति करते हैं उन की यह प्रजा शुभगुणयुक्त हो कर माता पिता आदि को निरन्तर सुखी करती है ॥ ४८ ॥

उदीरतामित्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

पिता आदि को कैसे हो कर क्या करना चाहिये इस वि० ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः। असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (अवृकाः) चौर्यादि दोषरहित (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (पितरः) पिता आदि बड़े लोग (हवेषु) संग्रामादि व्यवहारों में (असुम्) प्राण को (ईयुः) उत्तमता से प्राप्त हों (ते) वे (नः) हमारी (उत, अवन्तु) उत्कटता से रक्षा करें और जो (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणसम्पन्न (अवरे) प्रथम

अवस्थायुक्त (परासः) उत्कृष्ट अवस्था वाले (मध्यमाः) बीच के विद्वान् (पितरः) पिता आदि लोग हैं वे हम को संग्रामादि कामों में (उदीरताम्) अच्छे प्रकार प्रेरणा करें ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जो जीते हुए प्रथम मध्यम और उत्तम चोरी आदि दोषरहित जानने के योग्य विद्या को जानने हारे तत्त्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् लोग हैं वे विद्या के अभ्यास और उपदेश से सत्य धर्म के ग्रहण कराने हारे कर्म से बाल्यावस्था में विवाह का निषेध करके सब प्रजाओं को पालें ॥ ४९ ॥

अङ्गिरस इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
माता पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (नः) हमारे (अङ्गिरसः) सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानने और (नवग्वाः) नवीन २ ज्ञान के उपदेशों को करने हारे (अथर्वाणः) अहिंसक (भृगवः) परिपक्वविज्ञानयुक्त (सोम्यासः) ऐश्वर्य पाने योग्य (पितरः) पितादि ज्ञानी लोग हैं (तेषाम्) उन (यज्ञियानाम्) उत्तम व्यवहार करने हारों की (सुमतौ) सुन्दर प्रज्ञा और (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) प्राप्त हुए श्रेष्ठ बोध में (वयम्) हम लोग प्रवृत्त (स्याम) होवें वैसे तुम (अपि) भी होओ ॥ ५० ॥

भावार्थः—सन्तानों को योग्य है कि जो २ पिता आदि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म होवे उस २ का सेवन करें और जो २ अधर्मयुक्त हो उस २ को छोड़ देवें ऐसे ही पिता आदि बड़े लोग भी सन्तानों के अच्छे २ गुणों का ग्रहण और बुरों का त्याग करें ॥ ५० ॥

ये न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) शान्त्यादि गुणों के योग से योग्य (वसिष्ठाः) अत्यन्त धनी (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) पालन करने हारे ज्ञानी पिता आदि (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) प्राप्त होते और कराते हैं (तेभिः) उन (उशद्भिः) हमारे पालन की कामना करने हारे पितरों के साथ (हवींषि) लेने योग्य पदार्थों की (उशन्) कामना करने हारा (संरराणः) अच्छे

प्रकार सुखों का दाता (यमः) न्याय और योगयुक्त सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक काम को (अस्तु) मांगे ॥ ५१ ॥

भावार्थः—पिता आदि पुत्रों के साथ और पुत्र पिता आदि के साथ सब सुख दुःखों के भोग करें और सदा सुख की वृद्धि और दुःख का नाश किया करें ॥ ५१ ॥

त्वꣳसोम इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वꣳ सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वꣳर॑जिष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त (प्र, चिकितः) विज्ञान को प्राप्त (त्वम्) तू (मनीषा) उत्तम प्रज्ञा से जिस (रजिष्ठम्) अतिशय कोमल सुखदायक (पन्थाम्) मार्ग को (नेषि) प्राप्त होता है उस को (त्वम्) तू मुझ को भी (अनु) अनुकूलता से प्राप्त कर । हे (इन्दो) आनन्दकारक चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान जो (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति के साथ वर्त्तमान (धीराः) योगीराज (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे लिये (रत्नम्) उत्तम धन का (अभजन्त) सेवन करते हैं वे हमको नित्य सत्कार करने योग्य हों ॥ ५२ ॥

भावार्थः—जो सन्तान माता पिता आदि के सेवक होते हुए विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे अपने जन्म की सफलता करते हैं ॥ ५२ ॥

त्वयेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी पूर्वोक्त वि० ॥

त्वया॒ हि नः॑ पि॒तरः॑ सोम॒ पूर्वे॒ कर्मा॑णि च॒क्रुः प॑वमान॒ धीराः॑ ।
व॒न्वन्नवा॑तः परि॒धीँ॒रपो॑र्णु वी॒रेभि॒रश्वै॑र्म॒घवा॑ भवा नः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (पवमान) पवित्रस्वरूप पवित्र कर्मकर्त्ता और पवित्र करने हारे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त सन्तान (त्वया) तेरे साथ (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्वज (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग जिन धर्मयुक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रुः) करने वाले हुए (हि) उन्हीं का सेवन हम लोग भी करें (अवातः) हिंसाकर्मरहित (वन्वन्) धर्म का सेवन करते हुए सन्तान तू (वीरेभिः) वीर पुरुष और (अश्वैः) घोड़े आदि के साथ (नः) हमारे शत्रुओं की (परिधीन्) परिधि अर्थात्

जिन में चारों ओर से पदार्थों का धारण किया जाय उन मार्गों को (अपोर्णु) आच्छादन कर और हमारे मध्य में (मघवा) धनवान (भव) हूजिये ॥ ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग अपने धार्मिक पिता आदि का अनुकरण कर और शत्रुओं को निवारण कर के अपनी सेना के अङ्गों की प्रशंसा से युक्त हुए सुखी होवें ॥ ५३ ॥

त्वᳪंसोमेत्यस्य शंख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वᳪं सो॑म पि॒तृभि॑ः संविदा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑तन्थ ।
तस्मै॑ त इन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यᳪं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (सोम) चन्द्रमा के सदृश आनन्दकारक उत्तम सन्तान (पितृभिः) ज्ञानयुक्त पितरों के साथ (संविदानः) प्रतिज्ञा करता हुआ जो (त्वम्) तू (अनु, द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के मध्य में धर्मानुकूल आचरण से सुख का (आ, ततन्थ) विस्तार कर । हे (इन्दो) चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन (तस्मै) उस (ते) तेरे लिये (वयम्) हम लोग (हविषा) लेने देने योग्य व्यवहार से सुख का (विधेम) विधान करें जिससे हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) पालन करने हारे स्वामी (स्याम) हों ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे सन्तानो तुम लोग जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करता हुआ सूर्य की परिक्रमा देता है वैसे ही माता पिता आदि के अनुचर होओ जिससे तुम श्रीमन्त हो जाओ ॥ ५४ ॥

बर्हिषद इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बर्हि॑षदः पितर ऊ॒त्य॒र्वागि॒मा वो॑ ह॒व्या च॑कृमा जु॒षध्व॑म् ।
त आग॒ताव॑सा॒ शन्त॑मे॒नाथा॑ न॒ः शंयोर॑र॒पो द॑धात ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (बर्हिषदः) उत्तम सभा में बैठने हारे (पितरः) न्याय से पालना करने वाले पितर लोगो हम (अर्वाक्) पश्चात् जिन (वः) तुम्हारे लिये (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (इमा) इन (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों का (चकृम) संस्कार करते हैं उन का तुम लोग (जुषध्वम्) सेवन किया करो वे आप लोग (शन्तमेन) अत्यन्त कल्याणकारक (अवसा) रक्षणादि कर्म के साथ (आ, गत) आवें (अथ) इस के अनन्तर (नः) हमारे लिये (शम्) सुख तथा (अरपः)

सत्याचरण को (दधात) धारण करें और दुःख को (योः) हम से पृथक् रक्खें ॥५५॥

भावार्थः—जिन पितरों की सेवा सन्तान लोग करें वे अपने सन्तानों में अच्छी शिक्षा से सुशीलता को धारण करें ॥ ५५ ॥

आहमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२॥ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(ये) जो (बर्हिषदः) उत्तम आसन में बैठने योग्य पितर लोग (इह) इस वर्तमान काल में (स्वधया) अन्नादि से तृप्त (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (पित्वः) सुगन्धयुक्त पान का (च) भी (भ, भजन्त) सेवन करते हैं (ते) वे (आगमिष्ठाः) हमारे पास आवें जो इस संसार में (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (नपातम्) नाशरहित (विक्रमणम्) विविध सृष्टिक्रम को (च) भी जानते हैं उस (सुविदत्रान्) उत्तम सुखादि के दान देने हारे (पितॄन्) पितरों को (अहम्) मैं (अवित्सि) जानता हूं ॥५६॥

भावार्थः—जो पितर लोग विद्या की उत्तम शिक्षा करते और कराते हैं वे पुत्र और कन्याओं के सम्यक् सेवन करने योग्य हैं ॥ ५६ ॥

उपहूता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य को प्राप्त होने के योग्य (पितरः) पितर लोग (बर्हिष्येषु) अत्युत्तम (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) रत्नादि से भरे हुए कोशों के निमित्त (उपहूताः) बुलाये हुए हैं (ते) वे (इह) इस हमारे समीप स्थान में (आ, गमन्तु) आवें (ते) वे हमारे वचनों को (श्रुवन्तु) सुनें वे (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिक उपदेश से बोधयुक्त करें (ते) वे हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५७ ॥

भावार्थः—जो विद्यार्थी जन अध्यापकों को बुला उनका सत्कार कर उन से विद्या-ग्रहण की इच्छा करें उन विद्यार्थियों को वे अध्यापक भी प्रीतिपूर्वक पढ़ावें और सर्वथा विषयासक्ति आदि दुष्कर्मों से पृथक् रक्खें ॥ ५७ ॥

आयन्त्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—जो (सोम्यासः) चन्द्रमा के तुल्य शान्त शमदमादि गुणयुक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (नः) हमारे (पितरः) अन्न और विद्या के दान से रक्षक जनक अध्यापक और उपदेशक लोग हैं (ते) वे (देवयानैः) आप्त लोगों के जाने आने योग्य (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (आ, यन्तु) आवें (अस्मिन्) इस (यज्ञे) पढ़ाने उपदेश करने रूप व्यवहार में वर्त्तमान हो के (स्वधया) अन्नादि से (मदन्तः) आनन्द को प्राप्त हुए (अस्मान्) हम को (अधि, ब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें और पढ़ावें और हमारी (अवन्तु) सदा रक्षा करें ॥ ५८ ॥

भावार्थः—विद्यार्थियों को योग्य है कि विद्या और आयु में वृद्ध विद्वानों से विद्या और रक्षा को प्राप्त होकर सत्यवादी निष्कपटी परोपकारी उपदेशकों के मार्ग से जा आके सब की रक्षा करें ॥ ५८ ॥

अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर भी उक्त वि० ॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे (सुप्रणीतयः) अत्युत्तम न्यायधर्म से युक्त (अग्निष्वात्ताः) अग्न्यादि पदार्थविद्या में निपुण (पितरः) पालन करने हारे पितरो ! आप लोग (इह) इस वर्त्तमान समय में विद्याप्रचार के लिये (आ, गच्छत) आओ (सदःसदः) जहां २ बैठें उस घर में (सदत) स्थित होओ (प्रयतानि) प्रति विचार से सिद्ध किये हुए (हवींषि) भोजन के योग्य अन्नादि का (अत्त) भोग करो (अथ) इस के पश्चात् (बर्हिषि) विद्याप्रचाररूप उत्तम व्यवहार में स्थित होकर हमारे लिये

(सर्ववीरम्) सब वीर पुरुषों को प्राप्त कराने हारे (रयिम्) धन को (दधातन) धारण कीजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग उपदेश के लिये घर २ के प्रति गमनागमन करके सत्य-धर्म का प्रचार करते हैं वे गृहस्थों में श्रद्धा से दिये हुए अन्नपानादि का सेवन करें सब को शरीर और आत्मा के बल से योग्य पुरुषार्थी करके श्रीमान् करें ॥ ५९ ॥

ये अग्निष्वात्ता इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराड्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिये इस वि० ॥

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया माद-यन्ते । तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

पदार्थः—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अच्छे प्रकार अग्निविद्या के ग्रहण करने तथा (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि से भिन्न अन्य पदार्थविद्याओं को जानने हारे वा ज्ञानी पितृलोग (दिवः) वा विज्ञानादिप्रकाश के (मध्ये) बीच (स्वधया) अपने पदार्थ के धारण करने रूप क्रिया से (मादयन्ते) आनन्द को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन पितरों के लिये (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राणों को प्राप्त होने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) कामना के अनुकूल (कल्पयाति) समर्थ करे ॥ ६० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को परमेश्वर से ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे परमेश्वर जो अग्नि आदि की पदार्थविद्या को यथार्थ जान के प्रवृत्त करते और जो ज्ञान में तत्पर विद्वान् अपने ही पदार्थ के भोग से सन्तुष्ट रहते हैं उन के शरीरों को दीर्घायु कीजिये ॥ ६० ॥

अग्निष्वात्तानित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

माता पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य आशुः । ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) जो (सोमपीथम्) सोम आदि उत्तम ओषधिरस को (आशुः) पीवें जिन (ऋतुमतः) प्रशंसित वसन्तादि ऋतु में उत्तम कर्म करने वाले (अग्निष्वात्तान्) अच्छे प्रकार अग्निविद्या को जानने हारे पिता आदि ज्ञानियों को हम लोग (नाराशंसे) मनुष्यों के प्रशंसारूप सत्कार के व्यवहार में (हवामहे) बुलाते हैं (ते)

वे (विप्रासः) बुद्धिमान लोग (नः) हमारे लिये (सुहवाः) अच्छे दान देने हारे (भवन्तु) हों और (वयम्) हम उनकी कृपा से (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६१ ॥

भावार्थः—सन्तान लोग पदार्थविद्या और देश काल के जानने और प्रशंसित ओषधियों के रस को सेवन करने हारे विद्या और अवस्था में वृद्ध पिता आदि को सत्कार के अर्थ बुला के उन के सहाय से धनादि ऐश्वर्य्य वाले हों ॥ ६१ ॥

अच्याजान्वित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (पितरः) पितृ लोगो तुम (केन, चित्) किसी हेतु से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषार्थता है उस को (मा, हिंसिष्ट) मत नष्ट करो जिससे हम लोग सुख को (कराम) प्राप्त करें (यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध है उस को हम छुड़ावें तुम लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कार क्रियारूप व्यवहार को (अभि, गृणीत) हमारे सन्मुख प्रशंसित करो हम (जानु) जानु अवयव को (आच्य) नीचे टेक के (दक्षिणतः) तुम्हारे दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ के तुम्हारा निरन्तर सत्कार करें ॥ ६२ ॥

भावार्थः—जिन के पितृ लोग जब समीप आवें अथवा सन्तान लोग इन के समीप जावें तब भूमि में घुटने टिका नमस्कार कर इन को प्रसन्न करें पितर लोग भी आशीर्वाद विद्या और अच्छी शिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा किया करें ॥ ६२ ॥

आसीनास इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय । पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (पितरः) पितृ लोगो तुम (इह) इस गृहाश्रम में (अरुणीनाम्) गौर वर्णयुक्त स्त्रियों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के और (दाशुषे) दाता (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रयिम्) धन को (धत्त) धरो (तस्य) उस (वस्वः) धन के भागों को (प्र, यच्छत) दिया करो जिससे (ते) वे स्त्री आदि सब लोग (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें ॥ ६३ ॥

भावार्थः—वे ही वृद्ध हैं जो अपनी स्त्री ही के साथ प्रसन्न अपनी पत्नियों का सत्कार करनेहारे सन्तानों के लिये यथायोग्य दाय भाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं और वे सन्तानों को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ६३ ॥

यमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

यम॑ग्ने कव्यवाहन॒ त्वं चि॒न्मन्य॑से र॒यिम् । तन्नो॑ गी॒र्भिः श्र॒वाय्यं॑ देव॒त्रा प॑नया॒ युज॑म् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (कव्यवाहन) बुद्धिमानों के समीप उत्तम पदार्थ पहुंचाने हारे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशयुक्त (त्वम्) आप (गीर्भिः) कोमल वाणियों से (श्रवाय्यम्) सुनाने योग्य (देवत्रा) विद्वानों में (युजम्) युक्त करने योग्य (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्य्य को (मन्यसे) जानते हो (तम्) उसको (चित्) भी (नः) हमारे लिये (पनय) दीजिये ॥ ६४ ॥

भावार्थः—पिता आदि ज्ञानी लोगों चाहिये कि पुत्रों और सत्पात्रों से प्रशंसित धन का संचय करें उस धन से उत्तम विद्वानों का ग्रहण कर उनको सत्य धर्म के उपदेशक बना के विद्या और धर्म का प्रचार करें और करावें ॥ ६४ ॥

यो अग्निरित्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यो अ॒ग्निः क॑व्य॒वाह॑नः पि॒तॄन्यक्ष॑दृता॒वृधः॑ । प्रेदु॑ ह॒व्यानि॑ वोचति दे॒वेभ्य॑श्च पि॒तृभ्य॒ऽआ ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(यः) जो (कव्यवाहनः) विद्वानों के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त कराने हारा (अग्निः) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान् (ऋतावृधः) वेदविद्या से वृद्ध (पितॄन्) पितरों का (यक्षत्) सत्कार करे सो (इत्) ही (उ) अच्छे प्रकार (देवेभ्यः) विद्वानों (च) और (पितृभ्यः) पितरों के लिये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य विज्ञानों का (प्रावोचति) अच्छे प्रकार सब ओर से उपदेश करता है ॥ ६५ ॥

भावार्थः—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से पूर्णविद्या वाले होते हैं वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं ॥ ६५ ॥

त्वमग्न इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमग्न ईडि॒तः क॑व्यवाहुनावा॑ड्ढु॒व्यानि॑ सु॒र॒भीणि॑ कृ॒त्वी । प्रादा॑ः पि॒तृभ्य॑ः स्व॒धया॒ ते अ॑क्षन्न॒द्धि त्वं दे॑व प्र॒यता॑ ह॒वींषि॑ ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे (कव्यवाहन) कवियों के प्रगल्भतादि कर्मों को प्राप्त हुए (अग्ने) अग्नि के समान पवित्र विद्वन् ! पुत्र ! (ईडितः) प्रशंसित (त्वम्) तू (सुरभीणि) सुगन्धादियुक्त (हव्यानि) खाने के योग्य पदार्थ (कृत्वी) करके (अवाट्) प्राप्त करता है उनको (पितृभ्यः) पितरों के लिये (प्रादाः) दिया कर (ते) वे पितर लोग (स्वधया) अन्नादि के साथ इन पदार्थों का (अक्षन्) भोग किया करें । हे (देव) विद्वन् दातः ! (त्वम्) तू (प्रयता) प्रयत्न से साधे हुए (हवींषि) खाने के योग्य अन्नों को (अद्धि) भोजन किया कर ॥ ६६ ॥

भावार्थः—पुत्रादि सब लोग अच्छे संस्कार किये हुए सुगन्धादि से युक्त अन्न पानों से पितरों को भोजन कराके आप भी इन अन्नों का भोजन करें यही पुत्रों की योग्यता है । जो अच्छे संस्कार किये हुए अन्न पानों को करते हैं वे रोगरहित होकर शतवर्षपर्य्यन्त जीते हैं ॥ ६६ ॥

ये चेहेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ये चे॒ह पि॒तरो॒ ये च॒ नेह याँश्च॑ वि॒द्म याँ२॥ उ॑ च॒ न प्र॑वि॒द्म । त्वं वे॑त्थ॒ यति॒ ते जा॑तवेदः स्व॒धाभि॑र्य॒ज्ञꣳ सुकृ॑तं जुषस्व ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) नवीन तीक्ष्ण बुद्धि वाले विद्वन् (ये) जो (इह) यहां (च) ही (पितरः) पिता आदि ज्ञानी लोग हैं (च) और (ये) जो (इह) यहां (न) नहीं हैं (च) और हम (यान्) जिन को (विद्म) जानते (च) (यान्) जिन को (न, प्रविद्म) नहीं जानते हैं उन (यति) यावत् पितरों को (त्वम्) आप (वेत्थ) जानते हो (उ) और (ते) वे आप को भी जानते हैं उन की सेवारूप (सुकृतम्) पुण्यजनक (यज्ञम्) सत्काररूप व्यवहार को (स्वधाभिः) अन्नादि से (जुषस्व) सेवन करो ॥ ६७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो प्रत्यक्ष वा जो अप्रत्यक्ष विद्वान् अध्यापक और उपदेशक हैं उन सब की पूजा अन्नादि से सदा सत्कार करो जिससे आप भी सर्वत्र सत्कारयुक्त होओ ॥ ६७ ॥

इदमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवताः । स्वराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इदम्पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः। ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(ये) जो पितर लोग (पूर्वासः) हम से विद्या वा अवस्था में वृद्ध हैं (ये) जो (उपरासः) वानप्रस्थ वा संन्यासाश्रम को प्राप्त हो के गृहाश्रम के विषय भोग से उदासीन चित्त हुए (ईयुः) प्राप्त हों (ये) जो (पार्थिवे) पृथिवी पर विदित (रजसि) लोक में (आ, निषत्ताः) निवास किये हुए (वा) अथवा (ये) जो (नूनम्) निश्चय करके (सुवृजनासु) अच्छी गति वाली (विक्षु) प्रजाओं में प्रयत्न करते हैं उन (पितृभ्यः) पितरों के लिये (अद्य) आज (इदम्) यह (नमः) सुसंस्कृत अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ॥ ६८ ॥

भावार्थः—इस संसार में जो प्रजा के शोधने वाले हम से श्रेष्ठ विरक्ताश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम को प्राप्त पिता आदि हैं वे पुत्रादि मनुष्यों को सदा सेवने योग्य हैं जो ऐसा न करें तो कितनी हानि हो ॥ ६८ ॥

अधेत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर भी उसी वि० ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः। शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरपव्रन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) उत्तम (प्रत्नासः) प्राचीन (उक्थशासः) उत्तम शिक्षा करने हारे (शुचि) पवित्र (ऋतम्) सत्य को (आशुषाणाः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पितरः) पिता आदि ज्ञानी जन (दीधितिम्) विद्या के प्रकाश (अरुणीः) सुशीलता से प्रकाश वाली स्त्रियों और (क्षामा) निवासभूमि को (अयन्) प्राप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर अविद्या का (भिन्दन्तः) विदारण करते हुए (इत्) ही अन्धकाररूप आवरणों को (अप, व्रन्) दूर करते हैं उन का तू वैसे सेवन कर ॥ ६९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पिता आदि विद्या को प्राप्त कराके अविद्या का निवारण करते हैं वे इस संसार में सब लोगों से सत्कार करने योग्य हों ॥ ६९ ॥

उशन्त इत्यस्य शङ्ख ऋषिः। पितरो देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे विद्या की इच्छा करने वाले अथवा पुत्र तेरी (उशन्तः) कामना करते हुए हम लोग (त्वा) तुझ को (नि, धीमहि) विद्या का निधिरूप बनावें (उशन्त) कामना करते हुए हम तुझ को (समिधीमहि) अच्छे प्रकार विद्या से प्रकाशित करें (उशन्) कामना करता हुआ तूं (हविषे) भोजन करने योग्य पदार्थ के (अत्तवे) खाने को (उशतः) कामना करते हुए हम (पितॄन्) पितरों को (आ, वह) अच्छे) प्रकार प्राप्त हो ॥ ७० ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग बुद्धिमान् जितेन्द्रिय कृतज्ञ परिश्रमी विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें वैसे विद्यार्थी लोग भी ऐसे उत्तम अध्यापक विद्वान् लोगों की सेवा करके विद्वान् होवें ॥ ७० ॥

अपामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ सेनापति कैसा हो इस वि० ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्त्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः ॥७१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के समान वर्त्तमान सेनापते जैसे सूर्य (अपाम्) जलों की (फेनेन) वृद्धि से (नमुचेः) अपने स्वरूप को न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) घनाकार बद्दलों को काटता है वैसे ही तू अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तयः) उत्कृष्टता को प्राप्त कर (यत्) जो (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने हारी शत्रुओं की सेना हैं उनको (अजयः) जीत ॥ ७१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य से आच्छादित भी मेघ वारंवार उठता है वैसे ही वे शत्रु भी वारंवार उत्थान करते हैं वे जबतक अपने बल को न्यून और दूसरों का बल अधिक देखते हैं तबतक शान्त रहते हैं ॥ ७१ ॥

सोमो राजेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

सोमो राजामृतꣳ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥७२॥

पदार्थः—जो (ऋतेन) सत्य ब्रह्म के साथ (अन्धसः) सुसंस्कृत अन्नादि के सम्बन्धी (सत्यम्) विद्यमान द्रव्यों में उत्तम पदार्थ (विपानम्) विविध पान करने के साधन (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करानेहारे (इन्द्रियम्) धन (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले जीव के (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (इदम्) जल (पयः) दुग्ध

(अमृतम्) अमृतरूप ब्रह्म या औषधि के सार और (मधु) सहत का संग्रह करे सो (अमृतम्) अमृतरूप आनन्द को प्राप्त हुआ (सुतः) संस्कारयुक्त (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रेरक (राजा) न्यायविद्या से प्रकाशमान राजा (ऋजीपेण) सरल भाव से (मृत्युम्) मृत्यु को (अजहात्) छोड़ देवे ॥ ७२ ॥

भावार्थः—जो उत्तम शील और विद्वानों के सङ्ग से सब शुभलक्षणों को प्राप्त होते हैं वे मृत्यु के दुःख को छोड़ कर मोक्षसुख को ग्रहण करते हैं ॥ ७२ ॥

अद्भ्य इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अङ्गिरसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् । क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु ॥ ७३ ॥

पदार्थः—जो (आङ्गिरसः) अङ्गिरा विद्वान् से किया हुआ विद्वान् (धिया) कर्म के साथ (अद्भ्यः) जलों से (क्षीरम्) दूध को (क्रुङ्) कुञ्चा पक्षी के समान थोड़ा २ करके (व्यपिबत्) पीवे वह (ऋतेन) यथार्थ योगाभ्यास से (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के योग से (इदम्) इस प्रत्यक्ष (सत्यम्) सत्य पदार्थों में अविनाशी (विपानम्) विविध शब्दार्थ सम्बन्धयुक्त (शुक्रम्) पवित्र (इन्द्रियम्) दिव्यवाणी और (पयः) उत्तम रस (अमृतम्) रोगनाशक ओषधि (मधु) मधुरता और (इन्द्रियम्) दिव्य श्रोत्र को प्राप्त होवे ॥ ७३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सत्याचरणादि कर्मों को करके वैद्यक शास्त्र के विधान से युक्ताहारविहार करते हैं वे सत्यबोध और सत्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥ ७३ ॥

सोममित्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतम्मधु ॥ ७४ ॥

पदार्थः—जो (शुचिषत्) पवित्र विद्वानों में बैठता है (हंसः) दुःख का नाशक विवेकी जन (छन्दसा) स्वच्छन्दता के साथ (अद्भ्यः) उत्तम संस्कारयुक्त जलों से (सोमम्) सोमलतादि महौषधियों के सार रस को (व्यपिबत्) अच्छे प्रकार पीता है सो (ऋतेन) सत्यवेदविज्ञान से (अन्धसः) उत्तम संस्कार किये हुए अन्न के दोष-

निवर्तक (शुक्रम्) शुद्धि करने हारे (विपानम्) विविध रक्षा से युक्त (सत्यम्) परमेश्वरादि सत्य पदार्थों में उत्तम (इन्द्रियम्) प्रज्ञान रूप (इन्द्रस्य) योगविद्या से उत्पन्न हुए परम ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष प्रतीति के आश्रय (पयः) उत्तम ज्ञान रस वाले (अमृतम्) मोक्ष (मधु) और मधु विद्यायुक्त (इन्द्रियम्) जीव ने सेवन किये हुए सुख को प्राप्त होने को योग्य होता है वही अखिल आनन्द को पाता है ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जो युक्ताहार विहार करने हारे वेदों को पढ़, योगाभ्यास कर अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा, योग की सिद्धियों को प्राप्त हो और उन के अभिमान को भी छोड़ के कैवल्य को प्राप्त होते हैं वे ब्रह्मानन्द का भोग करते हैं ॥ ७४ ॥

अन्नात्परिस्रुत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगति जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिये इस वि० ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

पदार्थः—जो (ब्रह्मणा) चारों वेद पढ़े हुए विद्वान् के साथ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक सभाध्यक्ष राजा (परिस्रुतः) सब ओर से पके हुए (अन्नात्) जौ आदि अन्न से निकले (पयः) दुग्ध के तुल्य (सोमम्) ऐश्वर्ययुक्त (रसम्) साररूप रस और (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (ऋतेन) विद्या तथा विनय से युक्त न्याय से (अन्धसः) अन्धकाररूप अन्याय के निवारक (शुक्रम्) पराक्रम करने हारे (विपानम्) विविध रक्षण के हेतु (सत्यम्) सत्य व्यवहारों में उत्तम (इन्द्रियम्) इन्द्र नामक परमात्मा ने दिये हुए (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्य के देने हारे राज्य की प्राप्ति कराने हारे (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पीने के योग्य (अमृतम्) अमृत के तुल्य सुखदायक रस और (मधु) मधुरादि गुणयुक्त (इन्द्रियम्) राजादि पुरुषों ने सेवे हुए न्यायाचरण को प्राप्त होवे वह सदा सुखी होवे ॥ ७५ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं वे अन्याय की निवृत्ति करते और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं ॥ ७५ ॥

रेत इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिशक्करीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

शरीर से वीर्य कैसे उत्पन्न होता है इस वि० ॥

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत उल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(इन्द्रियम्) पुरुष का लिंग इन्द्रिय (योनिम्) स्त्री की योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य को (वि, जहाति) विशेष कर छोड़ता है इस से अलग (मूत्रम्) प्रस्राव को छोड़ता है वह वीर्य (जरायुणा) जरायु से (आवृतः) ढका हुआ (गर्भः) गर्भरूप होकर जन्मता है (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ता है वह (ऋतेन) बाहर के वायु से (अन्धसः) आवरण को निवृत्त करने हारे (विपानम्)विविध पान के साधन (शुक्रम्) पवित्र (सत्यम्) वर्त्तमान में उत्तम (इन्द्रस्य) जीव के सम्बन्धी (इन्द्रियम्) अंग को और (इदम्) इस (पयः) रस के तुल्य (अमृतम्) नाशरहित (मधु) प्रत्यक्षादि ज्ञान के साधन (इन्द्रियम्) चक्षुरादि इन्द्रिय को प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

भावार्थः—प्राणी जो कुछ खाता पीता है परंपरा से वीर्य होकर शरीर का कारण होता है पुरुष का लिंग इन्द्रिय स्त्री के संयोग से वीर्य छोड़ता और इस से अलग मूत्र को छोड़ता है इस से जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक् स्थान में वीर्य रहता है वह वीर्य जिस कारण सब अंगों से उत्पन्न होता है इससे सब अंगों की आकृति उस में रहती है इसी से जिस के शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसी की आकृति वाला सन्तान होता है ॥ ७६ ॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब धर्म अधर्म कैसे हैं इस वि० ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳसत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

पदार्थः—जो (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक परमेश्वर (ऋतेन) यथार्थ अपने सत्यविज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और झूठ जो (रूपे) निरूपण किये हुए हैं उनको (दृष्ट्वा) ज्ञानदृष्टि से देखकर (व्याकरोत्) विविध प्रकार से उपदेश करता है जो (अनृते) मिथ्याभाषणादि में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण कराता और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम्) प्रीति को धारण कराता और जो (अन्धसः) अधर्माचरण

के निवर्त्तक (शुक्रम्) शुद्धि करने हारे (विपानम्) विविध रक्षा के साधन (सत्यम्) सत्यस्वरूप (इन्द्रियम्) चित्त को और जो (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त धर्म के प्रापक (इदम्) इस (पयः) अमृतरूप सुखदाता (अमृतम्) मृत्युरोगनिवारक (मधु) मानने योग्य (इन्द्रियम्) विज्ञान के साधन को धारण करे वह (प्रजापतिः) परमेश्वर सब का उपासनीय देव है ॥ ७७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के आज्ञा किये धर्म का आचरण करते और निषेध किये हुए अधर्म का सेवन नहीं करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं जो ईश्वर धर्म अधर्म को न जनावे तो धर्माऽधर्म के स्वरूप का ज्ञान किसी को भी नहीं हो, जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते और प्रतिकूलाचरण को छोड़ देते हैं वे ही धर्माधर्म के बोध से युक्त होते हैं इतर जन नहीं ॥ ७७ ॥

वेदेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेद के जानने वाले कैसे होते हैं इस वि० ॥

वेदे॑न रू॒पे व्य॑पिब॒त्सुता॒सुतौ॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७८ ॥

पदार्थः—जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करनेवाला जीव (ऋतेन) सत्य विज्ञानयुक्त वेदेन ईश्वरप्रकाशित चारों वेदों से (सुतासुतौ) प्रेरित अप्रेरित धर्माधर्म (रूपे) स्वरूपों को (व्यपिबत्) ग्रहण करे सो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जीव के (अन्धसः) अन्नादि के (विपानम्) विविध पान के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम देने हारे (सत्यम्) सत्य धर्माचरण में उत्तम (इन्द्रियम्) धन और (इदम्) जलादि (पयः) दुग्धादि (अमृतम्) मृत्युधर्मरहित विज्ञान (मधु) मधुरादि गुणयुक्त पदार्थ और (इन्द्रियम्) ईश्वर के दिये हुए ज्ञान को प्राप्त होवे ॥ ७८ ॥

भावार्थः—वेदों को जानने वाले ही धर्माधर्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं ॥ ७८ ॥

दृष्ट्वेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

कैसा जन बल बढ़ा सकता है इस वि० ॥

दृ॒ष्ट्वा प॑रि॒स्रुतो॒ रस॑ꣳ शु॒क्रेण॑ शु॒क्रं व्य॑पिबत् पयः॒ सोमं॑ प्र॒जाप॑तिः । ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७९ ॥

पदार्थः—जो (परिस्रुतः) सब ओर से प्राप्त (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी राजा आदि जन (ऋतेन) यथार्थ व्यवहार से (सत्यम्) वर्त्तमान उत्तम ओषधियों में उत्पन्न हुए रस को (दृष्ट्वा) विचारपूर्वक देख के (शुक्रेण) शुद्ध भाव से (शुक्रम्) शीघ्र सुख करने वाले (पयः) पान करने योग्य (सोमम्) महौषधि के रस को तथा (रसम्) विद्या के आनन्दरूप रस को (व्यपिबत्) विशेष करके पीता वा ग्रहण करता है वह (अन्धसः) शुद्ध अन्नादि के प्रापक (विपानम्) विशेष पान से युक्त (शुक्रम्) वीर्य वाले (इन्द्रियम्) विद्वान् ने सेवे हुए इन्द्रिय को और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (इदम्) इस (पयः) अच्छे रस वाले (अमृतम्) मृत्युकारक रोग के निवारक (मधु) मधुरादि गुणयुक्त और (इन्द्रियम्) ईश्वर के बनाये हुए धन को प्राप्त होवे ॥ ७९ ॥

भावार्थः—जो वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्तम ओषधियों के रसों को यथा उचित समय जितना चाहिये उतना पीवे वह रोगों से पृथक् हो के शरीर और आत्मा के बल के बढ़ाने को समर्थ होता है ॥ ७९ ॥

सीसेनेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
विद्वानों के तुल्य अन्यों को भी आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ ऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति ।
अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्वती॒न्द्र॑स्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (कवयः) विद्वान् (मनीषिणः) बुद्धिमान् लोग (सीसेन) सीसे के पात्र के समान कोमल (ऊर्णासूत्रेण) ऊन के सूत्र से कम्बल के तुल्य प्रयोजन-साधक (मनसा) अन्तःकरण से (तन्त्रम्) कुटुम्ब के धारण के समान यन्त्रकलाओं को (वयन्ति) रचते हैं जैसे (सविता) अनेक विद्या व्यवहारों में प्रेरणा करने हारा पुरुष और (सरस्वती) उत्तम विद्यायुक्त स्त्री तथा (अश्विना) विद्याओं में व्याप्त पढ़ाने और उपदेश करने हारे दो पुरुष (यज्ञम्) संगति मेल करने योग्य व्यवहार को करते हैं जैसे (भिषज्यन्) चिकित्सा की इच्छा करता हुआ (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (इन्द्रस्य) परम-ऐश्वर्य के (रूपम्) स्वरूप का विधान करता है वैसे तुम भी किया करो ॥ ८० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग अनेक धातु और साधन विशेषों से शस्त्रादि को बना के अपने कुटुम्ब का पालन करते हैं तथा पदार्थों के मेलरूप यज्ञ को कर पथ्य ओषधिरूप पदार्थों को देके रोगों से छुड़ाते और शिल्प क्रियाओं से प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे अन्य लोग भी किया करें ॥ ८० ॥

यदित्यस्य शङ्ख ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य हैं इस वि० ॥

तदस्य रूपममृतꣳ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सꣳरराणाः । लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माꣳसमभवन्न लाजाः ॥८१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (संरराणाः) अच्छे प्रकार देने (तिस्रः) पढ़ाने पढ़ने और परीक्षा करने हारे तीन (देवताः) विद्वान् लोग (शचीभिः) उत्तम प्रज्ञा और कर्मों के साथ (बहुधा) बहुत प्रकारों से जिस यज्ञ को और (शष्पैः) दीर्घ लोमों के साथ (लोमानि) लोमों को (दधुः) धारण करें (तत्) उस (अस्य) इस यज्ञ के (अमृतम्) नाश-रहित (रूपम्) रूप को तुम लोग जानो यह (तोक्मभिः) बालकों से (न) नहीं अनु-ष्ठान करने योग्य और (अस्य) इस के मध्य (त्वक्) त्वचा (मांसम्) मांस और (लाजाः) भुंजा हुआ लूखा अन्न आदि होम करने योग्य (न, अभवत्) नहीं होता इस को भी तुम जानो ॥ ८१ ॥

भावार्थः—जो बहुत कालपर्यन्त डाढ़ी मूंछ धारणपूर्वक ब्रह्मचारी अथवा पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय भद्रजन हैं वे ही यज धातु के अर्थ को जानने योग्य अर्थात् यज्ञ करने योग्य होते हैं अन्य बालबुद्धि अविद्वान् नहीं होसकते यह हवनरूप यज्ञ ऐसा है कि जिस में मांस क्षार खट्टे से भिन्न पदार्थ वा तीखा आदि गुणरहित सुगन्धि पुष्ट मिष्ट तथा रोगनाशकादि गुणों के सहित हो वही हवन करने योग्य होवे ॥ ८१ ॥

तदित्यस्य शङ्ख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
विदुषी स्त्रियों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

तदश्विना भिषजा रुद्रवर्त्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम् । अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि ॥ ८२ ॥

पदार्थः—जिस को (सरस्वती) श्रेष्ठ ज्ञानयुक्त पत्नी (वयति) उत्पन्न करती है (तत्) उस (पेशः) सुन्दर स्वरूप (अस्थि) हाड़ (मज्जानम्) मज्जा (अन्तरम्) अन्तःस्थ को (मासरैः) परिपक्व ओषधि के सारों से (कारोतरेण) जैसे कूप से सब कामों को वैसे (गवाम्) पृथिव्यादि की (त्वचि) त्वचारूप उपरि भाग में (रुद्रवर्त्तनी) प्राण के मार्ग के समान मार्ग से युक्त (भिषजा) वैद्यकविद्या के जानने हारे (अश्विना) विद्याओं में पूर्ण दो पुरुष (दधतः) धारण करें ॥ ८२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वैद्यक शास्त्र के जानने हारे पतिलोग

शरीर को आरोग्य करके स्त्रियों को निरन्तर सुखी करें वैसे ही विदुषी स्त्री लोग भी अपने पतियों को रोगरहित किया करें ॥ ८२ ॥

सरस्वतीत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः । रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त स्त्री (मनसा) विज्ञान से (वेम) उत्पत्ति के (न) समान जिस (पेशलम्) उत्तम अङ्गों से युक्त (दर्शतम्) देखने योग्य (वपुः) शरीर वा जल को तथा (तसरम्) दुःखों के क्षय करने हारे (रोहितम्) प्रकट हुए (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त (रसम्) आनन्द को देने हारे रस के (न) समान (वसु) द्रव्य को (वयति) बनाती है जिन (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता दोनों से (नग्नहुः) शुद्ध को ग्रहण करने हारा (धीरः) ध्यानवान् तेरा पति है उन दोनों को हम लोग प्राप्त होवें ॥ ८३ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् अध्यापक और उपदेशक सार २ वस्तुओं का ग्रहण करते हैं वैसे ही सब स्त्री पुरुषों को ग्रहण करना योग्य है ॥ ८३ ॥

पयसेत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिये इस वि० ॥

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः । अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥ ८४ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (अमतिम्) नष्टबुद्धि (दुर्मतिम्) वा दुष्टबुद्धि को (अप, बाधमानाः) हटाते हुए जो (ऊवध्यम्) ऐसा है कि जिससे परिमां अङ्गुल आदि काटे जायं अर्थात् बहुत नाश करने का साधन (वातम्) प्राप्त (सब्वम्) सब पदार्थों में सम्बन्ध वाला (पयसा) जल दुग्ध वा (सुरया) सोमलता आदि ओषधि के रस से उत्पन्न हुए (मूत्रात्) मूत्राधार इन्द्रिय से (जनित्रम्) सन्तानोत्पत्ति का निमित्त (अमृतम्) अल्पमृत्यु रोगनिवारक (शुक्रम्) शुद्ध (रेतः) वीर्य है (तत्) उस को (आरात्) समीप से (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं वे ही प्रजा वाले होते हैं ॥ ८४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्यों के दुर्गुण और दुष्ट सङ्गों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर

रहते हुए वीर्य को बढ़ा के सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं ॥ ८४ ॥

इन्द्र इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् होना चाहिये इस वि० ॥

इन्द्रः॑ सुत्रामा॒ हृद॑येन स॒त्यं पु॑रो॒डाशे॑न सवि॒ता ज॑जान । य॒कृत् क्लो॒मानं॒ वरु॑णो भिष॒ज्यन् मत॑स्ने वाय॒व्यै᳖र्न मि॑नाति पि॒त्तम् ॥ ८५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य जैसे (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रोग से शरीर की रक्षा करने हारा (सविता) प्रेरक (इन्द्रः) रोगनाशक (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (भिषज्यन्) चिकित्सा करता हुआ (हृदयेन) अपने आत्मा से (सत्यम्) यथार्थ भाव को (जजान) प्रसिद्ध करता और (पुरोडाशेन) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुये अन्न और (वायव्यैः) पवनों में उत्तम अर्थात् सुखदेने वाले मार्गों से (यकृत्) जो हृदय से दहिनी ओर में स्थित मांस पिंड (क्लोमानम्) कंठनाड़ी (मतस्ने) हृदय के दोनों ओर के हाड़ों और (पित्तम्) पित्त को (न, मिनाति) नष्ट नहीं करता वैसे इन सभों की हिंसा तुम भी मत करो ॥ ८५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-सद्वैद्य लोग स्वयं रोगरहित होकर अन्यों के शरीर में हुए रोग को जानकर रोगरहित निरन्तर किया करें ॥ ८५ ॥

आन्त्राणीत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ॒न्त्राणि॑ स्था॒लीर्मधु॒ पिन्व॑माना गु॒दाः पात्रा॑णि सु॒दुघा॒ न धे॒नुः । श्ये॒नस्य॒ पत्रं॒ न प्ली॒हा शची॑भिरास॒न्दी नाभि॑रु॒दरं॒ न मा॒ता ॥ ८६ ॥

पदार्थः—युक्ति वाले पुरुष को योग्य है कि (शचीभिः) उत्तम बुद्धि और कर्मों से (स्थालीः) हांडे आदि पकाने के वर्त्तनों को अग्नि के ऊपर धर ओषधियों का पाकबना (मधु) उस में सहत डाल भोजन करके (आन्त्राणि) उदरस्थ अन्न पकाने वाली नाड़ियों को (पिन्वमानाः) सेवन करते हुए प्रीति के हेतु (गुदाः) गुदेन्द्रियादि तथा (पात्राणि) जिन से खाया पिया जाय उन पात्रों को (सुदुघा) दुग्धादि से कामना सिद्ध करने वाली (धेनुः) गाय के (न) समान (प्लीहा)

रक्तशोधक लोहू का पिण्ड (श्येनस्य) श्येन पक्षी के तथा (पत्रम्) पांख के (न) समान (माता) और माता के (न) तुल्य (आसन्दी) सब ओर से रस प्राप्त कराने हारी (नाभिः) नाभि नाड़ी (उदरम्) उदर को पुष्ट करती है ॥ ८६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो मनुष्य लोग उत्तम संस्कार किये हुए उत्तम अन्न और रसों से शरीर को रोगरहित कर के प्रयत्न करते हैं वे अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ८६ ॥

कुम्भ इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । पितरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस वि० ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

पदार्थः—जो (कुम्भः) कलश के समान वीर्यादि धातुओं से पूर्ण (वनिष्ठुः) सम विभाग करने हारा (जनिता) सन्तानों का उत्पादक (प्लाशिः) अच्छे प्रकार भोजन का करने वाला (व्यक्तः) विविध युक्तियों से प्रसिद्ध (शचीभिः) उत्तम कर्मों करके (शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त (उत्सः) जिससे गीला किया जाता है उस कूप के समान (दुहे) पूर्ति करनेहारे व्यवहार में स्थित के (न) समान पुरुष और जो (कुम्भी) कुम्भी के सदृश स्त्री है इन दोनों को योग्य है कि (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधाम्) अन्न देवें और (यस्मिन्) जिस (अग्रे) प्रथम (योन्याम्) गर्भाशय के (अन्तः) बीच (गर्भः) गर्भ धारण किया जाता उसकी निरन्तर रक्षा करें ॥ ८७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—स्त्री और पुरुष वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वान् को प्रसन्न कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति करें ॥ ८७ ॥

मुखमित्यस्य शङ्ख ऋषिः । सरस्वती देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मुखं सदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन्त्सरस्वती ।
चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ ८८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (जिह्वा) जिससे रस ग्रहण किया जाता है वह (सरस्वती) वाणी के समान स्त्री (अस्य) इस पति के (सतेन) सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के

साथ (शिरः) शिर करे तथा (आसन्) मुखके समीप (पवित्रम्) पवित्र (मुखम्) मुख करे इसी प्रकार (अश्विना) गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री पुरुष दोनों (इत्) ही वर्त्तें तथा जो (अस्य) इस रोग से (पायुः) रक्षक (भिषक्) वैद्य (वाजः) और बालक के (न) समान (वस्तिः) वास करने का हेतु पुरुष (शेपः) उपस्थेन्द्रिय को (हरसा) बल से (तरस्वी) करने हारा होता है वह (वय्यम्) शान्ति करने के (न) समान (सत्) वर्तमान में सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे उस सब को यथावत् करे ॥८८॥

भावार्थः—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय में परस्पर मिल कर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख आंख के साथ आंख मन के साथ मन शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप वा वक्राङ्ग सन्तान न होवे ॥ ८८ ॥

अश्विभ्यामित्यस्य शङ्ख ऋषिः । अश्विनौ देवते । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन ।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारे (अश्विभ्याम्) बहुभोजी स्त्री पुरुषों के साथ कोई भी विदुषी स्त्री और विद्वान् पुरुष (उतानि) विने हुए विस्तृत वस्त्र (पक्ष्माणि) और ग्रहण किये हुए अन्य रेशम और दुशाले आदि को (वसाते) ओढ़ें पहनें वा जैसे आप भी (छागेन) अजा आदि के दूध के साथ और (शृतेन) पकाये हुए (हविषा) ग्रहण करने योग्य होम के पदार्थ के साथ (तेजः) प्रकाशयुक्त (अमृतम्) अमृतस्वरूप (चक्षुः) नेत्र को (कुवलैः) अच्छे शब्दों और (गोधूमैः) गेहूं के साथ (शुक्रम्) शुद्ध (असितम्) काले (पेशः) रूप के (न) समान स्वीकार करें वैसे अन्य गृहस्थ भी करें ८९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे क्रिया किये हुए स्त्री पुरुष प्रियदर्शन प्रियभोजनशील पूर्णसामग्री को ग्रहण करने हारे होते हैं वैसे अन्य गृहस्थ भी होवें ॥ ८९ ॥

अविरित्यस्य शङ्ख ऋषिः । सरस्वती देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब योगी का कर्त्तव्य अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने हारों के साथ (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञानयुक्त स्त्री (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकैः) सामीप्य भाव किया जाय जिन से उन कर्मों से (अजान) उत्पत्ति करती है वैसे जो (वीर्याय) वीर्य के लिये (नसि) नासिका में (प्राणस्य) प्राण का (अमृतः) नित्य (पन्थाः) मार्ग वा (मेषः) दूसरे से स्पर्द्धा करने वाला और (अविः) जो रक्षा करता है उस के (न) समान (व्यानम्) सब शरीर में व्याप्त वायु (नस्यानि) नासिका के हितकारक धातु और (बर्हिः) बढ़ाने हारा उपयुक्त किया जाता है ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही प्राणायामादि से अच्छे प्रकार सिद्ध किये हुए प्राण योगी की सब दुःखों से रक्षा करते हैं जैसे विदुषी माता विद्या और अच्छी शिक्षा से अपने सन्तानों को बढ़ाती है वैसे अनुष्ठान किये हुए योग के अङ्ग योगियों को बढ़ाते हैं ॥ ६० ॥

इन्द्रस्येत्यस्य शङ्ख ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याꣳ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् । यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—जैसे (ग्रहाभ्याम्) जिन से ग्रहण करते हैं उन व्यवहारों के साथ (ऋषभः) ज्ञानी पुरुष (बलाय) योग सामर्थ्य के लिये (यवाः) यवों के (न) समान (कर्णाभ्याम्) कानों से (श्रोत्रम्) शब्द विषय को (अमृतम्) नीरोग जल को और (कर्कन्धु) जिस से कर्म को धारण करें उस को (सारघम्) एक प्रकार के स्वाद से युक्त (मधु) सहत (बर्हिः) वृद्धिकारक व्यवहार और (भ्रुवि) नेत्र और ललाट के बीच में (केसराणि) विज्ञानों अर्थात् सुषुम्ना में प्राण वायु का निरोध कर ईश्वरविषयक विशेष ज्ञानों को (मुखात्) मुख से उत्पन्न करता है वैसे यह सब (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य का (रूपम्) स्वरूप (जज्ञे) उत्पन्न होता है ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे निवृत्ति मार्ग में परम योगी योगबल से सब सिद्धियों को प्राप्त होता है वैसे ही अन्य गृहस्थ लोगों को भी प्रवृत्ति मार्ग में सब ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिये ॥ ६१ ॥

आत्मन्नित्यस्य शङ्ख ऋषिः । आत्मा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम ।

केशा॒ न शी॒र्षन्यश॑से श्रि॒यै शिखा॑ सिं॒हस्य॒ लोम॒ त्विषि॑रिन्द्रि॒याणि॑ ॥ ९२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस के (आत्मन्) आत्मा में (उपस्थे) समीप स्थिति होने में (वृकस्य) भेड़िया के (लोम) बालों के (न) समान वा (व्याघ्रलोम) वाघ के बालों के (न) समान (मुखे) मुख पर (श्मश्रूणि) दाढ़ी और मूंछ (शीर्षन्) शिर में (केशाः) बालों के (न) समान (शिखा) शिखा (सिंहस्य) सिंह के (लोम) बालों के समान (त्विषिः) कान्ति तथा (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादि शुद्ध इन्द्रियां हैं वह (यशसे) कीर्त्ति और (श्रियै) लक्ष्मी के लिये प्राप्त होने को समर्थ होता है ॥ ९२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं वे यशस्वी कीर्तिमान् होते हैं जो योगाभ्यास करते हैं वे भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रम वाले होते हैं जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं वे क्षत्रिय भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं ॥ ९२ ॥

अङ्गानीत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अङ्गा॒न्यात्म॒न् भि॒षजा॒ तद॒श्विना॒त्मान॒मङ्गैः॒ सम॑धा॒त् सर॑स्वती । इन्द्र॑स्य रू॒पꣳ श॒तमा॑न॒मायु॑श्च॒न्द्रेण॒ ज्योति॑र॒मृतं॒ दधा॑नाः ॥ ९३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (भिषजा) उत्तम वैद्य के समान रोगरहित (अश्विना) सिद्ध साधक दो विद्वान् जैसे (सरस्वती) योगयुक्त स्त्री (आत्मन्) अपने आत्मा में स्थिर हुई (अङ्गानि) योग के अङ्गों का अनुष्ठान करके (आत्मानम्) अपने आत्मा को (समधात्) समाधान करती है वैसे ही (अङ्गैः) योगाङ्गों से जो (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य का (रूपम्) रूप हैं (तत्) उस का समाधान करें जैसे योग को (दधानाः) धारण करते हुए जन (शतमानम्) सौ वर्ष पर्यन्त (आयुः) जीवन को धारण करते हैं वैसे (चन्द्रेण) आनन्द से (अमृतम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा का धारण करो ॥ ९३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे रोगी लोग उत्तम वैद्य को प्राप्त हो औषध और पथ्य का सेवन करके रोगरहित होकर आनन्दित होते हैं वैसे योग को जानने की इच्छा करने वाले योगी लोग इस को प्राप्त हो योग के अङ्गों का अनुष्ठान कर और अविद्यादि क्लेशों से दूर होके निरन्तर सुखी होते हैं ॥ ९३ ॥

सरस्वतीत्यस्य शङ्ख ऋषिः । सरस्वती देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति । अपाᳬं रसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳬं श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे योग करने हारे पुरुष जैसे (सरस्वती) विदुषी (पत्नी) स्त्री अपने पति से (योन्याम्) योनि के (अन्तः) भीतर (सुकृतम्) पुण्यरूप (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्त्ति) धारण करती है वा जैसे (वरुणः) उत्तम (राजा) राजा (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (अपाम्) जलों के (रसेन) रस से (अप्सु) प्राणों में (साम्ना) मेल के (न) समान सुख से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (श्रियै) लक्ष्मी के लिये (जनयन्) प्रकट करता हुआ विराजमान होता है वैसे तू हो ॥ ९४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जैसे राजा साम दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे ही विद्वान् योग के उपदेशक की सेवा कर योग के अङ्गों से योग की सिद्धियों को बढ़ाया करे ॥ ९४ ॥

तेज इत्यस्य शङ्ख ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तेजः पशूनाᳬं हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु । अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ॥ ९५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिन (सुतासुताभ्याम्) सिद्ध असिद्ध किये हुए (भिषजा) वैद्यक विद्या के जानने हारे (अश्विभ्याम्) विद्या में व्याप्त दो विद्वान् (पशूनाम्) गवादि पशुओं के सम्बन्ध से (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होने वाले (पयसा) दूध से (तेजः) प्रकाशरूप (इन्द्रियावत्) कि जिस में उत्तम इन्द्रिय होते हैं उस (सारघम्) उत्तम स्वादयुक्त (मधु) मधुर (हविः) खाने पीने योग्य (दुग्धम्) दुग्धादि पदार्थ और (सरस्वत्या) विदुषी स्त्री से (अमृतः) मृत्युधर्मरहित नित्य रहने वाला (सोमः) ऐश्वर्य (इन्दुः) और उत्तम स्नेहयुक्त पदार्थ उत्पन्न किया जाता है वे योगसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ९५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे गौ के चराने वाले गोपाल लोग गौ आदि पशुओं की रक्षा करके दूध आदि से सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही मन आदि इन्द्रियों को दुष्टाचार से पृथक् संरक्षण करके योगी लोगों को आनन्दित होना चाहिये ॥ ९५ ॥

इस अध्याय में सोम आदि पदार्थों के गुण-वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ १९ ॥

ओ३म्

अथ विंशोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

क्षत्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । द्विपदाविराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के आदि से राजधर्म विषय का वर्णन करते हैं ॥

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हिᳫँसीन्मा मा हिᳫँसीः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे सभापते जिससे तू (क्षत्रस्य) राज्य का (योनिः) निमित्त (असि) है (क्षत्रस्य) राजकुल का (नाभिः) नाभि के समान जीवन हेतु (असि) है इस से (त्वा) तुझको कोई भी (मा, हिंसीत्) मत मारे तू (मा) मुझे (मा, हिंसीः) मत मारे ॥ १ ॥

भावार्थः—स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषों और प्रजापुरुष राजपुरुषों की निरन्तर रक्षा करें जिस से सब के सुख की उन्नति होवे ॥ १ ॥

निषसादेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे सभापति आप (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि और कर्मयुक्त (धृतव्रतः) सत्य का आरम्भ करने हारे (वरुणः) उत्तम स्वभावयुक्त होते हुए (साम्राज्याय) भूगोल में चक्रवर्ती राज्य करने के लिये (पस्त्यासु) न्यायघरों में (आ, नि,

प्रसाद) निरन्तर स्थित हूजिये तथा हम वीरों की (मृत्यां:) मृत्यु से (पाहि) रक्षा कीजिये और (विद्योत्) प्रकाशमान अग्नि अस्त्रादि से (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे सो चक्रवर्ती राज्य और प्रजा की रक्षा करने को समर्थ होता है अन्य नहीं ॥ २ ॥

देवस्येत्यस्याश्विनावृषी । सभेशो देवता । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रंसुवे॒ऽश्विनो॑र्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अश्विनो॒र्भैषंज्येन तेज॑से ब्रह्मवर्चसाया॒भिषिंञ्चामि । सर॑स्वत्यै भैषंज्येन वी॒र्या॒यान्नाद्या॑या॒भिषिंञ्चामि । इन्द्र॑स्ये॒न्द्रियेण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑सु॒ऽभिषिंञ्चामि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष (सवितुः) सकल ऐश्वर्य के अधिष्ठाता (देवस्य) सब ओर से प्रकाशमान जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये हुए जगत् में (अश्विनोः) सम्पूर्ण विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल और पराक्रम से (पूष्णः) पूर्ण बल वाले वायुवत् वर्त्तमान पुरुष के (हस्ताभ्याम्) उत्साह और पुरुषार्थ से (अश्विनोः) वैद्यकविद्या में व्याप्त पढ़ाने और औषधी करने हारे के (भैषज्येन) वैद्यकपन से (तेजसे) प्रगल्भता के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) वेदों के पढ़ने के लिये (त्वा) तुझ को राजप्रजाजन में (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं (भैषज्येन) औषधियों के भाव से (सरस्वत्यै) अच्छे प्रकार शिक्षा की हुई वाणी (वीर्याय) पराक्रम और (अन्नाद्याय) अन्नादि की प्राप्ति के लिये (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले के (इन्द्रियेण) धन से (बलाय) पुष्ट होने (श्रियै) शुभोभायुक्त राजलक्ष्मी और (यशसे) पुण्यकीर्त्ति के लिये (अभि, षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभ गुण कर्म और स्वभाव वाले जन को राज्य-पालन करने के लिये अधिकार देवें ॥ ३ ॥

कोऽसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (सुश्लोक) उत्तम कीर्त्ति और सत्य बोलने हारे (सुमङ्गल) प्रशस्त मंगलकारी कर्मों के अनुष्ठान करने और (सत्यराजन्) सत्यन्याय के प्रकाश करने हारा जो तू (कः) सुखस्वरूप (असि) है और (कतमः) अतिसुखकारी (असि) है इसलिये (कस्मै) सुखस्वरूप परमेश्वर के लिये (त्वा) तुझ को तथा (काय) परमेश्वर जिस का देवता उस मन्त्र के लिये (त्वा) तुझ को मैं अभिषेकयुक्त करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (अभि, षिञ्चामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है। जो सब मनुष्यों के मध्य में अतिप्रशंसनीय होवे वह सभापतित्व के योग्य होता है ॥ ४ ॥

शिरो म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि । राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो राज्य में अभिषेक को प्राप्त हुए (मे) मेरी (श्रीः) शोभा और धन (शिरः) शिरस्थानी (यशः) सत्कीर्त्ति का कथन (मुखम्) मुखस्थानी (त्विषिः) न्याय के प्रकाश के समान (केशाः) केश (च) और (श्मश्रूणि) दाढ़ी मूंछ (राजा) प्रकाशमान (मे) मेरा (प्राणः) प्राण आदि वायु (अमृतम्) मरणधर्मरहित चेतन ब्रह्म (सम्राट्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (चक्षुः) नेत्र (विराट्) विविध शास्त्रश्रवणयुक्त (श्रोत्रम्) कान है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो राज्य में अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवों को शुभ कर्मों में प्रेरित रक्खे ॥ ५ ॥

जिह्वा म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः । मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मे) मेरी (जिह्वा) जीभ (भद्रम्) कल्याणकारक अन्नादि के भोग करनेहारी (वाक्) जिससे बोला जाता है वह वाणी (महः)

बड़ी पूजनीय वेदशास्त्र के बोध से युक्त (मनः) विचार करने वाला अन्तःकरण (मन्युः) दुष्टाचारी मनुष्यों पर क्रोध करने हारा (स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान बुद्धि (भामः) जिस से प्रकाश होता है (मोदाः) हर्ष उत्साह (प्रमोदाः) प्रकृष्ट आनन्द के योग (अङ्गुलीः) अङ्गुलियां (अङ्गानि) और अन्य सब अङ्ग (मित्रम्) सखा और (सहः) सहन (मे) मेरे सहायक हों ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य जितेन्द्रिय और धर्माचरण से पथ्य आहार करने सत्य वाणी बोलने दुष्टों में क्रोध का प्रकाश करने हारे आनन्दित हों अन्यों को आनन्दित करते हुए पुरुषार्थी सब के मित्र और बलिष्ठ होवें वे सर्वदा सुखी रहें ॥ ६ ॥

बाहू इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बाहू मे बल॑मिन्द्रि॒यꣳ हस्तौ॑ मे कर्म॑ वी॒र्य॑म् । आ॒त्मा क्ष॒त्रमुरो॒ मम॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मे) मेरा (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) धन (बाहू) भुजारूप (मे) मेरा (कर्म) कर्म और (वीर्य्यम्) पराक्रम (हस्तौ) हाथरूप (मम) मेरा (आत्मा) स्वस्वरूप और (उरः) हृदय (क्षत्रम्) अति दुःख से रक्षा करने हारा हो ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को योग्य है कि आत्मा, अन्तःकरण और बाहुओं के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें ॥ ७ ॥

पृष्ठीरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पृ॒ष्ठीर्मे॑ रा॒ष्ट्रमु॒दर॒मꣳसौ॑ ग्री॒वाश्च॒ श्रोणी॑ । ऊ॒रू अ॑र॒त्नी जानु॑नी वि॒शो मेऽङ्गा॑नि स॒र्वतः॑ ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मे) मेरा (राष्ट्रम्) राज्य (पृष्ठी) पीठ (उदरम्) पेट (अंसौ) स्कन्ध (ग्रीवाः) कण्ठप्रदेश (श्रोणीः) कटिप्रदेश (ऊरू) जंघा (अरत्नी) भुजाओं का मध्यप्रदेश और (जानुनी) गोड़ के मध्यप्रदेश तथा (सर्वतः) सब ओर से (च) और (अङ्गानि) अङ्ग (मे) मेरे (विशः) प्रजाजन हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो अपने अङ्गों के तुल्य प्रजा को जाने वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ८ ॥

नाभिर्म इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः। जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मे) मेरी (चित्तम्) स्मरण करने हारी वृत्ति (नाभिः) मध्यप्रदेश (विज्ञानम्) विशेष वा अनेक ज्ञान (पायुः) मूलेन्द्रिय (मे) मेरी (अपचितिः) प्रजाजनक (भसत्) योनि (आण्डौ) अण्ड के आकार वृषणावयव (आनन्दनन्दौ) संभोग के सुख से आनन्दकारक (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य (पसः) लिङ्ग और (सौभाग्यम्) पुत्र पौत्रादियुक्त होवे इसी प्रकार मैं (जङ्घाभ्याम्) जंघा और (पद्भ्याम्) पगों के साथ (विशि) प्रजा में (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त (धर्मः) पक्षपातरहित न्याय धर्म के समान (राजा) राजा (अस्मि) हूं जिससे तुम लोग मेरे अनुकूल रहो ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो सब अंगों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे ॥ ९ ॥

प्रतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभेशो देवता । विराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु । प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन्प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

पदार्थः—प्रजाजनों में प्रतिष्ठा को प्राप्त मैं राजा धर्मयुक्त व्यवहार से (क्षत्रे) क्षय से रक्षा करने हारे क्षत्रियकुल में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (राष्ट्रे) राज्य में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता हूं (अश्वेषु) घोड़े आदि वाहनों में (प्रति) प्रतिष्ठा को प्राप्त होता (गोषु) गौ और पृथिवी आदि पदार्थों में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (अङ्गेषु) राज्य के अंगों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (आत्मन्) आत्मा में (प्रति-तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (प्राणेषु) प्राणों में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (पुष्टे) पुष्टि करने में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं (द्यावापृथिव्योः) सूर्य चन्द्र के समान न्याय प्रकाश और पृथिवी में (प्रति) प्रतिष्ठित होता (यज्ञे) विद्वानों की सेवा सङ्ग और विद्यादानादि किया में (प्रति, तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं ॥ १० ॥

भावार्थः—जो राजा प्रिय अप्रिय को छोड़ न्याय धर्म से समस्त प्रजा का शासन सब राजकर्मों में चाररूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले ही जिस के नेत्र के समान वैसा हो मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर करा के निरन्तर विद्या की शिक्षा को बढ़ावे वही सब का पूज्य होवे ॥ १० ॥

त्रया इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । उपदेशका देवताः । पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ उपदेशक वि० ॥

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिꣳशाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो (त्रयाः) तीन प्रकार के (देवाः) दिव्यगुण वाले (बृहस्पतिपुरोहिताः) जिन में कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य्य प्रथम धारण किया हुआ है (सुराधसः) जिन से अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे (एकादश) ग्यारह (त्रयस्त्रिंशाः) तेतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (सवे) परमैश्वर्ययुक्त उत्पन्न किये हुए जगत् में हैं उन (देवैः) पृथिव्यादि तेतीस पदार्थों से सहित (मा) मुझ को (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा और बढ़ाया करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय तथा ग्यारहवां जीवात्मा बारह महीने बीजुली और यज्ञ इन तेतीस दिव्यगुणवाले पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥ ११ ॥

प्रथमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे (प्रथमाः) आदि में कहे पृथिव्यादि आठ वसु (द्वितीयैः) दूसरे ग्यारह प्राण आदि रुद्रों के साथ (द्वितीयाः) दूसरे ग्यारह रुद्र (तृतीयैः) तीसरे बारह महीनों के साथ (तृतीयाः) तीसरे महीने (सत्येन) नाशरहित कारण के सहित (सत्यम्) नित्य कारण (यज्ञेन) शिल्पविद्यारूप क्रिया के साथ (यज्ञः) शिल्पक्रिया आदि कर्म (यजुर्भिः) यजुर्वेदोक्त क्रियाओं से युक्त (यजूंषि) यजुर्वेदोक्त क्रिया (सामभिः) सामवेदोक्त विद्या के साथ (सामानि) सामवेदस्थ क्रिया आदि (ऋग्भिः) ऋग्वेदस्थ विद्या क्रियाओं के साथ (ऋचः) ऋग्वेदस्थ व्यवहार (पुरोनुवाक्याभिः) अथर्ववेदोक्त प्रकरणों के साथ (पुरोनुवाक्याः) अथर्ववेदस्थ व्यवहार (याज्याभिः) यज्ञ के सम्बन्ध में जो क्रिया है उन के साथ (याज्याः) यज्ञक्रिया (वषट्कारैः) उत्तम कर्मों के साथ (वषट्काराः) उत्तम क्रिया (आहुतिभिः) होम क्रियाओं के साथ (आहुतयः) आहुतियां (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ ये सब (भूः) भूमि में (मे) मेरी (कामान्) इच्छाओं को (समर्धयन्तु) अच्छे प्रकार सिद्ध करें वैसे मुझ को आप लोग बोध कराओ ॥ १२ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक प्रथम वेदों को पढ़ा पृथिव्यादि पदार्थ-विद्याओं को जना कार्य कारण के सम्बन्ध से उन के गुणों को साक्षात् करा के हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल अच्छे प्रकार किया करें ॥ १२ ॥

लोमानीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापकोपदेशकौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ्म॒ आन॑ति॒राग॑तिः । मा॒ᳫं᳖सं म॒ उप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ आन॑तिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो जैसे (मम) मेरे (लोमानि) रोम वा (प्रयतिः) जिससे प्रयत्न करते हैं वा (मे) मेरी (त्वक्) त्वचा (आनतिः) वा जिस से सब ओर से नम्र होते हैं वा (मांसम्) मांस वा (आगतिः) आगमन तथा (मे) मेरा (वसु) द्रव्य (उपनतिः) वा जिससे नम्र होते हैं (मे) मेरे (अस्थि) हाड़ और (मज्जा) हाड़ों के बीच का पदार्थ (आनतिः) वा अच्छे प्रकार नमन होता हो वैसे तुम लोग प्रयत्न किया करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक लोगों को इस प्रकार प्रयत्न करना चाहिये कि जिस से सुशिक्षायुक्त सब पुरुष सब कन्या सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाले दृढ़ बलयुक्त धार्मिक विद्याओं से युक्त होवें ॥ १३ ॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा व॒यम् । अ॒ग्निर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यत्) जो (वयम्) हम (देवाः) अध्यापक और उपदेशक विद्वान् तथा अन्य (देवासः) विद्वान् लोग परस्पर (देवहेडनम्) विद्वानों का अनादर (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समस्त (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (अग्निः) पावक के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा करावें जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट हुआ सब को अपने स्वरूप में स्थिर करता है वैसे विद्वान् को चाहिये कि सत्य के उपदेश से असत्याचरण से पृथक् और सत्याचार में प्रवृत्त कर के सब को धार्मिक करे ॥ १४ ॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वायुर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदि॒ दिवा॒ यदि॒ नक्त॒मेना॑ꣳसि चकृ॒मा व॒यम् । वा॒युर्मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यदि) जो (दिवा) दिवस में (यदि) जो (नक्तम्) रात्रि में (एनांसि) अज्ञात अपराधों को (वयम्) हम लोग (चकृम) करें (तस्मात्) उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्टव्यसन से (मा) मुझे (वायुः) वायु के समान वर्त्तमान आप (मुञ्चतु) पृथक् करे ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो दिवस और रात्रि में अज्ञान से पाप करें उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक् किया करें ॥ १५ ॥

यदीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदि॒ जाग्र॒द्यदि॒ स्वप्न॒ एना॑ꣳसि चकृ॒मा व॒यम् । सूर्यो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सो॒ विश्वा॑न्मुञ्च॒त्वꣳह॑सः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यदि) जो (जाग्रत्) जाग्रत् अवस्था और (यदि) जो (स्वप्ने) स्वप्नावस्था में (एनांसि) अपराधों को (वयम्) हम (चकृम) करें (तस्मात्)

उस (विश्वात्) समग्र (एनसः) पाप और (अंहसः) प्रमाद से (सूर्यः) सूर्य के समान वर्त्तमान आप (मा) मुझ को (मुञ्चतु) पृथक् करें ॥ १६ ॥

भावार्थः—जिस किसी दुष्ट चेष्टा को मनुष्य लोग करें विद्वान् लोग उस चेष्टा से उन सब को शीघ्र निवृत्त करें ॥ १६ ॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (वयम्) हम लोग (यत्) जो (ग्रामे) गांव में (यत्) जो (अरण्ये) जङ्गल में (यत्) जो (सभायाम्) सभा में (यत्) जो (इन्द्रिये) मन में (यत्) जो (शूद्रे) शूद्र में (यत्) जो (अर्ये) स्वामी वा वैश्य में (यत्) जो (एकस्य) एक के (अधि) ऊपर (धर्मणि) धर्म में तथा (यत्) जो और (एनः) अपराध (चकृम) करते हैं वा करने वाले हैं (तस्य) उस सब का आप (अवयजनम्) छुड़ाने के साधन हैं इससे महाशय (असि) हैं ॥ १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि कभी कहीं पापाचरण न करें जो कथञ्चित् करते बन पड़े तो उस सब को अपने कुटुम्ब और विद्वान् के सामने और राजसभा में सत्यता से कहें जो पढ़ाने और उपदेश करने हारे स्वयं धार्मिक होकर अन्य सब को धर्माचरण में युक्त करते हैं उनसे अधिक मनुष्यों को सुभूषित करने हारा दूसरा कौन है ॥ १७ ॥

यदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्षयव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम प्राप्ति कराने और (देव) दिव्य बोध का देने हारा तूं (इत्) जो (आपः) प्राण (अघ्न्याः) मारने को अयोग्य गौवें (इति) इस प्रकार से वा हे (वरुण) सर्वोत्कृष्ट (इति) इस प्रकार से हम लोग (शपामहे) उलाहना देते हैं (ततः) उस अविद्यादि क्लेश और अधर्माचरण से (नः) हम को (मुञ्च) अलग कर हे (अवभृथ) ब्रह्मचर्य और विद्या से निस्नात (निचुम्पुणः)

मन्द गमन करने हारे तू (निचेरुः) निश्चित आनन्द का देने हारा और (निचुम्पुण) निश्चित आनन्दयुक्त (असि) है इस हेतु से (पुरुराव्णः) बहुत दुःख देने हारी (रिषः) हिंसा से (पाहि) रक्षा कर (देवकृतम्) जो विद्वानों का किया (एनः) अपराध है उसको (देवैः) विद्वानों के साथ (अयाडसि) नाश करता है जो (मर्त्यकृतम्) मनुष्यों का किया अपराध है उसको (मर्त्यैः) मनुष्यों के साथ से (अव) छुड़ा देता है ॥१८॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों को शिष्य जन ऐसे सत्यवादी सिद्ध करने चाहिये कि जो इनको कहीं शपथ करना न पड़े, जो २ मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्म का आचरण करना हो वह २ सब को आचरण करना चाहिये और अधर्मरूप हो वह किसी को कभी न करना चाहिये ॥ १८ ॥

समुद्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आपो देवताः। निचृदतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः सं त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ १९ ॥

पदार्थः—हे शिष्य (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) आकाशस्थ (अप्सु) प्राणों के (अन्तः) बीच में हो (त्वा) तुझको (ओषधीः) ओषधियां (सं, विशन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (उत) और (आपः) प्राण वा जल अच्छे प्रकार प्रविष्ट हों जिससे (नः) हमारे लिये (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधी (सुमित्रियाः) उत्तम मित्र के समान सुखदायक (सन्तु) हों (यः) जो (अस्मान्) हमारा (द्वेष्टि) द्वेष करे (यं, च) और जिसका (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उसके लिये ये सब (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के समान (सन्तु) होवें ॥ १९ ॥

भावार्थः—अध्यापक लोगों को इस प्रकार करने की इच्छा करना चाहिये जिससे शिक्षा करने योग्य मनुष्य अवकाश सहित प्राण तथा ओषधियों की विद्या के जानने हारे शीघ्र हों ओषधी जल और प्राण अच्छे प्रकार सेवा किये हुये मित्र के समान विद्वानों की पालना करें और अविद्वान् लोगों को शत्रु के समान पीड़ा देवें उनका सेवन और उन का त्याग अवश्य करें ॥ १९ ॥

द्रुपदादिवेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आपो देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (आपः) आप्त वा जलों के समान निर्मल विद्वान् लोगो आप (द्रुपदादिव, मुमुचानः) वृक्ष से जैसे फल, रस, पुष्प, पत्ता आदि अलग होते वा जैसे (स्विन्नः) स्वेदयुक्त मनुष्य (स्नातः) स्नान करके (मलादिव) मल से छूटता है वैसे वा (पवित्रेणेव) जैसे पवित्र करने वाले पदार्थ से (पूतम्) शुद्ध (आज्यम्) घृत होता है वैसे (मा) मुझ को (एनसः) अपराध से पृथक् करके (शुन्धन्तु) शुद्ध करें ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—अध्यापक उपदेशक लोगों को योग्य है कि इस प्रकार सब को अच्छी शिक्षा से युक्त करें जिससे वे शुद्ध आत्मा नीरोग शरीर और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ॥ २० ॥

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब प्रकृत विषय में उपासना वि० ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से परे (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यम्) सूर्यलोक वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (परि) सब ओर से (पश्यन्तः) देखते हुए (देवत्रा) दिव्यगुण वाले देवों में (देवम्) उत्तम सुख के देने वाले (स्वः) सुखस्वरूप (उत्तरम्) सब से सूक्ष्म (उत्तमम्) उत्कृष्ट स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (उदगन्म) उत्तमता से प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग भी इसको प्राप्त होओ ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य के समान स्वप्रकाश सब आत्माओं का प्रकाशक महादेव जगदीश्वर है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ २१ ॥

अप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक वि० ॥

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्न आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् जो (पयस्वान्) प्रशंसित जल की विद्या से युक्त मैं तुझ को (आ, अगमम्) प्राप्त होऊं वा (अद्य) आज (रसेन) मधुरादि

इससे युक्त (अपः) जलों को (अन्वचारिषम्) अनुकूलता से पान करूं (तम्) उस (मा) मुझ को (वर्चसा) साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन (प्रजया) प्रजा (च) और (धनेन) धन से (च) भी (सं, सृज) सम्यक् संयुक्त कर जिससे ये लोग और मैं सब हम सुख के लिये (समसृक्ष्महि) संयुक्त होवें ॥ २२ ॥

भावार्थः—यदि विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश करने से अन्य लोगों को विद्वान् करें तो वे भी नित्य अधिक विद्या वाले हों ॥ २२ ॥

एधोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिद्देवता । स्वराडतिशक्वरीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासनाविषय कहते हैं ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । समाव-वर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् । वैश्वानर-ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर आप (एधः) बढ़ाने हारे (असि) हैं (समित्) जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों के आत्मा का प्रकाश करने हारे (असि) हैं और (तेजः) तीव्र बुद्धिवाले (असि) हैं इससे (तेजः) ज्ञान के प्रकाश को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये जो आप सर्वत्र (समाववर्त्ति) अच्छे प्रकार व्याप्त हो जिन आप ने (पृथिवी) भूमि और (उषाः) उषा (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न की (सूर्यः) सूर्य (सम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न किया (इदम्) यह (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् (सम्) उत्पन्न किया (उ) उसी (वैश्वानरज्योतिः) विश्व के नायक प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होके हम लोग (एधिषीमहि) नित्य बढ़ा करें जैसे मैं (स्वाहा) सत्य वाणी या क्रिया से (भूः) सत्ता वाली प्रकृति (विभून्) व्यापक पदार्थ और (कामान्) कामों को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊं और सुखी (भूयासम्) होऊं (उ) और वैसे तुम भी सिद्धकाम और सुखी होओ ॥ २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस शुद्ध सर्वत्र व्यापक सब के प्रकाशक जगत् के उत्पादन धारण पालन और प्रलय करने हारे ब्रह्म की उपासना करके तुम लोग जैसे आनन्दित होते हो वैसे इस को प्राप्त हो के हम भी आनन्दित होवें आकाश, काल और दिशाओं को भी व्यापक जानें ॥ २३ ॥

अभ्यादधामीत्यस्याश्वतराश्विर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि । व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे (व्रतपते) सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करनेहारे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (त्वयि) तुझ में स्थिर हो के (अहम्) मैं (समिधम्) अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (अभ्यादधामि) धारण करता हूं जिससे (व्रतम्) सत्यभाषणादि व्यवहार (च) और (श्रद्धाम्) सत्य के धारण करने वाले नियम को (च) भी (उपैमि) प्राप्त होता हूं (दीक्षितः) ब्रह्मचर्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं (त्वा) तुझे (इन्धे) प्रकाशित करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर ने करने के लिये आज्ञा दिये हुए सत्यभाषणादि नियमों को धारण करते हैं वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को करने में समर्थ होते हैं ॥ २४ ॥

यत्र ब्रह्मेत्यस्याश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (यत्र) जिस परमात्मा में (ब्रह्म) ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल (च) और (क्षत्रम्) विद्या शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये दोनों (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त (च) तथा वैश्य आदि के कुल (चरतः) मिलकर व्यवहार करते हैं और (यत्र) जिस ब्रह्म में (देवाः) दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन (अग्निना) विद्युलीरूप अग्नि के (सह) साथ वर्त्तते हैं (तम्) उस (लोकम्) देखने के योग्य (पुण्यम्) सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को (प्र, ज्ञेषम्) जानूं वैसे तुम लोग भी इस को जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप सब का अधिकारी पापरहित ज्ञान से देखने योग्य सर्वत्र व्याप्त सब के साथ वर्त्तमान है वही सब मनुष्यों का उपास्यदेव है ॥ २५ ॥

यत्रेत्यस्याश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सुम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (यत्र) जिस ईश्वर में (इन्द्रः) सर्वत्र व्याप्त बिजुली (च) और (वायुः) धनञ्जय आदि वायु (सह) साथ (सम्यञ्चौ) अच्छे प्रकार मिले हुए (चरतः) विचरते हैं (च) और (यत्र) जिस ब्रह्म में (सेदिः) नाश वा उत्पत्ति (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है (तम्) उस (पुण्यम्) पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य (लोकम्) सब को देखने हारे परमात्मा को (प्र, ज्ञेषम्) जानूं वैसे इस को तुम लोग भी जानो ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो कोई विद्वान् वायु बिजुली और आकाशादि की सीमा को जानना चाहे तो अन्त को प्राप्त नहीं होता जिस ब्रह्म में ये सब आकाशादि विभु पदार्थ भी व्याप्य हैं उस ब्रह्म के अन्त के जानने को कौन समर्थ हो सकता है ॥२६॥

अंशुनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अंशुना ते अंशुः पृच्यतां परुषा परुः । गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (ते) तेरे (अंशुना) भाग से (अंशुः) भाग और (परुषा) मर्म से (परुः) मर्म (पृच्यताम्) मिले तथा (ते) तेरा (अच्युतः) नाशरहित (गन्धः) गन्ध और (रसः) रस पदार्थसार (मदाय) आनन्द के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (अवतु) रक्षा करे ॥ २७ ॥

भावार्थः—जब ध्यानावस्थित मनुष्य के मनके साथ इन्द्रियां और प्राण ब्रह्म में स्थिर होते हैं तभी वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

सिञ्चन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी वि० ॥

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥

पदार्थः—जो (बभ्र्वै) बल के धारण करने हारे (सुरायै) सोम वा (मदे) आनन्द के लिये महौषधियों के रस को (सिञ्चन्ति) जाठराग्नि में सींचते सेचन करते (परि, सिञ्चन्ति) सब ओर से पीते (उत्सिञ्चन्ति) उत्कृष्टता से ग्रहण करते (च) और

(पुनन्ति) पवित्र होते हैं वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होते हैं और जो (किन्त्वः) क्या वह (किन्त्वः) क्या और ऐसा (वदति) कहता है यह कुछ भी नहीं पाता है ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो अन्नादि को पवित्र और संस्कार कर उत्तम रसों से युक्त करके युक्त आहार विहार से खाते पीते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं। जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बलबुद्धिहीन हो निरन्तर दुःख को भोगता है ॥ २८ ॥

धानावन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥२९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख की इच्छा करने हारे विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जन तू (नः) हमारे (धानावन्तम्) अच्छे प्रकार से संस्कार किये हुए धान्य अन्नों से युक्त (करम्भिणम्) और अच्छी क्रिया से सिद्ध किये और (अपूपवन्तम्) सुन्दरता से इकट्ठे किये हुए मालपुये आदि से युक्त (उक्थिनम्) तथा उत्तम वाक्य से उत्पन्न हुए बोध को सिद्ध करने हारे और भक्ष्य आदि से युक्त भोजन योग्य अन्न रसादि को (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) सेवन किया कर ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो विद्या के पढ़ाने और उपदेशों से सब को सुभूषित और विश्व का उद्धार करने हारे विद्वान् जन अच्छे संस्कार किये हुए रसादि पदार्थों से युक्त अन्नादि को ठीक समय में भोजन करते हैं और जो उनको विद्या सुशिक्षा से युक्त वाणी का ग्रहण करावें वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ २९ ॥

बृहदित्यस्य नृमेधपुरुषमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वान् लोगो (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने हारे आप (येन) जिससे (देवाय) दिव्य गुण वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्य से युक्त ईश्वर के लिये (देवम्) दिव्य सुख देने वाले (जागृवि) जागरूक अर्थात् अति प्रसिद्ध (ज्योतिः) तेज पराक्रम को (अजनयन्) उत्पन्न करें उस (वृत्रहन्तमम्) अतिशय करके मेघहन्ता सूर्य के समान (बृहत्) बड़े सामगान को उक्त उस ईश्वर के लिये (गायत) गाओ ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सर्वदा युक्त आहार और व्यवहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण कर पुरुषार्थ को बढ़ा के परमेश्वर का प्रतिपादन करने हारे गान को किया करें ॥ ३० ॥

अध्वर्यो इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उक्त वि० ॥

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) यज्ञ को युक्त करने हारे पुरुष तू (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् के लिये (पातवे) पीने को (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ल्यादि ओषधियों के साररूप रस को (पवित्रे) शुद्धव्यवहार में (आनय) ले आ उससे तू (पुनीहि) पवित्र हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—वैद्यराजों को योग्य है कि शुद्ध देश में उत्पन्न हुई ओषधियों के सारों को बना उस के दान से सब के रोगों की निवृत्ति निरन्तर करें ॥ ३१ ॥

यो भूतानामित्यस्य कौण्डिन्य ऋषिः । परमात्मा देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधि श्रिताः । य ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे सब के हित की इच्छा करने हारे पुरुष (यः) जो (भूतानाम्) पृथिव्यादि तत्वों और उन से उत्पन्न हुए कार्यरूप लोकों का (अधिपतिः) अधिष्ठाता (महतः) बड़े आकाशादि से (महान्) बड़ा है (यः) जो (ईशे) सब का ईश्वर है (यस्मिन्) जिस में सब (लोकाः) लोक (अधिश्रिताः) अधिष्ठित आश्रित हैं (तेन) उससे (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं (मयि) मुझ में (त्वाम्) तुझ को (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो उपासक अनन्त ब्रह्म में निष्ठा रखने वाला ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं जानता वही इस जगत् में विद्वान् माना जाना चाहिये ॥ ३२ ॥

उपयामगृहीतोसीत्यस्य काक्षीवतसुकीर्तिर्ऋषिः । सोमो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे। एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो तू (अश्विभ्याम्) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक से (उपयामगृहीतः) उत्तम नियमों के साथ ग्रहण किया हुआ (असि) है जिस (ते) तेरा (एषः) यह (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक के साथ (योनिः) विद्यासम्बन्ध है उस (त्वा) तुझ को (सरस्वत्यै) अच्छी शिक्षायुक्त वाणी के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) उत्कृष्ट ऐश्वर्य्य के लिये और (त्वा) तुझ को (सुत्राम्णे) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे के लिये मैं ग्रहण करता हूं (सरस्वत्यै) उत्तम गुण वाली विदुषी स्त्री के लिये (त्वा) तुझ को (इन्द्राय) परमोत्तम व्यवहार के लिये (त्वा) तुझ को और (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षा के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता हूं ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो विद्वानों से शिक्षा पाये हुए स्वयं उत्तम बुद्धिमान् जितेन्द्रिय अनेक विद्याओं से युक्त विद्वानों में प्रेम करने हारा होवे वही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अधिष्ठाता करने योग्य होवे ॥ ३३ ॥

प्राणपा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे। वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिससे तू (मे) मेरे (प्राणपाः) प्राण का रक्षक (अपानपाः) अपान का रक्षक (मे) मेरे (चक्षुष्पाः) नेत्रों का रक्षक (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का रक्षक (च) और (मे) मेरी (वाचः) वाणी का (विश्वभेषजः) सम्पूर्ण ओषधिरूप (मनसः) विज्ञान का सिद्ध करने हारे मन का (विलायकः) विविध प्रकार से संबन्ध करने वाला (असि) है इस से तू हमारे पिता के समान सत्कार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि जो बाल्यावस्था का आरम्भ कर विद्या और अच्छी शिक्षा से जितेन्द्रियपन विद्या सत्पुरुषों के साथ प्रीति तथा धर्मात्मा और परोपकारीपन को ग्रहण कराते हैं वे माता के समान और मित्र के समान जानने चाहिये ॥ ३४ ॥

अश्विनकृतस्येतस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य। उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (उपहूतः) बुलाया हुआ मैं (ते) तेरा (अश्विनकृतस्य) जो सद्गुणों को व्याप्त होते हैं उन के लिये (सरस्वतिकृतस्य) विदुषी स्त्री के लिये (सुत्राम्णा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारे (इन्द्रेण) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजा के (कृतस्य) किये हुए (उपहूतस्य) समीप में लाये अन्नादि का (भक्षयामि) भक्षण करता हूं ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि विद्वान् और ऐश्वर्ययुक्त जनों ने अनुष्ठान किये हुए का अनुष्ठान करें और अच्छी शिक्षा किये हुए पाककर्त्ता के बनाये हुए अन्न को खावें और सत्कार करने हारे का सत्कार किया करें ॥ ३५ ॥

समिद्ध इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः। त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (पूर्वकृत्) पूर्व करने हारा (वावृधानः) बढ़ता हुआ (वज्रबाहुः) जिस के हाथ में वज्र है वह (उषसाम्) प्रभात वेलाओं की (अनीके) सेना में जैसे (पुरोरुचा) प्रथम विस्तृत हुई दीप्ति से (समिद्धः) प्रकाशित हुआ (इन्द्रः) सूर्य (त्रिभिः) तीन अधिक (त्रिंशता) तीस (देवैः) पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के साथ वर्त्तमान हुआ (वृत्रम्) मेघ को (जघान) मारता है (दुरः) द्वारों को (वि, ववार) प्रकाशित करता है वैसे अत्यन्त बलयुक्त योद्धाओं के साथ शत्रुओं को मार विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या धर्म के प्रकाशक हों विद्वानों के साथ प्रीति रीति से सत्य और असत्य के विवेक के लिये संवाद कर अच्छे प्रकार निश्चय करके सब मनुष्यों को संशयरहित करें ॥ ३६ ॥

नराशंस इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः। तनूनपाद्देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के वि० ॥

नराशंसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम। गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (नराशंसः) जो मनुष्यों से प्रशंसा किया जाता (यज्ञस्य) सत्य व्यवहार के (धाम) स्थान का और (प्रति, मिमानः) अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माण करने हारा (शूरः) सब ओर से निर्भय (तनूनपात्) जो शरीर का पात न करने हारा (गोभिः) गाय और बैलों से (वपावान्) जिस से क्षेत्र बोये जाते हैं उस प्रशंसित उत्तम क्रिया से युक्त (मधुना) मधुरादि रस से (समञ्जन्) प्रकट करता हुआ (हिरण्यैः) सुवर्णादि पदार्थों से (चन्द्री) बहुत सुवर्णवान् (प्रचेताः) उत्तम प्रज्ञायुक्त विद्वान् (प्रति, यजति) यज्ञ करता कराता है सो हमारे आश्रय के योग्य है ॥ ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि किसी निन्दित भीरु अपने शरीर के नाश करने हारे उद्यमहीन आलसी मूढ़ और दरिद्री का संग कभी न करें ॥ ३७ ॥

ईडित इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ई॒डि॒तो दे॒वैर्हरि॑वाँ२॥ अभि॒ष्टिरा॒जुह्वा॑नो ह॒विषा॒ शर्द्ध॑मानः । पु॒र॒न्द॒रो गो॑त्र॒भिद्वज्र॑बाहु॒राया॑तु य॒ज्ञमुप॑ नो जुषा॒णः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जैसे (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला (वज्रबाहुः) जिस की भुजाओं में वज्र विद्यमान (पुरन्दरः) जो शत्रुओं के नगरों का विदीर्ण करने हारा सेनापति (गोत्रभित्) मेघ को विदीर्ण करने हारा सूर्य जैसे रसों को सेवन करे वैसे अपनी सेना का सेवन करता है वैसे (देवैः) विद्वानों से (ईडितः) प्रशंसित (अभिष्टिः) सब ओर से यज्ञ के करने हारे (आजुह्वानः) विद्वानों ने सत्कारपूर्वक बुलाये हुए (हविषा) सद्विद्या के दान और ग्रहण से (शर्द्धमानः) सहन करते (जुषाणः) और प्रसन्न होते हुए आप (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (उप, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ को बढ़ा कर सब जगत् की रक्षा करता है वैसे धार्मिक अध्यापकों को अध्ययन करने हारों के साथ पढ़ना और पढ़ाना कर विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

जुषाण इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

जु॒षा॒णो ब॒र्हिर्हरि॑वान्न॒ इन्द्रः॑ प्रा॒चीन॑ꣳ सीदत्प्र॒दिशा॑ पृथि॒व्याः । उ॒रु॒प्रथाः॒ प्रथ॑मानꣳ स्यो॒नमा॑दि॒त्यैर॒क्तं वसु॑भिः स॒जोषाः॑ ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (जुषाणाः) सेवन करता हुआ (हरिवान्) जिस के हरणशील बहुत किरणें विद्यमान (उरुप्रथाः) बहुत विस्तारयुक्त (आदित्यैः) महीनों और (वसुभिः) पृथिव्यादि लोकों के (सजोषाः) साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) जलों का धारणकर्त्ता सूर्य्य (पृथिव्याः) पृथिवी से (प्रदिशा) उपदिशा के साथ (प्रथमानम्) विस्तीर्ण (अक्तम्) प्रसिद्ध (प्राचीनम्) पुरातन (स्योनम्) सुखकारक स्थान को (सीदत्) स्थित होता है वैसे तू हमारे मध्य में हो ॥ ३९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि रात दिन प्रयत्न से आदित्य के तुल्य अविद्यारूपी अन्धकार का निवारण कर के जगत् में बड़ा सुख प्राप्त करें जैसे पृथिवी से सूर्य बड़ा है वैसे अविद्वानों में विद्वान् को बड़ा जानें ॥ ३९ ॥

इन्द्रमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश वि० ॥

इन्द्रं दुरः कवृष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः । द्वारो देवीरभितो विश्रयन्ताᳬ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (कवष्यः) बोलने में चतुर (वृषाणम्) अति वीर्यवान् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य वाले (वीरम्) वीर पुरुष के प्रति (धावमानाः) दौड़ती हुई (जनयः) सन्तानों को जनने वाली स्त्रियां (दुरः) द्वारों को (यन्तु) प्राप्त हों वा जैसे (प्रथमानाः) प्रख्यात (सुवीराः) अत्युत्तम वीर पुरुष (महोभिः) अच्छे पूजित गुणों से युक्त (द्वारः) द्वार के तुल्य वर्त्तमान (देवीः) विद्यादि गुणों से प्रकाशमान (सुपत्नीः) अच्छी स्त्रियों को (अभितः) सब ओर से (वि श्रयन्ताम्) विशेष कर आश्रय करें वैसे तुम भी किया करो ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस कुल वा देश में परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं वहां मनुष्य सदा आनन्द में रहते हैं ॥ ४० ॥

उषासानक्तेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । उषासानक्ता देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् । तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (पेशसा) रूप से (संवयन्ती) प्राप्त कराने हारे (पयस्वती) रात्रि के अन्धकार से युक्त (सुदुघे) अच्छे प्रकार पूर्ण करने वाले (बृहती) बढ़ते हुए

(सुरुक्मे) अच्छे प्रकाश वाले (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (ततम्) विस्तारयुक्त (देवानाम्) पृथिव्यादिकों के (देवम्) प्रकाशक (बृहन्तम्) बड़े (इन्द्रम्) सूर्यमंडल को (यजतः) सङ्ग करते हैं वैसे ही (तन्तुम्) विस्तार करने हारे (शूरम्) शूरवीर पुरुष को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब लोक सब से बड़े सूर्यलोक का आश्रय करते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय सब लोग करें ॥ ४१ ॥

दैव्येत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । दैव्याध्यापकोपदेशकौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दैव्या॒ मिमा॑ना॒ मनु॑षः पुरु॒त्रा होता॑रा॒विन्द्रं॑ प्रथ॒मा सु॑वा॒चा। मू॒र्द्धन्य॒ज्ञस्य॒ मधु॑ना॒ दधा॑ना प्रा॒चीनं॒ ज्योति॑र्ह॒विषा॑ वृधातः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—जो (दैव्या) दिव्य पदार्थों और विद्वानों में हुए (मिमाना) निर्माण करने हारे (होतारौ) दाता (सुवाचा) जिन की सुशिक्षित वाणी वे विद्वान् (यज्ञस्य) सङ्ग करने योग्य व्यवहार के (मूर्द्धन्) ऊपर (प्रथमा) प्रथम वर्त्तमान (पुरुत्रा) बहुत (मनुषः) मनुष्यों को (दधाना) धारण करते हुए (मधुना) मधुरादि गुणयुक्त (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (प्राचीनम्) पुरातन (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (वृधातः) बढ़ाते हैं वे सब मनुष्यों के सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नति देते हैं वे सम्पूर्ण मनुष्यों को सुभूषित करने हारे हैं ॥ ४२ ॥

तिस्रो देवीरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । तिस्रो देव्यो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ति॒स्रो दे॒वीर्ह॒विषा॒ वर्द्ध॑माना॒ इन्द्रं॑ जुषा॒णा जन॑यो॒ न पत्नीः॑। अच्छि॑न्नं॒ तन्तुं॒ पय॑सा॒ सर॑स्वती॒डा दे॒वी भार॑ती वि॒श्वतू॑र्त्तिः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विश्वतूर्त्तिः) जगत् में शीघ्रता करने हारी (देवी) प्रकाशमान (सरस्वती) उत्तम विज्ञानयुक्त वा (इडा) शुभ गुणों से स्तुति करने योग्य तथा (भारती) धारण और पोषण करनेहारी ये (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान शक्तियां (पयसा) शब्द अर्थ और सम्बन्धरूप रस से (हविषा) देने लेने के व्यवहार और

प्राण से (वर्द्धमाना) बढ़ती हुई (जनयः) सन्तानोत्पत्ति करने हारी (पत्नीः) स्त्रियों के (न) समान (अच्छिद्रम्) छेद भेद रहित (तन्तुम्) विस्तारयुक्त (इन्द्रम्) बिजुली को (सुपाणाः) सेवन करने हारी हैं उन का सेवन तुम लोग किया करो ॥ ४३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वानों से युक्त वाणी नाड़ी और धारण करने वाली शक्ति ये तीन प्रकार की शक्तियां सर्वत्र व्याप्त सर्वदा उत्पन्न हुई व्यवहार के हेतु हैं उन को मनुष्य लोग व्यवहारों में यथावत् प्रयुक्त करें ॥

त्वष्टेत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वज्जन के वि० ॥

त्वष्टा दध॒च्छुष्म॒मिन्द्रा॑य॒ वृष्णेऽपा॒कोऽचि॑ष्टुर्य॒शसे॑ पु॒रूणि॑ । वृषा॒ यज॒न्वृष॑णं॒ भूरि॑रेता मू॒र्द्धन्य॒ज्ञस्य॒ सम॑नक्तु दे॒वान् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (त्वष्टा) विद्युत् के समान वर्त्तमान विद्वान् (वृषा) सेचनकर्त्ता (इन्द्राय) परमैश्वर्य (वृष्णे) और पराये सामर्थ्य को रोकने हारे के लिये (शुष्मम्) बल को (अपाकः) अप्रशंसनीय (अचिष्टुः) प्राप्त होने हारा (यशसे) कीर्ति के लिये (पुरूणि) बहुत पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (भूरिरेताः) अत्यन्तपराक्रमी (वृषणम्) मेघ को (यजन्) संगत करता (यज्ञस्य) संगति से उत्पन्न हुए जगत् के (मूर्द्धन्) उत्तम भाग में (देवान्) विद्वानों की (समनक्तु) कामना करें वैसे तू भी कर ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जब तक मनुष्य शुद्धान्तःकरण नहीं होवे तब तक विद्वानों का संग सत्यशास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे जिससे शीघ्र शुद्धान्तःकरणवान् हो ॥ ४४ ॥

वनस्पतिरित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वन॒स्पति॒रव॑सृष्टो॒ न पाशै॒स्त्मन्या॑ सम॒ञ्जञ्छ॑मि॒ता न दे॒वः । इन्द्र॑स्य ह॒व्यैर्ज॒ठरं॑ पृणा॒नः स्वदा॑ति य॒ज्ञं मधु॑ना घृ॒तेन॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—जो (पाशैः) दृढ बन्धनों से (वनस्पतिः) वृक्ष समूह का पालन करने हारा (अवसृष्टः) आज्ञा दिये हुए पुरुष के (न) समान (त्मन्या) आत्मा के साथ (समञ्जन्) संपर्क करता हुआ (देवः) दिव्य सुख का देने हारा (शमिता) यज्ञ के (न) समान (ऐश्वर्य) के (जठरम्) उदर के समान कोश को (पृणानः) पूर्ण करता

९५

हुआ (हव्यैः) खाने के योग्य (मधुना) सहत और (घृतेन) घृत आदि पदार्थों से (यज्ञम्) अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ को करता हुआ (स्वदाति) अच्छे प्रकार स्वाद लेवे वह रोगरहित होवे ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे वड आदि वनस्पति बढ़कर फलों को देता है जैसे बन्धनों से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है वा जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है वैसे यज्ञकर्त्ता युक्त आहार विहार करने वाला मनुष्य जगत् का उपकारक होता है ॥ ४५ ॥

स्तोकानमित्यस्याङ्गिरस ऋषिः । स्वाहाकृतयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्तोकाना॒मिन्दुं॒ प्रति॒ शूर॒ इन्द्रो॑ वृषा॒यमा॑णो वृष॒भस्तु॑रा॒षाट् । घृ॒त॒प्रुषा॒ मन॑सा॒ मोद॑माना॒: स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—जैसे (वृषायमाणः) बलिष्ठ होता हुआ (वृषभः) उत्तम (तुराषाट्) हिंसक शत्रुओं को सहने हारा (शूरः) शूरवीर ऐश्वर्य वाला (स्तोकानाम्) थोड़ों के (इन्दुम्) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के (प्रति) प्रति आनन्दित होता है वैसे (घृतप्रुषा) प्रकाश के सेवन करने वाले (मनसा) विज्ञान से और (स्वाहा) सत्य क्रिया से (मोदमानाः) आनन्दित होते हुए (अमृताः) आत्मस्वरूप से मृत्युधर्मरहित (देवाः) विद्वान् लोग (मादयन्ताम्) आप तृप्त होकर हमको आनन्दित करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अल्पगुण वाले भी मनुष्य को देखकर स्नेहयुक्त होते हैं वे सब ओर से सब को सुखी करते हैं ॥ ४६ ॥

आयात्वित्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ राजविषय को० ॥

आ या॒त्विन्द्रोऽव॑स॒ उप॑ न इ॒ह स्तु॒तः स॑ध॒माद॑स्तु॒ शूर॑: । वा॒वृ॒धा॒नस्तवि॑षी॒र्यस्य॑ पू॒र्वीर्द्यौर्न क्ष॒त्रम॒भिभू॑ति॒ पुष्या॑त् ॥ ४७ ॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का धारण करने हारा (इह) इस वर्तमान काल में (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुआ (शूरः) निर्भय वीर पुरुष (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों ने अच्छी शिक्षा से उत्तम की हुई (तविषीः) सेनाओं को (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ानेहारा और (यस्य) जिस का (अभिभूति) शत्रुओं का तिरस्कार करने हारा (क्षत्रम्) राज्य (द्यौः) सूर्य्य के प्रकाश के (न) समान वर्त्तता है जो (नः) हम को (पुष्यात्) पुष्ट करे वह हमारे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (उप, आ, यातु) समीप प्राप्त होवे और (सधमात्) समान स्थान वाला (अस्तु) होवे ॥ ४७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनों के प्रकाश करने हारे जिन की सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले प्रजा की पुष्टि और दुष्टों का नाश करने हारे हों वे राज्याधिकारी होवें ॥ ४७ ॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ न॒ इन्द्रो॑ दू॒राद॒ा न॑ आ॒साद॑भिष्टि॒कृदव॑से यासदु॒ग्रः । ओजि॑ष्ठेभिर्नृ॒पति॒र्वज्र॑बाहुः स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ तु॒र्वणि॑ः पृत॒न्यून् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—जो (अभिष्टिकृत) सब ओर से इष्ट सुख करे (वज्रबाहुः) जिस की वज्र के समान दृढ़ भुजा (नृपतिः) नरों का पालन करने हारा (ओजिष्ठेभिः) अति बल वाले योधाओं से (उग्रः) दुष्टों पर क्रोध करने और (तुर्वणिः) शीघ्र शत्रुओं का मारने हारा (इन्द्रः) शत्रुविदारक सेनापति (नः) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिये (समत्सु) बहुत संग्रामों में (सङ्गे) प्रसङ्ग में (दूरात्) दूर से (आसात्) और समीप से (आ, यासत्) आवे और (नः) हमारे (पृतन्यून्) सेना और संग्राम की इच्छा करने हारों की (आ) सदा रक्षा और मान्य करे वह हम लोगों का भी सदा माननीय होवे ॥ ४८ ॥

भावार्थः—वे ही पुरुष राज्य करने को योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं की यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करते और शूरवीर का सत्कार भी निरन्तर करते हैं ॥ ४८ ॥

आ न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ न॒ इन्द्रो॒ हरि॑भिर्या॒त्वच्छा॑र्वाची॒नोऽव॑से॒ राध॑से च । तिष्ठा॑ति व॒ज्री म॒घवा॑ विर॒प्शीमं य॒ज्ञमनु॑ नो॒ वाज॑सातौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—जो (मघवा) परम प्रशंसित धन-युक्त (विरप्शी) महान् (अर्वाचीनः) विद्यादि बल से सन्मुख जाने वाला (वज्री) प्रशंसित शस्त्रविद्या की शिक्षा पाये हुए (इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता सेनाधीश (हरिभिः) अच्छी शिक्षा किये हुए घोड़ों से (नः) हम लोगों की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (धनाय, च) और धन के लिये (वाजसातौ) संग्राम में (अनु, तिष्ठाति) अनुकूल स्थित हो वह (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) सत्यन्याय पालन करने रूप राज्य व्यवहार को (अच्छ, आ, यातु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जो युद्धविद्या में कुशल पक्के बलवान् प्रजा और धन की वृद्धि करने हारे उत्तम शिक्षायुक्त हाथी और घोड़ों से युक्त कल्याण ही के आचरण करने हारे हों वे ही राजपुरुष होवें ॥ ४९ ॥

त्रातारमित्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्रातार॒मिन्द्र॑मवि॒तार॒मिन्द्र॒ꣳ हवे॑हवे सु॒हव॒ꣳ शूर॒मिन्द्र॑म् । ह्वया॑मि श॒क्रं पु॑रुहू॒तमिन्द्र॑ꣳ स्व॒स्ति नो॑ म॒घवा॑ धा॒त्विन्द्रः॑ ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष जिस (हवेहवे) प्रत्येक संग्राम में (त्रातारम्) रक्षा करने (इन्द्रम्) दुष्टों के नाश करने (अवितारम्) प्रीति कराने (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य्य के देने (सुहवम्) सुन्दरता से बुलाये जाने (शूरम्) शत्रुओं का विनाश कराने (इन्द्रम्) राज्य का धारण करने और (शक्रम्) कार्यों में शीघ्रता करने हारे (पुरुहूतम्) बहुतों से सत्कार पाये हुए तथा (इन्द्रम्) शत्रुसेना के विदारण करने हारे तुमको (ह्वयामि) सत्कारपूर्वक बुलाता हूं सो (मघवा) बहुत धनयुक्त (इन्द्रः) उत्तम सेना का धारण करने हारा तू (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख का (धातु) धारण कर ॥ ५० ॥

भावार्थः—मनुष्य उसी पुरुष का सदा सत्कार करें जो विद्या न्याय और धर्म का सेवक सुशील और जितेन्द्रिय हुआ सब के सुख को बढ़ाने के लिये निरन्तर यत्न किया करे ॥ ५० ॥

इन्द्र इत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राज वि० ॥

इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒२॥ अवो॑भिः सुमृडी॒को भ॑वतु वि॒श्ववे॑दाः । बाध॑तां॒ द्वेषो॒ अभ॑यं कृणोतु सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥ ५१ ॥

पदार्थः—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (स्वान्) स्वकीय बहुत उत्तम जनों से युक्त (विश्ववेदाः) समग्र धनवान् (सुमृडीकः) अच्छा सुख करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला राजा (अवोभिः) न्यायपूर्वक रक्षणादि से प्रजा की रक्षा करे वह (द्वेषः) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे (अभयम्) सब को भयरहित (कृणोतु) करे और आप भी वैसा ही (भवतु) हो जिससे हम लोग (सुवीर्यस्य) अच्छे पराक्रम के (पतयः) पालने हारे (स्याम) हों ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जो विद्या विनय से युक्त हो के राजपुरुष प्रजा की रक्षा करने हारे न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे ॥ ५१ ॥

तस्येत्यस्य गर्ग ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तस्यं वयꣳ सुम॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म। स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒२॥ इन्द्रो॑ अ॒स्मे आ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥ ५२ ॥

पदार्थः—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार से रक्षा करने (स्ववान्) और प्रशंसित अपना कुल रखने हारा (इन्द्रः) पिता के समान वर्त्तमान सभा का अध्यक्ष (अस्मे) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (आरात्) दूर और समीप से (चित) भी (सनुतः) सब काल में (युयोतु) दूर करे (तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ के अनुष्ठान करने योग्य राजा की (सुमतौ) सुन्दर मति में और (भद्रे) कल्याण करने हारे (सौमनसे) सुन्दर मन में उत्पन्न हुए व्यवहार में (अपि) भी हम लोग राजा के अनुकूल वर्त्तने हारे (स्याम) होवें और (सः) वह हमारा राजा और (वयम्) हम उस की प्रजा अर्थात् उसके राज्य में रहने वाले हों ॥ ५२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उस की सम्मति में स्थिर रहना उचित है जो पक्षपातरहित और न्याय से प्रजापालन में तत्पर हो ॥ ५२ ॥

आमन्द्रैरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ म॒न्द्रैरि॑न्द्र॒ हरि॑भिर्या॒हि म॒यूर॑रोमभिः। मा त्वा॒ के चि॒न्नि य॑म॒न्विं न पा॒शिनोऽति॒ धन्वे॑व॒ ताँ२॥ इ॑हि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य के बढ़ाने हारे सेनापति तू (मन्द्रैः) प्रशंसायुक्त (मयूररोमभिः) मोर के रोमों के सदृश रोमों वाले (हरिभिः) घोड़ों से युक्त हो के (तान्) उन शत्रुओं के जीतने को (याहि) जा यहां (त्वा) तुझ को (पाशिनः) बहुत पाशों से युक्त व्याध लोग (विम्) पक्षी को बांधने के (न) समान (केचित्) कोई भी (मा) मत (नियमन्) बांधें तू (अतिधन्वेव) बड़े धनुर्धारी के समान (एहि) अच्छे प्रकार आओ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जब शत्रुओं के विजय को जावें तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें जैसे शत्रु लोग अपने को वश न करें वैसा युद्धारम्भ करें ॥ ५३ ॥

एवेदित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः । स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (वसिष्ठासः) अतिशय वास करने हारे जिस (वृषणम्) बलवान् (वज्रबाहुम्) शस्त्रधारी (इन्द्रम्) शत्रु के मारने हारे को (अर्कैः) प्रशंसित कर्मों से विद्वान् लोग (अभ्यर्चन्ति) यथावत् सत्कार करते हैं (एव) उसी का (यूयम्) तुम लोग (इत्) भी सत्कार करो (सः) सो (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त होके (नः) हमको और (गोमत्) उत्तम गाय आदि पशुओं से युक्त (वीरवत्) शूरवीरों से युक्त राज्य को (धातु) धारण करे और तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमको (सदा) सब दिन (पात) सुरक्षित रक्खो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे राजपुरुषों की प्रजाजन भी रक्षा करें ॥ ५४ ॥

समिद्धो अग्निरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुषों का वि० ॥

समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः । दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—जैसे (इह) इस संसार में (धेनुः) दूध देने वाली गाय के समान (सरस्वती) शास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी (शुक्रम्) शुद्ध (सोमम्) ऐश्वर्य और (इन्द्रियम्) धन को परिपूर्ण करती है वैसे उसे मैं (दुहे) परिपूर्ण करूं । हे (अश्विना) शुभ गुणों में व्याप्त स्त्री पुरुषो (तप्तः) तपा (विराट्) और विविध प्रकार से प्रकाशमान (सुतः) प्रेरणा को प्राप्त (समिद्धः) प्रदीप्त (घर्मः) यज्ञ के समान संगतियुक्त (अग्निः) पावक जगत् की रक्षा करता है वैसे मैं इस सब जगत् की रक्षा करूं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—इस संसार में तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान पुरुषार्थी होके धर्म से ऐश्वर्य्य को निरन्तर संचित करें ॥ ५५ ॥

तनूपा इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब इस प्रकृत विषय में वैद्यविद्या के संचार को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनो भा सरस्वती। मध्वा रजांᳬसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान्॥ ५६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग जैसे (भिषजा) वैद्यक-विद्या के जानने हारे (तनूपा) शरीर के रक्षक (उभा) दोनों (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त स्त्री पुरुष (सरस्वती) बहुत विज्ञान युक्त वाणी (मध्वा) मीठे गुण से युक्त (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में स्थित होकर (पथिभिः) मार्गों से (इन्द्राय) राजा के लिये (रजांसि) लोकों और (इन्द्रियम्) धन को धारण करें वैसे इनको (वहान्) प्राप्त हूजिये॥ ५६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्री पुरुष वैद्यक-विद्या को न जानें तो रोगों को निवारण और शरीरादि की स्वस्थता को और धर्म व्यवहार में निरन्तर चलने को समर्थ नहीं होवें॥ ५६॥

इन्द्रायेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। अनुष्टुप् छन्दः॥ गान्धारः स्वरः॥

अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को कहते हैं॥

इन्द्रायेन्दुᳬ सरस्वती नराशᳬसेन नग्नहुम्। अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते॥ ५७॥

पदार्थः—(अश्विना) वैद्यक-विद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्यजन (इन्द्राय) दुःख नाश के लिये (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (मधु) ज्ञानवर्द्धक कोमलतादिगुणयुक्त (भेषजम्) औषध को (अधाताम्) धारण करें और (नराशंसेन) मनुष्यों से स्तुति किये हुए वचन से सरस्वती प्रशस्तविद्यायुक्त वाणी (नग्नहुम्) आनन्द कराने वाले विषय को ग्रहण करने वाले (इन्दुम्) ऐश्वर्य्य को धारण करे॥ ५७॥

भावार्थः—वैद्य दो प्रकार के होते हैं एक ज्वरादि शरीर रोगों के नाशक चिकित्सा करने हारे और दूसरे मन के रोग जो कि अविद्यादि मानस क्लेश हैं उन के निवारण करने हारे अध्यापक उपदेशक हैं जहां ये रहते हैं वहां रोगों के विनाश से प्राणी लोग शरीर और मन के रोगों से छूट कर सुखी होते हैं॥ ५७॥

आजुह्वानेत्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आजुह्वा॑ना सर॑स्वती॒न्द्राये॑न्द्रि॒याणि॑ वी॒र्य॒म् । इडा॑भिर॒श्विना॒विष॒ꣳ समूर्ज॒ꣳ सꣳ र॒यिं द॑धुः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(आजुह्वाना) सब ओर से प्रशंसा की हुई (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवती स्त्री (इन्द्राय) परमैश्वर्य्ययुक्त पति के लिये (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रिय वा ऐश्वर्य्य उत्पन्न करने हारे सुवर्ण आदि पदार्थों और (वीर्यम्) शरीर में बल के करने हारे घृतादि का तथा (अश्विनौ) सूर्य चन्द्र के सदृश वैद्यक-विद्या के कार्य में प्रकाशमान वैद्यजन (इडाभिः) अति उत्तम ओषधियों के साथ (इषम्) अन्न आदि पदार्थ (समूर्जम्) उत्तम पराक्रम (रयिम्) और उत्तम धर्म श्री को (संदधुः) सम्यक् धारण करें ॥ ५८ ॥

भावार्थः—वे ही उत्तम विद्यावान् हैं जो मनुष्यों के रोगों का नाश करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं, वही पतिव्रता स्त्री जाननी चाहिये कि जो पति के सुख के लिये धन और घृत आदि वस्तु घर रखती है ॥ ५८ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒श्विना॒ नमु॑चेः सु॒तꣳ सोम॒ꣳ शु॒क्रं प॑रि॒स्रुता॑ । सर॑स्वती॒ तमाभ॑रद्ब॒र्हिषेन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ५९ ॥

पदार्थः—जो (परिस्रुता) सब ओर से अच्छे चलनयुक्त (अश्विना) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त (सरस्वती) प्रशंसा युक्त स्त्री तथा पुरुष (बर्हिषा) सुख बढ़ाने वाले कर्म्म से (इन्द्राय) परमैश्वर्य्य के सुख के लिये और (नमुचेः) जो नहीं छोड़ता उस असाध्य रोग के दूर होने के लिये (शुक्रम्) वीर्यकारी (सुतम्) अच्छे सिद्ध किये (सोमम्) सोम आदि ओषधियों के समूह की (पातवे) रक्षा के लिये (तम्) उस रस को (आ, अभरत) धारण करती और करता है वे ही सर्वदा सुखी रहते हैं ॥ ५९ ॥

भावार्थः—जो अङ्ग उपांग सहित वेदों को पढ़ के हस्तक्रिया जानते हैं वे असाध्य रोगों को भी दूर करते हैं ॥ ५९ ॥

कवष्य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
अथ विदुषि० ॥

कुवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः । इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

पदार्थः—(सरस्वती) अति श्रेष्ठ ज्ञानवती मैं (इन्द्रः) बिजुली (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा से (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (कवष्यः) अत्यन्त प्रशंसित (दिशः) दिशाओं को (न) जैसे तथा (दुरः) द्वारों को (न) जैसे वा (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी को जैसे (न) वैसे (कामान्) कामनाओं को (दुहे) पूर्ण करती हूं ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे बिजुली सूर्य चन्द्रमा से दिशाओं के और द्वारों के अन्धकार का नाश करती है वा जैसे पृथिवी और प्रकाश का धारण करती है वैसे पण्डिता स्त्री पुरुषार्थ से अपनी इच्छा पूर्ण करे ॥ ६० ॥

उषासानक्तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रं सायमिन्द्रियैः । संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो जैसे (सुपेशसा) अच्छे रूप वाले (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) अच्छी उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी से (उषासा) प्रभात (नक्तम्) रात्रि (सायम्) सन्ध्याकाल और (दिवा) दिन में (इन्द्रियैः) जीव के लक्षणों से (इन्द्रम्) बिजुली को (संजानाने) अच्छे प्रकार प्रकट करते हुए (समञ्जाते) प्रसिद्ध हैं वैसे तुम भी प्रसिद्ध होओ ॥ ६१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रातःसमय रात्रि को और संध्याकाल दिन को निवृत्त करता है वैसे विद्वानों को भी चाहिये कि अविद्या और दुष्ट शिक्षा का निवारण कर के सब लोगों को सब विद्याओं की शिक्षा में नियुक्त करें ॥ ६१ ॥

पातमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

९६

अब विद्वद्विषय में सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि वि० ॥

पातन्नों अश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति । दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (दैव्या) दिव्यगुणयुक्त (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वालो तुम लोग (दिवा) दिन में (नक्तम्) रात्रि में (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो हे (सरस्वति) बहुत विद्याओं से युक्त माता तू हमारी (पाहि) रक्षा कर । हे (होतारा) सब लोगों को सुख देने वाले (सचा) अच्छे मिले हुए (भिषजा) वैद्य लोगो तुम (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (इन्द्रम्) ऐश्वर्य देने वाले सोमलता के रस को (पातम्) रक्षा करो ॥ ६२ ॥

भावार्थः—जैसे अच्छे वैद्य रोग मिटाने वाली बहुत ओषधियों को जानते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक और माता पिता अविद्यारूप रोगों को दूर करने वाले उपायों को जानें ॥ ६२ ॥

तिस्र इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर भैषज्यादि वि० ॥

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सरस्वती) अच्छे प्रकार शिक्षा पाई हुई वाणी (भारती) धारण करने हारी माता और (इडा) स्तुति के योग्य उपदेश करने हारी ये (तिस्रः) तीन और (अश्विना) अच्छे दो वैद्य (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (परिस्रुता) सब ओर से झरने के साथ (तीव्रम्) तीव्रगुणस्वभाव वाले (मदम्) हर्षकर्ता (सोमम्) ओषधि के रस वा प्रेरणा नाम के व्यवहार को (त्रेधा) तीन प्रकार से (सुषुवुः) उत्पन्न करें वैसे तुम भी इस की सिद्धि अच्छे प्रकार करो ॥ ६३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सोम आदि ओषधियों के रस को सिद्ध कर उस को पी के शरीर आरोग्य करके उत्तम वाणी शुद्ध बुद्धि और यथार्थ वक्तृत्वशक्ति की उन्नति करें ॥ ६३ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विना॑ भेष॒जं मधु॑ भेष॒जं नः॒ सर॑स्वती । इन्द्रे॒ त्वष्टा॒ यशः॒ श्रियं॑ᳬ रू॒पᳬ॑ रू॒पम॑धुः सु॒ते ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(नः) हमारे लिये (अश्विना) विद्या सिखाने वाले अध्यापकोपदेशक (सरस्वती) विदुषी शिक्षा पाई हुई माता और (त्वष्टा) सूक्ष्मता करने वाला ये विद्वान् लोग (सुते) उत्पन्न हुए (इन्द्रे) परमैश्वर्य में (भेषजम्) सामान्य और (मधु, भेषजम्) मधुरादि गुणयुक्त औषध (यशः) कीर्त्ति (श्रियम्) लक्ष्मी और (रूपंरूपम्) रूप रूप को (अधुः) धारण करने को समर्थ होवें ॥ ६४ ॥

भावार्थः—जब मनुष्य लोग ऐश्वर्य को प्राप्त होवें तब इन उत्तम ओषधियों, कीर्ति और उत्तम शोभा को सिद्ध करें ॥ ६४ ॥

ऋतुथेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋ॒तु॒थेन्द्रो॒ वन॒स्पतिः॑ शशमा॒नः प॑रि॒स्रुता॑ । की॒लाल॑म॒श्विभ्यां॒ मधु॑ दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वती ॥ ६५ ॥

पदार्थः—जैसे (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (सरस्वती) अच्छी उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी (परिस्रुता) सब ओर से झरने वाली जलादि पदार्थ के साथ (ऋतुथा) ऋतुओं के प्रकारों से और (शशमानः) बढ़ता हुआ (इन्द्रः) ऐश्वर्य करने हारा (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष (मधु) मधुर आदि रस और (कीलालम्) अन्न को (अश्विभ्याम्) वैद्यों से कामनाओं को पूर्ण करता है वैसे मैं (दुहे) पूर्ण करूं ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अच्छे वैद्यजन उत्तम २ वनस्पतियों से सार ग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये ॥ ६५ ॥

गोभिरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

गोभि॒र्न सोम॑मश्विना॒ मास॑रेण परि॒स्रुता॑ । सम॑धातᳬ॒ सर॑स्वत्या॒ स्वाहेन्द्रे॑ सु॒तं मधु॑ ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अच्छी शिक्षा पाए हुए वैद्यो (मासरेण) प्रमाणयुक्त मांड

(परिस्रुता) सब ओर से मधुर आदि रस से युक्त (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से और (स्वाहा) सत्यक्रियाओं से तथा (इन्द्रे) परमैश्वर्य के होते (गोभिः) गौओं से दुग्ध आदि पदार्थों को जैसे (न) वैसे (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (सुतम्) सिद्ध किये (सोमम्) ओषधियों के रस को तुम (समधातम्) अच्छे प्रकार धारण करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—वैद्य लोग उत्तम हस्तक्रिया से सब ओषधियों के रस को ग्रहण करें ॥ ६६ ॥

अश्विना हविरित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒श्विना॑ ह॒विरि॑न्द्रि॒यं नमु॑चेर्धि॒या सर॑स्वती । आ शु॒क्रमा॑सु॒राद्वसु॑ म॒घमिन्द्रा॑य जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

पदार्थः—(अश्विना) अच्छे वैद्य और (सरस्वती) अच्छी शिक्षायुक्त स्त्री (धिया) बुद्धि से (नमुचेः) नाशरहित कारण से उत्पन्न हुए कार्य से (हविः) ग्रहण करने योग्य (इन्द्रियम्) मन को (आसुरात्) मेघ से (शुक्रम्) पराक्रम और (मघम्) पूज्य (वसु) धन को (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (आजभ्रिरे) धारण करें ॥ ६७ ॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिये ओषधियों का सेवन किया करें ॥ ६७ ॥

यमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यम॒श्विना॒ सर॑स्वती ह॒विषेन्द्र॒मव॑र्द्धयन् । स बि॑भेद ब॒लं म॒घं नमु॑चावासु॒रे सचा॑ ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(सचा) संयोग किये हुए (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा (सरस्वती) विदुषी स्त्री (नमुचौ) नाशरहित कारण से उत्पन्न (आसुरे) मेघ में होने के निमित्त घर में (हविषा) अच्छी बनाई हुई होम की सामग्री से (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ाते (सः) वह (मघम्) परमपूज्य (बलम्) बल का (बिभेद) भेदन करे ॥ ६८ ॥

भावार्थः—जो ओषधियों के रस को कर्त्तव्यता के गुणों से उत्तम करें वह रोग का नाश करने हारा होवे ॥ ६८ ॥

तमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अथ विद्वानों के वि० ॥

तमिन्द्रं पुशवः सचाश्विनोभा सरस्वती। दधाना अभ्यनूषत हुविषां युज्ञ इन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो (सचा) विद्या से युक्त (अश्विना) वैद्यक विद्या में चतुर अध्यापक और उपदेशक (उभा) दोनों (इन्द्रियैः) धनों से जिस (इन्द्रम्) बल आदि गुणों के धारण करने हारे सोम को धारण करें (तम्) उस को (सरस्वती) सत्य विज्ञान से युक्त स्त्री धारण करे और जिसको (पशवः) गौ आदि पशु धारण करें उस को (हविषा) सामग्री से (दधानाः) धारण करते हुए जन (यज्ञे) यज्ञ में (अभ्यनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥ ६९ ॥

भावार्थः—जो लोग धर्म के आचरण से धन के साथ धर्म को बढ़ाते हैं वे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ ६९ ॥

य इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। इन्द्रसवितृवरुणा देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः। स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (ये) जो लोग (इन्द्रे) ऐश्वर्य में (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वे सुखी होवें। इस कारण जो (भगः) सेवा करने के योग्य (वरुणः) श्रेष्ठ (सविता) ऐश्वर्य की इच्छा से युक्त (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षक (हविष्पतिः) होम करने योग्य पदार्थों की रक्षा करने हारा मनुष्य (यजमानाय) यज्ञ करने हारे के लिये धन को (सश्चत) सेवे (सः) वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होवे ॥ ७० ॥

भावार्थः—जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे ॥ ७० ॥

सवितेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः। इन्द्रसवितृवरुणा देवताः। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—(वरुणः) उत्तम (सविता) प्रेरक (सुत्रामा) और अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा जन (दाशुषे) देने वाले (यजमानाय) यजमान के लिये (वसु) द्रव्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नमुचेः) धर्म को नहीं छोड़ने वाले के (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) अच्छी शिक्षा से युक्त मन का (आ, अदत्त) अच्छे प्रकार ग्रहण करे ॥ ७१ ॥

भावार्थः—देने वाले पुरुष की अच्छे प्रकार सेवा कर के इससे अच्छे पदार्थों को प्राप्त होकर जो सब के बल को बढ़ाता है वह बलवान् होता है ॥ ७१ ॥

वरुण इत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वरुणः) उत्तम पुरुष (सविता) ऐश्वर्योत्पादक (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा सभा का अध्यक्ष (भगेन) ऐश्वर्य के साथ वर्त्तमान (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) मन आदि (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और (यज्ञम्) यज्ञ को प्राप्त होता है वैसे (यशसा) कीर्त्ति के साथ (बलम्) बल को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आशत) प्राप्त होओ ॥ ७२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—ऐश्वर्य के विना राज्य राज्य के विना राज्यलक्ष्मी और राज्यलक्ष्मी के विना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ॥ ७२ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥

पदार्थः—(अश्विना) अध्यापक उपदेशक और (सरस्वती) सुशिक्षायुक्त विदुषी स्त्री (गोभिः) अच्छे प्रकार शिक्षायुक्त वाणी वा पृथिवी और गौओं तथा

(अश्वेभिः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये हुए घोड़ों और (हविषा) अङ्गीकार किये हुए पुरुषार्थ से (इन्द्रियम्) धन (वीर्यम्) पराक्रम (बलम्) बल और (इन्द्रम्) ऐश्वर्ययुक्त (यजमानम्) सत्य अनुष्ठानरूप यज्ञ के करने हारे को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें ॥ ७३ ॥

भावार्थः—जो लोग जिनके समीप रहें उनको योग्य है कि वे उनको सब अच्छे गुण कर्मों और ऐश्वर्य आदि से उन्नति को प्राप्त करें ॥ ७३ ॥

ता नासत्येत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले विद्वन् (ता) वे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (सुपेशसा) अच्छे रूपयुक्त (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण का वर्त्ताव करने हारी (नरा) सर्वगुणप्रापक पढ़ाने और उपदेश करने वाली (हविष्मती) उत्तम ग्रहण करने योग्य पदार्थ जिसके विद्यमान वह (सरस्वती) विदुषी स्त्री और आप (कर्मसु) कर्मों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो ॥ ७४ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् पुरुष पढ़ने और उपदेश से सबको दुष्ट कर्मों से दूर करके अच्छे कर्मों में प्रवृत्त कर रक्षा करते हैं वैसे ही ये सब के रक्षा करने के योग्य हैं ॥७४॥

ता भिषजेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जैसे (ता) वे (भिषजा) शरीर और आत्मा के रोगों के निवारण करने हारे (सुकर्मणा) अच्छी धर्मयुक्त क्रिया से युक्त दो वैद्य (सा) वह (सुदुघा) अच्छे प्रकार इच्छा को पूरण करने हारी (सरस्वती) पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री और (सः) वह (वृत्रहा) जो मेघ का नाश करता है उस सूर्य्य के समान (शतक्रतुः) अत्यन्त बुद्धिमान् (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम भी आचरण करो ॥ ७५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जगत् में जैसे विद्वान् लोग उत्तम आचरण वाले पुरुष के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य करें ॥ ७५ ॥

युवमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के वि० ॥

युवᳬं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पालन आदि कर्म करने हारे अध्यापक और उपदेशक (सचा) मिले हुए (युवम्) तुम दोनों और हे (सरस्वती) अतिश्रेष्ठ विज्ञान वाली प्रजा तू जैसे (नमुचौ) प्रवाह से नित्यस्वरूप (आसुरे) मेघ में और (कर्मसु) कर्मों में (सुरामम्) अति सुन्दर (इन्द्रम्) परमैश्वर्य का (आवत) पालन करते हो वैसे (विपिपानाः) नाना प्रकार से रक्षा करने हारे होते हुए आचरण करो ॥ ७६ ॥

भावार्थः—जो लोग पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर धन की रक्षा करके आनन्द को भोगते हैं वे सदा ही बढ़ते हैं ॥ ७६ ॥

पुत्रमित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के वि० ॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दᳬंसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ७७ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम धन (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् तू (शचीभिः) बुद्धियों के साथ (यत्) जिस से (सुरामम्) अतिरमणीय महौषधि के रस को (व्यपिबः) पीता है इस से सरस्वती उत्तम शिक्षावती स्त्री (त्वा) तुझ को (अभिष्णक्) समीप सेवन करे (उभा) दोनों (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (काव्यैः) कवियों के किये हुए (दंसनाभिः) कर्मों से जैसे (पितरौ) माता पिता (पुत्रमिव) पुत्र का पालन करते हैं वैसे तेरी (आवथुः) रक्षा करें ॥ ७७ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे माता पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके सदा बढ़ावें वैसे अध्यापक और उपदेशक शिष्य की रक्षा करके विद्या से बढ़ावें ॥ ७७ ॥

यस्मिन्नित्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अश्वासः) घोड़े और (ऋषभासः) उत्तम बैल तथा (उक्षणः) अतिबली वीर्य के सेचन करने हारे बैल (वशाः) वन्ध्या गायें और (मेषाः) मेढ़ा (अवसृष्टासः) अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और (आहुताः) सब ओर से ग्रहण किये हुए (यस्मिन्) जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उस में तू (हृदा) अन्तःकरण से (सोमपृष्ठाय) सोमविद्या को पूछने और (कीलालपे) उत्तम अन्न के रस को पीने हारे (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि के समान प्रकाशमान जन के लिये (चारुम्) अति उत्तम (मतिम्) बुद्धि को (जनय) प्रकट कर ॥ ७८ ॥

भावार्थः—पशु भी सुशिक्षा पाये हुए उत्तम कार्य्य सिद्ध करते हैं क्या फिर विद्या की शिक्षा से युक्त मनुष्य लोग सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते ॥ ७८ ॥

अहाव्वीत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः अग्निर्देवता । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अहाव्यग्ने हुविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः । वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥ ७९ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) उत्तम विद्यायुक्त पुरुष जिस तूने (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त (हविः) होम करने योग्य वस्तु (ते) तेरे (आस्ये) मुख में (घृतम्, स्रुचीव) जैसे घृत स्रुच के मुख में और (चम्वीव) जैसे यज्ञ के पात्र में होम के योग्य वस्तु वैसे (अहावि) होमा है वह तू (अस्मे) हम लोगों में (प्रशस्तम्) बहुत उत्तम (सुवीरम्) अच्छे वीर पुरुषों के उपयोगी और (वाजसनिम्) अन्न विज्ञान आदि गुणों का विभाग (यशसम्) कीर्त्ति करने हारी (बृहन्तम्) बड़ी (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (धेहि) धारण कर ॥ ७९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—गृहस्थ पुरुषों को चाहिये कि उन्हीं का भोजन आदि से सत्कार करें जो लोग पढ़ाना उपदेश और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् में बल, पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें ॥ ७९ ॥

अश्विनेत्यस्य विदर्भिर्ऋषिः । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सरस्वती) विद्यावती स्त्री (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक और (इन्द्रः) सभा का अधिष्ठाता (इन्द्राय) जीव के लिये (प्राणेन) जीवन के साथ (वीर्यम्) पराक्रम और (तेजसा) प्रकाश से (चक्षुः) प्रत्यक्ष नेत्र (वाचा) वाणी और (बलेन) बल से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को (दधुः) धारण करें वैसे तुम भी धारण करो ॥ ८० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग जैसे २ विद्वानों के संग से विद्या को बढ़ावें वैसे २ विज्ञान में रुचि वाले होवें ॥ ८० ॥

गोमदूषुणेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब विद्वानों के विषय में पशु आदिकों से पालना वि० ॥

गोमदूषु णासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त (रुद्रा) दुष्टों को रोदन कराने हारे (अश्विना) विद्या से बढ़े हुए लोगो तुम जैसे (गोमत्) गौ जिस में विद्यमान उस (वर्तिः) वर्तमान मार्ग (उ) और (अश्वावत्) उत्तम घोड़ों से युक्त (नृपाय्यम्) मनुष्यों के मान के (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वैसे हम लोग भी प्राप्त होवें ॥ ८१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—गाय, घोड़ा, हाथी आदि पालन किये पशुओं से अपनी और दूसरे की मनुष्यों की पालना करनी चाहिये ॥ ८१ ॥

नयदित्यस्य गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
अब राजधर्म वि० ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) श्रेष्ठों को वास कराने हारे सभा और सेना के पति तुम (यत्) जिस से (दुःशंसः) दुःख से स्तुति करने योग्य (परः) अन्य (मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (न) न हो और (न) न (अन्तरः) मध्यस्थ हो कि जो हम को (आदधर्षत्) सब ओर से धर्षण करे उस को अच्छे यत्न से वश में करो ॥ ८२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जो अति बलवान् अत्यन्त दुष्ट शत्रु होवे उस को बड़े यत्न से जीतें ॥ ८२ ॥

ता न इत्यस्य गृत्समदऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ता नु आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सभा और सेना के पालने हारो (धिष्ण्या) जो बुद्धि के साथ वर्त्तमान (ता) वे तुम (नः) हम को (वरिवोविदम्) जिस से सेवन को प्राप्त हों और (पिशङ्गसन्दृशम्) जो सुवर्ण के समान देखने में आता है उस (रयिम्) धन को (आ, वोढम्) सब ओर से प्राप्त करो ॥ ८३ ॥

भावार्थः-सभापति और सेनापतियों को चाहिये कि राज्य के सुख के लिये सब ऐश्वर्य्य को सिद्ध करें जिससे सत्यधर्म का आचरण बढ़े ॥ ८३ ॥

पावका न इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक के वि० ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे पढ़ाने वाले और उपदेशक लोगो जैसे (वाजेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (वाजिनीवती) अच्छी उत्तम विद्या से युक्त (पावका) पवित्र करनेहारी (धियावसुः) बुद्धि के साथ जिससे धन हो वह (सरस्वती) अच्छे संस्कार वाली वाणी (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (वष्टु) शोभित करे वैसे तुम लोग हम लोगों को शिक्षा करो ॥ ८४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा अच्छे प्रकार ग्रहण करके विज्ञान की वृद्धि सदा किया करें ॥ ८४ ॥

चोदयित्रीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

अब स्त्रियों की शिक्षा का वि० ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५

पदार्थः—हे स्त्री लोगो जैसे (सूनृतानाम्) सुशिक्षा पाई हुई वाणियों को (चोदयित्री) प्रेरणा करने हारी (सुमतीनाम्) शुभ बुद्धियों को (चेतन्ती) अच्छे प्रकार ज्ञापन करती (सरस्वती) उत्तम विज्ञान से युक्त हुई मैं (यज्ञम्) यज्ञ को (दधे) धारण करती हूं वैसे यह यज्ञ तुम को भी करना चाहिये ॥ ८५ ॥

भावार्थः—जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिस से स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो ॥ ८५ ॥

महोअर्ण इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

म॒हो अर्णः॒ सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑ । धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति ॥ ८६ ॥

पदार्थः—हे स्त्री लोगो जैसे (सरस्वती) वाणी (केतुना) उत्तम ज्ञान से (महः) बड़े (अर्णः) आकाश में स्थित शब्दरूप समुद्र को (प्रचेतयति) उत्तम प्रकार से जतलाती है और (विश्वाः) सब (धियः) बुद्धियों को (वि, राजति) नाना प्रकार से प्रकाशित करती है वैसे विद्याओं में तुम प्रवृत्त होओ ॥ ८६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को समग्र ग्रहण करके अपनी बुद्धियों को बढ़ावें ॥ ८६ ॥

इन्द्रायाहीत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सामान्य उपदेश वि० ॥

इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता इ॒मे त्वा॒यवः॑ । अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥ ८७ ॥

पदार्थः—हे (चित्रभानो) चित्र विचित्र विद्या प्रकाशों वाले (इन्द्र) सभापति आप जो (इमे) ये (अण्वीभिः) अङ्गुलियों से (सुताः) सिद्ध किये (तना) विस्तारयुक्त गुण से (पूतासः) पवित्र (त्वायवः) जो तुम को मिलते हैं उन पदार्थों को (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ८७ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग अच्छी क्रिया से पदार्थों को अच्छे प्रकार शुद्ध करके भोजनादि करें ॥ ८७ ॥

इन्द्रायाहिधियेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वद्विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥

पदार्थः—हे इन्द्र विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (इषितः) प्रेरित और (विप्रजूतः) बुद्धिमानों से शिक्षा पाके वेगयुक्त (वाघतः) शिक्षा पाई हुई वाणी से जानने हारा तू (धिया) सम्यक् बुद्धि से (सुतावतः) सिद्ध किये (ब्रह्माणि) अन्न और धनों को (उप, आ, याहि) सब प्रकार से समीप प्राप्त हो ॥ ८८ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जिज्ञासा वाले पुरुषों से मिल के उन में विद्या के निधि को स्थापित करें ॥ ८८ ॥

इन्द्रायाहि तूतुजान इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे (हरिवः) अच्छे उत्तम घोड़ों वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के बढ़ाने हारे विद्वन् आप (उपायाहि) निकट आइये (तूतुजानः) शीघ्र कार्य्यकारी हो के (नः) हमारे लिये (सुते) उत्पन्न हुये व्यवहार में (ब्रह्माणि) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त होने योग्य धन और (च नः) भोग के योग्य अन्न को (दधिष्व) धारण कीजिये ॥ ८९ ॥

भावार्थः—विद्या और धर्म बढ़ाने के लिये किसी को आलस्य न करना चाहिये ॥ ८९ ॥

अश्विनेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा। इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳮसोम्यं मधु ॥ ९० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सजोषसा) समान सेवन करने हारे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (सरस्वत्या) अच्छे प्रकार संस्कार पाई हुई वाणी से (मधु) मधुर आदि गुणयुक्त विज्ञान को (पिबताम्) पान करें और जैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने हारा (वृत्रहा) सूर्य के समान वर्त्ताव वर्त्तने वाला (सोम्यम्)

सोमलता आदि ओषधिगण में हुए (मधु) मधुरादि गुणयुक्त अन्न का (उपन्ताम्) सेवन करें वैसे तुम लोगों को भी करना चाहिये ॥ ६० ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक अपने जैसे सब लोगों के विद्या और सुख बढ़ाने की इच्छा करें जिससे सब सुखी हों ॥ ६० ॥

इस अध्याय में राज प्रजा, धर्म के अङ्ग और अङ्गि, गृहाश्रम का व्यवहार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, सत्यव्रत, देवों के गुण, प्रजा के पालक, अभय, परस्पर सम्मति स्त्रियों के गुण, धन आदि की वृद्ध्यादि पदार्थों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे प्रथम अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

इति पूर्वार्धः ॥

ओ३म्

अथैकविंशतितमोऽध्याय आरभ्यते।

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

इममित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब इक्कीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के वि० ॥

इ॒मं मे॑ वरुण श्रुधी॒ हव॑म॒द्या च॑ मृडय। त्वाम॑व॒स्युरा च॑के ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम विद्यावान् जन जो (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करने हारा मैं (इमम्) इस (त्वाम्) तुझ को (आ, चके) चाहता हूं वह तूं (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (श्रुधि) सुन (च) और (अद्य) आज मुझ को (मृडय) सुखी कर ॥ १ ॥

भावार्थः—सब विद्या की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि अनुक्रम से उपदेश करने वाले बड़े विद्वान् की इच्छा करें वह विद्यार्थियों के स्वाध्याय को सुन और उत्तम परीक्षा करके सब को आनन्दित करे ॥ १ ॥

तदित्यस्य शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तत्त्वा॑ यामि॒ ब्रह्म॑णा॒ वन्द॑मान॒स्तदा शा॑स्ते॒ यज॑मानो ह॒विर्भिः॑। अहे॑डमानो वरुणे॒ह बो॒ध्युरु॑शꣳस॒ मा न॒ आयुः॒ प्र मो॑षीः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (वरुण) अति उत्तम विद्वान् पुरुष जैसे (यजमानः) यजमान (हविर्भिः) देने योग्य पदार्थों से (तत्) उसकी (आ, शास्ते) इच्छा करता है वैसे (ब्रह्मणा) वेद के विज्ञान से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस (त्वा) तुझ को (यामि) प्राप्त होता हूं। हे (उरुशंस) बहुत लोगों से प्रशंसा किये हुए जन मुझ से (अहेडमानः)

सत्कार को प्राप्त होता हुआ तू (इह) इस संसार में (नः) हमारे (आयुः) जीवन वा विज्ञान को (मा) मत (प्र,मोषीः) चुरा लेवे और शास्त्र का (बोधि) बोध कराया कर॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य जिससे विद्या को प्राप्त हो वह उस को प्रथम नमस्कार करे जो जिस का पढ़ाने वाला हो वह उसको विद्या देने के लिये कपट न करे कदापि किसी को आचार्य का अपमान न करना चाहिये ॥ २ ॥

त्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराड्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान् दे॒वस्य॒ हेडो॒ अव॑ यासिसीष्ठाः ।
यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषा॑ꣳसि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यजिष्ठः) अतीव यजन करने (वह्नितमः) अत्यन्त प्राप्ति कराने और (शोशुचानः) शुद्ध करने हारे (विद्वान्) विद्यायुक्त जन (त्वम्) तू (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्वान् का जो (हेडः) अनादर उसको (अव) मत (यासिसीष्ठाः) करे । हे तेजस्वी तू जो (नः) हमारा अनादर हो उसको अङ्गीकार मत कर । हे शिक्षा करने हारे तू (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेष आदि युक्त कर्मों को (प्र, मुमुग्धि) छुड़ा दे ॥ ३ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्वानों का अनादर और कोई भी विद्वान् विद्यार्थियों का असत्कार न करे सब मिल के ईर्ष्या क्रोध आदि दोषों को छोड़ के सब के मित्र होवें ॥ ३ ॥

सत्वमित्यस्य वामदेव ऋषिः । अग्निवरुणौ देवते । स्वराड्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स त्वं नो॑ अग्नेऽव॒मो भ॑वो॒ती नेदि॑ष्ठो अ॒स्या उ॒षसो॒ व्यु॑ष्टौ । अव॑
यक्ष्व नो॒ वरु॑ण॒ꣳ ररा॑णो वी॒हि मृ॑डी॒कꣳ सु॒हवो॑ न एधि ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् जैसे (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) नाना प्रकार के दाह में अग्नि (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप और रक्षा करने हारा है वैसे (सः) वह (त्वम्) तू (नः) (ऊती) प्रीति से (नः) हमारा (अवमः) रक्षा करने हारा (भव) हो (नः) हम को (वरुणम्) उत्तम गुण वा उत्तम

विद्वान् वा उत्तम गुणीजन का (अव,यव्व) मेल कराओ और (रराणः) रमण करते हुए तुम (मृडीकम्) सुख देने हारे को (वीहि) व्याप्त होओ (नः) हम को (सुहवः) शुभदान देने हारे (एधि) हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे प्रातःसमय में सूर्य समीप स्थित हो के सब समीप के मूर्त्त पदार्थों को व्याप्त होता है वैसे शिष्यों के समीप अध्यापक होके इन को अपनी विद्या से व्याप्त करे ॥ ४ ॥

महीमित्यस्य वामदेव ऋषिः । आदित्या देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ पृथिवी के वि० ॥

मुहीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम । तुविक्षत्रामुजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (मातरम्) माता के समान स्थित (सुव्रतानाम्) जिन के शुभ सत्याचरण हैं उन को (ऋतस्य) प्राप्त हुए सत्य की (पत्नीम्) स्त्री के समान वर्त्तमान (तुविक्षत्राम्) बहुत धन वाली (अजरन्तीम्) जीर्णपन से रहित (उरूचीम्) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने हारी (सुशर्माणम्) अच्छे प्रकार के गृह से और (सुप्रणीतिम्) उत्तम नीतियों से युक्त (उ) उत्तम (अदितिम्) अखण्डित (महीम्) पृथ्वी को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सु, हुवेम) ग्रहण करते हैं वैसे तुम भी ग्रहण करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे माता सन्तानों और पतिव्रता स्त्री पति का पालन करती है वैसे यह पृथिवी सब का पालन करती है ॥ ५ ॥

सुत्रामाणमित्यस्य गयप्लात ऋषिः । अदितिर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ जलयान विषय को अगले० ॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् । दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पिजनो जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिये (सुत्रामाणम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम्) विस्तार और (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणम्) जिस में सुशोभित घर विद्यमान उस (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त (स्वरित्राम्) वा जिस में बल्ली पर बल्ली लगी हैं उस (अनागसम्) अपराधरहित और (अस्रवन्तीम्) छिद्र-

रहित (दैवीम्) विद्वान् पुरुषों की (नावम्) प्रेरणा करने हारी नाव पर (आ, रुहेम) चढ़ते हैं वैसे तुम लोग भी चढ़ो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जिस में बहुत घर, बहुत साधन, बहुत रक्षा करने हारे, अनेक प्रकार का प्रकाश और बहुत विद्वान् हों उस छिद्ररहित बड़ी नाव में स्थित होके समुद्र आदि जल के स्थानों में पारावार देशान्तर और द्वीपान्तर में जा आ के भूगोल में स्थित देश और द्वीपों को जान कर के लक्ष्मीवान् होवें ॥ ६ ॥

सुनावमित्यस्य गयप्लात ऋषिः । स्वर्गा नौर्देवता । यवमध्या गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राᳮस्वस्तये ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्रवन्तीम्) छिद्रादि दोष वा (अनागसम्) बनावट के दोषों से रहित (शतारित्राम्) अनेकों लंगर वाली (सुनावम्) अच्छे बनी नाव पर (आ, रुहेयम्) चढ़ूं वैसे इस पर तुम भी चढ़ो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग बड़ी नावों की अच्छे प्रकार परीक्षा करके और उनमें स्थिर होके समुद्र आदि के पारावार जावें जिन में बहुत लंगर आदि होवें वे नावें अत्यन्त उत्तम हों ॥ ७ ॥

आ न इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । निचृद् गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजाᳮसि सुक्रतु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तने हारे (सुक्रतु) शुभ बुद्धि वा उत्तम कर्मयुक्त शिल्पी लोगो तुम (घृतैः) जलों से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश को (उक्षतम्) सेचन करो और (आ, मध्वा) सब ओर से मधुर जल से (रजांसि) लोकों का सेचन करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो शिल्पी विद्या वाले लोग नाव आदि को जल आदि मार्ग से चलावें तो वे ऊपर और नीचे मार्गों में जाने को समर्थ हों ॥ ८ ॥

प्रबाहवेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन । आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ९ ॥

पदार्थः—(मित्रावरुणा) मित्र और वरुण उत्तम जन (बाहवा) दोनों बाहु के तुल्य (युवाना) मिलाने और अलग करने हारे तुम (नः) हमारे (जीवसे) जीने के लिये (मा) मुझ को (प्र, सिसृतम) प्राप्त होओ (घृतेन) जल से (नः) हमारे (गव्यूतिम्) दो कोश पर्यन्त (आ, उक्षतम्) सब ओर से सेचन करो । नाना प्रकार की कीर्त्ति को (आ, श्रवयतम्) अच्छे प्रकार सुनाओ और (मे) मेरे (जने) मनुष्यगण में (इमा) इन (हवा) वाद विवादों को (श्रुतम्) सुनो ॥ ९ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक प्राण और उदान के समान सब के जीवन के कारण होवें विद्या और उपदेश से सब के आत्माओं को जल से वृक्षों के समान सेचन करें ॥ ९ ॥

शमित्यस्याग्नेय ऋषिः । ऋत्विजो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (स्वर्काः) अच्छे अन्न वा वज्र से युक्त और (मितद्रवाः) प्रमाणित चलने और (देवताता) विद्वानों के समान वर्त्तने हारे (वाजिनः) अति उत्तम विज्ञान से युक्त (हवेषु) लेने देने में चतुर आप्त लोग (अहिम्) मेघ को सूर्य्य के समान (वृकम्) चोर और (रक्षांसि) दुष्ट जीवों का (जम्भयन्तः) विनाश करते हुए (नः) हमारे लिये (सनेमि) सनातन (शम्) सुख करने हारे (भवन्तु) होओ और (अस्मत्) हमारे (अमीवाः) रोगों को (युयवन्) दूर करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे सूर्य अन्धकार को हटा के सब को सुखी करता है वैसे विद्वान् लोग प्राणियों के शरीर और आत्मा के सब रोगों को निवृत्त करके आनन्दयुक्त करें ॥ १० ॥

वाजेवाज इत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में० ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अमृताः) आत्मस्वरूप से अविनाशी (ऋतज्ञाः) सत्य के जानने हारे (वाजिनः) विज्ञान वाले (विप्राः) बुद्धिमान् लोगो तुम (वाजेवाजे) युद्ध युद्ध में और (धनेषु) धनों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो और (अस्य) इस (मध्वः) मधुर रस का (पिवत) पान करो और उस से (मादयध्वम्) विशेष आनन्द को प्राप्त होओ और इस से (तृप्ताः) तृप्त हो के (देवयानैः) विद्वानों के जाने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग विद्या दान से और उपदेश से सब को सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा और अभयदान से सब को सुखी करें तथा धर्मयुक्त मार्गों में चलते हुए अर्थ, काम और मोक्ष इन तीन पुरुषार्थ के फलों को प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

समिद्ध इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् के वि० ॥

समिद्धोऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्दं इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ १२ ॥

पदार्थः—जैसे (समिद्धः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि (समिधा) उत्तम प्रकाश से (सुसमिद्धः) बहुत प्रकाशमान सूर्य (वरेण्यः) अंगीकार करने योग्य जन और (गायत्री, छन्दः) गायत्री छन्द (इन्द्रियम्) मन को प्राप्त होता है और जैसे (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय, आत्मा इन तीनों की रक्षा करने और (गौः) स्तुति प्रशंसा करने हारा जन (वयः) जीवन को धारण करता है वैसे विद्वान लोग (दधुः) धारण करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग विद्या से सब के आत्माओं को प्रकाशित और सब को जितेन्द्रिय करके पुरुषों को दीर्घ आयु वाले करें ॥ १२ ॥

तनूनपादित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्दं इन्द्रियं दित्यवाड्गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

पदार्थः—जैसे (शुचिव्रतः) पवित्र धर्म के आचरण करने (तनूनपात्) शरीर को पड़ने न देने (तनूपाः) किन्तु शरीर की रक्षा करने हारा (च) और (सरस्वती) वाणी तथा (उष्णिहा) उष्णिह (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करता है वा जैसे (दित्यवाट्) खंडनीय पदार्थों के लिये हित प्राप्त कराने और (गौः) स्तुति करने

द्वारा जन (वयः) इच्छा को बढ़ाता है वैसे इन सब को विद्वान् लोग (दधुः) धारण करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग पवित्र आचरण वाले हैं और जिन की वाणी विद्याओं में सुशिक्षा पाई हुई है वे पूर्ण जीवन के धारण करने को योग्य हैं ॥१३॥

इडाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इडा॑भिर॒ग्निरीड्यः॒ सोमो॑ दे॒वो अम॑र्त्यः । अ॒नु॒ष्टुप् छन्द॑ इन्द्रि॒यं पञ्चा॑वि॒र्गौर्वयो॑ दधुः ॥ १४ ॥

पदार्थ—जैसे (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशमान (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सोमः) ऐश्वर्यवान् (ईड्यः) स्तुति करने वा खोजने के योग्य (देवः) दिव्यगुणी (पञ्चाविः) पांच से रक्षा को प्राप्त (गौः) विद्या से स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष (इडाभिः) प्रशंसाओं से (अनुष्टुप्, छन्दः) अनुष्टुप् छन्द (इन्द्रियम्) ज्ञान आदि व्यवहार को सिद्ध करने हारे मन और (वयः) तृप्ति को धारण करे वैसे इस को सब (दधुः) धारण करें ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो लोग धर्म से विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं वे सब मनुष्यों को विद्या और ऐश्वर्य प्राप्त करा सकते हैं ॥ १४ ॥

सुबर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सु॒ब॒र्हिर॒ग्निः पू॑ष॒ण्वान्त्स्ती॒र्णब॑र्हि॒रम॑र्त्यः । बृ॒ह॒ती छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्रि॑व॒त्सो गौर्वयो॑ दधुः ॥ १५ ॥

पदार्थः—जैसे (पूषण्वान्) पुष्टि करने हारे गुणों से युक्त (स्तीर्णबर्हिः) आकाश को व्याप्त होने वाला (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुबर्हिः) आकाश को शुद्ध करने हारा (अग्निः) अग्नि के समान जन और (बृहती) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को धारण करें और (त्रिवत्सः) त्रिवत्स अर्थात् देह, इन्द्रिय, मन, जिस के अनुगामी वह (गौः) गौ के समान मनुष्य (वयः) तृप्ति को प्राप्त करें वैसे इस को सब लोग (दधुः) धारण करें ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि अन्तरिक्ष में चलता है वैसे विद्वान् लोग सूक्ष्म और निराकार पदार्थों की विद्या में चलते हैं जैसे गाय के पीछे बछड़ा चलता

है वैसे अविद्वान् जन विद्वानों के पीछे चला करें और अपनी इन्द्रियों को वश में लावें ॥१५॥

दुरो देवीरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब वायु आदि पदार्थों के प्रयोजन वि० ॥

दुरो॑ दे॒वीर्दिशो॑ म॒हीर्ब्र॒ह्मा दे॒वो बृह॒स्पतिः॑। प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ इ॒हेन्द्रि॒यं तु॑र्य॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इह) यहां (देवीः) देदीप्यमान (महीः) बड़े (दुरः) द्वारे (दिशः) दिशाओं को (ब्रह्मा) अन्तरिक्षस्थ पवन (देवः) प्रकाशमान (बृहस्पतिः) बड़ों का पालन करने हारा सूर्य और (पंक्तिश्छन्दः) पंक्ति छन्द (इन्द्रियम्) धन तथा (तुर्यवाट्) चौथे को प्राप्त होने हारी (गौः) गाय (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें वैसे तुम लोग भी जीवन को धारण करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—कोई भी प्राणी अन्तरिक्षस्थ पवन आदि के विना नहीं जी सकता ॥१६॥

उष इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उ॒षे य॒ह्वी सु॒पेश॑सा॒ विश्वे॑ दे॒वा अम॑र्त्याः। त्रि॒ष्टुप् छन्द॑ इ॒हेन्द्रि॒यं प॑ष्ठ॒वाड् गौर्वयो॑ दधुः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इह) इस जगत् में (सुपेशसा) सुन्दर रूपयुक्त पढ़ाने और उपदेश करने हारी (यह्वी) बड़ी (उषे) दहन करने वाली प्रभात वेला के समान दो स्त्री (अमर्त्याः) तत्त्वस्वरूप से नित्य (विश्वे) सब (देवाः) देदीप्यमान पृथिवी आदि लोक (त्रिष्टुप्छन्दः) त्रिष्टुप्छन्द और (पष्ठवाट्) पीठ से उठाने वाला (गौः) बैल (वयः) उत्पत्ति और (इन्द्रियम्) धन को धारण करते हैं वैसे (दधुः) तुम लोग भी आचरण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे पृथ्वी आदि पदार्थ परोपकारी हैं वैसे इस जगत् में मनुष्यों को होना चाहिये ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब अगले मन्त्र में वैद्य के तुल्य अन्यों को आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजे॒न्द्रेण॑ स॒युजा॑ यु॒जा। जग॑ती॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यम॑न॒ड्वान् गौर्वयो॑ दधुः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जैसे (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से (सयुजा) ओषधि आदि का तुल्य योग करने हारे (युजा) सावधान चित्त हुए (दैव्या) विद्वानों में निपुण (होतारा) विद्यादि के देने वाले (भिषजा) उत्तम दो वैद्य लोग (अनड्वान्) बैल (गौः) गाय और (जगती छन्दः) जगती छन्द (वयः) सुन्दर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें वैसे इसको तुम लोग धारण करो ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वैद्यों से अपने और दूसरों के रोग मिटा के अपने आप और दूसरे ऐश्वर्यवान् किये जाते हैं वैसे सब मनुष्यों को वर्त्तना चाहिये ॥ १८ ॥

तिस्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वानों के वि० ॥

तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः । विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

पदार्थः—जैसे (इह) इस जगत् में (इडा) पृथ्वी (सरस्वती) वाणी और (भारती) धारण वाली बुद्धि ये (तिस्रः) तीन (मरुतः) पवनगण (विशः) मनुष्य आदि प्रजा (विराट्) तथा अनेक प्रकार से देदीप्यमान (छन्दः) बल (इन्द्रियम्) धन को और (धेनुः) पान कराने हारी (गौः) गाय के (न) समान (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करें वैसे सब मनुष्य लोग इस को धारण करके वर्त्ताव करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग सुशिक्षितवाणी, विद्या, प्राण और पशुओं से ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं वैसे अन्य सब को प्राप्त होना चाहिये ॥ १९ ॥

त्वष्टेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वष्टा तुरीपो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (अद्भुतः) आश्चर्य्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (तुरीपः) शीघ्र प्राप्त होने (त्वष्टा) और सूक्ष्म करने हारे तथा (पुष्टिवर्द्धना) पुष्टि को बढ़ाने हारे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि दोनों और (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय को तथा (उक्षा) सेचन करने में समर्थ (गौः) बैल के (न) समान (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उनको जानो ॥ २० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालं०-जैसे प्रसिद्ध अग्नि, बिजुली, पेट में का अग्नि, वड़वानल ये चार और प्राण इन्द्रियां तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये ॥ २० ॥

शमितेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श॒मि॒ता नो॒ वन॒स्पतिः॑ सवि॒ता प्र॑सु॒वन् भग॑म् । क॒कुप् छन्द॑ इ॒हेन्द्रि॒यं व॒शा वे॒हद्वयो॑ दधुः ॥ २१ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (शमिता) शान्ति देने हारा (वनस्पतिः) ओषधियों का राजा वा वृक्षों का पालक (सविता) सूर्य्य (भगम्) धन को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ (ककुप्) ककुप् (छन्दः) और (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न को तथा (वशा) जिस के सन्तान नहीं हुआ और (वेहत्) जो गर्भ को गिराती है वह (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (वयः) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (दधुः) धारण करें उस को तुम लोग जान के उपकार करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्य से सर्वरोग की नाशक ओषधियां और ढांकने वाले उत्तम वस्त्र सेवन किये जाते हैं वह बहुत वर्षों तक जी सकता है ॥ २१ ॥

स्वाहेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं वरु॑णः सु॒क्षत्रो॑ भेष॒जं क॑रत् । अति॑छन्दा इन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भो गौर्वयो॑ दधुः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (सुक्षत्रः) उत्तम धनवान् जन (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यज्ञम्) संगमनीय (भेषजम्) औषध को (करत्) करे और जो (अतिछन्दाः) अतिछन्द और (ऋषभः) उत्तम (गौः) बैल (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (वयः) सुन्दर अपने व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही सब (दधुः) धारण करें इस को जानो ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो लोग अच्छे पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का नाश करते हैं और पुरुषार्थ से धन तथा आयु का धारण करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २२ ॥

वसन्तेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । रुद्रा देवताः । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः । रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु वा प्रथम कक्षा वाले विद्वान् लोग (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त (स्तुताः) स्तुति को प्राप्त हुए (त्रिवृता) तीनों कालों में विद्यमान (वसन्तेन) जिस में सुख से रहते हैं उस प्राप्त होने योग्य वसन्त (ऋतुना) ऋतु के साथ वर्तमान हुए (रथन्तरेण) जहां रथ से तरते हैं उस (तेजसा) तीक्ष्ण स्वरूप से (इन्द्रे) सूर्य के प्रकाश में (हविः) देने योग्य (वयः) आयु बढ़ाने हारे वस्तु को (दधुः) धारण करें उन को स्वरूप से जान कर संगति करो ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग रहने के हेतु दिव्य पृथ्वी आदि लोकों वा विद्वानों की वसन्त में सङ्गति करें वे वसन्तसम्बन्धी सुख को प्राप्त होवें ॥ २३ ॥

ग्रीष्मेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
मध्यम ब्रह्मचर्य वि० ॥

ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः । बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां जीवात्मा वा मध्यम कक्षा के (देवाः) दिव्यगुणयुक्त विद्वान् (पञ्चदशे) पन्द्रहवें व्यवहार में (ग्रीष्मेण) सब रसों के खेंचने और (ऋतुना) उत्पन्न प्राप्त करने हारे ग्रीष्म ऋतु वा (बृहता) बड़े (यशसा) यश से (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) ग्रहण करने योग्य (बलम्) बल और (वयः) जीवन को (दधुः) धारण करें उन को तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थः—जो ४४ (चवालीस) वर्षपर्यन्त ब्रह्मचर्य से विद्वान् हुए अन्य मनुष्यों के शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं वे भाग्यवान् होते हैं ॥ २४ ॥

वर्षाभिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अथ उत्तम ब्रह्मचर्य वि० ॥

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

९९

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वर्षाभिः) जिस में मेघ वृष्टि करते हैं उस वर्षा (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य ऋतु (वैरूपेण) अनेक रूपों के होने से (ओजसा) जो बल और उस (विशा) प्रजा के साथ रहने वाले (आदित्याः) बारह महीने वा उत्तम कल्प के विद्वान् (सप्तदशे) सत्रहवें (स्तोमे) स्तुति के व्यवहार में (स्तुताः) प्रशंसा किये हुए (इन्द्रे) जीवात्मा में (हविः) देने योग्य (वयः) काल के ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं उन को तुम लोग जान कर उपकार करो ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग विद्वानों के संग से काल की स्थूल सूक्ष्म गति को जान के एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गमाते हैं वे नानाविध ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

शारदेनेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

शारदेन ऋतुना देवा एकविꣳश ऋभवं स्तुताः । वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो (एकविंशे) इक्कीसवें व्यवहार में (स्तुताः) स्तुति किये हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (शारदेन) शरद् (ऋतुना) ऋतु वा (वैराजेन) विराट् छन्द में प्रकाशमान अर्थ के साथ (श्रिया) शोभा और लक्ष्मी के साथ वर्ताव वर्तने हारे जन (इन्द्रे) जीवात्मा में (श्रियम्) लक्ष्मी और (हविः) देने लेने योग्य (वयः) वांछित सुख को (दधुः) धारण करें उन का तुम लोग सेवन करो ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो लोग अच्छे पथ्य करने हारे शरद् ऋतु में रोगरहित होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥ २६ ॥

हेमन्तेनेत्यस्य आत्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः । बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य लोगो जो (त्रिणवे) सताईसवें व्यवहार में (हेमन्तेन) जिस में जीवों के देह बढ़ते जाते हैं उस (ऋतुना) प्राप्त होने योग्य हेमन्त ऋतु के साथ वर्त्तते हुए (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (देवाः) दिव्यगुणयुक्त (मरुतः) मनुष्य (बलेन) मेघ से (शक्वरीः) शक्ति के निमित्त गौओं के (सहः) बल तथा (हविः) देने लेने योग्य

(वयः) वांछित सुख को (इन्द्रे) जीवात्मा में (दधुः) धारण करें उन का तुम सेवन करो ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो लोग सब रसों को पकाने हारे हेमन्त ऋतु में यथायोग्य व्यवहार करते हैं वे अत्यन्त बलवान् होते हैं ॥ २७ ॥

शैशिरेणेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मं० ॥

शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिँशेऽमृता स्तुताः। सत्येन रेवतीः क्षत्रँ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २८ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य (स्तुताः) प्रशंसा के योग्य (शैशिरेण, ऋतुना) प्राप्त होने योग्य शिशिर ऋतु से (देवाः) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले (सत्येन) सत्य के साथ (त्रयस्त्रिंशे) तेंतीस वसु आदि के समुदाय में विद्वान् लोग (रेवतीः) धनयुक्त शत्रुओं की सेनाओं को कूद के जाने वाली प्रजाओं और (इन्द्रे) जीव में (हविः) देने लेने योग्य (क्षत्रम्) धन वा राज्य और (वयः) वाञ्छित सुख को (दधुः) धारण करें उन से पृथिवी आदि की विद्याओं का ग्रहण करो ॥ २८ ॥

भावार्थः-जो लोग पीछे कहे हुए आठ वसु, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य बिजुली और यज्ञ इन तेंतीस दिव्य पदार्थों को जानते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्समिधाऽग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रँ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

पदार्थः-हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन जैसे (होता) देने वाला (इडस्पदे) पृथिवी और अन्न के स्थान में (समिधा) इन्धनादि साधनों से (अग्निम्) अग्नि को (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य वा जीव और (सरस्वतीम्) सुशिक्षायुक्त वाणी को (अजः) प्राप्त होने योग्य (धूम्रः) धुमैले भेड़े के (न) समान कोई जीव (गोधूमैः)

गेहूं और (कुवलैः) जिन से बल नष्ट हो उन बेरों से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत् करे वैसे (शष्पैः) हिंसाओं के (न) समान साधनों से जो (तेजः) प्रगल्भपन (मधु) मधुर जल (इन्द्रियम्) धन (पयः) दूध वा अन्न (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घृत (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उन के साथ (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो लोग इस संसार में साधन और उपसाधनों से पृथिवी आदि की विद्या को जानते हैं वे सब उत्तम पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥२९॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॒त्सर॑स्वती॒मवि॑र्मे॒षो न भे॑ष॒जं प॒था मधु॑मता॒ भर॑न्न॒श्विनेन्द्रा॑य वी॒र्यं᳖ बद॑रैरुप॒वाका॑भिर्भेष॒जं तोक्म॑भिः॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन जैसे (तनूनपात्) देह की ऊनता को पालने अर्थात् उस को किसी प्रकार पूरी करने और (होता) ग्रहण करने वाला जन (सरस्वतीम्) बहुत ज्ञान वाली वाणी को वा (अविः) भेड़ और (मेषः) बकरा के (न) समान (मधुमता) बहुत जलयुक्त (पथा) मार्ग से (भेषजम्) औषध को (भरन्) धारण करता हुआ (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (वीर्यम्) पराक्रम को वा (बदरैः) बेर और (उपवाकाभिः) उपदेश रूप क्रियाओं से (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) जल और (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुये रस के साथ (सोमः) ओषधियों के समूह (घृतम्) घृत और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो संगति करने हारे जन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को प्राप्त हो के पथ्याहार विहारों से पराक्रम बढ़ा और पदार्थों के ज्ञान को प्राप्त होके ऐश्वर्य्य को बढ़ाते हैं वे जगत् के भूषण होते हैं ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी विषय को अगले मंत्र में० ॥

होता यक्षन्नराशंसं न नग्नहुं पतिं सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपा इन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन जैसे (होता) देने वाला (नराशंसम्) जो मनुष्यों से स्तुति किया जाय उसके (न) समान (नग्नहुम्) नग्न हुए पुरुषों को कारागृह में डालने वाले (पतिम्) स्वामी वा (सुरया) जल के साथ (भेषजम्) औषध को वा (इन्द्रस्य) दुष्टगण का विदारण करने हारे जन के (वीर्यम्) शूरवीरों में उत्तम बल को (यक्षत्) संगत करे तथा (मेषः) उपदेश करने वाला (सरस्वती) विद्या संबन्धिनी वाणी (भिषक्) वैद्य और (रथः) रथ के (न) समान (चन्द्री) बहुत सुवर्ण वाला जन (अश्विनोः) आकाश और पृथिवी के मध्य (वपाः) क्रियाओं को वा (बदरैः) बेरों के समान (उपवाकाभिः) समीप प्राप्त हुई वाणियों के साथ (भेषजम्) औषध को संगत करे वैसे जो (तोक्मभिः) सन्तानों के साथ (पयः) दूध (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो लोग लज्जाहीन पुरुषों को दण्ड देते स्तुति करने योग्यों की स्तुति और जल के साथ औषध का सेवन करते हैं वे बल और नीरोगता को पाके ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। सरस्वत्यादयो देवताः। विराडतिधृतिश्छन्दः।

षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदिड ईडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (होतः) हवनकर्त्ता जन जैसे (इडा) स्तुति करने योग्य वाणी से (ईडितः) प्रशंसायुक्त (आजुह्वानः) सत्कार से आह्वान किया हुआ (होता) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य (बलेन) बल से (सरस्वतीम्) वाणी और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को

(ऋषभेण) चलने योग्य उत्तम (गवा) बैल से (इन्द्रियम्) धन तथा (अश्विना) आकाश और पृथिवी को (यवैः) यव आदि अन्नों से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (भेषजम्) औषध को (वर्द्धयन्) बढ़ाता हुआ (कर्कन्धुभिः) बेर की क्रिया का धारण करने वालों से (मधु) मीठे (लाजैः) प्रफुल्लित अन्नों के (न) समान (मासरम्) भात को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त होते हुए रस के साथ (सोमः) औषधि समूह (पयः) रस (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) होम कर ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्य ब्रह्मचर्य से शरीर और आत्मा के बल को तथा विद्वानों की सेवा विद्या और पुरुषार्थ ऐश्वर्य को प्राप्त हो पथ्य और औषध के सेवन से रोगों का विनाश कर नीरोगता को प्राप्त हो ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (होतः) हवन करने हारे जन जैसे (होता) देने हारा (ऊर्णम्रदाः) ढांपने हारों को मर्दन करने वाले जन (भिषक्) वैद्य (शिशुमती) और प्रशंसित बालकों वाली (अश्वा) शीघ्र चलने वाली घोड़ी (दुहे) परिपूर्ण करने के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (यक्षत्) संगत करे वा जैसे (नासत्या) सत्य व्यवहार के करने हारे (अश्विना) वैद्यविद्या में व्याप्त (भिषजा) उत्तम वैद्य मेल करें वा जैसे (भिषक्) रोग मिटाने और (धेनुः) दुग्ध देने वाली गाय वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली वाणी (भिषक्) सामान्य वैद्य (इन्द्राय) जीव के लिये मेल करे वैसे जो (परिस्रुता) प्राप्त हुए रस के साथ (भेषजम्) जल (पयः) दूध (सोमः) ओषधिगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त हों उनके साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या और संगति से सब पदार्थों से उपकार ग्रहण करें तो वायु और अग्नि के समान सब विद्याओं के सुखों को व्याप्त होवें ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥
फिर उसी वि०॥

होता॑ यक्षद्दुरो॒ दिशः॑ कव॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्यां॒ न दुरो॒ दिश॒ इन्द्रो॒ न रोद॑सी दु॒घे दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वत्य॒श्विनेन्द्रा॑य भेष॒जꣳ शु॒क्रं न ज्योति॑रिन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑॥ ३४॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) लेने हारा (कवष्यः) छिद्रसहित वस्तुओं के (न) समान (दुरः) द्वारों और (व्यचस्वतीः) व्याप्त होने वाली (दिशः) दिशाओं को वा (अश्विभ्याम्) इन्द्र और अग्नि से जैसे (न) वैसे (दुरः) द्वारों और (दिशः) दिशाओं को वा (इन्द्रः) बिजुली के (न) समान (दुघे) परिपूर्णता करने वाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी के और (धेनुः) गाय के समान (सरस्वती) विज्ञान वाली वाणी (इन्द्राय) जीव के लिये (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (शुक्रम्) वीर्य करने वाले जल के (न) समान (भेषजम्) औषध तथा (ज्योतिः) (प्रकाश) करने हारे (इन्द्रियम्) मन आदि को (दुहे) परिपूर्णता के लिये (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) और सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर॥ ३४॥

भावार्थः—इस में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य सब दिशाओं के द्वारों वाले सब ऋतुओं में सुखकारी घर बनावें वे पूर्ण सुख को प्राप्त होवें इन के सब प्रकार के उदय के सुख की न्यूनता कभी नहीं होवे॥ ३४॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। भुरिगतिधृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः॥
फिर उसी वि०॥

होता॑ यक्षत्सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या॒ त्विषि॒मिन्द्रे॒ न भे॑षजꣳ श्ये॒नो न रज॑सा हृ॒दा श्रि॒या न मास॑रं॒ पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य होत॒र्यज॑॥ ३५॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (सुपेशसा) सुन्दर स्वरूपवती (उषे) काम का दाह करने वाली स्त्रियां (नक्तम्) रात्रि और (दिवा) दिन में (अश्विना) व्याप्त होने वाले सूर्य और चन्द्रमा (सरस्वत्या) विज्ञानयुक्त वाणी से (इन्द्रे) परमै-

ऐश्वर्य्यवान् प्राणी में (त्विषिम्) प्रदीप्ति और (भेषजम्) जल को (समञ्जाते) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं उन के (न) समान और (रजसा) लोकों के साथ वर्त्तमान (श्येनः) विशेष ज्ञान कराने वाले विद्वान् के (न) समान (होता) लेने हारा (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा के (न) समान (हृदः) मन से (प्रासरम्) भात वा अच्छे २ संस्कार किये हुए भोजन के पदार्थों को (यक्षत्) संगत करे वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) सब ओषधि का रस (सोमः) सब ओषधि समूह (घृतम्) जल (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे रातदिन सूर्य्य और चन्द्रमा सब को प्रकाशित करते और सुन्दर रूपयौवनसम्पन्न स्वधर्मपत्नी अपने पति की सेवा करती वा जैसे पाकविद्या जानने वाला विद्वान् पाककर्म का उपदेश करता है वैसे सब का प्रकाश और सब कामों का सेवन करो और भोजन के पदार्थों को उत्तमता से बनाओ ॥ ३५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षद्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒श्विनेन्द्रं॒ न जागृ॑वि॒ दिवा॒ नक्तं॒ न भे॑ष॒जैः । शूष॒ꣳ सर॑स्वती भि॒षक् सीसे॑न दुह इन्द्रि॒यं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) लेने हारा (दैव्या) दिव्यगुण वालों में प्राप्त (होतारा) ग्रहण करने और (भिषजा) वैद्य के समान रोग मिटाने वाले (अश्विना) अग्नि और वायु को (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (यक्षत्) संगत करे वा (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात्रि में (जागृवि) जागती अर्थात् काम के सिद्ध करने में अति चैतन्य (सरस्वती) वैद्यकशास्त्र जानने वाली उत्तम ज्ञानवती स्त्री और (भिषक्) वैद्य (भेषजैः) जलों और (सीसेन) धनुष् के विशेष व्यवहार से (शूषम्) बल के (न) समान (इन्द्रियम्) धन को (दुहे) परिपूर्ण करते हैं वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दुग्ध (सोमः) ओषधीगण (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस में उपमा और वाचकलु०—हे विद्वान् लोगो जैसे अच्छे वैद्यक

विद्या पढ़ी हुई स्त्री काम सिद्ध करने को दिन रात उत्तम यत्न करती हैं वा जैसे वैद्यलोग रोगों को मिटा के शरीर का बल बढ़ाते हैं वैसे रह के सब को आनन्दयुक्त होना चाहिये ॥ ३६॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती वाचा सरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्या देने वाले विद्वज्जन जैसे (होता) विद्या लेने वाला (तिस्रः) तीन (देवीः) देदीप्यमान नीतियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (यक्षत्) अच्छे प्रकार प्राप्त करे वा जैसे (अपसः) कर्मवान (त्रिधातवः, त्रयः) सब विषयों को धारण करने वाले सत्व रजस्तम गुण जिन में विद्यमान ये तीन अर्थात् अस्मद् युष्मद् और तद्पदवाच्य जीव (हिरण्ययम्) ज्योतिर्मय (रूपम्) नेत्र के विषय रूप को (इन्द्रे) बिजुली में प्राप्त करें वा (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा तथा (इडा) स्तुति करने योग्य (भारती) धारणा वाली बुद्धि के (न) समान (सरस्वती) अत्यन्त विदुषी (वाचा) विद्या और सुशिक्षायुक्त वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् के लिये (महः) अत्यन्त (इन्द्रियम्) धन की (दुहे) परिपूर्णता करती वैसे जो (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त हुये रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधिसमूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे हाड, मज्जा और वीर्य शरीर में कार्य के साधन हैं वा जैसे सूर्य आदि और वाणी सब को जनाने वाले हैं वैसे हो और सृष्टि की विद्या को प्राप्त हो के लक्ष्मी वाले होओ ॥ ३७ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग्

यशः सुरया भेषजꣳ श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेनेहारे जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (सुरेतसम्) अच्छे पराक्रमी (ऋषभम्) बैल और (नर्यापसम्) मनुष्यों में अच्छे कर्म करने तथा (त्वष्टारम्) दुःख काटने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त जन को (अश्विना) वायु और विजुली वा (भिषजम्) उत्तम वैद्य के (न) समान (सरस्वतीम्) बहुत विज्ञानयुक्त वाणी को (ओजः) बल के (न) समान (यक्षत्) प्राप्त करे (भिषक्) वैद्य (वृकः) वज्र के (न) समान (जूतिः) वेग (इन्द्रियम्) मन (रभसः) वेग (यशः) धन वा अन्न को (सुरया) जल से (भेषजम्) औषध को (श्रिया) धन के (न) समान क्रिया से (मासरम्) अच्छे पके हुए अन्न को प्राप्त करे वैसे (परिस्रुता) सब ओर से प्राप्त पुरुषार्थ से (पयः) पीने योग्य रस और (सोमः) ऐश्वर्य (घृतम्) घी और (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमावाचकलु०—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य, धर्म के आचरण, विद्या और सत्सङ्गति आदि से सब सुख को प्राप्त होते हैं वैसे मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ ३८ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेनेहारे जैसे (भिषक्) वैद्य (होता) वा लेने हारा (इन्द्राय) धन के लिये (वनस्पतिम्) किरणों को पालने और (शमितारम्) शान्ति देने हारे (शतक्रतुम्) अनन्त बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त जन को (भीमम्) भयकारक के (न) समान (मन्युम्) क्रोध को वा (नमसा) वज्र से (व्याघ्रम्) सिंह और (राजानम्) देदीप्यमान राजा को (यक्षत्) प्राप्त करे वा (सरस्वती) उत्तम विज्ञान वाली स्त्री और (अश्विना) सभा और सेनापति (भामम्) क्रोध को (दुहे) परिपूर्ण करे वैसे (परिस्रुता) प्राप्त हुए पुरुषार्थ के साथ (इन्द्रियम्) धन (पयः) रस (सोमः) चन्द्र

(घृतम्) घी (मधु) मधुर वस्तु (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन कर ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि शान्ति से विद्वान् पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त हो के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म के सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। निचृदत्यष्टी छन्दसी। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदग्निꣳ स्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳ स्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳ सरस्वत्यै स्वाहाऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳ स्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳ स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणो अग्निर्भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥४०॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जन जैसे (होता) ग्रहण करने हारा (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घी की (स्वाहा) उत्तम क्रिया से वा (स्तोकानाम्) स्वल्प (मेदसाम्) स्निग्ध पदार्थों की (स्वाहा) अच्छे प्रकार रक्षण क्रिया से (अग्निम्) अग्नि को (पृथक्) भिन्न २ (स्वाहा) उत्तम रीति से (अश्विभ्याम्) राज्य के स्वामी और पशु के पालन करने वालों से (छागम्) दुःख के छेदन करने को (सरस्वत्यै) विज्ञानयुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (मेषम्) सेचन करने हारे को (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये (स्वाहा) प्रशंसित क्रिया से (ऋषभम्) श्रेष्ठ पुरुषार्थ को (सहसे) बल (सिंहाय) और जो शत्रुओं का हननकर्त्ता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम वाणी से (इन्द्रियम्) धन को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (अग्निम्) पावक के (न) समान (भेषजम्) औषध (सोम) सोमलतादि ओषधिसमूह (इन्द्रियम्) वा मन आदि इन्द्रियों को (स्वाहा) शान्ति आदि क्रिया और विद्या से (सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षक (इन्द्रम्) सेना पति को (भिषजाम्) वैद्यों के (पतिम्) पालन करने हारे (सवितारम्) ऐश्वर्य के कर्त्ता (वरुणम्) श्रेष्ठ पुरुष को (स्वाहा) निदान आदि विद्या से (वनस्पतिम्) वनों के

पालन करने हारे को (स्वाहा) उत्तम विद्या से (प्रियम्) प्रीति करने योग्य (पाथः) पालन करने वाले अन्न के (न) समान (भेषजम्) उत्तम औषध को (यक्षत्) संगत करे वा जैसे (आज्यपाः) विज्ञान के पालन करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग और (भेषजम्) चिकित्सा करने योग्य को (जुषाणः) सेवन कर्त्ता हुआ (अग्निः) पावक के समान तेजस्वी जन संगत करें वैसे जो (परिस्रुता) चारों ओर से प्राप्त हुए रस के साथ (पयः) दूध (सोमः) ओषधियों का समूह (घृतम्) घी (मधु) सहत (व्यन्तु) प्राप्त होवें उन के साथ वर्त्तमान तू (आज्यस्य) घी का (यज) हवन किया कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या क्रियाकुशलता और प्रयत्न से अग्न्यादि विद्या को जान के गौ आदि पशुओं का अच्छे प्रकार पालन करके सब के उपकार को करते हैं वे वैद्य के समान प्रजा के दुःख नाशक होते हैं ॥ ४० ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । प्रतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षेता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑ । होता॑ यक्ष॒त्सर॑स्वतीं मे॒षस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑ । होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ व॒पाया॒ मेद॑सो जु॒षता॑ᳪं ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता) और देने हारा (यक्षत्) अनेक प्रकार के व्यवहारों की संगति करे (अश्विनौ) पशु पालने वा खेती करने वाले (छागस्य) बकरा गौ भैंस आदि पशुसम्बन्धी वा (वपायाः) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और (मेदसः) चिकने पदार्थ के (हविः) लेने देने योग्य व्यवहार का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) व्यवहारों की संगति कर हे (होतः) देने हारे जन तू जैसे (होता) लेने हारा (मेषस्य) मेढ़ा के (वपायाः) बीज को बढ़ाने वाली क्रिया और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) अग्नि आदि में छोड़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञान वाली वाणी का (जुषताम्) सेवन करे (यक्षत्) वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे (यज) सब पदार्थों का यथायोग्य मेल कर हे (होतः) देने हारे तू जैसे (होता) लेने हारा (ऋषभस्य) बैल

को (वपाभ्यः) बढ़ने वाली रीति और (मेदसः) चिकने पदार्थ सम्बन्धी (हविः) देने योग्य पदार्थ और (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य करने वाले का (जुषताम्) सेवन करे वा यथायोग्य (यक्षत्) उक्त पदार्थों का मेल करे वैसे (यज) यथायोग्य पदार्थों का मेल कर ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को बढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उस से उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाव वाले होते हैं और जो खेती करने आदि के लिये इन बैलों को युक्त करते हैं वे धनधान्ययुक्त होते हैं ॥ ४१ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । होत्रादयो देवताः । पूर्वस्य त्रिपाद्गायत्री छन्दः ।
सुरामाण इत्यस्यातिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारा जैसे (होता) देने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वाले पुरुषों (सरस्वतीम्) तथा विज्ञान की भरी हुई वाणी और (सुत्रामाणम्) प्रजाजनों की अच्छी रक्षा करने हारे (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा को (यक्षत्) प्राप्त हो वा (इमे) ये जो (सुरामाणः) अच्छे देने हारे (सोमाः) ऐश्वर्यवान् सभासद् (सुताः) जो कि अभिषेक पाये हुए हों वे (छागैः) विनाश करने योग्य पदार्थों वा बकरा आदि पशुओं (न) जैसे तथा (मेषैः) देखने योग्य पदार्थ वा मेढ़ों (ऋषभैः) श्रेष्ठ पदार्थों वा बैलों और (शष्पैः) हिंसकों से जैसे (न) वैसे (तोक्मभिः) सन्तानों और (लाजैः) भुंजे अन्नों से (महस्वन्तः) जिन के सत्कार विद्यमान हों वे मनुष्य और (मदाः) आनन्द (मासरेण) पके हुए चावलों के (परिष्कृताः) शोभायमान (शुक्राः) शुद्ध (पयस्वन्तः) प्रशंसित जल और दूध से युक्त (अमृताः) जिन में अमृत रूप रस (मधुश्चुतः) जिन से मधुरादि गुण टपकते वा (प्रस्थिताः) एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हुए (वः) तुम्हारे लिये पदार्थ बनाए हैं (तान्) उनको प्राप्त होवे वा जैसे (अश्विना) सुन्दर सत्कार पाये हुए पुरुष

(सरस्वती) प्रशंसित विद्यायुक्त स्त्री (सुत्रामा) अच्छी रक्षा करने वाला (वृत्रहा) मेघ को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् सज्जन (सोम्यम्) शीतलता गुण के योग्य (मधु) मीठेपन का (जुषन्ताम्) सेवन करें (पिबन्तु) पीवें (मदन्तु) हर्षें और समस्त विद्याओं को (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू (यज) सब पदार्थों की यथायोग्य संगति किया कर ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भलीभांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते हैं वे अच्छे रसयुक्त अच्छे संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ जो सुपरीक्षित हों उन को युक्ति के साथ खा और रसों को पी धर्म अर्थ काम मोक्ष के निमित्त अच्छा यत्न करते हैं वे सदैव सुखी होते हैं ॥ ४२ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। होत्रादयो देवताः। आद्यस्य याजुषी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। उत्तरस्योत्कृतिश्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षद॒श्विनौ॒ छाग॑स्य ह॒विष॒ आत्ता॑म॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस्तां॑ नू॒नं घा॒से अ॑ज्रा॒णां॒ यव॑सप्रथमाना॒ᳪ सु॒मत्क्ष॑राणाᳪ शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑त ए॒वाश्विना॑ जु॒षेता॑ᳪ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः–हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने वाला (अश्विनौ) पढ़ाने और उपदेश करने वालों को (यक्षत्) संगत करे और वे (अद्य) आज (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के (मध्यतः) बीच से (हविषः) लेने योग्य पदार्थ का (मेदः) चिकना-भाग अर्थात् घी दूध आदि (उद्भृतम्) उद्धार किया हुआ (आत्ताम्) लेवें वा जैसे (द्वेषोभ्यः) दुष्टों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषों के समूह में उत्तम स्त्री के (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय करके (घस्ताम्) खावें वा जैसे (यवसप्रथमानाम्) जो जिन का पहिला अन्न (घासेअज्राणाम्) जो खाने में आगे पहुंचने योग्य (सुमत्क्षराणाम्) जिन के उत्तम २ आनन्दों का कंपन आगमन (शतरुद्रियाणाम्) दुष्टों को रुलाने हारे सैकड़ों रुद्र जिनके देवता (पीवोपवसनानाम्) वा जिन के मोटे २ कपड़ों के ओढ़ने पहिरने (अग्निष्वात्तानाम्) वा जिन्होंने भलीभांति अग्निविद्या का ग्रहण किया हो इन सब प्राणियों के (पार्श्वतः) पार्श्वभाग

(श्रोणितः) कटिप्रदेश (शितामतः) तीक्ष्ण जिस में कच्चा अन्न उस प्रदेश (उत्सादतः) उपाड़ते हुए अङ्ग और (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अङ्ग से व्यवहार वा (अवत्तानाम्) नमे हुए उत्तम अङ्गों (एव) ही के व्यवहार को (अश्विना) अच्छे वैद्य (करतः) करें और (हविः) उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का (जुषेताम्) सेवन करें वैसे (यज) सब पदार्थों वा व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो छेरी आदि पशुओं की रक्षा कर उन के दूध आदि का अच्छा अच्छा संस्कार और भोजन कर वैरभावयुक्त पुरुषों को निवारण कर और अच्छे वैद्यों का संग करके उत्तम खाना पहिरना करते हैं वे प्रत्येक अंग से रोगों को दूर कर सुखी होते हैं ॥ ४३ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वांसो देवताः । पूर्वस्य याजुषी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । हविष इत्युत्तरस्य स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविष आवयद्द्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्न्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬं सुमत्क्षराणाᳬं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳬं सरस्वती जुषताᳬं हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) लेने हारे जैसे (होता) देने वाला (अद्य) आज (मेषस्य) उपदेश को पाये हुए मनुष्य के (शितामतः) खरे स्वभाव से (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में प्रसिद्ध व्यवहार से जो (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) उद्धार किया अर्थात् निकाला उसको (सरस्वतीम्) और वाणी को (आ, अवयत्) प्राप्त होता तथा (यक्षत्) सत्कार करता और (द्वेषोभ्यः) शत्रुओं से (पुरा) पहिले तथा (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुषसम्बन्धिनी स्त्री के (पुरा) प्रथम (नूनम्) निश्चय से (घसत्) खावे वा (घासे, अज्राणाम्) जो भोजन करने में सुन्दर (यवसप्रथमानाम्) मिले न मिले हुए आदि (सुमत्क्षराणाम्) श्रेष्ठ आनन्द की वर्षा कराने और (पीवोपवसनानाम्) मोटे कपड़े पहरने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) अग्निविद्या को भलीभांति ग्रहण किये हुए और (शतरुद्रियाणाम्) बहुतों के बीच विद्वानों का

अभिप्राय रखने हारों के (पार्श्वतः) समीप और (श्रोणितः) कटिभाग से (उत्सादतः) शरीर से जो त्याग उस से वा (अङ्गादङ्गात्) अङ्ग अङ्ग से (अवत्तानाम्) ग्रहण किये हुए व्यवहारों की विद्या की विद्या को (करत्) ग्रहण करे (एवम्) ऐसे (सरस्वती) पण्डिता स्त्री उस का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तू भी (हविः) ग्रहण करने योग्य व्यवहार की (यज) संगति किया कर ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सज्जनों के संग से दुष्टों को निवारण कर युक्त आहार विहारों से आरोग्यपन को पाकर धर्म का सेवन करते वे कृतकृत्य होते हैं ॥ ४४ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । यजमानर्त्विजो देवताः । पूर्वस्य भुरिक् प्राजापत्योष्णिक् आवयदित्युत्तरस्य भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑मृष॒भस्य॑ ह॒विष॒ आव॑यद॒द्य म॑ध्य॒तो मेद॒ उद्भृ॑तं पु॒रा द्वेषो॑भ्यः पु॒रा पौरु॑षेय्या गृ॒भो घस॑न्नू॒नं घा॒से अ॑ज्रा॒णां यव॑सप्रथमाना सु॒मत्क्ष॑राणा शतरु॒द्रिया॑णामग्निष्वा॒त्तानां॒ पीवो॑पवसनानां पार्श्व॒तः श्रो॑णि॒तः शि॑ताम॒त उ॑त्साद॒तोऽङ्गा॑दङ्गा॒दव॑त्तानां॒ कर॑देवमिन्द्रो॑ जु॒षता॑ ह॒विर्हो॑त॒र्यज॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा पुरुष (घासे अज्राणाम्) भोजन करने में प्राप्त होने (यवसप्रथमानाम्) जौ आदि अन्न वा मिले न मिले हुए पदार्थों को विस्तार करने और (सुमत्क्षराणाम्) भलीभांति प्रमाद का विनाश करने वाले (अग्निष्वात्तानाम्) जाठराग्नि अर्थात् पेट में भीतर रहने वाली आग से अन्न ग्रहण किये हुए (पीवोपवसनानाम्) मोटे पोढ़े उढ़ाने ओढ़ने (शतरुद्रियाणाम्) और सैकड़ों दुष्टों को रुलाने हारे (अवत्तानाम्) उदारचित्त विद्वानों के (पार्श्वतः) और पास के अंग वा (श्रोणितः) क्रम से वा (शितामतः) तीक्ष्णता के साथ जिस से रोग छिन्न भिन्न हो गया हो उस अंग वा (उत्सादतः) त्यागमात्र वा (अङ्गादङ्गात्) प्रत्येक अंग से (हविः) रोग विनाश करने हारी वस्तु और (इन्द्रम्) परमैश्वर्य को सिद्ध (करत्) करे और (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला राजा उस का (जुषताम्) सेवन करे तथा वह राजा जैसे (अद्य) आज (ऋषभस्य) उत्तम (हविषः) लेने योग्य पदार्थ के (मध्यतः) बीच में उत्पन्न हुआ (मेदः) चिकना पदार्थ (उद्भृतम्) जो कि उत्तमता से पुष्ट किया गया अर्थात् सम्हाला गया हो उस को (आ, अवयत्) व्याप्त हो सब ओर से प्राप्त हो

(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों से (पुरा) प्रथम (गृभः) ग्रहण करने योग्य (पौरुषेय्याः) पुरुष-सम्बन्धिनी विद्या के सम्बन्ध से (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चय के साथ (यज्ञत्) सत्कार करे वा (एवम्) इस प्रकार (घसत्) भोजन करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४५ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य विद्वानों के संग से दुष्टों का निवारण तथा श्रेष्ठ उत्तम जनों का सत्कार कर लेने योग्य पदार्थ को लेकर और दूसरों को ग्रहण करा सबकी उन्नति करते हैं वे सत्कार करने योग्य होते हैं ॥ ४५ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । भुरिगभिकृती छन्दसी । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षुद्वनुस्पतिमुभिहि पिष्टतमया रभिष्ठया रशुनयाधित यत्राश्विनोश्छागस्य हुविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य हुविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषुभस्य हुविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवन्देवो वनस्पतिर्जुषताᳬ हुविर्होतुर्यज ॥ ४६ ॥

पदार्थः-हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा सत्पुरुष (पिष्टतमया) अतिपिसी हुई (रभिष्ठया) अत्यन्त शीघ्रता से पढ़ने वाला वा जिसका बहुत प्रकार से प्रारम्भ होता है उस वस्तु और (रशनया) रश्मि के साथ (यत्र) जहां (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के सम्बन्ध से पालित (छागस्य) घास को छेदने खाने हारे बकरा आदि पशु और (हविषः) देने योग्य पदार्थ-सम्बन्धी (प्रिया) मनोहर (धामानि) उत्पन्न होने रहने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (सरस्वत्याः) नदी (मेषस्य) मेढ़ा और (हविषः) ग्रहण करने पदार्थ-सम्बन्धी (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त जन के (ऋषभस्य) प्राप्त होने और (हविषः) देने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मन के हरने वाले (धामानि)

जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (अग्नेः) प्रसिद्ध और विजुलीरूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सोमस्य) ओषधियों के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सुत्राम्णः) भलीभांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त उत्तम पुरुष के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (सवितुः) सब को प्रेरणा देने हारे पवन के (प्रिया) मनोहर (धामानि) उत्पन्न होने ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (वरुणस्य) श्रेष्ठ पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम वा (यत्र) जहां (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के (प्रिया) उत्तम (पाथांसि) अन्न अर्थात् उनके पीने के जल वा (यत्र) जहां (आज्यपानाम) गति अर्थात् अपनी कक्षा में घूमने से जीवों के पालने वाले (देवानाम्) पृथिवी आदि दिव्य लोकों का (प्रिया) उत्तम (धामानि) उत्पन्न होना उनके ठहरने की जगह और नाम वा (यत्र) जहां (होतुः) उत्तम सुख देने और (अग्नेः) विद्या से प्रकाशमान होने हारे अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम है (तत्र) वहां (एतान्) इन उक्त पदार्थों को (प्रस्तुत्येव) प्रकरण से अर्थात् समय २ से चाहना सी कर और (उपस्तुत्येव) उनकी समीप प्रशंसा सी करके (उपावस्रक्षत्) उनको गुण कर्म स्वभाव से यथायोग्य कामों में उपार्जन करे अर्थात् उक्त पदार्थों का संचय करे (रभीयसइव) बहुत प्रकार से अतीव आरम्भ के समान (कृत्वी) करके कार्यों के उपयोग में लावे (एवम्) और इस प्रकार (करत्) उनका व्यवहार करे वा जैसे (वनस्पतिः) सूर्य आदि लोकों की किरणों की पालना करने हारा और (देवः) दिव्यगुणयुक्त अग्नि (हविः) संस्कार किये अर्थात् उत्तमता से बनाये हुए पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे और (हि) निश्चय से (वनस्पतिम्) वट आदि वृक्षों को (अभि, अक्षरत्) सब ओर से पहुंचे अर्थात् विजुली रूप से प्राप्त हो और (अधित) उनका धारण करे वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य ईश्वर ने उत्पन्न किये हुए पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को जानकर इन को कार्य की सिद्धि के लिये भलीभांति युक्त करे तो वे अपने चाहे हुए सुखों को प्राप्त होवें ॥ ४६ ॥

होतेत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिगाकृतिरपा-
डिग्युत्तरस्याऽऽकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता॑ यक्षद॒ग्निꣳ स्वि॑ष्ट॒कृत॒मया॑ड॒ग्निर॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य ऋष॒भस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॑ड॒ग्नेः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सोम॑स्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒डिन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॒न्यया॒ट् सवि॒तुः प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड्वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॒न्यया॒ड्वन॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथा॑ꣳस्यया॒ड् दे॒वाना॑माज्य॒पानां॑ प्रि॒या धामा॑नि यक्षद॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि यक्ष॒त्स्वं म॑हि॒मान॒माय॑जता॒मेज्या॒ इषः॑ कृ॒णोतु॒ सो अ॑ध्व॒रा जा॒तवे॑दा जु॒षता॑ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) देने हारे जैसे (होता) लेने हारा (स्विष्टकृतम्) भलीभांति चाहे हुए पदार्थ से प्रसिद्ध किये (अग्निम्) अग्नि को (यक्षत्) प्राप्त और (अयाट्) उस की प्रशंसा करे वा जैसे (अग्निः) प्रसिद्ध आग (अश्विनोः) पवन बिजुली (छागस्य) बकरा आदि पशु (हविषः) और लेने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम को (अयाट्) प्राप्त हो वा (सरस्वत्याः) वाणी (मेषस्य) सींचने वा दूसरे के जीतने की इच्छा करने वाले प्राणी (हविषः) और ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त (ऋषभस्य) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा और (हविषः) ग्रहण करने योग्य पदार्थ के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (अग्नेः) बिजुलीरूप अग्नि के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सोमस्य) ऐश्वर्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सुत्राम्णः) भलीभांति रक्षा करने वाले (इन्द्रस्य) सेनापति के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के उत्पन्न करने हारे उत्तम पदार्थ ज्ञान के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वरुणस्य) सब से उत्तम अन्न और जल के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम के (अयाट्) प्रशंसा करे वा (वनस्पतेः) वट आदि वृक्षों के (प्रिया) तृप्ति कराने वाले (पाथांसि) फलों को (अयाट्) प्राप्त हो वा (आज्यपानाम्) जानने योग्य पदार्थ की

रक्षा करने और रस पीने वाले (देवानाम्) विद्वानों के (प्रिया) प्यारे मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम का (यक्षत्) मिलाना वा सराहना करे वा (होतुः) जलादिक ग्रहण करने और (अग्नेः) प्रकाश करने वाले सूर्य के (प्रिया) मनोहर (धामानि) जन्म स्थान और नाम की (यक्षत्) प्रशंसा करे (स्वम्) अपने (महिमानम्) बड़प्पन का (आ, यजताम्) ग्रहण करे वा जैसे (जातवेदाः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुआ जो पुरुष (एज्याः) अच्छे प्रकार संगयोग्य उत्तम क्रियाओं और (इषः) चाहनाओं को (कृणोतु) करे (सः) वह (अध्वरा) न छोड़ने न विनाश करने योग्य यज्ञों का और (हविः) संग करने योग्य पदार्थ का (जुषताम्) सेवन करे वैसे तूं (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य अपने चाहे हुए को सिद्ध करने वाले अग्नि आदि संसारस्थ पदार्थों को अच्छे प्रकार जान कर प्यारे मन से चाहे हुए सुखों को प्राप्त होते हैं वे अपने बड़प्पन का विस्तार करते हैं ॥ ४७ ॥

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिः सर॑स्वती सु॒दे॒वमिन्द्रे॑ अ॒श्विना॑ । तेजो॒ न चक्षु॑र॒क्ष्योर्ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (इन्द्रे) परमैश्वर्य के निमित्त (देवम्) दिव्य (सुदेवम्) सुन्दर विद्वान् पति को (बर्हिः) अन्तरिक्ष (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा (चक्षुः) आंख के (तेजः) तेज के (न) समान (यज) प्रशंसा वा संगति करती है और जैसे विद्वान् जन (वसुधेयस्य) जिस में धन धारण करने योग्य हो उस व्यवहारसम्बन्धी (वसुवने) धन की प्राप्ति कराने के लिये (अक्ष्योः) आंखों के (बर्हिषा) अन्तरिक्ष अवकाश से अर्थात् दृष्टि से देख के (इन्द्रियम्) उक्त धन को (दधुः) धारण करते और (व्यन्तु) प्राप्त होते हैं वैसे इसको तूं धारण कर और प्राप्त हो ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-हे मनुष्यो जैसे विदुषी ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या अपने लिये मनोहर पति को पाकर आनन्द करती हैं वैसे विद्या और संसार के पदार्थ का बोध पाकर तुम को भी आनन्दित होना चाहिये ॥ ४८ ॥

देवीर्द्वार इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वानों का उपदेश कैसा होता है यह वि० ॥

देवीर्द्वारो॑ अ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती । प्रा॒णं न वी॒र्यं न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थ-हे विद्वान् जैसे (अश्विना) पवन और सूर्य वा (सरस्वती) विशेष ज्ञान वाली स्त्री और (भिषजा) वैद्य (इन्द्रे) ऐश्वर्य के निमित्त (देवीः) अतीव दीप्ते अर्थात् चकमकाते हुए (द्वारः) पैठने और निकलने के अर्थ बने हुए द्वारों को प्राप्त होते हुए प्राणियों की (नसि) नासिका में (प्राणम्) जो श्वास आती उस के (न) समान (वीर्य्यम्) बल और (द्वारः) द्वारों अर्थात् शरीर के प्रसिद्ध नव छिद्रों को (दधुः) धारण करें (वसुवने) वा धन का सेवन करने के लिये (वसुधेयस्य) धनकोश के (इन्द्रियम्) धन को विद्वान् जन (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-जैसे सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश द्वारों से घर को पैठ घर के भीतर प्रकाश करता है वैसे विद्वानों का उपदेश कानों में प्रविष्ट होकर भीतर मन में प्रकाश करता है। ऐसे जो विद्या के साथ अच्छा यत्न करते हैं वे धनवान् होते हैं ॥ ४९ ॥

देवी उषासावित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्ते यह वि० ॥

दे॒वी उ॒षासा॑व॒श्विना॑ सु॒त्रामेन्द्रे॒ सर॑स्वती । बलं॒ न वाच॑मा॒स्य॒ उ॒षाभ्यां॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (देवीः) निरन्तर प्रकाश को प्राप्त (उषासौ) सायंकाल और प्रातःकाल की सन्धिवेला वा (सुत्रामा) भलीभांति रक्षा करने वाले (सरस्वती) विशेष ज्ञान की हेतु स्त्री (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (वसुवने) धन की सेवा करने वाले के लिये (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस व्यवहारसम्बन्धी (इन्द्रे) उत्तम ऐश्वर्य में (न) जैसे (बलम्) बल को वैसे (आस्ये) मुख में (वाचम्) वाणी को वा (उषाभ्याम्) सायंकाल और प्रातःकाल की वेला से (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और सब को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुषार्थी मनुष्य सूर्य चन्द्रमा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं तथा सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला में सोने और आलस्य आदि को छोड़ ईश्वर का ध्यान करते हैं वे बहुत धन को पाते हैं ॥ ५० ॥

देवी जोष्ट्री इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं यह वि० ॥

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (देवी) प्रकाश देने वाली (जोष्ट्री) सेवने योग्य (सरस्वती) विशेष ज्ञान की निमित्त सायङ्काल और प्रातःकाल की वेला तथा (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयन्) बढ़ाते अर्थात् उन्नति देते हैं वा मनुष्य (ज्योष्ट्रीभ्याम्) संसार को सेवन करती हुई उक्त प्रातःकाल और सायङ्काल की वेलाओं से (कर्णयोः) कानों में (यशः) कीर्त्ति को (श्रोत्रम्) जिससे वचन को सुनता है उस कान के ही (न) समान (दधुः) धारण करते हैं वा (वसुधेयस्य) जिस में धन धरा जाय उस कोशसम्बन्धी (वसुवने) धन को सेवन करनेवाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को (व्यन्तु) विशेषता से प्राप्त होते हैं वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ५१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो सूर्य के कारणों को जानते हैं वे यशस्वी होकर धनवान् कान्तिमान् शोभायमान होते हैं ॥ ५१ ॥

देवी इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। अश्व्यादयो देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसा अपना वर्त्ताव वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः। शुक्रं न ज्योतिस्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो तुम लोग जैसे (देवी) मनोहर (दुघे) उत्तमता पूरण करने वाली प्रातः सायं वेला वा (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के निमित्त (ऊर्ज्जाहुती) अन्न की आहुती (सरस्वती) विशेष ज्ञान कराने हारी स्त्री वा (सुदुघा) सुख पूरण करने हारे (भिषजा) अच्छे वैद्य (अश्विना) वा पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् (शुक्रम्)

शुद्ध जल के (न) समान (ज्योतिः) प्रकाश की (अवतः) रक्षा करते हैं वैसे (स्तनयोः) शरीर में स्तनों की जो (आहुती) ग्रहण करने योग्य क्रिया हैं उनको (धत्त) धारण करो और (वसुधेयस्य) जिसमें धन धरा हुआ उस संसार के बीच (वसुवने) धन के सेवन करने वाले के लिये (इन्द्रियम्) धन को धारण करो जिससे उन उक्त पदार्थों को साधारण सब मनुष्य (व्यन्तु) प्राप्त हों हे गुणों के ग्रहण करने हारे जन वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे अच्छे वैद्य अपने और दूसरों के शरीरों की रक्षा करके वृद्धि करते कराते हैं वैसे सब को चाहिये कि धन की रक्षा करके उसकी वृद्धि करें जिससे इस संसार में अतुल सुख हो ॥ ५२ ॥

देवा देवानामित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ । व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो आप लोग जैसे (देवानाम्) सुख देने हारे विद्वानों के बीच (होतारौ) शरीर के सुख देने वाले (देवा) वैद्यविद्या से प्रकाशमान (भिषजा) वैद्यजन (अश्विना) विद्या में रमते हुए (वषट्कारैः) श्रेष्ठ कामों से (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य को धारण करें (सरस्वती) प्रशंसित विद्या और अच्छी शिक्षायुक्त वाणी वाली स्त्री (त्विषिम्) प्रकाश के (न) समान (हृदये) अन्तःकरण में (मतिम्) बुद्धि को धारण करे वैसे (होतृभ्याम्) देने वालों के साथ उक्त सद्वैद्य और वाणीयुक्त स्त्री को वा (वसुधेयस्य) कोश के (वसुवने) धन को बांटने के लिये (इन्द्रियम्) शुद्ध मन को (दधुः) धारण करें और (व्यन्तु) प्राप्त हों हे जन वैसे तू भी (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे विद्वानों में विद्वान् अच्छे वैद्य श्रेष्ठ क्रिया से सब को नीरोग कर कान्तिमान् धनवान् करते हैं वा जैसे विद्वानों की वाणी विद्यार्थियों के मन में उत्तम ज्ञान की उन्नति करती है वैसे साधारण मनुष्यों को विद्या और धन इकट्ठे करने चाहियें ॥ ५३ ॥

देवी रित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर माता पिता अपने सन्तानों को कैसे करें इस वि० ॥

देवीस्तिस्त्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती । शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जैसे (तिस्रः) माता पढ़ाने और उपदेश करने वाली ये तीन (देवीः) निरन्तर विद्या से दीपती हुई स्त्री (वसुधेयस्य) जिसमें धन धरने योग्य है उस संसार के (मध्ये) बीच (वसुवने) उत्तम धन चाहने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (तिस्रः) उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन (देवीः) विद्या से प्रकाश को प्राप्त हुई कन्याओं को (दधुः) धारण करें वा (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने हारे मनुष्य (इडा) स्तुति करने हारी स्त्री और (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त स्त्री (नाभ्याम्) तोंदी में (शूषम्) बल वा सुख के (न) समान (इन्द्रियम्) मन को धारण करें वा जैसे ये सब उक्त पदार्थों को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे माता पढ़ाने और उपदेश करने हारी ये तीन पण्डिता स्त्री कुमारियों को पण्डिता कर उन को सुखी करती हैं वैसे पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वान् कुमार विद्यार्थियों को विद्वान् कर उन्हें अच्छे सभ्य करें ॥ ५४ ॥

देव इन्द्र इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । स्वराट् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देव इन्द्रो नराशंसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः । रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (त्रिवरूथः) तीन अर्थात् भूमि भूमि के नीचे और अन्तरिक्ष में जिस के घर हैं वह (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सरस्वत्या) अच्छी शिक्षा की हुई वाणी से (नराशंसः) जो मनुष्यों को भलीभांति शिक्षा देते हैं उनको (अश्विभ्याम्) आग और पवन से जैसे (रथः) रमणीय रथ (ईयते) पहुँचाया जाता वैसे अच्छे मार्ग में पहुँचाता है वा जैसे (त्वष्टा) दुःख का विनाश करने हारा (जनित्रम्) उत्तम सुख उत्पन्न करने हारे (अमृतम्) जल और (रेतः) वीर्य्य के

(न) समान (रूपम्) रूप को तथा (वसुधेयस्य) संसार के बीच (वसुवने) धन की सेवा करने वाले (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आंख आदि इन्द्रियों को (दधत्) धारण करे वा जैसे उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की सङ्गति किया कर ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-हे मनुष्यो यदि तुम लोग धर्मसम्बन्धी व्यवहार से धन को इकट्ठा करो तो जल और आग से चलाये हुए रथ के समान शीघ्र सब सुखों को प्राप्त होओ ॥ ५५ ॥

देवो देवैरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्तें यह वि० ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽअश्विभ्याᳬं सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु । ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

पदार्थः-हे विद्वान् जैसे (अश्विभ्याम्) जल और बिजुली रूप आग से (देवैः) प्रकाश करने वाले गुणों के साथ (देवः) प्रकाशमान (हिरण्यपर्णः) तेजस्वरूप (वनस्पतिः) किरणों की रक्षा करने वाला सूर्यलोक वा (सरस्वत्या) बढ़ती हुई नीति के साथ (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला पीपल आदि वृक्ष (इन्द्राय) प्राणी के लिये (मधु) मीठा फल जैसे (पच्यते) पके वैसे पकता और सिद्ध होता वा (जूतिः) वेग (ओजः) जल को (न) जैसे (भामम्) तथा क्रोध को (ऋषभः) बलवान् प्राणी के (न) समान (वनस्पतिः) वटवृक्ष आदि (वसुधेयस्य) सब के आधार संसार के बीच (नः) हम लोगों के लिये (वसुवने) वा धन चाहने वाले के लिये (इन्द्रियाणि) धनों को (दधत्) धारण कर रहा है जैसे इन सब उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) व्याप्त हों वैसे तू सब व्यवहारों की (यज) संगति किया कर ॥ ५६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो तुम जैसे सूर्य वर्षा से और नदी अपने जल से वृक्षों की भलीभांति रक्षा कर सब ओर से मीठे २ फलों को उत्पन्न करती है वैसे सबके अर्थ सब वस्तु उत्पन्न करो और जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता है वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीति कर अच्छे उत्तम जनों में प्रेम को धारण करो ॥ ५६ ॥

१०२

देवं बर्हिरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । अतिशक्करीछन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनामध्व॒रे स्ती॒र्णम॒श्विभ्या॒मूर्ण॑म्रदा॒ः सर॑स्वत्या स्यो॒नमि॑न्द्र ते॒ सदः॑ । ई॒शायै॑ म॒न्युꣳ राजा॑नं ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अपने इन्द्रिय के स्वामी जीव जिस (ते) तेरा (सरस्वत्या) उत्तम वाणी के साथ (स्योनम्) सुख और (सदः) जिसमें बैठते वह नाव आदि यान है और जैसे (ऊर्णम्रदाः) ढांपने वाले पदार्थों से शिल्प की वस्तुओं को मीड़ते हुए विद्वान् जन (अश्विभ्याम्) पवन और बिजुली से (अध्वरे) न विनाश करने योग्य शिल्प यज्ञ में (वारितीनाम्) जिन की जल में चाल है उन पदार्थों के (स्तीर्णम्) ढांपने वाले (देवम्) दिव्य (बर्हिः) अन्तरिक्ष को वा (ईशायै) जिस क्रिया से ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होता उसके लिये (मन्युम्) विचार अर्थात् सब पदार्थों के गुण दोष और उन की क्रिया सोचने को (राजानम्) प्रकाशमान राजा के समान वा (बर्हिषा) अन्तरिक्ष से (वसुधेयस्य) पृथिवी आदि आधार के बीच (वसुवने) पृथिवी आदि लोकों की सेवा करने हारे जीव के लिये (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें और इन को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू सब पदार्थों की (यज) संगति किया कर ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—यदि मनुष्य आकाश के समान निष्कम्प निडर आनन्द देने हारे एकान्तस्थानयुक्त और जिन की आज्ञाभंग न हो ऐसे पुरुषार्थी हों इस संसार के बीच धनवान् क्यों न हों ? ॥ ५७ ॥

देवो अग्निरित्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । आद्यस्याऽत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः । स्विष्टो अग्निरित्युत्तरस्य निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वो अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान्य॑क्षद्यथाय॒थꣳ होता॑राविन्द्र॑म॒श्विना॑ वा॒चा वा॒चꣳ सर॑स्वतीम॒ग्निꣳ सोम॑ꣳ स्विष्ट॒कृत्स्वि॑ष्ट॒ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॑ स्वि॒ष्टा दे॒वा आ॑ज्य॒पाः स्वि॑ष्टो अ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्य॒शो न द॒धदि॑न्द्रि॒यमूर्ज॒मप॑चितिꣳ स्व॒धां व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (वसुधेयस्य) संसार के बीच में (वसुवने) ऐश्वर्य्य को सेवने वाले सज्जन मनुष्य के लिये (स्विष्टकृत्) सुन्दर चाहे हुए सुख का करने हारा (देवः) दिव्य सुन्दर (अग्निः) आग (देवान्) उत्तम गुण कर्म स्वभावों वाले पृथिवी आदि को (यथायथम्) यथायोग्य (यक्षत्) प्राप्त हो वा जैसे (होतारा) पदार्थों के ग्रहण करने हारे (अश्विना) पवन और बिजुलीरूप अग्नि (इन्द्रम्) सूर्य्य (वाचा) वाणी से (सरस्वतीम्) विशेष ज्ञानयुक्त (वाचम्) वाणी से (अग्निम्) अग्नि (सोमम्) और चन्द्रमा को यथायोग्य चलाते हैं वा जैसे (स्विष्टकृत्) अच्छे सुख का करने वाला (स्विष्टः) सुन्दर और सब का चाहा हुआ (सुत्रामा) भलीभांति पालने हारा (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (सविता) सूर्य (वरुणः) जल का समुदाय (भिषक्) रोगों का विनाश करने हारा वैद्य (इष्टः) संग करने योग्य (देवः) दिव्यस्वभाव वाला (वनस्पतिः) पीपल आदि (स्विष्टाः) सुन्दर चाहा हुआ सुख जिनसे होवे (आज्यपाः) पीने योग्य रस को पीने हारे (देवाः) दिव्यस्वरूप विद्वान् (अग्निना) बिजुली के साथ (स्विष्टः) (होता) देने वाला कि जिससे सुन्दर चाहा हुआ काम हो (स्विष्टकृत्) तथा उत्तम चाहे हुए काम को करने वाला (अग्निः) अग्नि (होत्रे) देने वाले के लिये (यशः) कीर्ति करने हारे धन के (न) समान (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न कान आदि इन्द्रियां (ऊर्जम्) बल (अपचितिम्) सत्कार और (स्वधाम्) अन्न को (दधत्) प्रत्येक को धारण करे वा जैसे उन उक्त पदार्थों को ये सब (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे तू (यज) सब व्यवहारों की संगति किया कर ॥ ५८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य ईश्वर के बनाये हुए इस मन्त्र में कहे यज्ञ आदि पदार्थों को विद्या से उपयोग के लिये धारण करते हैं वे सुन्दर चाहे हुए सुखों को पाते हैं ॥ ५८ ॥

अग्निमद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न्पु॒रो॒डाशा॑न्ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑य ऋष॒भꣳ सु॒न्वन्न॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ इन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ सुरासो॒मान् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पक्तीः) पचाने के प्रकारों को (पचन्) पचाता अर्थात् सिद्ध करता और (पुरोडाशान्) यज्ञ आदि कर्म में प्रसिद्ध पाकों को

(पचन्) पचाता हुआ (यजमानः) यज्ञ करने हारा (होतारम्) सुखों के देने वाले (अग्निम्) आग को (अवृणीत) स्वीकार वा जैसे (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागम्) छेरी (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी के लिये (मेषम्) मेड़ और (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (ऋषभम्) बैल को (बध्नन्) बांधते हुए वा (अश्विभ्याम्) प्राण, अपान (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी और (सुत्राम्णे) भलीभांति रक्षा करने हारे (इन्द्राय) राजा के लिये (सुरासोमान्) उत्तम रसयुक्त पदार्थों का (सुन्वन्) सार निकालते हैं वैसे तुम (अद्य) आज करो ॥ ५९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे पदार्थों को मिलाने हारे वैद्य अपान के लिये छेरी का दूध वाणी बढ़ने के लिये भेड़ का दूध ऐश्वर्य के बढ़ने के लिये बैल रोगनिवारण के लिये औषधियों के रसों को इकट्ठा और अच्छे संस्कार किये हुए अन्नों का भोजन कर उससे बलवान् होकर दुष्ट शत्रुओं को बांधते हैं वैसे परम ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥

सूपस्था इत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिये इस वि० ॥

सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचताग्रभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्य) आज (सूपस्थाः) भलीभांति समीप स्थिर होने वाले और (देवः) दिव्य गुण वाला पुरुष (वनस्पतिः) वट वृक्ष आदि के समान जिस २ (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान के लिये (छागेन) दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (मेषेण) मेढ़ा से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये (ऋषभेण) बैल से (अक्षन्) भोग करें [उपयोग लें] (तान्) उन (मेदस्तः) सुन्दर चिकने पशुओं के (प्रति) प्रति (पचता) पचाने योग्य वस्तुओं का (अगृभीषत) ग्रहण करें (पुरोडाशैः) प्रथम उत्तम संस्कार किये हुए विशेष अन्नों से (अवीवृधन्त) वृद्धि को प्राप्त हों (अश्विना) प्राण अपान (सरस्वती) प्रशंसित वाणी (सुत्रामा) भलीभांति रक्षा करने हारा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (सुरासोमान्) जो अरक खींचने से उत्पन्न हों उन औषधि रसों को (अपुः) पीवें वैसे आप (अभवत्) होओ ॥ ६० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य छेरी आदि पशुओं के दूध आदि से प्राण, अपान की रक्षा के लिये चिकने और पके हुए पदार्थों का भोजन कर उत्तम रसों को पीके वृद्धि को पाते हैं वे अच्छे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ ६० ॥

त्वामद्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिग् विकृतिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्ताव वर्तें इस वि० ॥

त्वाम॒द्य ऋ॑ष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीता॒यं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ आसङ्ग॑तेभ्य ए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्या य॑क्षत॒ इति॒ ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ आ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वे॒षित॑श्च होत॒रसि॑ भद्र॒वाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो॒ मानु॑षः सूक्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले वा हे (आर्षेय) मन्त्रार्थ जानने वालों में श्रेष्ठ पुरुष (ऋषीणाम्) मन्त्रों के अर्थ जानने वालों के (नपात्) सन्तान (यजमानः) यज्ञ करने वाला (अयम्) यह (अद्य) आज (बहुभ्यः) बहुत (संगतेभ्यः) योग्य पुरुषों से (त्वाम्) तुझको (आ, अवृणीत) स्वीकार करे (एषः) यह (देवेषु) विद्वानों में (मे) मेरे (वसु) धन (च) और (वार्य) जल को स्वीकार करे हे (देव) विद्वान् जो (आयक्ष्यते) सब ओर से संगत किया जाता (च) और (देवाः) विद्वान् जन (या) जिन (दानानि) देने योग्य पदार्थों को (अदुः) देते हैं (तानि) उन सभों को (अस्मै) इस यज्ञ करने वाले के लिये (आ, शास्स्व) अच्छे प्रकार कहो और (प्रेषितः) पढ़ाया हुआ तू (आ, गुरस्व) अच्छे प्रकार उद्यम कर (च) और हे (होतः) देने हारे (इषितः) सब का चाहा हुआ (मानुषः) तू (भद्रवाच्याय) जिसके लिये अच्छा कहना होता और (सूक्तवाकाय) जिसके वचनों में अच्छे कथन-अच्छे व्याख्यान हैं उस भद्र पुरुष के लिये (सूक्ता) अच्छी बोल चाल (ब्रूहि) बोलो (इति) इस कारण कि उक्त प्रकार से (ता) उन उत्तम पदार्थों को पाये हुए (असि) होते हो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बहुत विद्वानों से अति उत्तम विद्वान् को स्वीकार कर वेदादि शास्त्रों की विद्या को पढ़ कर महर्षि होवें वे दूसरों को पढ़ा सकें और जो देने वाले उद्यमी होवें वे विद्या को स्वीकार कर जो अविद्वान् हैं उन पर दया कर विद्या ग्रहण के लिये रोष से उन मूर्खों को ताड़ना दें और उन्हें अच्छे सभ्य करें वे इस संसार में सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६१ ॥

इस अध्याय में वरुण अग्नि विद्वान् राजा प्रजा शिल्प अर्थात् कारीगरी वाणी घर अश्विन् शब्द के अर्थ ऋतु और होता आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ का पिछले अध्याय में कहे अर्थ के साथ मेल है यह जानना चाहिये ॥

यह इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ द्वाविंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव य॒द्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

तेजोसीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब बाईसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम मंत्र में आप्त सकल शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्ते इस वि० ॥

तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पा आयु॑र्मे पाहि। दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे ॥ १ ॥

पदार्थ—हे विद्वान् मैं (देवस्य) सब के प्रकाश करने (सवितुः) और समस्त जगत् के उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये जिस में कि प्राणी आदि उत्पन्न होते उस संसार में (अश्विनोः) पवन और बिजुलीरूप आग के धारण और खैंचने आदि गुणों के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (पूष्णः) पुष्टि करने वाले सूर्य की किरणों के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से जिस (त्वा) तुझे (आ, ददे) ग्रहण करता हूं वा जो तू (अमृतम्) स्व स्वरूप से विनाशरहित (शुक्रम्) वीर्य्य और (तेजः) प्रकाश के समान जो (आयुष्पाः) आयुर्दा की रक्षा करने वाला (असि) है सो तू अपनी दीर्घ आयुर्दा करके (मे) मेरी (आयुः) आयु की (पाहि) रक्षा कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे शरीर में रहने वाली बिजुली शरीर की रक्षा करती वा जैसे बाहरले सूर्य और पवन जीवन के हेतु हैं वैसे ईश्वर के बनाए इस जगत् में आप्त अर्थात् सकल शास्त्र का जानने वाला विद्वान् होता है यह सब को जानना चाहिये ॥ १ ॥

इमामित्यस्य यज्ञपुरुषऋषिः। विद्वांसो देवताः। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आयुर्दा कैसे वर्त्तनी चाहिये इस वि० ॥

इमामंगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्वं आयुंषि विदथेषु कव्या । सा नों अस्मिन्त्सुत आबंभूव ऋतस्य सामंन्त्सरमारपन्ती ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ऋतस्य) सत्य कारण के (सरम्) पाने योग्य शब्द को (आरपन्ती) अच्छे प्रकार प्रगट बोलती हुई (आ, बभूव) भलीभांति विख्यात होती था जिस (इमाम्) इस को (ऋतस्य) सत्यकारण की (रशनाम्) व्याप्त होने वाली डोर के समान (विदथेषु) यज्ञादिकों में (पूर्वे) पहिली (आयुषि) प्राण धारण करने हारी आयुर्दा के निमित्त (कव्या) कवि मेधावी जन (अगृभ्णन्) ग्रहण करें (सा) वह बुद्धि (अस्मिन्) इस (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (नः) हम लोगों के (सामन्) अन्त के काम में प्रसिद्ध होती अर्थात् कार्य को समाप्तिपर्य्यन्त पहुंचाती है ॥ २ ॥

भावार्थः—जैसे डोर से बंधे हुए प्राणी इधर उधर भाग नहीं जा सकते वैसे युक्ति के साथ धारण की हुई आयु ठीक समय के विना नहीं भाग जाती ॥ २ ॥

अभिधा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस वि० ॥

अभिधा अंसि भुवंनमसि यन्तासिं धर्ता । स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहांकृतः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो तू (भुवनम्) जल के समान शीतल (असि) है (अभिधाः) कहने वाला (असि) है वा (यन्ता) नियम करने हारा (असि) है (सः) वह (स्वाहाकृतः) सत्य क्रिया से सिद्ध हुआ (धर्ता) सब व्यवहारों का धारण करने हारा (त्वम्) तू (सप्रथसम्) विख्याति के साथ वर्त्तमान (वैश्वानरम्) समस्त पदार्थों में नायक (अग्निम्) अग्नि को (गच्छ) जान ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे सब प्राणी और अप्राणियों के जीने का मूलकारण जल और अग्नि है वैसे विद्वान् को सब लोग जानें ॥ ३ ॥

स्वगेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वगा त्वां देवेभ्यः प्रजापंतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामिं देवेभ्यः प्रजापंतये तेनं राध्यासम् । तं बंधान देवेभ्यः प्रजापंतये तेनं राध्नुहि ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) विद्या से वृद्धि को प्राप्त मैं (त्वा) तुझे (स्वगा) आप जाने वाला करता हूं (देवेभ्यः) विद्वानों और (प्रजापतये) संतानों की रक्षा करने हारे गृहस्थ के लिये (अश्वम्) बड़े सर्वव्यापी उत्तम गुण को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्य गुणों और (प्रजापतये) सन्तानों को पालने हारे गृहस्थ के लिये (राध्यासम्) अच्छे प्रकार सिद्ध होऊं (तम्) उसको तू (बधान) बांध (तेन) उस से (देवेभ्यः) दिव्य गुण कर्म और स्वभाव वालों तथा (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले के लिये (राध्नुहि) अच्छे प्रकार सिद्ध होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या अच्छी शिक्षा ब्रह्मचर्य और अच्छे संग से शरीर और आत्मा के अत्यन्त बल को सिद्ध दिव्य गुणों को ग्रहण और विद्वानों के लिये सुख देकर अपनी और पराई वृद्धि करें ॥ ४ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किन को बढ़ावें इस वि० ॥

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । यो अर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः परो मर्त्तः परः श्वा ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यः) जो (परः) उत्तम और (वरुणः) श्रेष्ठ (मर्त्तः) मनुष्य (अर्वन्तम्) शीघ्र चलने हारे घोड़े को (जिघांसति) ताड़ना देने वा चलाने की इच्छा करता है (तम्) उसको (अभि, अमीति) सब ओर से प्राप्त होता है और जो (परः) अन्य मनुष्य (श्वा) कुत्ते के समान वर्त्तमान अर्थात् दुष्कर्मी है उसको जो रोकता है उस (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (इन्द्राग्निभ्याम्) जीव और अग्नि के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (वायवे) पवन के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं (सर्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के लिये (जुष्टम्) प्रीति किये हुए (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अच्छे प्रकार सींचता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम पशुओं के मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने को अच्छा यत्न करते हैं वे सब की रक्षा करने के लिये अधिकार देने योग्य हैं ॥ ५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस वि० ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहापां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ॥ ६ ॥

पदार्थः—यदि मनुष्य (अग्नये) अग्नि के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया वा (सोमाय) ओषधियों के शोधने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से जो (मोदाय) आनन्द होता है उस के लिये (स्वाहा) सुख पहुंचाने वाली क्रिया वा (सवित्रे) सूर्यमण्डल के अर्थ (स्वाहा) उत्तम क्रिया वा (वायवे) पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विष्णवे) विजुलीरूप आग में (स्वाहा) उत्तम क्रिया (इन्द्राय) जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बृहस्पतये) बड़ों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मित्राय) मित्र के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वरुणाय) श्रेष्ठ के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करें तो कौन २ सुख न मिले ? ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो आग में उत्तमता से सिद्ध किया हुआ घी आदि हवि होमा जाता है वह ओषधि जल सूर्य के तेज वायु और बिजुली को अच्छे प्रकार शुद्ध कर ऐश्वर्य को बढ़ाने प्राण अपान और प्रजा की रक्षा रूप श्रेष्ठों के सत्कार का निमित्त होता है कोई द्रव्यस्वरूप से नष्ट नहीं होता किन्तु अवस्थान्तर को पा के सर्वत्र ही परिणाम को प्राप्त होता है इसी से सुगन्ध मीठापन पुष्टि देने और रोगविनाश करने हारे गुणों से युक्त पदार्थ आग में छोड़ कर ओषधि आदि पदार्थों की शुद्धि के द्वारा संसार का नीरोगपन सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

हिंकारायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को जगत् कैसे शुद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

हिङ्काराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय

१०३

स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (हिंकाराय) जो हिं ऐसा शब्द करता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (हिंकृताय) जिस ने हिं शब्द किया उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रन्दते) बुलाते वा रोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अवक्रन्दाय) नीचे होकर बुलाने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रोथते) सब कर्मों में परिपूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रप्रोथाय) अत्यन्त पूर्ण के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (गन्धाय) सुगन्धित के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (घ्राताय) जो सूंघा गया उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निविष्टाय) जो निरन्तर प्रवेश करता बैठता है उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपविष्टाय) जो बैठता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संदिताय) जो भलीभांति दिया जाता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वल्गते) जाते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आसीनाय) बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शयानाय) सोते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वपते) नींद जिस को प्राप्त हुई उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जाग्रते) जागते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कूजते) कूजते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रबुद्धाय) उत्तम ज्ञान वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विजृम्भमाणाय) अच्छे प्रकार जंभाई लेने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विचृताय) विशेष रचना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (संहानाय) जिस से संघात पदार्थों का समूह किया जाता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उपस्थिताय) समीप स्थित हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आयनाय) अच्छे प्रकार विशेष ज्ञान के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रायणाय) पहुंचाने हारे के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया की उन मनुष्यों को दुःख छूट के सुख प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों से अग्निहोत्र आदि यज्ञ में जितना हो किया जाता है उतना सब प्राणियों के लिये सुख करने वाला होता है ॥ ७ ॥

यतेस्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रयत्नवन्तो जीवादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (यते) अच्छा यत्न करते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (धावते) दौड़ते हुए के लिये (स्वाहा) श्रेष्ठ क्रिया (उद्द्रावाय) ऊपर को गये हुए गीले पदार्थ के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (उद्द्रुताय) उत्कर्ष को प्राप्त हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकाराय) शीघ्रता करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूकृताय) शीघ्र किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निषण्णाय) निश्चय से बैठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उत्थिताय) उठे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (जवाय) वेग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (बलाय) बल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवर्त्तमानाय) विशेष रीति से वर्त्तमान होते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विवृत्ताय) विशेष रीति से वर्त्ताव किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधून्वानाय) जो पदार्थ विधुनता है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (विधूताय) जिस ने नानाप्रकार से विधूना उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शुश्रूषमाणाय) सुना चाहते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शृण्वते) सुनते के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षमाणाय) देखते हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (ईक्षिताय) और से देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (वीक्षिताय) भलीभांति देखे हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (निमेषाय) आंखों से पलक उठाने बैठने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (अत्ति) खाता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (पिबति) पीता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (यत्) जो (मूत्रम्) मूत्र (करोति) करता है (तस्मै) उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (कुर्वते) करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (कृताय) किये हुए के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो अच्छे यत्न और दौड़ने आदि क्रियाओं को सिद्ध करने वाले काम तथा सुगन्धि आदि वस्तुओं के होम आदि कामों को करते हैं वे समस्त सुख और चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तत्सवितुरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर के वि० ॥

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सवितुः) समस्त संसार उत्पन्न करने हारे (देवस्य) आप से आप ही प्रकाशरूप सब के चाहने योग्य समस्त सुखों के देने हारे परमेश्वर के जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम (भर्गः) समस्त दोषों के दाह करने तेजो-मय शुद्धस्वरूप को हम लोग (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उस को तुम लोग धारण करो (यः) जो (नः) हम सब लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरे अर्थात् उन को अच्छे २ कामों में लगावे वह अन्तर्यामी परमात्मा सब के उपासना करने के योग्य है ॥ ९ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव सब के अन्तर्यामी परमात्मा को छोड़ के उस की जगह में अन्य किसी पदार्थ की उपा-सना का स्थापन कभी न करें किस प्रयोजन के लिये कि जो हम लोगों ने उपासना किया हुआ परमात्मा हमारी बुद्धियों को अधर्म के आचरण से छुड़ा के धर्म के आचरण में प्रवृत्त करे जिसे शुद्ध हुए हम लोग उस परमात्मा को प्राप्त होकर इस लोक और परलोक के सुखों को भोगें इस प्रयोजन के लिये ॥ ९ ॥

हिरण्यपाणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ह्वये । स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं जिस (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (हिरण्यपाणिम्) जिस की स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं (पदम्) उस पाने योग्य (सवितारम्) समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर को (उपह्वये) ध्यान के योग से बुलाता हूं (सः) वह (चेत्ता) अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या को जनाने वाला (देवता) उपासना करने योग्य इष्ट देव ही है यह तुम सब जानो ॥ १० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि इस मन्त्र से ले के पूर्वोक्त मन्त्र गायत्री जो कि गुरुमन्त्र है उसी के अर्थ का तात्पर्य है ऐसा जानें। चेतनस्वरूप परमात्मा की उपासना को छोड़ किसी अन्य जड़ की उपासना कभी न करें क्योंकि उपासना अर्थात् सेवा किया हुआ जड़ पदार्थ हानिलाभकारक और रक्षा करने हारा नहीं होता। इससे चित्तवान् समस्त जीवों को चेतनस्वरूप जगदीश्वर ही की उपासना करनी योग्य है अन्य जड़ता आदि गुणयुक्त पदार्थ उपास्य नहीं ॥ १० ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवस्य चेततो मुहीम्प्र संवितुर्हवामहे। सुमतिᳪं सुत्यरांधसम् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सवितुः) समस्त संसार के उत्पन्न करने हारे (चेततः) चेतनस्वरूप (देवस्य) स्तुति करने योग्य ईश्वर की उपासना कर (महीम्) बड़ी (सत्यराधसम्) जिस से जीव सत्य को सिद्ध करता है उस (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को (प्र, हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस चेतनस्वरूप जगदीश्वर ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है उस की आराधना उपासना से सत्यविद्यायुक्त उत्तम बुद्धि को तुम लोग प्राप्त हो सकते हो किन्तु इतर जड़ पदार्थ की आराधना से कभी नहीं ॥ ११ ॥

सुष्टुतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। गायत्रीच्छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुष्टुतिᳪं सुमतीवृधो रातिᳪं संवितुरीमहे। प्र देवाय मतीविदे ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सुमतीवृधः) जो उत्तम मति को बढ़ाता (सवितुः) सब को उत्पन्न करता उस ईश्वर की (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति कर इस से (मतीविदे) जो ज्ञान को प्राप्त होता है उस (देवाय) विद्या आदि गुणों की कामना करने वाले मनुष्य के लिये (रातिम्) देने को (प्रेमहे) भलीभांति मांगते हैं वैसे इस देने की क्रिया को इस ईश्वर से तुम लोग भी मांगो ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब जब परमेश्वर की प्रार्थना करने योग्य हो तब तब अपने लिये वा और के लिये समस्त शास्त्र के विज्ञान से युक्त उत्तम बुद्धि ही मांगनी चाहिये जिस के पाने पर समस्त सुखों के साधनों को जीव प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

रातिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

रातिꣳसत्पतिं महे सवितारमुपह्वये । आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (महे) बड़ी (देववीतये) दिव्यगुण और विद्वानों की प्राप्ति के लिये (रातिम्) देने हारे (आसवम्) सब ओर से ऐश्वर्ययुक्त (सत्पतिम्) सत्य वा नित्य विद्यमान जीव वा पदार्थों की पालना करने और (सवितारम्) समस्त संसार को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर की (उपह्वये) ध्यान योग से समीप में स्तुति करूं वैसे तुम भी इस की प्रशंसा करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि मनुष्य धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को चाहें तो परमात्मा की ही उपासना कर उस ईश्वर की आज्ञा में वर्त्तें ॥ १३ ॥

देवस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सवितुः) सकल ऐश्वर्य्य और (देवस्य) समस्त सुख देने हारे परमात्मा के निकट से (मतिम्) बुद्धि और (आसवम्) समस्त ऐश्वर्य्य के हेतु को प्राप्त हो कर उस (धिया) बुद्धि से समस्त (विश्वदेव्यम्) सब विद्वानों के लिये हित देने हारे (भगम्) उत्तम ऐश्वर्य्य को (मनामहे) मांगते हैं वैसे तुम लोग भी मांगो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना से उत्तम बुद्धि को पाके उस से पूर्ण ऐश्वर्य्य का विधान कर सब प्राणियों के हित को सम्यक् सिद्ध करें ॥ १४ ॥

अग्निमित्यस्य सुतम्भर ऋषिः । निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यज्ञकर्म वि० ॥

अग्निꣳ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (समिधानः) भलीभांति दीपता हुआ अग्नि (देवेषु) दिव्य वायु आदि पदार्थों में (हव्या) लेने देने योग्य पदार्थों को (नः) हमारे लिये (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) कारण रूप अर्थात् परमाणुभाव से विनाश

होने के धर्म से रहित (अग्निम्) आग को (स्तोमेन) इन्धन समूह से (बोधय) चिताओ अर्थात् अच्छे प्रकार जलाओ ॥ १५ ॥

भावार्थः—यदि अग्नि में समिधा छोड़ दिव्य २ सुगन्धित पदार्थ को होमें तो यह अग्नि उस पदार्थ को वायु आदि में फैला के सब प्राणियों को सुखी करता है ॥ १५ ॥

स हव्यवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर अग्नि कैसा है इस वि० ॥

स हव्यवाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥१६॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (अमर्त्यः) मृत्युधर्म से रहित (हव्यवाट्) होमे हुए पदार्थ को एक देश से दूसरे देश में पहुंचाता (उशिक्) प्रकाशमान (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (चनोहितः) और जो अन्नों की प्राप्ति कराने वाला (अग्निः) अग्नि है (सः) वह (धिया) कर्म अर्थात् उसके उपयोगी शिल्प आदि काम से (सम्,ऋण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

भावार्थः-जैसे काम के लिये भेजा हुआ दूत करने योग्य काम को सिद्ध करने हारा होता है वैसे अच्छे प्रकार युक्त किया हुआ अग्नि सुखसम्बन्धी कार्य्य की सिद्धि करने हारा होता है ॥ १६ ॥

अग्निं दूतमित्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ अग्नि के गुणों के वि० ॥

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ२॥ आसादयादिह ॥१७॥

पदार्थः-हे मनुष्यो जो (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य भोगों को (आ, सादयात्) प्राप्त करावे उस (हव्यवाहम्) भोजन करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति कराने और (दूतम्) दूत के समान कार्यसिद्धि करने हारे (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) आगे (दधे) धरता हूं और तुम लोगों के प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं कि तुम लोग भी ऐसे ही किया करो ॥ १७ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो जैसे अग्नि दिव्य सुखों का देने वाला है वैसे पवन आदि भी पदार्थ सुख देने में प्रवर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥ १७ ॥

अजीजन इत्यस्याग्नाणसदस्यूऋषी । पवमानो देवता । पिपीलिकामध्या विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है इस वि० ॥

अजीजनो हि पवमान सूर्य्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (पवमान) पवित्र करने हारे अग्नि के समान पवित्र जन तूं जो अग्नि (पुरन्ध्या) जिस क्रिया से नगरी को धारण करता उस से (रंहमाणः) जाता हुआ (सूर्यम्) सूर्य को (अजीजनः) प्रकट करता उस को और (शक्मना) कर्म वा (गोजीरया) गौ आदि पशुओं की जीवन क्रिया से (पयः) जल को मैं (विधारे) विशेष कर के धारण करता (हि) ही हूं ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो बिजुली सूर्य्य का कारण न होती तो सूर्य्य की उत्पत्ति कैसे होती जो सूर्य न हो तो भूगोल का धारण और वर्षा से गौ आदि पशुओं का जीवन कैसे हो ॥१८॥

विभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि । देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षत । इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (आशापालाः) दिशाओं के पालने वाले (देवाः) विद्वानो तुम जो लोग (मात्रा) माता के समान वर्त्तमान पृथिवी से (विभूः) व्यापक (पित्रा) पिता-रूप पवन से (प्रभूः) समर्थ और (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाला (असि) है (हयः) घोड़े के समान शीघ्र चलने वाला (असि) है (अत्यः) जो निरन्तर जाने वाला (असि) है (मयः) सुख का करने वाला (असि) है (अर्वा) जो सब को प्राप्त होने हारा (असि) है (सप्तिः) मूर्तिमान् पदार्थों का सम्बन्ध करने वाला (असि) है (वाजी) वेगवान् (असि) है (वृषा) वर्षा का करने वाला (असि) है (नृमणाः) सब प्रकार के व्यवहारों को प्राप्त कराने हारे पदार्थों में मन के समान शीघ्र जाने वाला (असि) है (ययुः) जो प्राप्ति कराता वा जाता ऐसे (नाम) नाम वाला (असि) है जो (शिशुः) व्यवहार के योग्य विषयों को सूक्ष्म करती ऐसी (नाम) उत्तम वाणी (असि) है जो (आदित्यानाम्) महीनों के (पत्वा) नीचे गिरता (अन्विहि) अन्वित

अर्थात् मिलता है (एतम्) इस (अश्वम्) व्याप्त होने वाले अग्नि को (स्वाहा) सत्य-क्रिया से (देवेभ्यः) दिव्य भोगों के लिये तथा (मेधाय) अच्छे गुणों के मिलाने बुद्धि की प्राप्ति करने वा दुष्टों को मारने के लिये (प्रोक्षितम्) जल से सींचा हुआ (रक्षत) रक्खो जिसमें (इह) इस संसार में (रन्तिः) रमण अर्थात् उत्तम सुख में रमना हो (इह) यहां (रमताम्) क्रीड़ा करें तथा (इह) यहां (धृतिः) सामान्य धारण और (इह) यहां (स्वधृतिः) अपने पदार्थों की धारणा हो ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त और समस्त वेग वाले पदार्थों में अतीव वेगवान् अग्नि को गुण कर्म और स्वभाव से जानते हैं वे इस संसार में सुख से रमते हैं ॥ १६ ॥

कायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । आद्यस्य विराडतिधृतिः । उत्तरस्य निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किस प्रयोजन के लिये होम करना चाहिये इस वि० ॥

काय॒ स्वाहा॒ कस्मै॒ स्वाहा॑ क॒त॒मस्मै॒ स्वाहा॒ स्वाहा॒धिमाधी॑ताय॒ स्वाहा॒ मनः॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ चि॒त्तं वि॒ज्ञाता॒यादि॑त्यै॒ स्वाहादि॑त्यै म॒ह्यै स्वाहादि॑त्यै सुमृडी॒काय॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै पाव॒काय॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै बृह॒त्यै स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॑ पू॒ष्णे प्र॑प॒थ्या॒य॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे न॒रन्धि॑षाय॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॑ तु॒रीपा॑य॒ स्वाहा॒ त्वष्ट्रे॑ पु॒रुरू॑पाय॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे निभू॒य॒पाय॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे शिपिवि॒ष्टाय॒ स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (काय) सुख साधने वाले के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कस्मै) सुखस्वरूप के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (कतमस्मै) बहुतों में जो वर्त्तमान उस के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (आधिम्) जो अच्छे प्रकार पदार्थों को धारण करता उस को प्राप्त होकर (स्वाहा) सत्य क्रिया (आधीताय) सब ओर से विद्या वृद्धि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्रजापतये) प्रजाजनों की पालना करने हारे के लिये (मनः) मन की (स्वाहा) सत्यक्रिया (विज्ञाताय) विशेष जाने हुए के लिये (चित्तम्) स्मृति सिद्ध कराने द्वारा चैतन्य मन (अदित्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (मह्यै) बड़ी (अदित्यै) विनाशरहित वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सुमृडी-

काये) अच्छा सुख करने हारी (अदित्यै) माता के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (सरस्वत्यै) नदी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पावकायै) पवित्र करने वाली (सरस्वत्यै) विद्यायुक्त वाणी के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (बृहत्यै) बड़ी (सरस्वत्यै) विद्वानों की वाणी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पूष्णे) पुष्टि करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रपथ्याय) उत्तमता से आराम के योग्य भोजन करने तथा (पूष्णे) पुष्टि के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नरन्धिषाय) जो मनुष्यों को उपदेश देता है उस (पूष्णे) पुष्टि करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (तुरीपाय) नौकाओं के पालने (त्वष्ट्रे) और विद्या प्रकाश करने हारे के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (पुरुरूपाय) बहुत रूप और (त्वष्ट्रे) प्रकाश करने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (विष्णवे) व्याप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (निभूयपाय) निरन्तर आप रक्षित हो औरों की पालना करने हारे (विष्णवे) सर्वव्यापक के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया तथा (शिपिविष्टाय) वचन कहते हुए चैतन्य प्राणियों में व्याप्ति से प्रवेश हुए (विष्णवे) व्यापक ईश्वर के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया किई वे कैसे न सुखी हों ॥ २० ॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिये यज्ञक्रियाओं को करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २० ॥

विश्वो देवस्येत्यस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विद्वान् देवता । आर्ष्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् । विश्वो॑ रा॒य इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—जैसे (विश्वः) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) नायक अर्थात् सब व्यवहारों की प्राप्ति कराने हारे (देवस्य) विद्वान् की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार कर वा (विश्वः) समस्त मनुष्य (राये) धन के लिये (इषुध्यति) याचना करता अर्थात् मंगनी मांगता वा बाणों को अपने २ धनुष् पर धारता है वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया वा सत्य वाणी से (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (द्युम्नम्) धन और यश को (वृणीत) स्वीकार करे ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्य विद्वानों के साथ मित्र होकर

विद्या और यश का ग्रहण कर धन और कान्तिमान् होकर उत्तम योग्य आहार वा अच्छे मार्ग से पुष्ट हों ॥ २१ ॥

आब्रह्मन्नित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस वि० ॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) विद्यादि गुणों करके सब से बड़े परमेश्वर जैसे हमारे (राष्ट्रे) राज्य में (ब्रह्मवर्चसी) वेदविद्या से प्रकाश को प्राप्त (ब्राह्मणः) वेद और ईश्वर को अच्छा जानने वाला ब्राह्मण (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (इषव्यः) बाण चलाने में उत्तम गुणवान् (अतिव्याधी) अतीव शत्रुओं को व्याधने अर्थात् ताड़ना देने का स्वभाव रखने वाला (महारथः) कि जिस के बड़े २ रथ और अत्यन्त बली वीर हैं ऐसा (शूरः) निर्भय (राजन्यः) राजपुत्र (आ, जायताम्) सब प्रकार से उत्पन्न हो (दोग्ध्री) कामना वा दूध से पूर्ण करने वाली (धेनुः) वाणी वा गौ (वोढा) भार ले जाने में समर्थ (अनड्वान्) बड़ा बलवान् बैल (आशुः) शीघ्र चलने हारा (सप्तिः) घोड़ा (पुरन्धिः) जो बहुत व्यवहारों को धारण करती है वह (योषा) स्त्री (रथेष्ठाः) तथा रथ पर स्थिर होने और (जिष्णुः) शत्रुओं को जीतने वाला (सभेयः) सभा में उत्तम सभ्य (युवा) जवान पुरुष (आ, जायताम्) उत्पन्न हो (अस्य, यजमानस्य) जो यह विद्वानों का सत्कार करता वा सुखों की संगति करता वा सुखों को देता है इस राजा के राज्य में (वीरः) विशेष ज्ञानवान् शत्रुओं को हटाने वाला पुरुष उत्पन्न हो (नः) हम लोगों के (निकामे निकामे) निश्चययुक्त काम २ में अर्थात् जिस २ काम के लिये प्रयत्न करें उस २ काम में (पर्जन्यः) मेघ (वर्षतु) वर्षे (ओषधयः) ओषधि (फलवत्यः) बहुत उत्तम फलवाली (नः) हमारे लिये (पच्यन्ताम्) पकें (नः) हमारा (योगक्षेमः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति लक्षणे वाले योग की रक्षा अर्थात् हमारे निर्वाह के योग्य पदार्थों

की प्राप्ति (कल्पताम्) समर्थ हो वैसा विधान करो अर्थात् वैसे व्यवहार को प्रकट कराइये ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थनासहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिये कि जिससे पूर्ण विद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुण वाली स्त्री, सुख देने हारे पशु सभ्य मनुष्य चाही हुई वर्षा मीठे फलों से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो ॥ २२ ॥

प्राणायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर किसलिये होम का विधान करना चाहिये इस वि० ॥

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (प्राणाय) जो पवन भीतर से बाहर निकलता है उस के लिये (स्वाहा) योगविद्यायुक्त क्रिया (अपानाय) जो बाहर से भीतर को जाता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यकविद्यायुक्त क्रिया (व्यानाय) जो विविध प्रकार के अंगों में व्याप्त होता है उस पवन के लिये (स्वाहा) वैद्यकविद्या युक्त वाणी (चक्षुषे) जिस-से प्राणी देखता है उस नेत्र इन्द्रिय के लिये (स्वाहा) प्रत्यक्ष प्रमाण युक्त वाणी (श्रोत्राय) जिससे सुनता है उस कर्णेन्द्रिय के लिये (स्वाहा) शास्त्रज्ञ विद्वान् के उपदेशयुक्त वाणी (वाचे) जिससे बोलता है उस वाणी के लिये (स्वाहा) सत्यभाषण आदि व्यवहारों से युक्त बोल चाल तथा (मनसे) विचार का निमित्त सङ्कल्प और विकल्पवान् मन के लिये (स्वाहा) विचार से भरी हुई वाणी प्रयोग की जाती अर्थात् भलीभांति उच्चारण की जाती है वे विद्वान् होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, ओषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे नीरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं ॥ २३ ॥

प्राच्यै दिश इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । दिशो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः ।

षड्जः स्वरः ॥

फिर किसलिये होम करना चाहिये इस वि० ॥

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥

पदार्थः—जिन विद्वानों ने (प्राच्यै) जो प्रथम प्राप्त होती अर्थात् प्रथम सूर्यमंडल का संयोग करती उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रविद्यायुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो नीचे से सूर्यमंडल को प्राप्त अर्थात् जब विषुमती रेखा से उत्तर का सूर्य नीचे २ गिरता है उस नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (दक्षिणायै) जो पूर्वमुख वाले पुरुष के दाहिनी बांह के निकट है उस दक्षिण (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी जो (अर्वाच्यै) निम्न है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उक्त वाणी (प्रतीच्यै) जो सूर्यमंडल के प्रति मुख अर्थात् लौटने के समय में प्राप्त और पूर्वमुख वाले पुरुष के पीठ पीछे होती उस पश्चिम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) पश्चिम के नीचे जो (दिशे) दिशा है उस के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (उदीच्यै) जो पूर्वाभिमुख पुरुष के वामभाग को प्राप्त होती उस उत्तम (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उत्तर दिशा के तले दिशा है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (ऊर्ध्वायै) जो ऊपर को वर्त्तमान है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी (अर्वाच्यै) जो विरुद्ध प्राप्त होती ऊपर वाली दिशा के नीचे अर्थात् कभी पूर्व गिनी जाती कभी उत्तर कभी दक्षिण कभी पश्चिम मानी जाती है उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्रयुक्त वाणी और (अर्वाच्यै) जो सब से नीचे वर्त्तमान उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र विचारयुक्त वाणी तथा (अर्वाच्यै) पृथिवी गोल में जो उक्त प्रत्येक कोण दिशाओं के तले की दिशा हैं उस (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) ज्योतिःशास्त्र विद्यायुक्त वाणी विधान किई वे सब ओर कुशली अर्थात् आनन्दी होते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो चार मुख्य दिशा और चार उपदिशा अर्थात् कोण दिशा भी वर्त्तमान हैं ऐसे ऊपर और नीचे की दिशा भी वर्त्तमान हैं वे मिल कर सब दश होती हैं यह जानना चाहिये और एक क्रम से निश्चय नहीं किई तथा अपनी २ कल्पना में

समर्थ भी हैं उन को उन २ के अर्थ में समर्थ न करने की यह रीति है कि जहां मनुष्य आप स्थित हो उस देश को लेके सब की कल्पना होती है इस को जानो ॥ २४ ॥

अद्भ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जलादयो देवताः । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने यज्ञ कर्मों में सुगन्धि आदि पदार्थ होमने के लिये (अद्भ्यः) सामान्य जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (वार्भ्यः) स्वीकार करने योग्य अति उत्तम जलों के लिये (स्वाहा) उन को शुद्ध करने की क्रिया (उदकाय) पदार्थों को गीले करने वा सूर्य की किरणों से ऊपर को जाते हुए जल के लिये (स्वाहा) उनको शुद्ध करने वाली क्रिया (तिष्ठन्तीभ्यः) वहते हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्रवन्तीभ्यः) शीघ्र वहते हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (स्यन्दमानाभ्यः) धीरे २ चलते जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (कूप्याभ्यः) कुएं में हुए जलों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (सूद्याभ्यः) भलीभांति भिगोने हारे अर्थात् वर्षा आदि से जो भिगोते हैं उन जलों के लिये (स्वाहा) उन के शुद्ध करने की क्रिया (धार्याभ्यः) धारण करने योग्य जो जल हैं उन के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (अर्णवाय) जिस में बहुत जल हैं उस बड़े नद के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (समुद्राय) जिस में अच्छे प्रकार नद महानद नदी महानदी झील झरना आदि के जल जा मिलते हैं उस सागर वा महासागर के लिये (स्वाहा) शुद्ध करने वाली क्रिया और (सरिराय) अति सुन्दर मनोहर जल के लिये (स्वाहा) उस की रक्षा करने वाली क्रिया विधान किई है वे सब को सुख देने हारे होते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करनेहारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है यह जानना चाहिये ॥ २५ ॥

वातायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वातादयो देवताः । विराडभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा वि-द्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा पुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

पदार्थः-जिन मनुष्यों ने (वाताय) जो बहता है उस पवन के लिये (स्वाहा) उस को शुद्ध करने वाली यज्ञ क्रिया (धूमाय) धूम के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अभ्राय) मेघ के कारण के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (मेघाय) मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (विद्योतमानाय) बिजुली से प्रवृत्त हुए सघन बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (स्तनयते) उत्तम शब्द करती हुई बिजुली के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अव-स्फूर्जते) एक दूसरे के घिसने से वज्र के समान नीचे को चोट करते हुए विद्युत् के लिये (स्वाहा) शुद्ध करने हारी यज्ञ क्रिया (वर्षते) जो बद्दल वर्षता है उसके लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (अववर्षते) मिलावट से तले ऊपर हुए बद्दलों में जो नीचे वाला है उस बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (उग्रम्) अति तीक्ष्णता से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शीघ्रम्) शीघ्र जपट झपट से (वर्षते) वर्षते हुए बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृह्णते) ऊपर से ऊपर बद्दलों के ग्रहण करने वाले बद्दल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (उद्गृहीताय) जिस ने ऊपर से ऊपर जल ग्रहण किया उस बद्दल के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया (पुष्णते) पुष्टि करते हुए मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शीकायते) जो सींचता अर्थात् ठहर २ के वर्षता उस मेघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (प्रुष्वाभ्यः) जो पूर्ण घनघोर वर्षा करते हैं उन मेघों के अवयवों के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (ह्रादुनीभ्यः) अव्यक्त गड़ गड़ शब्द करते हुए बद्दलों के लिये (स्वाहा) शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया और (नी-हाराय) कुहर के लिये (स्वाहा) उस की शुद्धि करने वाली यज्ञ क्रिया की है वे संसार के प्राण पियारे होते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य यथाविधि अग्निहोत्र आदि यज्ञों को करते हैं वे पवन आदि पदार्थों के शोधने हारे होकर सब का हित करने वाले होते हैं ॥ २६ ॥

अग्नये स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । जगतीछन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को (अग्नये) जाठराग्नि अर्थात् पेट के भीतर अन्न पचाने वाली आग के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (सोमाय) उत्तम रस के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (इन्द्राय) जीव बिजुली और परम ऐश्वर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिवे) प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (दिग्भ्यः) पूर्वादि दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आशाभ्यः) एक दूसरी में जो व्याप्त हो रही अर्थात् ईशान आदि कोण दिशाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (उर्व्यै) समय को पाकर अनेक रूप दिखाने वाली अर्थात् वर्षा गर्मी शरदी के समय के रूप की अलग २ प्रतीति कराने वाली (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (अर्वाच्यै) नीचे की (दिशे) दिशा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अवश्य विधान करनी चाहिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के द्वारा अर्थात् आग में होम कर ओषधी आदि पदार्थों में सुगन्धि आदि पदार्थ का विस्तार करें वे जगत् के हित करने वाले होवें ॥२७॥

नक्षत्रेभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी छन्दसी ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वाहार्द्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहाऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहा दित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलें-

भ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (नक्षत्रेभ्यः) जो पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते उन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (नक्षत्रियेभ्यः) उक्त पदार्थों के समूहों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अहोरात्रेभ्यः) दिन राति के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अर्द्धमासेभ्यः) शुक्ल कृष्ण पक्ष अर्थात् पखवाड़ों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (मासेभ्यः) महीनों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (ऋतुभ्यः) वसंत आदि छः ऋतुओं के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (आर्त्तवेभ्यः) ऋतुओं में उत्पन्न हुए ऋतु २ के पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (संवत्सराय) वर्षों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (द्यावापृथिवीभ्याम्) प्रकाश और भूमि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (सूर्याय) सूर्यलोक के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (रश्मिभ्यः) सूर्य आदि की किरणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (वसुभ्यः) पृथिवी आदि लोकों के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (रुद्रेभ्यः) दश प्राणों के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (आदित्येभ्यः) काल के अवयव जो अविनाशी हैं उन के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मरुद्भ्यः) पवनों के लिये (स्वाहा) उन के अनुकूल क्रिया (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) सुन्दर क्रिया (मूलेभ्यः) सभों की जड़ों के लिये (स्वाहा) तदनुकूल क्रिया (शाखाभ्यः) शाखाओं के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (पुष्पेभ्यः) फूलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (फलेभ्यः) फलों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (ओषधिभ्यः) ओषधियों के लिये (स्वाहा) नित्य उत्तम क्रिया अवश्य करनी चाहिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्य नित्य सुगन्ध्यादि पदार्थों को अग्नि में छोड़ अर्थात् हवन कर पवन और सूर्य की किरणों द्वारा वनस्पति, ओषधि, मूल, शाखा, पुष्प और फलादिकों में प्रवेश करा के सब पदार्थों की शुद्धि कर आरोग्यता की सिद्धि करें ॥ २८ ॥

पृथिव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। निचृदत्यष्टिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्प-

तिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (पृथिव्यै) विथरी हुई इस पृथिवी के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अन्तरिक्षाय) अवकाश अर्थात् पदार्थों के बीच की पोल के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (दिवे) बिजुली की शुद्धि के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सूर्य्याय) सूर्य्य मंडल की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चन्द्राय) चन्द्रमण्डल के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (नक्षत्रेभ्यः) अश्विनी आदि नक्षत्रलोकों की उत्तमता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अद्भ्यः) जलों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (ओषधीभ्यः) ओषधियों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (वनस्पतिभ्यः) वट वृक्ष आदि के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (परिप्लवेभ्यः) जो सब ओर से आते जाते उन तारागणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चराचरेभ्यः) स्थावर जङ्गम जीवों और जड़ पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया तथा (सरीसृपेभ्यः) जो रेंगते हैं उन सर्प आदि जीवों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करें तो वे सब की शुद्धि करने को समर्थ हों ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो सुगन्धित आदि पदार्थ को पृथिवी आदि पदार्थों में अग्नि के द्वारा विस्तार के अर्थात् फैला के पवन और जल के द्वारा ओषधि आदि पदार्थों में प्रवेश करा सब को अच्छे प्रकार शुद्ध कर आरोग्यपन को सिद्ध कराते हैं वे आयुर्दा के बढ़ानेवाले होते हैं ॥ २९ ॥

असवे इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वस्वादयो देवताः। कृतिश्छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (असवे) प्राणों के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (वसवे) जो इस शरीर में वसता है उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (विभुवे) व्याप्त होने वाले पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (विवस्वते) सूर्य के लिये

(स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (गणश्रिये) जो पदार्थों के लिये समूहों की शोभा बिजुली है उसके लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (गणपतये) पदार्थों के समूहों को पालने हारे पवन के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अभिभुवे) सन्मुख होने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (अधिपतये) सब के स्वामी राजा के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (शूषाय) बल और तीक्ष्णता के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (संसर्पाय) जो भलीभांति करके रेंगे उस जीव के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (चन्द्राय) सुवर्ण के लिये (स्वाहा) उक्त क्रिया (ज्योतिषे) ज्योतिः अर्थात् सूर्य चन्द्र और तारागणों के प्रकाश के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया (मलिम्लुचाय) चोर के लिये (स्वाहा) उस के प्रबन्ध करने की क्रिया तथा (दिवा, पतये) दिन के पालने हारे सूर्य के लिये (स्वाहा) उत्तम यज्ञ क्रिया को अच्छे प्रकार युक्त करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्राण आदि की शुद्धि के लिये आग में पुष्टि करने वाले आदि पदार्थ का होम करें ॥ ३० ॥

मधवे स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मासा देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाᳬहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (मधवे) मीठेपन आदि को उत्पन्न करने हारे चैत्र के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (माधवाय) मधुरपन में उत्तम वैशाख के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुक्राय) जल आदि को पवन के योग से निर्मल करने हारे ज्येष्ठ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (शुचये) वर्षा के योग से भूमि आदि को पवित्र करने वाले आषाढ़ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नभसे) भली भांति सघन घन बद्दलों की घनघोर सुनवाने वाले श्रावण के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (नभस्याय) आकाश में वर्षा से प्रसिद्ध होने हारे भाद्रों के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (इषाय) अन्न को उत्पन्न कराने वाले क्वार के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (ऊर्जाय) बल और अन्न को उत्पन्न कराने वा बलयुक्त अन्न अर्थात् कुआर में फूले हुए बाजरा आदि अन्न को पकाने पुष्ट करने हारे कार्तिक के

लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सहसे) बल देने वाले अगहन के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (सहस्याय) बल देने में उत्तम पौष के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (तपसे) ऋतु बदलने से धीरे २ शीत की निवृत्ति और जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने वाले माघ के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया (तपस्याय) जीवों के शरीरों में गरमी की प्रवृत्ति कराने में उत्तम फाल्गुन मास के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया और (अंहसः) महीनों में मिले हुए मलमास के (पतये) पालने वाले के लिये (स्वाहा) यज्ञ क्रिया का अनुष्ठान करो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रतिदिन अग्निहोत्र आदि यज्ञ और अपनी प्रकृति के योग्य आहार और विहार आदि को करते हैं वे नीरोग होकर बहुत जीने वाले होते हैं ॥ ३१ ॥

वाजायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाजादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑ऽपि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ स्वः॒ स्वाहा॑ मू॒र्ध्ने स्वाहा॑ व्यश्नु॒विने॒ स्वाहान्त्या॑य॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑ ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (वाजाय) अन्न के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (प्रसवाय) पदार्थों की उत्पत्ति करने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अपिजाय) घर के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (क्रतवे) बुद्धि वा कर्म के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (स्वः) अत्यन्त सुख के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (मूर्द्ध्ने) शिर की शुद्धि होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्यश्नुविने) व्याप्त होने वाले बीज के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (आन्त्याय) व्यवहारों के अन्त में होने वाले व्यवहार के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया अन्त में होने वाले (भौवनाय) जो संसार में प्रसिद्ध होता उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (भुवनस्य) संसार को (पतये) पालना करने वाले स्वामी के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (अधिपतये) सब के अधिष्ठाता अर्थात् सब पर जो एक शिक्षा देता है उस के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया तथा (प्रजापतये) सब प्रजाजनों की पालना करने वाले के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया को सब कभी भलीभांति युक्त करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्न, सन्तान, घर, बुद्धि और शिर आदि के शोधन से सुख बढ़ाने के लिये सत्यक्रिया को करते हैं वे परमात्मा की उपासना कर के प्रजा के अधिक पालना करने वाले होते हैं ॥ ३२ ॥

आयुर्यज्ञेनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। आयुरादयो देवताः। प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

मनुष्यों को अपना सर्वस्व अर्थात् सब पदार्थ समूह किस के अनुष्ठान के लिये भलीभांति अर्प्पण करना चाहिये इस वि०॥

आयुर्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहापानो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳪं स्वाहा॥ ३३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम को ऐसी इच्छा करना चाहिये कि हमारी (आयुः) आयु कि जिससे हम जीते हैं वह (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से मिले हुए कर्म और विद्या आदि देने के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (प्राणः) जीवाने का मूल मुख्य कारण पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया और (यज्ञेन) योगाभ्यास आदि के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (अपानः) जिससे दुःख को दूर करता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) श्रेष्ठ काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (व्यानः) सब सन्धियों में व्याप्त अर्थात् शरीर को चलाने कर्म कराने आदि का जो निमित्त है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम काम के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (उदानः) जिससे बली होता है वह पवन (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) उत्तम कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हो (समानः) जिससे अङ्ग २ में अन्न पहुंचाया जाता है वह पवन (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हो (चक्षुः) नेत्र (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हो (श्रोत्रम्) कान आदि इन्द्रियां जो कि पदार्थों का ज्ञान कराती हैं (स्वाहा) अच्छी क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हों (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रियां (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अच्छे काम के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हो (मनः) मन अर्थात् अन्तःकरण (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्प्पित हो (आत्मा) जीव (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) सत्कर्म के साथ (कल्पताम्)

समर्पित हो (ब्रह्मा) चार वेदों का जानने वाला (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञादि सत्कर्म के साथ (कल्पताम्) समर्थ हो (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (स्वः) सुख (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (पृष्ठम्) पूछना वा जो बचा हुआ पदार्थ हो वह (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) यज्ञ के साथ (कल्पताम्) समर्पित हो (यज्ञः) यज्ञ अर्थात् व्यापक परमात्मा (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (यज्ञेन) अपने साथ (कल्पताम्) समर्पित हो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जितना अपना जीवन शरीर प्राण, अन्तःकरण, दशों इन्द्रियां और सब से उत्तम सामग्री हो उसको यज्ञ के लिये समर्पित करें जिससे पापरहित कृतकृत्य हो के परमात्मा को प्राप्त होकर इस जन्म और द्वितीय जन्म में सुख को प्राप्त होवें ॥ ३३ ॥

एकस्मा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किस के अर्थ यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये इस वि० ॥

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳪं स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम लोगों को (एकस्मै) एक अद्वितीय परमात्मा के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (द्वाभ्याम्) दो अर्थात् कार्य और कारण के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया (शताय) अनेक पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (एकशताय) एकसौ एक व्यवहार वा पदार्थों के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया (व्युष्ट्यै) प्रकाशित हुई पदार्थों को जलाने की क्रिया के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया और (स्वर्गाय) सुख को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) उत्तम क्रिया भलीभांति युक्त करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विशेष भक्ति से जिसके समान दूसरा नहीं वह ईश्वर तथा प्रीति और पुरुषार्थ से असंख्य जीवों को प्रसन्न करें जिससे संसार का सुख और मोक्ष सुख प्राप्त होवे ॥ ३४ ॥

इस अध्याय में आयु, वृद्धि, अग्नि के गुण कर्म, यज्ञ, गायत्री मंत्र का अर्थ और सब पदार्थों के शोधने के विधान आदि का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ

ओ३म्

अथ त्रयोविंशाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेईसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस वि० ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ आसीत् । स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (भूतस्य) उत्पन्न कार्य्य रूप जगत् के (अग्रे) पहिले (हिरण्यगर्भः) सूर्य चन्द्र तारे आदि ज्योति गर्भरूप जिस के भीतर हैं वह सूर्य आदि कारणरूप पदार्थों में गर्भ के समान व्यापक स्तुति करने योग्य (समवर्त्तत) अच्छे प्रकार वर्त्तमान और इस सब जगत का (एकः) एक ही (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) पालना करने हारा (आसीत्) होता है (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) विस्तारयुक्त पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य आदि लोकों को रच के इन को (दाधार) तीनों काल में धारण करता है उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सुख देने हारे परमात्मा के लिये जैसे हम लोग (हविषा) सर्वस्वदान करके उस की (विधेम) परिचर्य्या सेवा करें वैसे तुम भी किया करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब सृष्टि प्रलय को प्राप्त होकर प्रकृति में स्थिर होती है और फिर उत्पन्न होती है उस का आगे जो एक जागता हुआ परमात्मा वर्त्तमान रहता है तब सब जीव मूर्छा सी पाये हुए होते हैं वह कल्प के अन्त में प्रकाशरहित पृथिवी आदि सृष्टि तथा प्रकाशसहित सूर्य आदि लोकों की सृष्टि का विधान धारण और सब जीवों के कर्मों के अनुकूल जन्म देकर सब के निर्वाह के लिये सब पदार्थों का विधान करता है वही सब को उपासना करने योग्य देव है यह जानना चाहिये ॥ १ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । निचृदाकृतिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे भगवन् जगदीश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) यम जो योगाभ्यास सम्बन्धी काम हैं उनसे समीप में साक्षात् किये अर्थात हृदयाकाश में प्रकट किये हुए (असि) हैं उन (जुष्टम्) सेवा किये हुए वा प्रसन्न किये (त्वा) आप को (प्रजापतये) प्रजापालन करने हारे राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं जिन (ते) आप की (एषः) यह (योनिः) प्रकृति जगत् का कारण है जो (ते) आप का (सूर्यः) सूर्यमण्डल (महिमा) बड़ाई रूप तथा (यः) जो (ते) आप की (अहन्) दिन और (संवत्सरे) वर्ष में नियम बंधन द्वारा (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) संभावित है (यः) जो (ते) आप की (वायौ) पवन और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रसिद्ध है तथा (यः) जो (ते) आप की (दिवि) बिजुली अर्थात् सूर्य आदि के प्रकाश और (सूर्ये) सूर्य में (महिमा) बड़ाई (सम्बभूव) प्रत्यक्ष है (तस्मै) उस (महिम्ने, प्रजापतये) प्रजापालनरूप बड़ाई वाले (ते) आप के लिये और (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (स्वाहा) उत्तम विद्यायुक्त बुद्धि सब को ग्रहण करनी चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस परमेश्वर की महिमा को यह सब जगत् प्रकाश करता है उस परमेश्वर की उपासना को छोड़ और किसी की उपासना उस के स्थान में नहीं करनी चाहिये और जो कोई कहे कि परमेश्वर के होने में क्या प्रमाण है उस के प्रति जो यह जगत् वर्त्तमान है सो सब परमेश्वर का प्रमाण करता है यह उत्तर देना चाहिये ॥ २ ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (यः) जो (एकः) एक (इत्) ही (महित्वा) अपनी महिमा से (निमिषतः) नेत्र आदि से चेष्टा को करते हुए (प्राणतः) प्राणी रूप (द्विपदः) दो पग वाले मनुष्य आदि वा (चतुष्पदः) चार पग वाले गौ आदि पशु सम्बन्धी इस (जगतः) संसार का राजा अधिष्ठाता (बभूव) होता है और (यः) जो (अस्य) इस संसार का (ईशे) सर्वोपरि स्वामी है उस (कस्मै) आनन्दस्वरूप (देवाय) अति मनोहर परमेश्वर की (हविषा) विशेष भाव से भक्ति (विधेम) सेवा करें वैसे विशेष भक्ति भाव आप लोगों को भी विधान करना चाहिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो जो एक ही सब जगत् का महाराजाधिराज समस्त जगत् का उत्पन्न करने द्वारा सकल ऐश्वर्ययुक्त महात्मा न्यायाधीश है उसी की उपासना से तुम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के फलों को पाकर संतुष्ट होओ ॥ ३ ॥

उपयामगृहीत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विकृतिश्छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) सत्कर्म अर्थात् योगाभ्यास आदि उत्तम काम से स्वीकार किये हुए (असि) हो उन (त्वा, जुष्टम्) सेवा किये हुए आप को (प्रजापतये) प्रजा की पालना करने वाले राजा की रक्षा के लिये मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता अर्थात् मन में धरता हूं जिन (ते) आपके संसार में (एषः) यह (योनिः) जल वा जिन (ते) आपका संसार में (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (महिमा) बड़प्पन वा जिन (ते) आपका (यः) जो (रात्रौ) रात्रि और (संवत्सरे) वर्ष में (महिमा) बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ, होता और होगा (यः) जो (ते) आप की सृष्टि में (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि और (अग्नौ) आग में (महिमा) बड़प्पन

(सम्बभूव) सम्भव हुआ होता और होगा तथा जिन (ते) आप सृष्टि में (यः) जो (नक्षत्रेषु) कारण रूप से विनाश को न प्राप्त होने वाले लोक लोकान्तरों में और (चन्द्रमसि) चन्द्रलोक में महिमा बड़प्पन (सम्बभूव) सम्भव हुआ होता और होगा उन (ते) आप (तस्मै) उस (महिम्ने) बड़प्पन (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा (देवेभ्यः) और विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्याचरणयुक्त क्रिया का हम लोगों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस के महिमा सामर्थ्य से सब जगत् विराजमान जिस की अनन्त महिमा और जिसकी सिद्धि करने में रचना से भरा हुआ समस्त जगत् दृष्टान्त है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ ४ ॥

युञ्जन्तीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

पदार्थः—जो पुरुष (परि) सब ओर से (तस्थुषः) स्थावर जीवों को (चरन्तम्) प्राप्त होते हुए बिजुली के समान वर्त्तमान (अरुषम्) प्राणियों के मर्मस्थल जिन में पीड़ा होने से प्राण का वियोग शीघ्र हो जाता है उन स्थानों की रक्षा करने के लिये स्थिर होते हुए (ब्रध्नम्) सबसे बड़े सर्वोपरि विराजमान परमात्मा को अपने आत्मा के साथ (युञ्जन्ति) युक्त करते हैं वे (दिवि) सूर्य्य में (रोचनाः) किरणों के समान (रोचन्ते) परमात्मा में प्रकाशमान होते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे प्रत्येक ब्रह्माण्ड में सूर्य्य विराजमान है वैसे सर्व जगत में परमात्मा प्रकाशमान है जो योगाभ्यास से उस अन्तर्यामी परमेश्वर को अपने आत्मा से युक्त करते हैं वे सब ओर से प्रकाश को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥

युञ्जन्त्यस्येति प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किससे ईश्वर की प्राप्ति होने योग्य है इस वि० ॥

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे शिक्षा करने वाले सज्जन (काम्या) मनोहर (हरी) लेजाने हारे (विपक्षसा) जो कि विविध प्रकारों से भलीभांति ग्रहण किये हुए (शोणा) लाल २ रंग से युक्त (धृष्णू) अतिपुष्ट (नृवाहसा) मनुष्यों को एक देश से दूसरे देश को पहुंचाने हारे दो घोड़ों को (रथे) रथ में (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं वैसे योगीजन (अस्य) इस परमेश्वर के बीच इन्द्रियां अन्तःकरण और प्राणों को युक्त करते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मनुष्य अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान को शीघ्र प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्या सज्जनों का संग और योगाभ्यास से परमात्मा को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यद्वात इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किसका संग करे इस वि० ॥

यद्वातो॑ अ॒पो अग॑नीग॒न्प्रि॒यामिन्द्र॑स्य त॒न्व॑म् । ए॒तꣳ स्तो॑तर॒नेन॑ प॒था पुन॒रश्व॒माव॑र्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (स्तोतः) स्तुति करने हारे जन जैसे शिल्पी लोग (इन्द्रस्य) बिजुली के (प्रियाम्) अतिसुन्दर (तन्वम्) विस्तारयुक्त शरीर को (वातः) पवन के समान पा कर (यत्) जिस कलायन्त्र रूपी घोड़े और (अपः) जलों को (अगनीगन्) प्राप्त होते हैं वैसे (एतम्) इस (अश्वम्) शीघ्र चलने हारे कलायन्त्र रूप घोड़े को (अनेन) उक्त बिजुली रूप (पथा) मार्ग से आप प्राप्त होते (पुनः) फिर (नः) हम लोगों को (आ, वर्त्तयासि) भलीभांति वर्त्तते अर्थात् इधर उधर लेजाते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जो तुमको अच्छे मार्ग से चलाते हैं उनके संग से तुम लोग पवन और बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

वसव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वाय्वादयो देवताः । अत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस वि० ॥

वस॑वस्त्वाञ्जन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑सा रु॒द्रास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽऽदि॒त्यास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑सा । भूर्भुवः॒ स्व॒र्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये॒ गव्य॑ ए॒तदन्न॑मत्त देवा ए॒तदन्न॑मद्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) प्रजाजनों को पालने हारे राजन् (वसवः) प्रथम कक्षा के विद्वान् (गायत्रेण) गायत्री छन्द से कहने योग्य (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वाम्) आप को (अञ्जन्तु) चाहें (रुद्राः) मध्यम कक्षा के विद्वान् जन (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप्छन्द से प्रकाश किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें वा (आदित्याः) उत्तम कक्षा के विद्वान् जन (जागतेन) जगती छन्द से प्रकाशित किये हुए (छन्दसा) स्वच्छन्द अर्थ से जिन (त्वा) आप को (अञ्जन्तु) चाहें सो आप (एतत्) इस (अन्नम्) अन्न को (अद्धि) खाइये हे (देवाः) विद्वानो तुम (यव्ये) यवों के खेत में उत्पन्न (गव्ये) गौ के दूध दही आदि उत्तम पदार्थ

में मिले हुए (एतम्) इस (अन्नम्) अन्न को (अत्त) खाओ तथा (लाजीन्) अपनी २ कक्षा में चलते हुए (शाचीन्) प्रकट (भूः) इस प्रत्यक्ष लोक (भुवः) अन्तरिक्षस्थ लोक और (स्वः) प्रकाश में स्थिर सूर्यादि लोकों को प्राप्त होओ ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन अंगों और उपांगों (अंगों के अंगों) से युक्त चारों वेदों को मनुष्यों को पढ़ाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ ८ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विद्वान् जनों को क्या क्या पूछना चाहिये इस वि० ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो हम लोग तुम को यह पूछते हैं कि (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एका एकी अकेला (चरति) विचरता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) वार २ (जायते) प्रकट होता है (किं, स्वित्) क्या (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध और (किम्) क्या (उ) तो (महत्) बड़ा (आवपनम्) वीज बोने का स्थान है ॥ ९ ॥

भावार्थः—इन उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहे हुए हैं यह जानना चाहिये । मनुष्यों को योग्य है कि सदा इसी प्रकार के प्रश्न किया करें ॥ ९ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्य्यो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले मनुष्यो (सूर्य्यः) सूर्य्य (एकाकी) विना सहाय अपनी कक्षा में (चरति) चलता है (पुनः) फिर इसी सूर्य के प्रकाश से (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) आग (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (भूमिः) पृथिवी (महत्) बड़ा (आवपनम्) बोने का स्थान है इस को तुम लोग जानो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस संसार में सूर्यलोक अपनी आकर्षण शक्ति से अपनी ही कक्षा में वर्त्तमान है और उसी के प्रकाश से चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं आग

के समान शीत के हटाने को कोई वस्तु और पृथिवी के तुल्य बड़ा पदार्थों के बोने का स्थान नहीं है यह मनुष्यों को जानना चाहिये ॥ १० ॥

कास्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद्बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो हम लोग तुम्हारे प्रति पूछते हैं कि (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) स्मरण का प्रथम पहिला विषय (आसीत्) हुआ है (किं, स्वित्) कौन (बृहत्) बड़ा (वयः) उड़ने हारा पक्षी (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी वस्तु (आसीत्) तथा (का, स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) प्रकाशरूप को निगल जाने वाली वस्तु है ॥ ११ ॥

भावार्थः—इन प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं जो विद्वानों के प्रति न पूछें तो आप विद्वान् भी न हों ॥ ११ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पिछले प्रश्नों के उत्तरों को कहते हैं ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः । अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले (पूर्वचित्तिः) प्रथम स्मृति का विषय (द्यौः) दिव्यगुण देने हारी वर्षा (आसीत्) है (बृहत्) बड़े (वयः) उड़ने हारे (अश्वः) मार्गों को व्याप्त होने वाले पक्षी के तुल्य अग्नि (आसीत्) है (पिलिप्पिला) वर्षा से पिलपिली चिकनी शोभायमान (अविः) अन्नादि से रक्षा आदि उत्तमगुण प्रकट करने वाली पृथिवी (आसीत्) है और (पिशङ्गिला) प्रकाशरूप को निगलने अर्थात् अन्धकार करने हारी (रात्रिः) रात (आसीत्) है यह तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थः—हवन और सूर्य रूपादि अग्नि के ताप से सब गुणों से युक्त अन्नादि से संसार की स्थिति करने वाली वर्षा होती है उस वर्षा से सब ओषधि आदि उत्तम पदार्थयुक्त पृथिवी होती और सूर्यरूप अग्नि से ही प्राणियों के विश्राम के लिये रात्रि होती है ॥ १२ ॥

वायुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को मनुष्य कहां युक्त करने चाहिये इस वि० ॥

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या। एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्माऽकृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन (पचतैः) अच्छे प्रकार पाकों से (वायुः) स्थूल कार्यरूप पवन (छागैः) काटने की क्रियाओं से (असितग्रीवः) काली चोटियों वाला अग्नि और (चमसैः) मेघों से (न्यग्रोधः) वट वृक्ष (वृद्ध्या) उन्नति के साथ (शल्मलिः) सेंवरवृक्ष वा तुझ को (अवतु) पाले जो (एषः) यह (राथ्यः) सड़कों में चलने में कुशल और (वृषा) सुखों की वर्षा करने हारा है (स्यः) वह (चतुर्भिः, पड्भिः, इत्) जिनसे गमन करता है उन चारों पगों से तुझ को। (आऽगन्) प्राप्त हो (च) तथा जो (अकृष्णः) अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् (ब्रह्मा) चार वेदों का जानने हारा उत्तम विद्वान् (नः) हम लोगों को सब गुणों में (अवतु) पहुंचावे उस (अग्नये) विद्या के प्रकाशमान चारों वेदों को पढ़े हुए विद्वान् के लिये (नमः) अन्न देना चाहिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो पवन श्वासा आदि के चलाने, आग अन्न आदि के पकाने सूर्यमण्डल वर्षा, वृक्ष फल आदि, घोड़े आदि गमन और विद्वान् शिक्षा से तुम्हारी रक्षा करते हैं उन को तुम जानो और विद्वानों का सत्कार करो ॥ १३ ॥

सꣳशितो रश्मिनेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। ब्रह्मा देवता। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः। सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

पदार्थः—जो मनुष्यों से (रश्मिना) किरण समूह से (रथः) आनन्द को सिद्ध कराने वाला यान (संशितः) अच्छे प्रकार सूक्ष्म कारीगरी से बनाया (रश्मिना) लगाम की रस्सी आदि से (हयः) घोड़ा (संशितः) भलीभांति चलने में तीक्ष्ण अर्थात् उत्तम किया तथा (अप्सु) प्राणों में (अप्सुजाः) जो प्राण वायुरूप से संचार करने वाला पवन वा वायु (सोमपुरोगवः) ओषधियों का बोध और ऐश्वर्य्य का योग जिस से पहिले प्राप्त होने वाला है वह ब्रह्मा बड़ा योगी विद्वान् (संशितः) अति प्रशंसित किया जाय तो क्या २ सुख न मिले ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थों के विशेष ज्ञान से विद्वान् होते हैं वे औरों को विद्वान् करके प्रशंसा को पावें ॥ १४ ॥

स्वयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विद्वान् देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥
अब पढ़ने वा उत्तम विद्याबोध चाहने वाले कैसे हों इस वि० ॥

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व । महि॒मा तेऽन्येन न सुनशे ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) बोध चाहने वाले जन तू (स्वयम्) आप (तन्वम्) अपने शरीर को (कल्पयस्व) समर्थ कर (स्वयम्) आप अच्छे विद्वानों को (यजस्व) मिल और (स्वयम्) आप उन की (जुषस्व) सेवा कर जिससे (ते) तेरी (महिमा) बड़ाई तेरा प्रताप (अन्येन) और के साथ (न) मत (संनशे) नष्ट हो ॥ १५ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि आप से आप प्रकाशित होता आप मिलता तथा आप सेवा को प्राप्त है वैसे जो बोध चाहने वाले जन आप पुरुषार्थयुक्त होते हैं उन का प्रताप बड़ाई कभी नहीं नष्ट होती ॥ १५ ॥

नवाउइत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सविता देवता। विराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥
अब मनुष्य कैसे हों इस वि० ॥

न वा उ॑ ए॒तन्म्रि॑यसे॒ न रि॑ष्यसि दे॒वाँ२ ॥ इदे॑षि प॒थिभिः॑ सु॒गेभिः॑। यत्रास॑ते सु॒कृतो॒ यत्र॒ ते य॒युस्तत्र॑ त्वा दे॒वः स॑वि॒ता द॑धातु ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी (यत्र) जहां (ते) वे (सुकृतः) धर्मात्मा योगी विद्वान् (आसते) बैठते और सुख को (ययुः) प्राप्त होते हैं वा (यत्र) जहां (सुगेभिः) सुख से जाने के योग्य (पथिभिः) मार्गों से तू (देवान्) दिव्य अच्छे २ गुण वा विद्वानों को (एषि) प्राप्त होता है और जहां (एतत्) यह पूर्वोक्त सब वृत्तान्त (उ) तो वर्त्तमान है और स्थिर हुआ तू (न) नहीं (म्रियसे) नष्ट हो (न, वै) नहीं (रिष्यसि) दूसरे का नाश करे (तत्र) वहां (उ) ही (त्वा) तुझे (सविता) समस्त जगत् का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (देवः) जोकि आप प्रकाशमान है वह (दधातु) स्थापन करे ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने २ रूप को जानें तो अविनाशी भाव को जान सकें जो धर्मयुक्त मार्ग से चलें तो अच्छे कर्म करने हारों के आनन्द को पावें जो परमात्मा की सेवा करें तो औरों को सत्यमार्ग में स्थापन करें ॥ १६ ॥

अग्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । अतिशक्वर्य्यौ छन्दसी ।
पञ्चमः स्वरः ॥
अब पशु कौन हैं इस वि० ॥

अ॒ग्निः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॑न्न॒ग्निः स ते॑ लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता अ॒पः । वा॒युः प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॑न्वा॒युः स ते॑ लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता अ॒पः । सूर्यः॑ प॒शुरा॑सी॒त्तेना॑यजन्त॒ स ए॒तं लो॒कम॑जय॒द्यस्मि॒न्त्सूर्यः॒ स ते॑ लो॒को भ॑विष्यति॒ तं जे॑ष्यसि॒ पिबै॒ता अ॒पः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्या बोध चाहने वाले पुरुष ! (यस्मिन्) जिस देखने योग्य लोक में (सः) वह (अग्निः) अग्नि (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उस से जिस प्रकार यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें उस प्रकार से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस (लोकम्) देखने योग्य स्थान को (अजयत्) जीतता है वैसे इस को जीत यदि (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (अग्निः) अग्नि (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) इन यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) जलों को (पिब) पी (यस्मिन्) जिस में (सः) वह (वायुः) पवन (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है और जिस से यज्ञ करने वाले (अयजन्त) यज्ञ करें (तेन) उस से तू यज्ञ कर जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस वायु-मण्डल के रहने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीते वैसे तू जीत जो (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो वह (वायुः) पवन (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इससे तू (एताः) इन (अपः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए प्राणरूपी पवनों को (पिब) धारण कर (यस्मिन्) जिस में वह (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल (पशुः) देखने योग्य (आसीत्) है (तेन) उससे (अजयन्त) यत्न करने वाले यज्ञ करें जैसे (सः) वह विद्वान् (एतम्) इस सूर्य्यमण्डल के ठहरने के (लोकम्) लोक को (अजयत्) जीतता है वैसे तू जीत जो तू (तम्) उस को (जेष्यसि) जीतेगा तो (सः) वह (सूर्यः) सूर्य्यमण्डल (ते) तेरा (लोकः) देखने योग्य (भविष्यति) होगा इस से तू (एताः) यज्ञ से शुद्ध किये हुए (अपः) संसार में व्याप्त हो रहे सूर्य्यप्रकाशों को (पिब) ग्रहण कर ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानो किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं न होमने योग्य हैं जो ऐसे जान कर सुगन्धि आदि अच्छे २ पदार्थों को भलीभांति बना आग में होम करने हारे होते हैं वे पवन और सूर्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूट कर ओषधी, प्राण, शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं इस यज्ञ कर्म के करने वाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कारयुक्त होते हैं ॥ १७ ॥

अथ प्राणायेत्यस्य मन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ जानना चाहिये इस वि० ॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (अम्बे) माता (अम्बिके) दादी (अम्बालिके) वा परदादी (कश्चन) कोई (अश्वकः) घोड़े के समान शीघ्रगामी जन जिस (काम्पीलवासिनीम्) सुखग्राही मनुष्य को बसाने वाली (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण करने हारी लक्ष्मी को ग्रहण कर (ससस्ति) सोता है वह (मा) मुझे (न) नहीं (नयति) अपने वश में लाती इससे मैं (प्राणाय) प्राण के पोषण के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (अपानाय) दुःख के हटाने के लिये (स्वाहा) सुशिक्षित वाणी और (व्यानाय) सब शरीर में व्याप्त होने वाले अपने आत्मा के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी को युक्त करता हूं ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे माता दादी परदादी अपने २ सन्तानों को अच्छी सिखावट पहुंचाती हैं वैसे तुम लोगों को भी अपने सन्तान शिक्षित करने चाहियें धन का स्वभाव है कि जहां यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु आलसी और कर्महीन कर देता है इस से धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिये ॥ १८ ॥

गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । गणपतिर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य को कैसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये इस वि० ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवा-

१०७

महे निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर हम लोग (गणानाम्) गणों के वीच (गणपतिम्) गणों के पालने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते (प्रियाणाम्) अतिप्रिय सुन्दरों के वीच (प्रियपतिम्) अतिप्रिय सुन्दरों के पालने हारे (त्वा) आपकी (हवामहे) प्रशंसा करते (निधीनाम्) विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के वीच (निधिपतिम्) विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे (त्वा) आप को (हवामहे) स्वीकार करते हैं हे (वसो) परमात्मन् जिस आप में सब प्राणी वसते हैं सो आप (मम) मेरे न्यायाधीश हूजिये जिस (गर्भधम्) गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे (त्वम्) आप (आ, अजासि) जन्मादि दोषरहित भलीभांति प्राप्त होते हैं उस (गर्भधम्) प्रकृति के धर्त्ता आप को (अहम्) मैं (आ, अजानि) अच्छे प्रकार जानूं ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो सब जगत् की रक्षा चाहे हुए सुखों का विधान ऐश्वर्यों को भलीभांति देता प्रकृति का पालक और सब वीजों का विधान करता है उसी जगदीश्वर की उपासना सब करो ॥ १६ ॥

ता उभावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । स्वराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजा जन परस्पर कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

पदार्थः—हे राजा प्रजाजनो तुम (उभा) दोनों (तौ) प्रजा राजाजन जैसे (स्वर्गे) सुख से भरे हुए (लोके) देखने योग्य व्यवहार वा पदार्थ में (चतुरः) चारों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पदः) जो कि पाने योग्य हैं उन को (प्रोर्णुवाथाम्) प्राप्त होओ वैसे इन का हम अध्यापक और उपदेशक दोनों (संप्रसारयाव) विस्तार करें जैसे (रेतोधाः) आलिंगन अर्थात् दूसरे से मिलने को धारण करने और (वृषा) दुष्टों के सामर्थ्य वर्षाने अर्थात् उन की शक्ति को रोकने हारा (वाजी) विशेष ज्ञानवान् राजा प्रजाजनों में (रेतः) अपने पराक्रम को स्थापन करे वैसे प्रजाजन (दधातु) स्थापन करें ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना बर्त्ताव वर्त्तें तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षफल की सिद्धि को यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल को बढ़ावे वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करे ॥ २० ॥

उत्सक्थ्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । न्यायाधीशो देवता । भुरिग् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर राजा को दुराचारी प्राणी भलीभांति दण्ड देने योग्य हैं इस वि० ॥

उत्सक्थ्या अवं गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन् । य स्त्रीणां जीवभोजनः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) शक्तिमन् (यः) जो (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के बीच (जीवभोजनः) प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो उस पुरुष और उस स्त्री को बांधकर (उत्सक्थ्याः) ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना कर के और अपनी प्रजा के मध्य (अव; गुदम्) उत्तम सुख को (धेहि) धारण करो और (अञ्जिम्) अपने प्रकट न्याय को (संचारय) भलीभांति चलाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—हे राजन् जो विषय सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्री व्यभिचार को बढ़ावें उन २ को प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये ॥ २१ ॥

यकासकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति । आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका ॥ २२ ॥

पदार्थः—जिस (गभे) प्रजा में राजा अपने (पसः) राज्य को (आहन्ति) जाने वा प्राप्त हो वह (धारका) सुख की धारण करने वाली प्रजा (निगल्गलीति) निरन्तर सुख को निगलती सी वर्त्तमान होती है और जिस से (यका) जो (असकौ) वह प्रजा (शकुन्तिका) छोटी चिड़िया के समान निर्बल है इस से इस प्रजा को (आहलक्) अच्छे प्रकार जो हल भूमि से करोदता है उस को प्राप्त होने वाला अर्थात् हल से जुती हुई भूमि से कर को लेने वाला राजा (वञ्चतीति) ऐसे वञ्चता अपना कर धन लेता है कि जैसे प्रजा सुख को प्राप्त हो ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और

प्रजा से कर लेवे तो जैसे २ प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है। यदि विद्या और विनय से प्रजा की भलीभांति रक्षा करे तो राजा और प्रजा सब ओर से वृद्धि को पावें ॥ २२ ॥

यकोऽसकावित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। राजप्रजे देवते। बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

यकोऽसकौ शकुन्तक आहलगिति वञ्चति। विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभिभाषथाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) यज्ञ के समान आचरण करने हारे राजा (त्वम्) तू (नः) हम लोगों के प्रति (मा, अभिभाषथाः) झूठ मत बोलो और (विवक्षत इव) बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख मत हो यदि इस प्रकार (यकः) जो (असकौ) यह राजा गप्प सप्प करेगा तो (शकुन्तकः) निर्बल पखेरू के समान (आहलक्) भलीभांति उच्छिन्न जैसे हो (इति) इस प्रकार (वञ्चति) ठगा जायगा ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलनेवाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजाजनों से ठगा जाय ॥ २३ ॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। भूमिसूर्यौ देवते। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः। प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतंसयत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे राजन् यदि (ते) आपकी (माता) पृथिवी के तुल्य सहनशील मान करने वाली माता (च) और (ते) आप का (पिता) सूर्य्य के समान तेजस्वी पालन करने वाला पिता (च) भी (वृक्षस्य) छेदन करने योग्य संसाररूप वृक्ष के राज्य की (अग्रम्) मुख्य श्री शोभा वा लक्ष्मी पर (रोहतः) आरूढ़ होते हैं आप का (पिता) पिता (गभे) प्रजा में (मुष्टिम्) मुट्ठी से धन लेने वाले राज्य को धन लेकर (अतंसयत्) प्रकाशित करता है तो मैं (इति) इस प्रकार प्रजाजन (प्र, तिलामि) भलीभांति उस राजा से प्रीति करता हूं ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो माता पिता पृथिवी और सूर्य्य के तुल्य सूर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा

शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र को राजनीति से युक्त करें वे राज्य करने को योग्य हों ॥ २४ ॥

माता चेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर माता पिता कैसे हों इस वि० ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः । विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) चारों वेदों के जानने वाले सज्जन जिन (ते) सूर्य के समान तेजस्वी आपकी (माता) पृथिवी के समान माता (च) और जिन (ते) आप का (पिता) पिता (च) भी (वृक्षस्य) संसाररूप राज्य के बीच (अग्रे) विद्या और राज्य की शोभा में (क्रीडतः) रमते हैं उन (ते) आप का (विवक्षत इव) बहुत कहा चाहते हुए मनुष्य के मुख के समान (मुखम्) मुख है उस से (त्वम्) तू (बहु) बहुत (मा) मत (वदः) कहा कर ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो माता पिता सुशील धर्मात्मा लक्ष्मीवान् कुलीन हों उन्होंने सिखाया हुआ ही पुत्र प्रमाणयुक्त थोड़ा बोलने वाला होकर कीर्त्ति को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

ऊर्ध्वमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजपुरुष किस की उन्नति करें इस वि० ॥

ऊर्ध्वामेनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्यै मध्यमेधताꣳ शीते वाते पुनन्निव ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे राजन् तू (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार (हरन्निव) पहुंचाते हुए के समान (एनाम्) इस राज्यलक्ष्मीयुक्त (ऊर्ध्वाम्) उत्तम कक्षा वाली प्रजा को (उच्छ्रापय) सदा अधिक २ उन्नति दिया कर (अथ) अब (अस्यै) इस प्रजा के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) खेती करने वालों की क्रिया से जैसे अन्न आदि शुद्ध हो वा पवन के योग से जल स्वच्छ हो वैसे आप (एधताम्) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालं०—राजा जैसे कोई बोझा ले जाने वाला अपने शिर वा पीठ पर बोझा को उठा पर्वत पर चढ़ उस भार को ऊपर स्थापन करे वैसे लक्ष्मी की उन्नति होने को पहुंचावे वा जैसे खेती करने वाले भुसा आदि से अन्न को अलग कर उस अन्न को खा के बढ़ते हैं वैसे सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने द्वारा राजा नित्य बढ़ता है ॥ २६ ॥

ऊर्ध्वमेनमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । श्रीर्देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳ हरन्निव । अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे प्रजास्थ विद्वान् आप (गिरौ) पर्वत पर (भारम्) भार को (हरन्निव) पहुंचाने के समान (एनम्) इस राजा को (ऊर्ध्वम्) सब व्यवहारों में अग्रगन्ता (उच्छ्रयतात्) उन्नतियुक्त करें (अथ) इस के अनन्तर जैसे (अस्य) इस राज्य के (मध्यम्) मध्यभाग लक्ष्मी को पाकर (शीते) शीतल (वाते) पवन में (पुनन्निव) शुद्ध होते हुए अन्न आदि के समान (एजतु) उत्तम कर्मों में चेष्टा किया कीजिये ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालं०—जैसे सूर्य मेघमण्डल में जल के भार को पहुंचा और वहां से वर्षा के सब को उन्नति देता है वैसे ही प्रजाजन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥ २७ ॥

यदस्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यद॑स्याऽअꣳहुभेद्याः कृधु स्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा वा राजपुरुष (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) अपराध का विनाश करने वाली प्रजा के (कृधु) थोड़े और (स्थूलम्) बहुत कर्म को (उपातसत्) सुशोभित करें वे दोनों (अस्याः) इस को (एजतः) कर्म कराते हैं और वे आप (गोशफे) गौ के खुर से भूमि में हुए गढ़ेले में (शकुलाविव) छोटी दो मछलियों के समान (मुष्कौ) प्रजा से पाये हुए कर को चोरते हुए कंपते हैं ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे एक दूसरे से प्रीति रखने वाली मछली छोटी ताल तलैया में निरन्तर बसती हैं वैसे राजा और राजपुरुष थोड़े भी कर के लाभ में न्यायपूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दुःख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजाजनों को प्रसन्न कर अपने में उन से प्रीति करावें ॥ २८ ॥

यद्देवास इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यद्देवासो ल॒लाम॑गुं प्रविष्टी॒मिन॒मावि॑षुः । स॒क्थ्ना दे॑दिश्यते॒ नारी॑ स॒त्यस्या॑क्षि॒भुवो॒ यथा॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे राजन् (यथा) जैसे (सत्यस्य) सत्य (अक्षिभुवः) आंख के सामने प्रकट हुए प्रत्यक्ष व्यवहार के मध्य में वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (सक्थ्ना) जांघ वा और अपने शरीर के अंग से (नारी) स्त्री के समान (यत्) जिस (विष्टीमिनम्) जिस में सुन्दर बहुत गीले पदार्थ विद्यमान हैं (ललामगुम्) और जिस से मनोवाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं वैसे न्याय को (प्राविषुः) व्याप्त हों वा जैसे शास्त्रवेत्ता विद्वान् जन सत्य का (देदिश्यते) निरन्तर उपदेश करें वैसे आप आचरण करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा०-जैसे शरीर के अङ्गों से स्त्री पुरुष लखे जाते हैं वैसे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य लखा जाता है उस सत्य से विद्वान् लोग जैसे मानने योग्य कोमलता को पावें वैसे और राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को बढ़ें ॥ २९ ॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर वह राजा कैसे आचरण करे इस वि० ॥

यद्ध॑रि॒णो यव॒मत्ति॒ न पु॒ष्टं प॒शु मन्य॑ते । शू॒द्रा यदर्य॑जारा॒ न पोषा॑य धनायति ॥ ३० ॥

पदार्थः—(यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) खेत में उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) पुष्ट (पशु) देखने योग्य अपने प्रजाजन को (न) नहीं (मन्यते) मानता अर्थात् प्रजा को हृष्ट पुष्ट नहीं देख के खाता है वह (यत्) जो (अर्य्यजारा) स्वामी वा वैश्य कुल को प्रवस्था से बुड्ढा करने हारी दासी (शूद्रा) शूद्र की स्त्री के समान (पोषाय) पुष्टि के लिये (न) नहीं (धनायति) अपने को धन चाहता है ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्र कुल की स्त्री जो कि जारकर्म करती हुई दासी है उस के समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश कर के धनहीनता से दरिद्र हुआ मरता है इस से राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करे ॥ ३० ॥

यद्धरिण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजप्रजे देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस हेतु से नष्ट होता है इस वि० ॥

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (शूद्रः) मूर्खों के कुल में जन्मा हुआ मूढ़जन (अर्य्यायै) अपने स्वामी अर्थात् जिस का सेवक उसकी वा वैश्य कुल की स्त्री के अर्थ (जारः) जार अर्थात् व्यभिचार से अपनी अवस्था का नाश करने वाला होता है वह जैसे (पोषम्) पुष्टि का (न) नहीं (अनुमन्यते) अनुमान रखता वा (यत्) जो राजा (हरिणः) हरिण जैसे (यवम्) उगे हुए जौ आदि को (अत्ति) खाता है वैसे (पुष्टम्) धन सन्तान स्त्री सुख ऐश्वर्य्य आदि से पुष्ट अपने प्रजाजन को (बहु) अधिक (न) नहीं (मन्यते) मानता वह सब ओर से क्षीण नष्ट और भ्रष्ट होता है ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो राजा और राजपुरुष परस्त्री और वेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उन को सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र मूर्खजन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सब को वर्णसंकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल में व्यभिचार करके वर्णसंकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥

दधिक्राव्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह राजा किस के समान क्या बढ़ावे इस वि० ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत् प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे मैं (दधिक्राव्णः) जो धारण पोषण करने वालों को प्राप्त होता (वाजिनः) बहुत वेगयुक्त (जिष्णोः) जीतने और (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाला है उस घोड़े के समान पराक्रम को (अकारिषम्) करूं वैसे आप (नः) हम लोगों के (सुरभि) सुगन्धियुक्त (मुखा) मुखों के तुल्य पराक्रम को (प्र, करत्) भलीभांति करो और (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओं को (तारिषत्) उन की अवधि के पार पहुंचाओ ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले घोड़ों को पराक्रम की रक्षा के नियम से बलिष्ठ और संग्राम में जिताने वाले करते हैं वैसे पढ़ाने और उपदेश करने हारे कुमार और कुमारियों को पूरे ब्रह्मचर्य के सेवन से पण्डित पण्डिता कर उन को शरीर और आत्मा के बल के लिये प्रवृत्त करा के बहुत आयु वाले और अति युद्ध करने में कुशल बनावें ॥ ३२ ॥

गायत्रीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह । बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (विद्वान्) जो विद्वान् जन (पङ्क्त्या) विस्तारयुक्त पङ्क्ति छन्द के (सह) साथ जो (गायत्री) गाने वाले की रक्षा करती हुई गायत्री (त्रिष्टुप्) आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीनों दुःखों को रोकने वाला त्रिष्टुप् (जगती) जगत् के समान विस्तीर्ण अर्थात् फैली हुई जगती (अनुष्टुप्) जिससे पीछे से संसार के दुःखों को रोकते हैं वह अनुष्टुप् तथा (उष्णिहा) जिस से प्रातःसमय की वेला को प्राप्त करता है उस उष्णिह् छन्द के साथ (बृहती) गम्भीर आशय वाली बृहती (ककुप्) ललित पदों के अर्थ से युक्त ककुप्छन्द (सूचीभिः) सूइयों से जैसे वस्त्र सिया जाता है वैसे (त्वा) तुझ को (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें वा सब विद्याओं का बोध करावें उन का तू सेवन कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् गायत्री आदि छन्दों के अर्थ को बताने से मनुष्यों को विद्वान् करते हैं और सूई से फटे वस्त्र को सीवें त्यों अलग २ मतवालों का सत्य में मिलाप कर देते हैं और उन को एक मत में स्थापन करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

द्विपदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः । विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—जो विद्वान् जन (सूचीभिः) सन्धियों को मिला देने वाली क्रियाओं से (याः) जो (द्विपदाः) दो २ पद वाली जो (चतुष्पदाः) चार ४ पद वाली वा (त्रिपदाः) तीन पदों वाली (च) और (याः) जो (षट्पदाः) छः पदों वाली जो (विच्छन्दाः) अनेकविध पराक्रमों वाली (च) और (याः) जो (सच्छन्दाः) ऐसी हैं कि जिन में एकसे छन्द हैं वे क्रिया (त्वा) तुम को ग्रहण करावें (शम्यन्तु) शान्ति सुख को प्राप्त करावें उन का नित्य सेवन करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य नियम से वीर्य वृद्धि को पहुंचा कर

१०८

नीरोग जितेन्द्रिय और विषयासक्ति से रहित करके धर्मयुक्त व्यवहार में चलाते हैं वे सब को पूज्य अर्थात् सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥ ३४ ॥

महानाम्न्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस वि० ॥

म॒हाना॑म्न्यो रे॒वत्यो॒ विश्वा॒ आशाः॑ प्र॒भूव॑रीः । मेघी॑र्वि॒द्युतो॒ वाचः॑ सू॒चीभिः॑ शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने हारे (सूचीभिः) सन्धान करने वाली क्रियाओं से जो (महानाम्न्यः) बड़े नाम वाली (रेवत्यः) बहुत प्रकार के धन और (प्रभूवरीः) प्रभुता से युक्त (विश्वाः) समस्त (आशाः) दिशाओं के समान (मेघीः) जो मेघों की तड़फ (विद्युतः) जो विजुली उन के समान (वाचः) वाणी (त्वा) तुझ को (शम्यन्तु) शान्तियुक्त करें उन का तू ग्रहण कर ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिन की वाणी दिशा के तुल्य सब विद्याओं में व्याप्त होने और मेघ में ठहरी हुई विजुली के समान अर्थ का प्रकाश करने वाली हैं वे विद्वान् शान्ति से जितेन्द्रियता को प्राप्त होकर बड़ी कीर्ति वाले होते हैं ॥ ३५ ॥

नार्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कन्या कितना ब्रह्मचर्य करें इस वि० ॥

नार्य॑स्ते॒ पत्न्यो॒ लोम॒ विचि॑न्वन्तु मनी॒षया॑ । दे॒वानां॒ पत्न्यो॒ दिशः॑ सू॒चीभिः॑ शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (पण्डिता) पढ़ी वाली विदुषी स्त्री जो कुमारी (मनीषया) तीक्ष्ण बुद्धि से (ते) तेरी (लोम) अनुकूल आज्ञा को (विचिन्वन्तु) इकट्ठा करें वे (देवानाम्) पण्डितों की (नार्यः) पण्डितानी हों, हे कुमारी जो पण्डितों की (पत्न्यः) पण्डितानी होके (सूचीभिः) मिलाप की क्रियाओं से (दिशः) दिशाओं के समान शुद्ध पाकविद्या पढ़ी हुई हैं वे (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति और ज्ञान दें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो कन्या प्रथम अवस्था में सोलह वर्ष की अवस्था से चौबीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य से विद्या उत्तम शिक्षा को पाकर अपने सदृश पुरुषों की पत्नी हों वे दिशाओं के समान उत्तम प्रकाशयुक्त कीर्ति वाली हों ॥ ३६ ॥

रजता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । स्त्रियो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वे कैसी हों इस वि० ॥

रक्ता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः । अश्वस्य वाजिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—जैसे स्वयंवर विवाह से विवाही हुई स्त्री (वाजिनः) प्रशंसित बलयुक्त (अश्वस्य) उत्तम गुणों में व्याप्त अपने पति के (त्वचि) उढ़ाने में (युज्यन्ते) संयुक्त की जाती अर्थात् पति को वस्त्र उढ़ाने आदि सेवा में लगाई जाती हैं वैसे (कर्मभिः) धर्मयुक्त क्रियाओं से (रक्ताः) अनुराग अर्थात् प्रीति को प्राप्त हुई (हरिणीः) जिन का प्रशंसित स्वीकार करना है वे (सीसाः) प्रेमवाली (युजः) सावधानचित्त उचित काम करने वाली (शम्यन्तीः) शान्ति को प्राप्त होती वा प्राप्त कराती हुई वा (सिमाः) प्रेम से बंधी स्त्री अपने हृदय से प्रिय पतियों को प्राप्त हो के (शम्यन्तु) आनन्द भोगें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त आप विवाह को प्राप्त स्त्री पुरुष अपनी इच्छा से एक दूसरे से प्रीति किये हुए विवाह को करते हैं वे लावण्य अर्थात् अति सुन्दरता गुण और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तानों को उत्पन्न कर सदा आनन्दयुक्त होते हैं ॥ ३७ ॥

कुविदङ्गेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सभासदो देवताः । निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पढ़ने और पढ़ानेहारे कैसे हों इस वि० ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (कुवित्) बहुत विज्ञानयुक्त तू (इहेह) इस २ व्यवहार में (एषाम्) इन मनुष्यों से (यथा) जैसे (यवमन्तः) बहुत जौ आदि अन्न युक्त खेती करने वाले (यवम्) जौ आदि अनाज के समूह को भुस आदि से (वियूय) पृथक् कर (चित्) और (अनुपूर्वम्) क्रम से (दान्ति) छेदन करते हैं उन के और (ये) जो (बर्हिषः) जल वा (नम उक्तिम्) अन्न सम्बन्धी वचन को (यजन्ति) कह कर सत्कार करते हैं उन के (भोजनानि) भोजनों को (कृणुहि) करो ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे पढ़ाने और पढ़ने वालो तुम लोग जैसे खेती करने हारे एक दूसरे के खेत को पारी से काटते और भूसा से अन्न को अलग कर औरों को भोजन कराके फिर आप भोजन करते हैं वैसे ही यहां विद्या के व्यवहार में निष्कपट

भाव से विद्यार्थियों को पढ़ाने वालों की सेवा और पढ़ाने वालों को विद्यार्थियों की विद्यावृद्धि कर एक दूसरे को खान पान से सत्कार कर सब कोई आनन्द भोगें ॥ ३८ ॥

कस्त्वा छ्यतीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अध्यापको देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर पढ़ाने वाले विद्यार्थियों की कैसी परीक्षा लेवें इस वि० ॥

कस्त्वा छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति । क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे पढ़ने वाले विद्यार्थिजन (त्वा) तुझे (कः) कौन (आछ्यति) छेदन करता (कः) कौन (त्वा) तुझे (विशास्ति) अच्छा सिखाता (कः) कौन (ते) तेरे (गात्राणि) अङ्गों को (शम्यति) शान्ति पहुंचाता और (कः) कौन (उ) तो (ते) तेरा (शमिता) यज्ञ करने वाला (कविः) समस्त शास्त्र को जानता हुआ पढ़ाने हारा है ॥ ३९ ॥

भावार्थः—अध्यापक लोग पढ़ने वालों के प्रति ऐसे परीक्षा में पूछें कि कौन तुम्हारे पढ़ने को काटते अर्थात् पढ़ने में विघ्न करते कौन तुम को पढ़ने के लिये उपदेश देते हैं कौन अङ्गों की शुद्धि और योग्य चेष्टा को जनाते हैं कौन पढ़ने वाला है क्या पढ़ा क्या पढ़ने योग्य है ऐसे २ पूछ उत्तम परीक्षा कर उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देके विद्या की उन्नति करावें ॥ ३९ ॥

ऋतव इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे अपना वर्त्ताव वर्त्तें इस वि० ॥

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु । सम्वत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जन जैसे (ते) तेरे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (ऋतुथा) ऋतु २ के गुणों से (पर्व) पालना करें (शमितारः) वैसे पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ में शम दम आदि गुणों की प्राप्ति कराने हारे अध्यापक पढ़ने वालों को (वि, शासतु) विशेषता से उपदेश करें (संवत्सरस्य) और संवत् के (तेजसा) जल (शमीभिः) और कर्मों से (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति दें उन की तू सदैव सेवा कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ऋतु पारी से अपने २ चिह्नों को प्राप्त होते हैं वैसे स्त्री पुरुष पारी से ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य का धर्म वानप्रस्थ वन में रहकर

तप करना और संन्यास आश्रम को करके ब्राह्मण और ब्राह्मणी पढ़ावें क्षत्रिय और क्षत्रिया प्रजा की रक्षा करें वैश्य और वैश्या खेती आदि की उन्नति करें और शूद्र शूद्रा उक्त ब्राह्मण आदि की सेवा किया करें ॥ ४० ॥

अर्द्धमासा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजा देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ बालकों में माता आदि कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

अ॒र्द्ध॒मा॒साः परूꣳषि ते॒ मासा॒ आच्छ्य॑न्तु॒ शम्य॑न्तः । अ॒हो॒रा॒त्राणि॑ म॒रुतो॒ विलि॑ष्टꣳ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी लोग (अहोरात्राणि) दिन रात (अर्द्धमासाः) उजेले अंधियारे पखवाड़े और (मासाः) चैत्रादि महीने जैसे आयु अर्थात् उमरों को काटते हैं वैसे (ते) तेरे (परूंषि) कठोर वचनों को (शम्यन्तः) शान्ति पहुंचाते हुए (मरुतः) उत्तम मनुष्य दुष्ट कामों का (आच्छ्यन्तु) विनाश करें और (ते) तेरे (विलिष्टम्) थोड़े भी कुव्यसन को (सूदयन्तु) दूर करें ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०- जो माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वाले तथा अतिथि लोग बालकों के दुष्ट गुणों को न निवृत्त करें तो वे शिष्ट अर्थात् उत्तम कभी न हों ॥ ४१ ॥

दैव्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ पढ़ानेवाले आदि सज्जन कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

दैव्या॑ अध्व॒र्यव॒स्त्वाच्छ्य॑न्तु॒ वि च॑ शासतु । गात्रा॑णि पर्व॒शस्ते॒ सिमाः॑ कृण्वन्तु॒ शम्य॑न्तीः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी वा विद्यार्थिनी (दैव्याः) विद्वानों में कुशल (अध्वर्यवः) अपनी रक्षा रूप यज्ञ को चाहते हुए अध्यापक उपदेशक लोग (त्वा) तुझे (वि,शासतु) विशेष उपदेश दें (च) और (ते) तेरे दोषों का (आ, छ्यन्तु) विनाश करें (पर्वशः) संधि २ से (गात्राणि) अङ्गों को परखें (सिमाः) प्रेम से बंधी हुई (शम्यन्तीः) दुष्ट स्वभाव को दूर करती हुई माता आदि सती स्त्रियां भी ऐसे ही शिक्षा (कृण्वन्तु) करें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—अध्यापक उपदेशक और अतिथि लोग जब बालकों को सिखलावें तब दोषों का विनाश कर उन को विद्या की प्राप्ति करावें ऐसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री भी कन्याओं के प्रति आचरण करें और वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों को अच्छे प्रकार परीक्षा कर ओषधि भी देवें ॥ ४२ ॥

द्यौरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापकादि कैसे हों इस वि० ॥

द्यौस्ते॑ पृथि॒व्य॒न्तरि॑क्षं वा॒युश्छि॒द्रं पृ॑णातु ते । सूर्य॑स्ते॒ नक्ष॑त्रैः स॒ह लो॒कं कृ॑णोतु सा॒धुया॑ ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे पढ़ने वा पढ़ाने हारी स्त्रियो जैसे (द्यौः) प्रकाशरूप विजुली (पृथिवी) भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश (वायुः) पवन (सूर्यः) सूर्यलोक और (नक्षत्रैः) तारागणों के (सह) साथ चन्द्रलोक (ते) तेरे (छिद्रम्) प्रत्येक इन्द्रिय को (पृणातु) सुख देवें (ते) तेरे व्यवहार को सिद्ध करें वैसे (ते) तेरे (साधुया) उत्तम सत्य (लोकम्) देखने योग्य लोक को (कृणोतु) सिद्ध करे ॥ ४३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पृथिवी आदि सुख देने और सूर्य आदि पदार्थ प्रकाश करने वाले हैं वैसे ही पढ़ाने वाले और उपदेश करने वाले वा पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्री सब को अच्छे मार्ग में स्थापन कर विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करें ॥ ४३ ॥

शन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । राजा देवता । उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर माता आदि को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

शन्ते॒ परे॑भ्यो॒ गात्रे॑भ्यः॒ शम॒स्त्वव॑रेभ्यः । शम॒स्थभ्यो॑ म॒ज्जभ्यः॒ शम्व॑स्तु त॒न्वै᳖ तव॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्या चाहने वाले जैसे पृथिवी आदि तत्त्व (तव) तेरे (तन्वै) शरीर के लिये (शम्) सुखहेतु (अस्तु) हों वा (परेभ्यः) अत्यन्त उत्तम (गात्रेभ्यः) अङ्गों के लिये (शम्) सुख (उ) और (अवरेभ्यः) उत्तमों से न्यून मध्य तथा निकृष्ट अङ्गों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो और (अस्थभ्यः) हड्डी (मज्जभ्यः) और शरीर में रहने वाली चरबी के लिये (शम्) सुखहेतु हो वैसे अपने उत्तम गुण कर्म स्वभाव से अध्यापक लोग (ते) तेरे लिये सुख के करने वाले हों ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे माता पिता पढ़ाने और उपदेश करने वालों को अपने सन्तानों के पुष्ट अंग और पुष्ट धातु हों जिन से दूसरों के कल्याण करने के योग्य हों वैसे पढ़ाना और उपदेश करना चाहिये ॥ ४४ ॥

कः स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्वानों के प्रति प्रश्न ऐसे करने चाहिये इस वि० ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः । किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वान इस संसार में (कः, स्वित्) कौन (एकाकी) एकाएकी अकेला (चरति) चलता वा प्राप्त होता है (उ) और (कः, स्वित्) कौन (पुनः) फिर २ (जायते) उत्पन्न होता (किं, स्वित्) कौन (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) औषध (किम्, उ) और क्या (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार सब बीज बोने का आधार है इस सब को आप कहिये ॥ ४५ ॥

भावार्थः—विना सहाय के कौन भ्रमता कौन फिर २ उत्पन्न होता शीत की निवृत्ति-कर्त्ता कौन और बड़ा उत्पत्ति का स्थान क्या है इन सब प्रश्नों के समाधान अगले मन्त्र से जानने चाहियें ॥ ४५ ॥

सूर्य्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्य्यादयो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जानने की इच्छा करने वाले पुरुष (सूर्यः) सूर्यलोक (एका-की) अकेला (चरति) स्वपरिधि में घूमता है (चन्द्रमाः) आनन्द देने वाला चन्द्रमा (पुनः) फिर २ (जायते) प्रकाशित होता है (अग्निः) पावक (हिमस्य) शीत का (भेष-जम्) औषध और (महत्) बड़ा (आवपनम्) अच्छे प्रकार बोने का आधार कि जिस में सब वस्तु बोते हैं (भूमिः) वह भूमि है ॥ ४६ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो सूर्य अपनी ही परिधि में घूमता है किसी लोकान्तर के चारों ओर नहीं घूमता चन्द्रादि लोक उसी सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होते हैं अग्नि ही शीत का नाशक और सब बीजों के बोने का बड़ा क्षेत्र भूमि ही है ऐसा तुम लोग जानो ॥४६॥

किं स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । जिज्ञासुर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

किँ स्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किँ समुद्रसमं सरः । किँ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् (किं, स्वित्) कौन (सूर्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप (किम्) कौन (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) जिसमें जल बहते वा गिरते वा आते जाते हैं ऐसा तालाब (किं स्वित्) कौन (पृथिव्यै) पृथिवी से (वर्षीयः) अति बड़ा और (कस्य) किस का (मात्रा) जिस से तोल हो वह परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है ॥ ४७ ॥

भावार्थः—आदित्य के तुल्य तेजस्वी, समुद्र के समान जलाधार और भूमि से बड़ा कौन है और किस का परिमाण नहीं है इन चार प्रश्नों का उत्तर अगले मन्त्र में जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ब्रह्मेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ब्रह्मादयो देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब उक्त प्रश्नों के उत्तरों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्रह्म सूर्य्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः । इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले जन तू (सूर्य्यसमम्) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप (ब्रह्म) सब से बड़े अनन्त परमेश्वर (समुद्रसमम्) समुद्र के समान (सरः) ताल (द्यौः) अन्तरिक्ष (पृथिव्यैः) पृथिवी से (वर्षीयान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य और (गोः) वाणी का (तु) तो (मात्रा) मान परिमाण (न) नहीं (विद्यते) विद्यमान है इस को जान ॥ ४८ ॥

भावार्थः—कोई भी आप प्रकाशमान जो ब्रह्म है उस के समान ज्योति विद्यमान नहीं वा सूर्य के प्रकाश से युक्त मेघ के समान जल के ठहरने का स्थान वा सूर्यमण्डल के तुल्य लोकेश वा वाणी के तुल्य व्यवहार का सिद्ध करने हारा कोई भी पदार्थ नहीं होता इसका निश्चय सब करें ॥ ४८ ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टसमाधातारौ देवते । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर प्रश्नों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ । येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ३ऽ ॥ ४९ ॥

पदार्थः— हे (देवसख) विद्वानों के मित्र (यदि) जो (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) अन्तःकरण से (जगन्थ) प्राप्त हो तो (त्वा) तुझे (चितये) चेतन के लिये (पृच्छामि) पूछता हूं जो (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (येषु) जिन (त्रिषु) तीन प्रकार के (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम और स्थान में (एष्टः) अच्छे प्रकार इष्ट है (तेषु) उन में व्याप्त हुआ (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) पृथिवी आदि लोकों को (आ,विवेश) भलीभांति प्रवेश कर रहा है उस परमात्मा को भी तुझ से पूछता हूं ॥ ४९ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् जो चेतनस्वरूप सर्वव्यापी पूजा, उपासना, प्रशंसा, स्तुति करने योग्य परमेश्वर है उस का मेरे लिये उपदेश करो ॥ ४९ ॥

अपीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ उक्त प्रश्नों के उत्तर अगले मंत्र० ॥

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश । सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवो अस्य पृष्ठम् ॥ ५० ॥

पदार्थ—हे मनुष्यो जो जगत् का रचने हारा ईश्वर मैं (येषु) जिन (त्रिषु) तीन (पदेषु) प्राप्त होने योग्य जन्म नाम स्थानों में (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) जगत् (आविवेश) सब ओर से प्रवेश को प्राप्त हो रहा है (तेषु) उन जन्म नाम और स्थानों में (अपि) भी मैं व्याप्त (अस्मि) हूं (अस्य) इस (दिवः) प्रकाशमान सूर्य आदि लोकों के (पृष्ठम्) उपरले भाग (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष (उत) और (द्याम्) समस्त प्रकाश को (एकेन) एक (अङ्गेन) अति मनोहर प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा देश से (सद्यः) शीघ्र (परि, एमि) सब ओर से प्राप्त हूं उस मेरी उपासना तुम सब किया करो ॥ ५० ॥

भावार्थः—जैसे सब जीवों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि मैं कार्य्य कारणात्मक जगत् में व्याप्त हूं मेरे बिना एक परमाणु भी अव्याप्त नहीं है सो मैं जहां जगत् नहीं है वहां भी अनन्त स्वरूप से परिपूर्ण हूं जो इस अतिविस्तारयुक्त जगत् को आप लोग देखते हैं सो यह मेरे आगे अणुमात्र भी नहीं है इस बात को वैसे ही विद्वान् सब को जनावे ॥ ५० ॥

केष्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पुरुषेश्वरो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ईश्वर विषय में दो प्रश्न कहते हैं ॥

केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतद्ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किं स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥ ५१ ॥

१०९

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) वेदज्ञविद्वन् (केषु) किन में (पुरुषः) सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर (अन्तः) भीतर (आ, विवेश) प्रवेश कर रहा है और (कानि) कौन (पुरुषे) पूर्ण ईश्वर में (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापन किये हैं जिस ज्ञान से हम लोग (उप, वल्हामसि) प्रधान हों (एतत्) यह (त्वा) आप को पूछते हैं सो (किं, स्वित्) क्या है (अत्र) इस में (नः) हमारे (प्रति) प्रति (वोचासि) कहिये ॥ ५१ ॥

भावार्थः—इतर मनुष्यों को चाहिये कि चारों वेद के ज्ञाता विद्वान् को ऐसे पूछें कि वेदज्ञ विद्वान् पूर्ण परमेश्वर किन में प्रविष्ट है और कौन उस के अन्तर्गत हैं यह बात आप से पूछी है यथार्थता से कहिये जिस के ज्ञान से हम उत्तम पुरुष हों ॥ ५१ ॥

पञ्चस्वन्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । परमेश्वरो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा वाले पुरुष (पञ्चसु) पांच भूतों वा उनकी सूक्ष्म मात्राओं में (अन्तः) भीतर (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा (आ, विवेश) अपनी व्याप्ति से अच्छे प्रकार व्याप्त हो रहा है (तानि) वे पञ्चभूत वा तन्मात्रा (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा पुरुष के (अन्तः) भीतर (अर्पितानि) स्थापित किये हैं (एतत्) यह (अत्र) इस जगत् में (त्वा) आप को (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्ष जानता हुआ मैं समाधानकर्त्ता (अस्मि) हूं जो (मायया) उत्तम बुद्धि से युक्त तू (भवसि) होता है तो (मत्) मुझ से (उत्तरः) उत्तम समाधानकर्त्ता कोई भी (न) नहीं है यह तू जान ॥ ५२ ॥

भावार्थः—परमेश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो मेरे ऊपर कोई भी नहीं है मैं ही सब का आधार सब में व्याप्त हो के धारण करता हूं मेरे व्याप्त होने से सब पदार्थ अपने २ नियम में स्थित हैं । हे सब से उत्तम योगी विद्वान् लोगो आप लोग इस मेरे विज्ञान को जनाओ ॥ ५२ ॥

का स्विदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किंस्विदासीद्बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् इस जगत् में (का, स्वित्) कौन (पूर्वचित्तिः) पूर्व अनादि समय में संचित होने वाली (आसीत्) है (किं, स्वित्) क्या (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पन्न स्वरूप (आसीत्) है (का, स्वित्) कौन (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी (आसीत्) है और (का, स्वित्) कौन (पिशङ्गिला) अवयवों को भीतर करने वाली (आसीत्) है यह आपको पूछता हूं ॥ ५३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में चार प्रश्न हैं उनके समाधान अगले मन्त्र में देखने चाहियें ॥ ५३ ॥

द्यौरासीदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र के प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र० ॥

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद्बृहद्वयः । अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु मनुष्य (द्यौः) बिजुली (पूर्वचित्तिः) पहिला संचय (आसीत्) है (अश्वः) महत्तत्त्व (बृहत्) बड़ा (वयः) उत्पत्ति स्वरूप (आसीत्) है (अविः) रक्षा करनेवाली प्रकृति (पिलिप्पिला) पिलिपिली चिकनी (आसीत्) है (रात्रिः) रात्रि के समान वर्त्तमान प्रलय (पिशङ्गिला) सब अवयवों को निगलने वाला (आसीत्) है यह तू जान ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो अति सूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम, महत्तत्त्वरूप द्वितीय परिणाम और प्रकृति सब का मूलकारण परिणाम से रहित है और प्रलय सब स्थूल जगत् का निगलनेरूप है यह जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

का ईमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं ॥

का ईमरे पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला । क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(अरे) हे विदुषि स्त्रि (का, ईम्) कौन बार २ (पिशङ्गिला) रूप का आवरण करने हारी (का, ईम्) कौन बार २ (कुरुपिशङ्गिला) यवादि अन्नों के अवयवों

को निगलने वाली (क, ईम्) कौन बार २ (आस्कन्दम्) न्यारी २ चाल को (अर्पति) प्राप्त होता और (कः) कौन (ईम्) जल के (पन्थाम्) मार्ग को (वि, सर्पति) विशेष पसर के चलता है ॥ ५५ ॥

भावार्थः—किस से रूप का आवरण और किससे खेती आदि का विनाश होता कौन शीघ्र भागता और कौन मार्ग में पसरता है ये चार प्रश्न हैं इन के उत्तर अगले मन्त्र में जानो ॥ ५५ ॥

अजेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अजारे पिशङ्गिला श्वाविित्कुरुपिशङ्गिला । शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(अरे) हे मनुष्यो (अजा) जन्मरहित प्रकृति (पिशङ्गिला) विश्व के रूप को प्रलय समय में निगलनेवाली (श्वावित्) से ही (कुरुपिशङ्गिला) किये हुए खेती आदि के अवयवों का नाश करती है (शशः) खरहा के तुल्य वेगयुक्त कृषि आदि में खरखराने वाला वायु (आस्कन्दम्) अच्छे प्रकार कूद के चलने अर्थात् एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ को शीघ्र (अर्पति) प्राप्त होता और (अहिः) मेघ (पन्थाम्) मार्ग में (वि, सर्पति) विविध प्रकार से जाता है इस को तुम जानो ॥ ५६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो प्रकृति सब कार्यरूप जगत् का प्रलय करने हारी कार्य्य-कारणरूप अपने कार्य को अपने में लय करने हारी है जो सेही खेती आदि का विनाश करती है जो वायु खरहा के समान चलता हुआ सब को सुखाता है और जो मेघ सांप के समान पृथिवी पर जाता है उन सब को जानो ॥ ५६ ॥

कत्यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्न कहते हैं ॥

कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अस्य) इस (यज्ञस्य) संयोग से उत्पन्न हुए संसाररूप यज्ञ के (कति) कितने (विष्ठाः) विशेष कर संसाररूप यज्ञ जिन में स्थित होवे (कति) कितने इस के (अक्षराणि) जलादि साधन (कति) कितने (होमासः) देने लेने योग्य

पदार्थ (कतिधा) कितने प्रकारों से (समिद्धः) ज्ञानादि के प्रकाशक पदार्थ समिधरूप (कति) कितने (होतारः) होता अर्थात् देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) वसन्तादि प्रत्येक ऋतु में (यजन्ति) संगम करते हैं इस प्रकार (अत्र) इस विषय में (विद्या) विद्वानों को (त्वा) आप से मैं (पृच्छम्) पूछता हूं ॥ ५७ ॥

भावार्थः—यह जगत् कहां स्थित है कितने इस की उत्पत्ति के साधन, कितने व्यापार के योग्य वस्तु, कितने प्रकार का ज्ञानादि प्रकाशक वस्तु और कितने व्यवहार करने हारे हैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जान लेना चाहिये ॥ ५७ ॥

षडस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समिधा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्रः । यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतार ऋतुशो यजन्ति ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु लोगो (अस्य) इस (यज्ञस्य) संगत जगत् के (षट्) छः ऋतु (विष्ठाः) विशेष स्थिति के आधार (शतम्) असंख्य (अक्षराणि) जलादि उत्पत्ति के साधन (अशीतिः) असंख्य (होमाः) देने लेने योग्य वस्तु (तिस्रः) आध्यात्मिक, आधिदैविक आधिभौतिक तीन (ह) प्रसिद्ध (समिधः) ज्ञानादि की प्रकाशक विद्या (सप्त) पांच प्राण, मन और आत्मा सात (होतारः) देने लेने आदि व्यवहार के कर्त्ता (ऋतुशः) प्रति वसन्तादि ऋतु में (यजन्ति) संगत होते हैं उस जगत् के (विदथा) विज्ञानों को (ते) तेरे लिये मैं (प्रब्रवीमि) कहता हूं ॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे ज्ञान चाहने वाले लोगो जिस जगत् रूप यज्ञ में छः ऋतु स्थिति के साधक असंख्य जलादि वस्तु व्यवहारसाधक बहुत व्यवहार के योग्य पदार्थ और सब प्राणी अप्राणी होता आदि संगत होते हैं, और जिस में ज्ञान आदि का प्रकाश करने वाली तीन प्रकार की विद्या है, उस यज्ञ को तुम लोग जानो ॥ ५८ ॥

कोऽस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के आधारभूत संसार के (नाभिम्) बन्धन के स्थान मध्यभाग को (कः) कौन (वेद) जानता (कः) कौन (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को जानता (कः) कौन (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (जनित्रम्) उपादान वा निमित्तकारण को (वेद) जानता और जो (यतोजाः) जिस से उत्पन्न हुआ है उस चन्द्रमा के उत्पादक को और (चन्द्रमसम्) चन्द्रलोक को (कः) कौन (वेद) जानता है इन का समाधान कीजिये ॥ ५९ ॥

भावार्थः—इस जगत् के धारणकर्त्ता बन्धन, भूमि सूर्य अन्तरिक्ष महान् सूर्य के कारण और चन्द्रमा जिस से उत्पन्न हुआ है उस को कौन जानता है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

वेदाहमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासो पुरुष (अस्य) इस (भुवनस्य) सब के अधिकरण जगत् के (नाभिम्) बन्धन के स्थान कारणरूप मध्यभाग परब्रह्म को (अहम्) मैं (वेद) जानता हूं तथा (द्यावापृथिवी) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकसमूहों और (अन्तरिक्षम्) आकाश को भी (वेद) मैं जानता हूं (बृहतः) बड़े (सूर्यस्य) सूर्यलोक के (जनित्रम्) उपादान तैजस कारण और निमित्त कारण ब्रह्म को (वेद) मैं जानता हूं (अथो) इस के अनन्तर (यतोजाः) जिस परमात्मा से उत्पन्न हुआ जो चन्द्र उस परमात्मा को तथा (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा को (वेद) मैं जानता हूं ॥ ६० ॥

भावार्थः—विद्वान् उत्तर देवे कि हे जिज्ञासु पुरुष इस जगत् के बन्धन अर्थात् स्थिति के कारण प्रकाशित अप्रकाशित मध्यस्थ आकाश इन तीनों लोक के कारण और सूर्य्य चन्द्रमा के उपादान और निमित्त कारण इस सब को मैं जानता हूं ब्रह्म ही इस सब का निमित्त कारण और प्रकृति उपादान कारण है ॥ ६० ॥

पृच्छामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रष्टा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर भी अगले मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन मैं (त्वा) आप को (पृथिव्याः) पृथिवी के (अन्तम्, परम्) पर भाग अवधि को (पृच्छामि) पूछता (यत्र) जहां इस (भुवनस्य) लोक का (नाभिः) मध्य से खेंच के बन्धन करता है उस को (पृच्छामि) पूछता जो (वृष्णः) सेचनकर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् पुरुष का (रेतः) पराक्रम है उस को (पृच्छामि) पूछता और (वाचः) तीन वेदरूप वाणी के (परमम्) उत्तम (व्योम) आकाशरूप स्थान को (त्वा) आप से (पृच्छामि) पूछता हूं आप उत्तर कहिये ॥ ६१ ॥

भावार्थः—पृथिवी की सीमा क्या, जगत् का आकर्षण से बन्धन कौन, बलीजन का पराक्रम कौन और वाणी का पारगन्ता कौन है इन चार प्रश्नों के उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहियें ॥ ६१ ॥

इयमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

पूर्व मन्त्र में कहे प्रश्नों के उत्तर अ० ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन (इयम्) यह (वेदिः) मध्यरेखा (पृथिव्याः) भूमि के (परः) पर भाग की (अन्तः) सीमा है (अयम्) यह प्रत्यक्ष गुणों वाला (यज्ञः) सब को पूजनीय जगदीश्वर (भुवनस्य) संसार की (नाभिः) नियत स्थिति का बन्धक है (अयम्) यह (सोमः) ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम (वृष्णः) पराक्रमकर्त्ता (अश्वस्य) बलवान् जन का (रेतः) पराक्रम है और (अयम्) यह (ब्रह्म) चारों वेद का ज्ञाता (वाचः) तीन वेदरूप वाणी का (परमम्) उत्तम (व्योम) स्थान है तू इस को जान ॥ ६२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो इस भूगोल की मध्यस्थ रेखा कीजावे तो वह ऊपर से भूमि के अन्त को प्राप्त होती हुई व्यास संज्ञक होती है वही भूमि की सीमा है । सब लोकों के मध्य आकर्षणकर्त्ता जगदीश्वर है सब प्राणियों को पराक्रमकर्त्ता ओषधियों में उत्तम अंशुमान् आदि सोम है और वेदपारग पुरुष वाणी का पारगन्ता है यह तुम जानो ॥ ६२ ॥

सुभूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । समाधाता देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जन (यतः) जिस जगदीश्वर से (प्रजापतिः) विश्व का रक्षक सूर्य (जातः) उत्पन्न हुआ है और जो (सुभूः) सुन्दर विद्यमान (स्वयम्भूः) जो अपने आप प्रसिद्ध उत्पत्ति नाश रहित (प्रथमः) सब से प्रथम जगदीश्वर (महति) बड़े विस्तृत (अर्णवे) जलों से संबद्ध हुए संसार के (अन्तः) बीच (ऋत्वियम्) समयानुकूल प्राप्त (गर्भम्) बीज को (दधे) धारण करता है (ह) उसी की सब लोग उपासना करें ॥ ६३ ॥

भावार्थः—यदि जो मनुष्य लोग सूर्यादि लोकों के उत्तम कारण प्रकृति को और उस प्रकृति में उत्पत्ति की शक्ति को धारण करनेहारे परमात्मा को जानें तो वे जन इस जगत् में विस्तृत सुख वाले होवें ॥ ६३ ॥

होता यक्षदित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक्छन्दः ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस वि० ॥

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः । जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देनेहारे जन जैसे (होता) ग्रहीता पुरुष (सोमस्य) सब ऐश्वर्य से युक्त (महिम्नः) बड़प्पन के होने से (प्रजापतिम्) विश्व के पालक स्वामी की (यक्षत्) पूजा करे वा उस को (जुषताम्) सेवन से प्रसन्न करे और (सोमम्) सब उत्तम ओषधियों के रस को (पिबतु) पीवे वैसे तू (यज) उस की पूजा कर और उत्तम ओषधि के रस का पिया कर ॥ ६४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में रचना आदि विशेष चिन्हों से परमात्मा के महिमा को जान के इस की उपासना करते हैं वैसे ही तुम लोग भी इस की उपासना करो जैसे ये विद्वान् युक्तिपूर्वक पथ्य पदार्थों का सेवन कर नीरोग होते हैं वैसे आप लोग भी हों ॥ ६४ ॥

प्रजापते नेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव ।
यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के रक्षक स्वामिन् ईश्वर कोई भी (त्वत्) आप से (अन्यः) भिन्न (ता) उन (एतानि) इन पृथिव्यादि भूतों तथा (विश्वा) सब (रूपाणि) स्वरूपयुक्त वस्तुओं पर (न) नहीं (परि, बभूव) बलवान् है (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले होकर (वयम्) हम लोग आपकी (जुहुमः) प्रशंसा करें (तत्) वह २ कामना के योग्य वस्तु (नः) हम को (अस्तु) प्राप्त हो (ते) आप की कृपा से हम लोग (रयीणाम्) विद्या सुवर्ण आदि धनों के (पतयः) रक्षक स्वामी (स्याम) होवें ॥ ६५ ॥

भावार्थः—जो परमेश्वर से उत्तम, बड़ा, ऐश्वर्य्ययुक्त, सर्वशक्तिमान् पदार्थ कोई भी नहीं है तो उस के तुल्य भी कोई नहीं जो सब का आत्मा सब का रचने वाला समस्त ऐश्वर्य का दाता ईश्वर है उस की भक्ति विशेष और अपने पुरुषार्थ से इस लोक के ऐश्वर्य और योगाभ्यास के सेवन से परलोक के सामर्थ्य को हम लोग प्राप्त हों ॥ ६५ ॥

इस अध्याय में परमात्मा के महिमा, सृष्टि के गुण, योग की प्रशंसा, प्रश्नोत्तर, सृष्टि के पदार्थों की प्रशंसा, राजा प्रजा के गुण, शास्त्र आदि का उपदेश, पठन पाठन, स्त्री पुरुषों के परस्पर गुण, फिर प्रश्नोत्तर, ईश्वर के गुण, यज्ञ की व्याख्या और रेखागणित आदि का वर्णन किया है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ चतुर्विंशाध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अश्व इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। भुरिक् संकृतिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब चौबीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र में मनुष्यों को पशुओं से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय का वर्णन है ॥

अश्व॑स्तूप॒रो गो॑मृ॒गस्ते प्रा॑जाप॒त्याः कृ॒ष्णग्री॑व आग्ने॒यो र॒राटे॑ पु॒रस्ता॑त्सारस्व॒ती मे॒ष्य॒धस्ता॒द्धन्वो॑राश्वि॒नाव॒धोरा॑मौ बा॒ह्वोः सौ॑मापौ॒ष्णः श्या॒मो नाभ्यां॑ सौ॒र्य॒या॒मौ श्वे॒तश्च॑ कृ॒ष्णश्च॑ पा॒र्श्वयो॑स्त्वा॒ष्ट्रौ लो॑म॒शस॑क्थौ स॒क्थ्योर्वा॑य॒व्यः श्वे॒तः पु॒च्छ इन्द्रा॑य स्वप॒स्याय॑ वे॒हद्वै॑ष्ण॒वो वा॑म॒नः ॥ १ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो तुम जो (अश्वः) शीघ्र चलने हारा घोड़ा (तूपरः) हिंसा करने वाला पशु (गोमृगः) और गौ के समान वर्त्तमान नीलगाय है (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्यमण्डल के गुणों से युक्त (कृष्णग्रीवः) जिस की काली गर्दन वह पशु (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (पुरस्तात्) प्रथम से (रराटे) ललाट के निमित्त (मेषी) मेढ़ी (सारस्वती) सरस्वती देवता वाली (अधस्तात्) नीचे से (हन्वोः) ठोड़ी वामदक्षिण भागों के और (वाह्वोः) भुजाओं के निमित्त (अधोरामौ) नीचे रमण करने वाले (आश्विनौ) जिन का अश्वि देवता वे पशु (सौमापौष्णः) सोम और पूषा देवता वाला (श्यामः) काले रङ्ग से युक्त पशु (नाभ्याम्) तुन्दी के निमित्त और (पार्श्वयोः) वांई दाहिनी ओर के नियम (श्वेतः) सुफेद रंग (च) और (कृष्णः) काला रंग वाला (च) और (सौर्ययामौ) सूर्य वा यम सम्बन्धि पशु वा (सक्थ्योः) पैरों की गांठियों के पास के भागों के निमित्त (लोमशसक्थौ) जिस के बहुत रोम विद्यमान ऐसे गांठियों के पास के भाग से युक्त (त्वाष्ट्रौ) त्वष्टा देवता वाले

(पशु) वा (पुच्छे) पूँछ के निमित्त (श्वेतः) सुफेद रंग वाला (वायव्यः) वायु जिसका देवता है वह वा (वेहत्) जो कामोद्दीपन समय के विना बैल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गौ वा (वैष्णवः) विष्णु देवता वाला और (वामनः) नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंगवाला पशु इन सभों को (स्वपस्याय) जिस के सुन्दर २ कर्म उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के आनन्द निमित्तक उक्त गुण वाले पशुओं को नियत करो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अश्व आदि पशुओं से कार्य्यों को सिद्ध कर ऐश्वर्य को उन्नति दे के धर्म के अनुकूल काम करें वे उत्तम भाग्य वाले हों। इस प्रकरण में सब स्थानों में देवता पद से उस २ पद के गुण योग से पशु जानने चाहियें ॥ १ ॥

रोहित इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। सोमादयो देवताः। निचृत्संकृतिश्छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर कौन पशु कैसे गुण वाले हैं इस वि० ॥

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहित॒स्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रु॒णब॑भ्रुः॒ शुक॑बभ्रु॒स्ते वा॑रु॒णाः शि॑ति॒रन्ध्रो॒ऽन्यतः॑शितिरन्ध्रः सम॒न्तशि॑तिरन्ध्र॒स्ते सा॑वि॒त्राः शि॑ति॒बा॒हुर॒न्यतः॑ शितिबाहुः सम॒न्तशि॑तिबाहु॒स्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती॒ ता मै॑त्रावरु॒ण्यः॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (रोहितः) सामान्य लाल (धूम्ररोहितः) धुमेला लाल और (कर्कन्धुरोहितः) पके बेर के समान लाल पशु हैं (ते) वे (सौम्याः) सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले। जो (बभ्रुः) न्योला के समान धुमेला (अरुणबभ्रुः) लालामी लिये हुए न्योले के समान रंगवाला और (शुकबभ्रुः) सुग्गा की समता को लिये हुए के समान रंगयुक्त पशु हैं (ते) वे सब (वारुणाः) वरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो (शितिरन्ध्रः) शितिरन्ध्र अर्थात् जिस के मर्मस्थान आदि में सुपेदी (अन्यतः शितिरन्ध्रः) जो और अंग से और अंग में छेद से हो वैसी जिस के जहां तहां सुपेदी (समन्तशितिरन्ध्रः) और जिस के सब ओर से छेदों के समान सुपेदी के चिह्न हैं (ते) वे सब (सावित्राः) सविता देवता वाले (शितिबाहुः) जिस के अगले भुजाओं में सुपेदी के चिह्न (अन्यतः शितिबाहुः) जिस के और अंग से और अंग में सुपेदी के चिह्न और (समन्तशितिबाहुः) जिस के सब ओर से अगले गोड़ों में सुपेदी के चिह्न हैं ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति देवता वाले तथा जो (पृषती) सब अंगों से अच्छी छिटकी हुई सी (क्षुद्रपृषती) जिसके छोटे २ रंग बिरंग छींटे और (स्थूल-

पृषती) जिस के मोटे २ छींटे हैं (ताः) वे सब (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥ २ ॥

भावार्थः—जो चन्द्रमा आदि के उत्तम गुण वाले पशु हैं उन से उन २ के गुण के अनुकूल काम मनुष्यों को सिद्ध करने चाहियें ॥ २ ॥

शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । निचृदतिजगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कैसे गुण वाले पशु हैं इस वि० ॥

शुद्धवा॑लः स॒र्वशु॑द्धवालो मणि॒वाल॒स्त आ॑श्वि॒नाः श्येत॑ः श्येता॒क्षो॑ऽरु॒णस्ते रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्णा या॒मा अ॑व॒लि॒प्ता रौ॒द्रा नभो॑रूपाः पार्ज॒न्याः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (शुद्धवालः) जिस के शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग (सर्वशुद्धवालः) जिस के समस्त शुद्ध बाल और (मणिवालः) जिस के मणि के समान चिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु (ते) वे सब (आश्विनाः) सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो (श्येतः) सुपेद रंगयुक्त (श्येताक्षः) जिस की सुपेद आंखें और (अरुणः) जो लाल रंग वाला है (ते) वे (पशुपतये) पशुओं की रक्षा करने और (रुद्राय) दुष्टों को रुलाने हारे के लिये । जो ऐसे हैं कि (कर्णाः) जिन से काम करते हैं वे (यामाः) वायु देवता वाले (अवलिप्ताः) जिन के उन्नतियुक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे (रौद्राः) प्राण वायु आदि देवता वाले तथा (नभोरूपाः) जिन का आकाश के समान नीला रूप है ऐसे जो पशु हैं वे सब (पार्जन्याः) मेघ देवता वाले जानना चाहिये ॥ ३ ॥

भवार्थः—जो जिस पशु का देवता है वह उस का गुण है यह जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पृश्निरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मारुतादयो देवताः । विराडतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पृश्नि॑स्तिर॒श्चीन॑पृश्निरू॒र्ध्वपृ॑श्नि॒स्ते मा॑रु॒ताः फ॒ल्गूर्लो॑हि॒तो॒र्णी प॑ल॒क्षी ताः सा॑रस्व॒त्यः प्लीहाक॒र्णः शु॒ण्ठाक॑र्णोऽध्याल॒ोहक॑र्ण॒स्ते

त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवाः शितिकक्षा॑ऽञ्जिसक्थास्तऽऐन्द्राग्ना कृष्णा॑ऽञ्जिरल्पा॑ञ्जिर्म॒हाञ्जिस्त उ॑षस्याः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पृश्निः) पूछने योग्य (तिरश्चीनपृश्निः) जिसका तिरछा स्पर्श और (ऊर्ध्वपृश्निः) जिस का ऊंचा उत्तम स्पर्श है (ते) वे (मारुताः) वायु देवता वाले। जो (फल्गूः) फलों को प्राप्त हों (लोहितोर्णी) जिस की लाल ऊर्णा अर्थात् देह के बाल और (पलक्षी) जिस की चंचल चपल आंखें ऐसे जो पशु हैं (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती देवता वाले (प्लीहाकर्णः) जिस के कान में प्लीहा रोग के आकार चिह्न हों (शुण्ठाकर्णः) जिस के सूखे कान और जिस के (अध्यालोहकर्णः) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले जो (कृष्णग्रीवः) काले गले वाले (शितिकक्षः) जिस के पांजर की ओर सुपेद अंग और (अञ्जिसक्थः) जिस की प्रसिद्ध जङ्घा अर्थात् स्थूल होने से अलग विदित हों ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (ऐन्द्राग्नाः) पवन और बिजुली देवता वाले तथा (कृष्णाञ्जिः) जिस की करोंदी हुई चाल (अल्पाञ्जिः) जिस की थोड़ी चाल और (महाञ्जिः) जिस की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं (ते) वे सब (उषस्याः) उषा देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो पशु और पक्षी पवन गुण वा जो नदी गुण वा जो सूर्य गुण वा जो पवन और बिजुली गुण तथा जो प्रातः समय की वेला के गुण वाले हैं उन से उन्हीं के अनुकूल काम सिद्ध करने चाहियें ॥ ४ ॥

शिल्पा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

शि॒ल्पा वै॑श्वदे॒व्यो रोहि॑ण्यस्त्र्यव॒यो वा॒चेऽवि॑ज्ञाता॒ अदि॑त्यै॒ सरू॑पा धा॒त्रे व॑त्सत॒र्यो दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (शिल्पाः) जो सुन्दर रूपवान् और शिल्प कार्यों की सिद्धि करने वाली (वैश्वदेव्यः) विश्वेदेव देवता वाले (वाचे) वाणी के लिये (रोहिण्यः) नीचे से ऊपर को चढ़ने योग्य (त्र्यवयः) जो तीन प्रकार की भेड़ें (अदित्यै) पृथिवी के लिये (अविज्ञाताः) विशेष कर न जानी हुई भेड़ आदि (धात्रे) धारण करने के लिये (सरूपाः) एक से रूप वाली तथा (देवानाम्) दिव्यगुण वाले विद्वानों की

(पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (वत्सतर्य्यः) अतीव छोटी २ थोड़ी अवस्था वाली बछिया जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो सब विद्वान् शिल्प विद्या से अनेकों यान आदि बनावें और पशुओं की पालना कर उन से उपयोग लेवें वे धनवान् हों ॥ ५ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाᳪं रोहिता रुद्राणाᳪं श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (कृष्णग्रीवाः) ऐसे हैं कि जिनकी खिंची हुई गर्दन वा खिंचा हुआ खाना निगलना वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले (शितिभ्रवः) जिन की सुपेद भौंहें हैं वे (वसूनाम्) पृथिवी आदि वसुओं के जो (रोहिताः) लालरंग के हैं वे (रुद्राणाम्) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों के । जो (श्वेताः) सुपेद रंग के और (अवरोकिणः) अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं वे (आदित्यानाम्) सूर्य्य सम्बन्धी महीनों के और जो (नभोरूपाः) ऐसे हैं कि जिनका जल के समान रूप है वे जीव (पार्जन्याः) मेघ देवता वाले अर्थात् मेघ के सदृश गुणों वाले जानने चाहियें ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि की खींचने की पृथिवी आदि की धारण करने की पवनों की अच्छे प्रकार बहने की सूर्य्य आदि की रोकने की और मेघों की जल वर्षाने की क्रिया को जानकर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें ॥ ६ ॥

उन्नत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । अतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उन्नत ऋषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (उन्नतः) ऊंचा (ऋषभः) और श्रेष्ठ (वामन) टेढ़े

वाले नाटा पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्रावैष्णवाः) बिजुली और पवन देवता वाले जो (उन्नतः) ऊंचा (शितिबाहुः) जिस का दूसरे पदार्थ को काटती छांटती हुई भुजाओं के समान वज्र और (शितिपृष्ठः) जिस की सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु हैं (ते) वे (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) वायु और सूर्य देवता वाले (शुकरूपाः) जिन का सुग्गों के समान रूप और (वाजिनाः) वेग वाले (कल्माषाः) कबरे भी हैं वे (आग्निमारुताः) अग्नि और पवन देवता वाले तथा जो (श्यामाः) काले रंग के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि निमित्तक मेघ देवता वाले जानने चाहियें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं ॥ ७ ॥

एता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। इन्द्राग्न्यादयो देवताः। विराड् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (एताः) ये पूर्वोक्त (द्विरूपाः) द्विरूप पशु अर्थात् जिन के २ रूप हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली के संगी जो (वामनाः) टेढ़े अंगों वाले वा नाटे और (अनड्वाहः) बैल हैं वे (अग्नीषोमीयाः) सोम और अग्नि देवता वाले तथा (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और वायु देवता वाले जो (वशाः) वन्ध्या गौ हैं वे (मैत्रावरुण्यः) प्राण और उदान देवता वाली और जो (अन्यतएन्यः) कहीं से प्राप्त हों वे (मैत्र्यः) मित्र के प्रिय व्यवहार में जानने चाहियें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और अग्नि आदि के गुणों वाले गौ आदि पशु हैं उन की पालना करते हैं वे सब का उपकार करने वाले होते हैं ॥ ८ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। निचृत्पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले के हैं वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले जो (बभ्रवः) न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे (सौम्याः)

सोम देवता वाले जो (श्वेताः) सुपेद हैं वे (वायव्याः) वायु देवता वाले। जो (अविज्ञाताः) विशेष चिह्न से कुछ न जाने गये वे (अदित्यै) जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये जो (सरूपाः) ऐसे हैं कि जिनका एकसा रूप है वे (धात्रे) धारण करने हारे पवन के लिये। और जो (वत्सतर्यः) छोटी छोटी बछिया हैं वे (देवानाम्) सूर्य आदि लोकों की (पत्नीभ्यः) पालन करने वाली क्रियाओं के जाननी चाहियें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो पशु जोतने और निगलने वाले अग्नि के समान वर्त्तमान जो ओषधी के समान गुणों को धारण करने और ढांपने वाले हैं पवन के समान वर्त्तमान जो नहीं जानने योग्य उत्पत्ति के लिये जो धारण करते हुए के तुल्य गुणयुक्त हैं वे धारण करने के लिये। तथा जो सूर्य की किरणों के समान वर्त्तमान पदार्थ हैं वे व्यवहारों की सिद्धि करने में अच्छे प्रकार युक्त करने चाहियें ॥ ९ ॥

कृष्णा भौमा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अन्तरिक्षादयो देवताः।
विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णाः) काले रंग के वा खेत आदि के जुताने वाले हैं वे (भौमाः) भूमि देवता वाले। जो (धूम्राः) धुमैले हैं वे (आन्तरिक्षाः) अन्तरिक्ष देवता वाले। जो (दिव्याः) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (बृहन्तः) बढ़ते हुए और (शबलाः) थोड़े सपेद हैं वे (वैद्युताः) बिजुली देवता वाले। और जो (सिध्माः) मंगल कराने वाले हैं वे (तारकाः) दुःख के पार उतारने वाले जानने चाहियें ॥ १० ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य जोतने आदि कार्यों के साधक पशु आदि पदार्थों को भूमि आदि में संयुक्त करें तो वे आनन्द मंगल को प्राप्त होवें ॥ १० ॥

धूम्रानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। विराड् बृहती छन्दः।
मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (वसन्ताय) वसन्त ऋतु में सुख के लिये (धूम्रान्) धुमैले पदार्थों के (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु में आनन्द के लिये (श्वेतान्) सुपेद रंग के (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु में कार्यसिद्धि के लिये (कृष्णान्) काले रंग के वा खेती की सिद्धि करने वाले (शरदे) शरद् ऋतु में सुख के लिये (अरुणान्) लाल रंग के (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु में कार्य साधने के लिये (पृषतः) मोटे और (शिशिराय) शिशिर ऋतु सम्बन्धी व्यवहार साधने के लिये (पिशङ्गान्) लालामी लिये हुए पीले पदार्थों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह निरन्तर सुखी होता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस ऋतु में जो पदार्थ इकट्ठे करने वा सेवने योग्य हों उन को इकट्ठे और उनका सेवन कर नीरोग हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने के व्यवहारों का आचरण करें ॥ ११ ॥

त्र्यवय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। विराडनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ॥ १२ ॥

पदार्थः—जो (त्र्यवयः) ऐसे हैं कि जिन की तीन भेड़ें वे (गायत्र्यै) गाते हुओं की रक्षा करने वाली के लिये (पञ्चावयः) जिन के पांच भेड़ें हैं वे (त्रिष्टुभे) तीन अर्थात् शरीर वाणी और मन सम्बन्धी सुखों के स्थिर करने के लिये जो (दित्यवाहः) विनाश में न प्रसिद्ध हों उन की प्राप्ति कराने वाले (जगत्यै) संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उस के लिये (त्रिवत्साः) जिन के तीन बछड़ा वा जिन के तीन स्थानों में निवास वे (अनुष्टुभे) पीछे से रोकने की क्रिया के लिये और (तुर्यवाहः) जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे (उष्णिहे) जिस क्रिया से उत्तमता के साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् जन पढ़े हुए गायत्री आदि छन्दों के अर्थों से सुखों को बढ़ाते हैं वैसे पशुओं के पालने वाले घी आदि पदार्थों को बढ़ावें ॥ १२ ॥

पष्ठवाडित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। विराजादयो देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

पृष्ठ॒वाहो॑ वि॒राज॑ उ॒क्षाणो॑ बृह॒त्या ऋ॑ष॒भाः । क॒कुभे॑ऽन॒ड्वाहः॑ प॒ङ्क्त्यै धे॒नवो॒ऽतिच्छ॒न्दसे ॥ १३ ॥

पदार्थः—जिन मनुष्यों ने (विराजे) विराट् छन्द के लिये (पष्ठवाहः) जो पीठ से पदार्थों को पहुंचाते (बृहत्यै) बृहती छन्द के अर्थ को (उक्षाणः) वीर्य सींचने में समर्थ (ककुभे) ककुप् उष्णिक् छन्द के अर्थ को (ऋषभाः) अतिबलवान् प्राणी (पङ्क्त्यै) पङ्क्ति छन्द के अर्थ को (अनड्वाहः) लढ़ा पहुंचाने में समर्थ बैलों को (अतिछन्दसे) अतिजगती आदि छन्द के अर्थ को (धेनवः) दूध देने वाली गौएं स्वीकार की वे अतीव सुख पाते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् विराट् आदि छन्दों के लिये बहुत विद्या विषयक कामों को सिद्ध करते हैं वैसे ऊंट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कामों को सिद्ध करें ॥ १३ ॥

कृष्णग्रीवा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कृ॒ष्णग्री॑वा आग्ने॒या ब॒भ्रवः॑ सौ॒म्या उ॑प॒ध्व॒स्ताः सा॑वि॒त्रा व॑त्सत॒र्यः॑ सारस्व॒त्यः॑ श्या॒माः पौ॒ष्णाः पृश्न॑यो मारु॒ता ब॑हुरू॒पा वै॑श्वदे॒वा व॒शा द्या॑वापृथि॒वी॒याः॑ ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (कृष्णग्रीवाः) काले गले वाले हैं वे (आग्नेयाः) अग्नि देवता वाले जो (बभ्रवः) सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे (सौम्याः) सोम देवता वाले । जो (उपध्वस्ताः) नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे (सावित्राः) सविता देवता वाले । जो (वत्सतर्यः) छोटी २ बछिया हैं वे (सारस्वत्यः) वाणी देवता वाली । जो (श्यामाः) काले वर्ण के हैं वे (पौष्णाः) पुष्टि करने हारे मेघ देवता वाले जो (पृश्नयः) पूंछने योग्य हैं वे (मारुताः) मनुष्य देवता वाले । जो (बहुरूपाः) बहुरूपी अर्थात् जिन के अनेक रूप हैं वे (वैश्वदेवाः) समस्त विद्वान् देवता वाले और जो (वशाः) निरन्तर चिलकते हुए हैं वे (द्यावापृथिवीयाः) आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहियें ॥ १४ ॥

भावार्थः—जैसे शिल्प विद्या जानने वाले विद्वान् जन अग्नि आदि पदार्थों से अनेक कार्यसिद्धि करते हैं वैसे खेती करने वाले पुरुष पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें ॥१४॥

उक्षा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

उक्षाणः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (एताः) ये (उक्षाः) कहे हुए (संचराः) जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि देवता वाले । जो (कृष्णाः) खींचने वा जोतने हारे हैं (वारुणाः) वे वरुण देवता वाले और जो (पृश्नयः) चित्र विचित्र चिह्न युक्त (मारुताः) मनुष्य कैसे स्वभाव वाले (तूपराः) हिंसक हैं वे (कायाः) प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो नानाप्रकार के देशों में आने जाने वाले पशु आदि प्राणी हैं उन से मनुष्य यथायोग्य उपकार लेवें ॥ १५ ॥

अग्नय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । शक्वरीछन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर किस के लिये कौन रक्षा करने योग्य हैं इस वि० ॥

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् जन (अनीकवते) प्रशंसित सेना रखने वाले (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान तेजस्वी सेनाधीश के लिये (प्रथमजान्) विस्तारयुक्त कारण से उत्पन्न हुए (सान्तपनेभ्यः) जिन का अच्छे प्रकार ब्रह्मचर्य्य आदि आचरण है उन (मरुद्भ्यः) प्राण के समान प्रीति उत्पन्न करने वाले मनुष्यों के लिये (सवात्यान्) एक से पवनों में हुए पदार्थों (गृहमेधिभ्यः) घर में जिन की धीर बुद्धि है उन (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (बष्किहान्) बहुत काल के उत्पन्न हुओं (क्रीडिभ्यः) प्रशंसायुक्त विहार आनन्द करने वाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (संसृष्टान्) अच्छे प्रकार गुणयुक्त और (स्वतवद्भ्यः) जिन का आप से निवास है उन (मरुद्भ्यः) स्वतन्त्र मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) मिलने वालों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वैसे ही तुम लोग इन को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों से विद्यार्थी और पशु पाले जाते हैं वैसे अन्य मनुष्यों को भी पालने चाहियें ॥ १६ ॥

उक्ता इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्राग्न्यादयो देवताः । भुरिग्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (एताः) ये (ऐन्द्राग्नाः) वायु और बिजुली देवता वाले वा (प्राशृङ्गाः) जिन के उत्तम शींग हैं वे (माहेन्द्राः) महेन्द्र देवता वाले वा (बहुरूपाः) बहुत रंगयुक्त (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्म देवता वाले (सञ्चराः) जिन में अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग (उक्ताः) निरूपण किये उन में आना जाना चाहिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के मार्ग कहे हैं वैसे ही वेद में प्रतिपादित ह ॥ १७ ॥

धूम्रा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पितरो देवताः । भुरिगति जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणां सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः । पितॄणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (सोमवताम्) सोमशान्ति आदि गुणयुक्त उत्पन्न करने वाले (पितॄणाम्) माता पिताओं के (बभ्रुनीकाशाः) न्योले के समान (धूम्राः) धुंमैले रंग वाले (बर्हिषदाम्) जो सभा के बीच बैठते हैं उन (पितॄणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (कृष्णाः) काले रंग वाले (धूम्रनीकाशाः) धुंआं के समान अर्थात् धुंमैले और (बभ्रवः) पुष्टि करने वाले तथा (अग्निष्वात्तानाम्) जिन्होंने अग्निविद्या ग्रहण की है उन (पितॄणाम्) पालना करने हारे विद्वानों के (बभ्रुनीकाशाः) पालने हारे के समान (कृष्णाः) काले रंग वाले (पृषन्तः) मोटे अङ्गों से युक्त (त्रैयम्बकाः) जिनका तीन अधिकारियों में चिह्न है वे प्राणी वा पदार्थ हैं यह जानना चाहिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो उत्पन्न करने और विद्या देने वाले विद्वान् हैं उनका घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये ॥ १८ ॥

उक्ताः संचरा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिपाद् गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः॥

फिर उसी वि०॥

उक्ताः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः॥ १९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जो (एताः) ये (शुनासीरीयाः) शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेती की सिद्धि करने वाले (संचराः) आने जाने हारे (वायव्याः) पवन के समान दिव्य गुणयुक्त (श्वेताः) सुपेद रङ्ग वाले वा (सौर्याः) सूर्य के समान प्रकाशमान (श्वेताः) सुपेद रङ्ग के पशु (उक्ताः) कहे हैं उन को अपने कार्य्यों में अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त कर॥ १९॥

भावार्थः—जो जिस पशु का देवता कहा है वह उस पशु का गुणप्रकाश करना चाहिये॥ १९॥

वसन्तायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वसन्तादयो देवताः। विराड् जगती छन्दः।
निषादः स्वरः॥

फिर किस के लिये कौन अच्छे प्रकार आश्रय करने योग्य हैं इस वि०॥

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान्॥ २०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो पक्षियों को जानने वाला जन (वसन्ताय) वसन्तऋतु के लिये (कपिञ्जलान्) जिन कपिञ्जल नाम के विशेष पक्षियों (ग्रीष्माय) ग्रीष्म ऋतु के लिये (कलविङ्कान्) चिरौटा नाम के पक्षियों (वर्षाभ्यः) वर्षा ऋतु के लिये (तित्तिरीन्) तीतरों (शरदे) शरद् ऋतु के लिये (वर्त्तिकाः) वतकों (हेमन्ताय) हेमन्त ऋतु के लिये (ककरान्) ककरनाम के पक्षियों और (शिशिराय) शिशिर ऋतु के अर्थ (विककरान्) विककर नाम के पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो॥ २०॥

भावार्थः—जिस २ ऋतु में जो २ पक्षी अच्छे आनन्द को पाते हैं वे २ उस गुण वाले जानने चाहियें॥ २०॥

समुद्रायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। वरुणो देवता। विराट् छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर कौन किस के अर्थ सेवन करने चाहियें इस वि०॥

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे जल के जीवों की पालना करने को जानने वाला जन (समुद्राय) महाजलाशय समुद्र के लिये (शिशुमारान्) जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशुमारों (पर्जन्याय) मेघ के लिये (मण्डूकान्) मेंडुकों (अद्भ्यः) जलों के लिये (मत्स्यान्) मछलियों (मित्राय) मित्र के समान सुख देते हुए सूर्य के लिये (कुलीपयान्) कुलीपय नाम के जङ्गली पशुओं और (वरुणाय) वरुण के लिये (नाक्रान्) नाके मगर जलजन्तुओं को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—जैसे जलचर जन्तुओं के गुण जानने वाले पुरुष उन जल के जन्तुओं को बढ़ा वा पकड़ सकते हैं वैसा आचरण और लोग भी करें ॥ २१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । विराड् बृहती छन्दः ॥
मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों के गुण का विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष (सोमाय) चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये (हंसान्) हंसों (वायवे) पवन के लिये (बलाकाः) बगुलियों (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि के लिये (क्रुञ्चान्) सारसों (मित्राय) मित्र के लिये (मद्गून्) जल के कौओं वा सुतरमुर्गों और (वरुणाय) वरुण के लिये (चक्रवाकान्) चकई चकवों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को जो उत्तम पक्षी हैं वे अच्छे यत्न के साथ पालन कर बढ़ाने चाहियें ॥ २२ ॥

अग्नय-इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्य उलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों के गुण जानने वाला जन (अग्नये) अग्नि के लिये (कुटरून्) मुर्गों (वनस्पतिभ्यः) वनस्पति अर्थात् विना पुष्प फल देने वाले वृक्षों के लिये (उलूकान्) उल्लू पक्षियों (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम के लिये (चाषान्) नीलकण्ठ पक्षियों (अश्विभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा के लिये (मयूरान्) मयूरों तथा (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण के लिये (कपोतान्) कबूतरों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मुर्गा आदि पक्षियों के गुणों को जानते हैं वे सदा इन को बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सोमा॑य ल॒बाना॒लभ॑ते॒ त्वष्ट्रे॑ कौली॒कान् गो॑षा॒दीर्दे॒वानां॒ पत्नी॑भ्यः कु॒लीका॑ देवजा॒मिभ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे पक्षियों का काम जाननेवाला जन (सोमाय) ऐश्वर्य के लिये (लबान्) बटेरों (त्वष्ट्रे) प्रकाश के लिये (कौलीकान्) कौलीकनाम के पक्षियों (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीभ्यः) स्त्रियों के लिये (गोषादीः) जो गौओं को मारती हैं उन पखेरियों (देवजामिभ्यः) विद्वानों की बहिनियों के लिये (कुलीकाः) कुलीकनामक पखेरियों और (अग्नये) जो अग्नि के समान वर्त्तमान (गृहपतये) गृहपालन करने वाला उस के लिये (पारुष्णान्) पारुष्ण पक्षियों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य पक्षियों के स्वभावज कामों को जानकर उन की अनुसारि क्रिया करते हैं वे बहुश्रुत के समान होते हैं ॥ २४ ॥

अह्न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । कालावयवा देवताः । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अह्ने॑ पारा॒वता॒नाल॑भते॒ रात्र्यै॑ सीचा॒पूर॑होरा॒त्रयोः॑ स॒न्धिभ्यो॑ जतूर्मा॒सेभ्यो॑ दात्यौ॒हान्त्सं॑वत्स॒राय॑ मह॒तः सु॑प॒र्णान् ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे काल का जानने वाला (अह्ने) दिवस के लिये (पारावतान्) कोमल शब्द करने वाले कबूतरों (रात्र्यै) रात्रि के लिये (सीचापूः) सीचापूनामक

पक्षियों (अहोरात्रयोः) दिन रात्रि के (सन्धिभ्यः) सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकाल के लिये (जतूः) जतूनामक पक्षियों (मासेभ्यः) महीनों के लिये (दात्यौहान्) काले कौओं और (संवत्सराय) वर्ष के लिये (महतः) वड़े २ (सुपर्णान्) सुन्दर २ पंखों वाले पक्षियों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इन को प्राप्त होओ ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अपने २ समय के अनुकूल क्रीड़ा करने वाले पक्षियों के स्वभाव को जानकर अपने स्वभाव को वैसा करें वे वहुत आनन्द वाले हों ॥ २५ ॥

भूम्या इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । भूम्यादयो देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

भूम्याँ आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्रान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे भूमि के जन्तुओं के गुण जानने वाला पुरुष (भूम्यै) भूमि के लिये (आखून्) मूषों (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष के लिये (पाङ्क्त्रान्) पङ्क्तिरूप के चलने वाले विशेष पक्षियों (दिवे) प्रकाश के लिये (कशान्) कशनाम के पक्षियों (दिग्भ्यः) पूर्व आदि दिशाओं के लिये (नकुलान्) नेउलों और (अवान्तरदिशाभ्यः) अवान्तर अर्थात् कोण दिशाओं के लिये (बभ्रुकान्) भूरे २ विशेष नेउलों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ ॥ २६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य भूमि आदि के समान मूषे आदि के गुणों को जान कर उपकार करें वे वहुत विज्ञान वाले हों ॥ २६ ॥

वसुभ्य इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वस्वादयो देवताः । निचृद् वृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

वसुभ्य ऋश्यानालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलुङ्गान् ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणों को जानने वाला जन (वसुभ्यः) अग्नि आदि वसुओं के लिये (ऋश्यान्) ऋश्य जाति के हरिणों (रुद्रेभ्यः) प्राण आदि

रुद्रों के लिये (रुरून्) रोजनामी जन्तुओं (आदित्येभ्यः) बारह महीनों के लिये (न्यङ्कून्) न्यङ्कुनामक पशुओं (विश्वेभ्यः) समस्त (देवेभ्यः) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के लिये (पृषतान्) पृषत् जाति के मृगविशेषों और (साध्येभ्यः) सिद्ध करने के जो योग्य हैं उन के लिये (कुलुङ्गान्) कुलुङ्ग नाम के पशुविशेषों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन को तुम भी प्राप्त होओ ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य हरिण आदि के वेगरूप गुणों को जान कर उपकार करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त हों ॥ २७ ॥

ईशानायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईशानादयो देवताः । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्र उष्ट्रान् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे राजा जो मनुष्य (ईशानाय) समर्थ जन के लिये (त्वा) आप और (परस्वतः) परस्वत् नामी मृगविशेषों को (मित्राय) मित्र के लिये (गौरान्) गोरे मृगों को (वरुणाय) अति श्रेष्ठ के लिये (महिषान्) भैंसों को (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् महात्माओं के रक्षक के लिये (गवयान्) नीलगायों को और (त्वष्ट्रे) त्वष्टा अर्थात् पदार्थ विद्या से पदार्थों को सूक्ष्म करने वाले के लिये (उष्ट्रान्) ऊंटों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वह धनधान्ययुक्त होता है ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो पशुओं से यथावत् उपकार लेवें वे समर्थ होवें ॥ २८ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आ लभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

पदार्थः—जो मनुष्य (प्रजापतये) प्रजा पालने हारे राजा के लिये (पुरुषान्) पुरुषों (हस्तिनः) और हाथियों (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषि नाम के जीवों (चक्षुषे) नेत्र के लिये (मशकान्) मशाओं और (श्रोत्राय) कान के लिये (भृङ्गाः) भौंरों को (आ, लभते) प्राप्त होता है वह बली और पुष्ट इन्द्रियों वाला होता है ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुरङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं को रोकने

११२

वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे धनवान् और कान्तिमान् होते हैं ॥ २९ ॥

प्रजापतय इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको (प्रजापतये) प्रजा पालने वाले (च) और उस के सम्बन्धियों तथा (वायवे) वायु (च) और वायु के सम्बन्धी पदार्थों के लिये (गोमृगः) जो पृथिवी को शुद्ध करता वह (वरुणाय) अति उत्तम के लिये (आरण्यः) वन का (मेषः) मेढा (यमाय) न्यायाधीश के लिये (कृष्णः) काला हरिण (मनुष्यराजाय) मनुष्यों के राजा के लिये (मर्कटः) वानर (शार्दूलाय) बड़े सिंह अर्थात् केशरी के लिये (रोहित्) लालमृग (ऋषभाय) श्रेष्ठ सभ्य पुरुष के लिये (गवयी) नीलगाहिनी (क्षिप्रश्येनाय) शीघ्र चलने हारे बाज पखेरू के समान जो वर्त्तमान उस के लिये (वर्त्तिका) वतक (नीलङ्गोः) जो नील को प्राप्त होता उस छोटे कीड़े के हेतु (कृमिः) छोटा कीड़ा (समुद्राय) समुद्र के लिये (शिशुमारः) बालकों को मारने वाला शिशुमार और (हिमवते) जिस के अनेकों हिमखण्ड विद्यमान हैं उस पर्वत के लिये (हस्ती) हाथी अच्छे प्रकार युक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य मनुष्यसम्बन्धी उत्तम प्राणियों की रक्षा करते हैं वे साङ्गोपाङ्ग बलवान् होते हैं ॥ ३० ॥

मयुरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्रजापत्यादयो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (मयुः) किंनर निन्दित मनुष्य और जो (उलः) छोटा कीड़ा (हलिक्ष्णः) विशेष सिंह और (वृषदंशः) बिलार हैं (ते) वे (धात्रे) धारणा करने वाले के लिये (कङ्कः) उजली चील्ह (दिशाम्) दिशाओं के हेतु (धुङ्क्षा) धुङ्क्षा नाम की पक्षिणी (आग्नेयी) अग्नि देवता वाली जो (कलविङ्कः) चिरौटा (लोहिताहिः) लाल सांप और (पुष्करसादः) तालाब में रहने वाला है (ते) वे सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा देवता वाले तथा (वाचे) वाणी के लिये (क्रुञ्चः) सारस जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—जो सियार और सांप आदि को वश में लाते हैं वे मनुष्य धुरन्धर होते हैं ॥ ३१ ॥

सोमायेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सोमादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सोमा॑य कुलु॒ङ्ग आ॑र॒ण्योऽजो न॑कु॒लः शका॒ ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौरमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कुः॑ कक्कु॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रतिश्रु॒त्का॑यै चक्रवा॒काः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! यदि तुमने (सोमाय) सोम के लिये जो (कुलुङ्गः) कुलुङ्ग नामक पशु वा (आरण्यः) वनेला (अजः) बकरा (नकुलः) न्यौला और (शका) सामर्थ्य वाला विशेष पशु हैं (ते) वे (पौष्णाः) पुष्टि करने वाले के सम्बन्धी वा (मायोः) विशेष सियार के हेतु (क्रोष्टा) सामान्य सियार वा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के अर्थ (गौरमृगः) गोरा हरिण वा जो (पिद्वः) विशेष मृग (न्यङ्कुः) किसी और जाति का हरिण और (कक्कटः) कक्कट नाम का मृग है (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति के लिये तथा (प्रतिश्रुत्कायै) सुने पीछे सुनानेवाली के लिये (चक्रवाकः) चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्त किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ॥ ३२ ॥

भावार्थः—जो बनैले पशुओं से भी उपकार करना जानें वे सिद्ध कार्यों वाले होते हैं ॥ ३२ ॥

सौरीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मित्रादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (सौरी) जिस का सूर्य देवता है वह (बलाका) बगुलिया तथा जो (शार्गः) पपीहा पक्षी (सृजयः) सृजय नाम वाला और (शयाण्डकः) शयाण्डक पक्षी हैं (ते) वे (मैत्राः) प्राण देवता वाले (शारिः) शुग्गी (पुरुषवाक्) पुरुष के समान बोलने हारा शुग्गा (सरस्वत्यै) नदी के लिये । (श्वावित्) सेही (भौमी) भूमि देवता वाली जो (शार्दूलः) केशरी सिंह (वृकः) भेड़िया और (पृदाकुः) सांप हैं (ते) वे (मन्यवे) क्रोध के लिये तथा (शुकः) शुद्धि करनेहारा सुआ पक्षी और (पुरुषवाक्) जिस की मनुष्य की बोली के समान बोली है वह पक्षी (सरस्वते) समुद्र के लिये जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—जो बलाका आदि पशु पक्षी हैं उनमें से कोई पालने और कोई ताड़ना देने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

सुपर्ण इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराट् शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को जो (सुपर्णः) सुन्दर गिरने वा जाने वाला पक्षी वह (पार्जन्यः) मेघ के समान गुण वाला जो (आतिः) आति नाम वाला पक्षी (वाहसः) अजगर सांप (दर्विदा) और काठ को छिन्न भिन्न करने वाला पक्षी हैं (ते) वे सब (वायवे) पवन के लिये (पैङ्गराजः) पैङ्गराज नाम का पक्षी (बृहस्पतये) बड़े २ पदार्थों और (वाचः, पतये) वाणी की पालना करने हारे के लिये (अलजः) अलज पक्षी (अन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष देवता वाला जो (प्लवः) जल में तरने वाला बतक पक्षी (मद्गुः) जल का कौआ और (मत्स्यः) मछली हैं (ते) वे सब (नदीपतये) समुद्र के लिये और जो (कूर्मः) कछुआ है वह (द्यावापृथिवीयः) प्रकाश भूमि देवता वाला जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः-जो मेघ आदि के समान गुण वाले विशेष २ पशु पक्षी हैं वे काम के उपयोग के लिये युक्त करने चाहियें ॥ ३४ ॥

पुरुषमृग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । चन्द्रादयो देवताः । निचृच्छक्वरी छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हुंसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! तुम को जो (पुरुषमृगः) पुरुषों को शुद्ध करने हारा पशुविशेष वह (चन्द्रमसः) चन्द्रमा के अर्थ जो (गोधा) गोह (कालका) कालका पक्षी और (दार्वाघाटः) कठफोरवा है (ते) वे (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के सम्बन्धी जो (कृकवाकुः) मुर्गा वह (सावित्रः) सविता देवता वाला जो (हंसः) हंस है वह (वातस्य) पवन के अर्थ जो (नाक्रः) नाके का बच्चा (मकरः) मगरमच्छ (कुलीपयः) और विशेष जलजन्तु हैं (ते) वे (अकूपारस्य) समुद्र के अर्थ और जो (शल्यकः) सेही है वह (ह्रियै) लज्जा के लिये जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जो चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त विशेष पशु पक्षी हैं वे मनुष्यों को जानने चाहियें ॥ ३५ ॥

एणीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्विन्यादयो देवताः । निचृज्जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (एणी) हरिणी है वह (अह्नः) दिन के अर्थ जो (मण्डूकः) मेंडुका (मूषिका) मूषटी और (तित्तिरिः) तीतरि पक्षिणी हैं (ते) वे (सर्पाणाम्) सर्पों के अर्थ जो (लोपाशः) कोई वनचर विशेष पशु वह (आश्विनः) अश्वि देवता वाला जो (कृष्णः) काले रंग का हरिण आदि है वह (रात्र्यै) रात्रि के लिये जो (ऋक्षः) रीछ (जतूः) जतू नाम वाला और (सुषिलीका) सुषिलीका पक्षी

है (ते) वे (इतरजनानाम्) और मनुष्यों के अर्थ और (जहका) अङ्गों का संकोच करने हारी पक्षिणी (वैष्णवी) विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—जो दिन आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस २ गुण से जानने चाहिये ॥ ३६ ॥

अन्यवाप इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अर्द्धमासादयो देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒न्य॒वा॒पो॒ऽर्द्ध॒मा॒सा॒नामृश्यो॑ म॒यूरः॑ सुप॒र्णस्ते ग॑न्ध॒र्वाणा॑म॒पामु॒द्रो मा॒सान् क॒श्यपो॒ रोहि॑त्कुण्ड॒णाची॑ गो॒लत्ति॑का॒ तेऽप्स॒रसां॑ मृ॒त्यवे॑ऽसि॒तः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (अन्यवापः) कोकिला पक्षी है वह (अर्द्धमासानाम्) पखवाड़ों के अर्थ जो (ऋश्यः) ऋश्य जाति का मृग (मयूरः) मयूर और (सुपर्णः) अच्छे पंखो वाला विशेष पक्षी है (ते) वे (गन्धर्वाणाम्) गाने वालों के और (अपाम्) जलों के अर्थ जो (उद्रः) जलचर बिलाव वह (मासान्) महीनों के अर्थ जो (कश्यपः) कछुआ (रोहित्) विशेष मृग (कुण्डृणाची) कुण्डृणाची नाम की वन में रहने वाली और (गोलत्तिका) गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशु जाति है (ते) वे (अप्सरसाम्) किरण आदि पदार्थों के अर्थ और जो (असितः) काले गुण वाला विशेष पशु है वह (मृत्यवे) मृत्यु के लिये जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—जो काल आदि गुण वाले पशु पक्षी हैं वे उपकार वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३७ ॥

वर्षाहूरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । वर्षादयो देवताः । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

व॒र्षा॒हूर्ऋ॒तू॒नामा॒खुः कशो॑ मान्था॒लस्ते पि॒तॄणां॒ बला॑याजग॒रो वसू॑नां क॒पिञ्ज॑लः क॒पोत॒ उलू॑कः श॒शस्ते निर्ऋ॑त्यै॒ वरु॑णायार॒ण्यो मे॒षः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (वर्षाहूः) वर्षा को बुलाती है वह मेंडुकी (ऋतूनाम्) वसन्त आदि ऋतुओं के अर्थ (आखुः) मूषा (कशः) सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और (मान्थालः) माथाल नामी विशेष जन्तु हैं (ते) वे (पितॄणाम्)

पालना करने वालों के अर्थ (बलाय) बल के लिये (अजगरः) बड़ा सांप (वसूनाम्) अग्नि आदि वसुओं के अर्थ (कपिञ्जलः) कपिञ्जल नामक (कपोतः) जो कबूतर (उलूकः) उल्लू और (शशः) खरहा हैं (ते) वे (निर्ऋत्यै) निर्ऋति के लिये (वरुणाय) और वरुण के लिये (आरण्यः) वनेला (मेषः) मेढ़ा जानना चाहिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—जो ऋतु आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उन गुणों से युक्त जानने चाहिये ॥ ३८ ॥

श्वित्र इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । आदित्यादयो देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

श्वित्र आ॑दि॒त्याना॒मुष्ट्रो॒ घृणी॑वान् वार्ध्रीन॒सस्ते॑ म॒त्या अर॑ण्याय सृम॒रो रुरू॑ रौ॒द्रः क्वयिः॑ कुट॒रुर्दा॑त्यौ॒हस्ते॑ वा॒जिनां॒ कामा॑य पि॒कः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (श्वित्रः) चित्र विचित्र रंग वाला पशु विशेष वह (आदित्यानाम्) समय के अवयवों के अर्थ, जो (उष्ट्रः) ऊंट (घृणीवान्) तेजस्वि विशेष पशु और (वार्ध्रीनसः) कण्ठ में जिस के थन ऐसा बड़ा बकरा है (ते) वे सब (मत्यै) बुद्धि के लिये, जो (सृमरः) नील गाय वह (अरण्याय) वन के लिये, जो (रुरुः) मृग विशेष है वह (रौद्रः) रुद्र देवता वाला, जो (क्वयिः) क्वयिनाम का पक्षी (कुटरुः) मुर्गा और (दात्यौहः) कौआ हैं (ते) वे (वाजिनाम्) घोड़ों के अर्थ और जो (पिकः) कोकिला है वह (कामाय) काम के लिये अच्छे प्रकार जानने चाहिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जो सूर्य आदि के गुण वाले पशु पक्षी विशेष हैं वे उस २ स्वभाव वाले हैं यह जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

खड्ग इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वे देवादयो देवताः । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ख॒ड्गो वै॑श्वदे॒वः श्वा कृ॒ष्णः क॒र्णो ग॑र्द॒भस्त॒रक्षु॒स्ते रक्ष॑सा॒मिन्द्रा॑य सूक॒रः सि॒ꣳहो मा॑रु॒तः कृ॑कला॒सः पिप्प॑का श॒कुनि॒स्ते श॑र॒व्या॑यै॒ विश्वे॑षां दे॒वानां॑ पृष॒तः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को जो (खड्गः) ऊंचे और पैने सींगों वाला गैंडा है वह (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का, जो (कृष्णः) काले रंग वाला (श्वा) कुत्ता (कर्णः) बड़े कानों वाला (गर्दभः) गदहा और (तरक्षुः) व्याघ्र हैं (ते) वे सब (रक्षसाम्) राक्षस दुष्टहिंसक हवपियों के अर्थ, जो (सूकरः) सुअर है वह (इन्द्राय) शत्रुओं को विदारने वाले राजा के लिये, जो (सिंहः) सिंह है वह (मारुतः) मारुत देवता वाला, जो (कृकलासः) गिरगिटान (पिप्पका) पिप्पका नाम की पक्षिणी और (शकुनिः) पक्षिमात्र हैं (ते) वे सब (शरव्यायै) जो शरवियों में कुशल उत्तम है उसके लिये और जो (पृषतः) पृषज्जाति के हरिण हैं वे (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के अर्थ जानना चाहिये ॥ ४० ॥

भावार्थः—जो सब पशु पक्षी सब गुण भरे हैं उनको जानकर व्यवहार सिद्धि के लिये सब मनुष्य निरन्तर युक्त करें ॥ ४० ॥

इस अध्याय में पशु पक्षी रिंगने वाले सांप आदि, वनके मृग, जल में रहने वाले प्राणी और कीड़े मकोड़े आदि के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ पञ्चविंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

शादमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सरस्वत्यादयो देवताः । पूर्वस्य भुरिक् शक्वरी आदित्यानित्युत्तरस्य निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पचीसवें अध्याय का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किस को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं बर्स्वैस्तेगान्दंष्ट्राभ्याᳪ सरस्वत्याऽअग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजᳪ हनुभ्यामप आस्येन वृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याᳪ शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवोऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए विद्यार्थी जन ! (ते) तेरे (दद्भिः) दांतों से (शादम्) जिस में छेदन करता है उस व्यवहार को (दन्तमूलैः) दांतों की जड़ों और (बर्स्वैः) दांतों की पछाड़ियों से (अवकाम्) रक्षा करने वाली (मृदम्) मट्टी को (दंष्ट्राभ्याम्) डाढ़ों से (सरस्वत्यै) विशेष ज्ञान वाली वाणी के लिये (गाम्) वाणी को (जिह्वायाः) जीभ से (अग्रजिह्वम्) जीभ के अगले भाग को (अवक्रन्देन) विकलतारहित व्यवहार से (उत्सादम्) जिस में ऊपर को स्थिर होती है उस (तालु) तालु को (हनुभ्याम्) ठोढ़ी के पास के भागों से (वाजम्) अन्न को (आस्येन) जिस से भोजन आदि पदार्थ को गीला करते उस मुख से (अपः) जलों को (आण्डाभ्याम्) वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करने हारे आंडों से (वृषणम्) वीर्य वर्षाने

वाले अङ्ग को (श्मश्रुभिः) मुख के चारों ओर जो केश अर्थात् डाढ़ी उस से (आदित्यान्) मुख्य विद्वानों को (भ्रूभ्याम्) नेत्र गोलकों के ऊपर जो भौंहें हैं उन से (पन्थानम्) मार्ग को (वर्त्तोभ्याम्) जाने आने से (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि तथा (कनीनकाभ्याम्) तेज से भरे हुए काले नेत्रों के तारों के सदृश गोलों से (विद्युतम्) बिजुली को मैं समझता हूं। तुमको (शुक्राय) वीर्य के लिये (स्वाहा) ब्रह्मचर्य क्रिया से और (कृष्णाय) विद्या खींचने के लिये (स्वाहा) सुन्दरशीलयुक्त क्रिया से (पार्याणि) पूरे करने योग्य (पक्ष्माणि) जो सब ओर से लेने चाहिये उन कामों वा पलकों के ऊपर के विन्ने वा (अवार्याः) नदी आदि के प्रथम ओर होने वाले (इक्षवः) गन्नों के पौंडे वा (अवार्याणि) नदी आदि के पहिले किनारे पर होने वाले पदार्थ (पक्ष्माणि) सब ओर से जिनका ग्रहण करें वा लोम और (पार्याः) पालना करने योग्य (इक्षवः) ऊख जो गुड़ आदि के निमित्त हैं वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें ॥ १ ॥

भावार्थः—अध्यापक लोग अपने शिष्यों के अङ्गों को उपदेश से अच्छे प्रकार पुष्ट कर तथा आहार वा विहार का अच्छा बोध, समस्त विद्याओं की प्राप्ति, अखण्डित ब्रह्मचर्य का सेवन और ऐश्वर्य की प्राप्ति करा के सुखयुक्त करें ॥ १ ॥

वातमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । प्राणादयो देवताः । भुरिगतिशक्वरी छन्दसी । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳪ श्रोत्रᳪ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳪ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳪ स्तुपेन ॥ २ ॥

पदार्थः—हे जानने की इच्छा करने वाले ! मेरे उपदेश के ग्रहण से तू (प्राणेन) प्राण और (अपानेन) अपान से (वातम्) पवन और (नासिके) नासिकाछिद्रों और (उपयामम्) प्राप्त हुए नियम को (अधरेण) नीचे के (ओष्ठेन) ओष्ठ से (उत्तरेण) ऊपर के (प्रकाशेन) प्रकाशरूप ओठ से (सदन्तरम्) बीच में विद्यमान मुख आदि स्थान को

(अनूकाशेन) पीछे से प्रकाश होने वाले अङ्ग से (बाह्यम्) बाहर हुए अङ्ग को (मूर्ध्ना) शिर से (निवेष्यम्) जो निश्चय से व्याप्त होने योग्य उस को (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना के हेतु के साथ (स्तनयित्नुम्) शब्द करने हारी (अशनिम्) बिजुली को (मस्तिष्केण) शिर की चरबी और नसों से (विद्युतम्) अति प्रकाशमान बिजुली को (कनीनकाभ्याम्) छिपते हुए (कर्णाभ्याम्) शब्द को सुनवाने हारे पवनों से (कर्णौ) जिनसे श्रवण करता उन कानों को और (श्रोत्राभ्याम्) जिन गोल २ छेदों से सुनता उन से (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय और (तेदनीम्) श्रवण करने की क्रिया को (अधरकण्ठेन) कण्ठ के नीचे के भाग से (अपः) जलों (शुष्ककण्ठेन) सूखते हुए कण्ठ से (चित्तम्) विशेष ज्ञान सिद्ध कराने हारे अन्तःकरण के वर्त्ताव को (मन्याभिः) विशेष ज्ञान की क्रियाओं से (अदितिम्) न विनाश को प्राप्त होने वाली उत्तम बुद्धि को (शीर्ष्णा) शिर से (निर्ऋतिम्) भूमि को (निर्जर्जल्पेन) निरन्तर जीर्ण सब प्रकार परिपक्व हुए (शीर्ष्णा) शिर और (संक्रोशैः) अच्छे प्रकार बुलावाओं से (प्राणान्) प्राणों को प्राप्त हो तथा (स्तुपेन) हिंसा से (रेष्माणम्) हिंसक अविद्या आदि रोग का नाश कर ॥ २ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पहिली अवस्था में समस्त शरीर आदि साधनों से शारीरिक और आत्मिक बल को अच्छे प्रकार सिद्ध करें और अविद्या दुष्ट शिक्षावट निन्दित स्वभाव आदि रोगों को सब प्रकार हनन करें ॥ २ ॥

मशकानित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । भुरिक्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

म॒श॒कान् केशै॒रिन्द्र॒ꣳ स्वप॑सा॒ वहे॑न॒ बृह॒स्पति॑ꣳ शकुनिसा॒देन॑ कू॒र्मा॑ञ्छ॒फैरा॒क्रम॑ण॒ꣳ स्थू॒राभ्या॑मृक्ष॒लाभिः॑ क॒पिञ्ज॑लान् ज॒वं जङ्घा॑भ्या॒मध्वा॑नं बा॒हुभ्यां॒ जाम्बी॑ले॒नार॑ण्यम॒ग्निम॑ति॒रुग्भ्यां॑ पू॒षणं॑ दो॒र्भ्याम॒श्विना॒वꣳसा॑भ्याꣳ रु॒द्रꣳ रोरा॑भ्याम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (केशैः) शिर के बालों से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (शकुनिसादेन) जिससे पक्षियों को स्थिर कराता उस व्यवहार से (कूर्मान्) कछुओं और (मशकान्) मशों को (स्वपसा) उत्तम काम और (वहेन) प्राप्ति कराने से (बृहस्पतिम्) बड़ी प्राणी के स्वामी विद्वान् को (स्थूराभ्याम्) स्थूल (ऋक्षलाभिः)

चाल और ग्रहण करने आदि क्रियाओं से (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (जङ्घाभ्याम्) जङ्घाओं से (अध्वानम्) मार्ग और (जवम्) वेग को (बंसाभ्याम्) भुजाओं के मूल अर्थात् बगलों (बाहुभ्याम्) भुजाओं और (शफैः) खुरों से (आक्रमणम्) चाल को (जाम्बीलेन) जमुनी आदि के फल से (अरण्यम्) वन और (अग्निम्) अग्नि को (अतिरुग्भ्याम्) अतीव रुचि प्रीति और इच्छा से (पूषणम्) पुष्टि को तथा (दोर्भ्याम्) भुजदण्डों से (अश्विनौ) प्रजा और राजा को प्राप्त होओ और (रोराभ्याम्) कहने सुनने से (रुद्रम्) रुलाने हारे को प्राप्त होओ ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बहुत उपायों से उत्तम गुणों की प्राप्ति और विघ्नों की निवृत्ति करें ॥ ३ ॥

अग्नेरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । स्वराड् धृतिश्छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

फिर किस को क्या क्रिया करने योग्य है इस वि० ॥

अ॒ग्नेः प॑क्ष॒तिर्वा॒योर्निप॑क्षति॒रिन्द्र॑स्य तृ॒तीया॒ सोम॑स्य चतु॒र्थ्य᳖दि॑त्यै पञ्च॒मीन्द्रा॒ण्यै ष॒ष्ठी म॒रुता॑ᳯ सप्त॒मी बृह॒स्पते॑रष्ट॒म्य᳖र्य॒म्णो न॑व॒मी धा॒तुर्द॑श॒मीन्द्र॑स्यैकाद॒शी वरु॑णस्य द्वाद॒शी य॒मस्य॑ त्रयो॒द॒शी ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुमको (अग्नेः) अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल (वायोः) पवन की (निपक्षतिः) निश्चित विषय का मूल (इन्द्रस्य) सूर्य की (तृतीया) तीन को पूरा करने वाली क्रिया (सोमस्य) चन्द्रमा की (चतुर्थी) चार को पूरा करने वाली (अदित्यै) अन्तरिक्ष की (पञ्चमी) पांचमी (इन्द्राण्यै) स्त्री के समान वर्त्तमान जो विजुलीरूप अग्नि की लपट उस की (षष्ठी) छठी (मरुताम्) पवनों की (सप्तमी) सातवीं (बृहस्पतेः) बड़ों की पालना करने वाले महत्तत्व की (अष्टमी) आठमी (अर्यम्णः) स्वामी जनों का सत्कार करने वाले की (नवमी) नवीं (धातुः) धारण करने हारे की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (द्वादशी) बारहवीं और (यमस्य) न्यायाधीश राजा की (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया करनी चाहिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को क्रिया के विशेष ज्ञान और साधनों से अग्नि आदि पदार्थों के गुणों को जान कर सब कार्यों की सिद्धि करनी चाहिये ॥ ४ ॥

इन्द्राग्न्योरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवताः । स्वराड्विकृतिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर किस के अर्थ कौन होती है इस वि० ॥

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सर्पाणाᳬं सप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (इन्द्राग्न्योः) पवन और अग्नि की (पक्षतिः) सब ओर से ग्रहण करने योग्य व्यवहार की मूल पद्धति (सरस्वत्यै) वाणी के लिये (निपक्षतिः) निश्चित पक्ष का मूल दूसरी (मित्रस्य) मित्र की (तृतीया) तीसरी (अपाम्) जलों की (चतुर्थी) चौथी (निर्ऋत्यै) भूमि की (पञ्चमी) पांचवीं (अग्निषोमयोः) गर्मी सरदी को उत्पन्न करने वाले अग्नि तथा जल की (षष्ठी) छठी (सर्पाणाम्) सांपों की (सप्तमी) सातवीं (विष्णोः) व्यापक ईश्वर की (अष्टमी) आठमी (पूष्णः) पुष्टि करने वाले की (नवमी) नवमी (त्वष्टुः) उत्तम दिपते हुए की (दशमी) दशमी (इन्द्रस्य) जीव की (एकादशी) ग्यारहवीं (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन की (द्वादशी) बारहवीं और (यम्यै) न्याय करने वाले की स्त्री के लिये (त्रयोदशी) तेरहवीं क्रिया है इन सब को तथा (द्यावापृथिव्योः) प्रकाश और भूमि के (दक्षिणम्) दक्षिण (पार्श्वम्) ओर को और (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों के (उत्तरम्) उत्तर ओर को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि इन उक्त पदार्थों के विशेष ज्ञान के लिये अनेक क्रियाओं को करके अपने २ कामों को सिद्ध करें ॥ ५ ॥

मरुतामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतादयो देवताः । निचृदतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मरुताᳬं स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्विती-

यादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणं स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (मरुताम्) मनुष्यों के (स्कन्धाः) कंधा (विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (प्रथमा) पहिली क्रिया और (कीकसा) निरन्तर शिखावटें (रुद्राणाम्) रुलाने हारे विद्वानों की (द्वितीया) दूसरी ताड़न रूप क्रिया (आदित्यानाम्) अखण्डित न्याय करने वाले विद्वानों की (तृतीया) तीसरी न्याय क्रिया (वायोः) पवनसम्बन्धी (पुच्छम्) पशु की पूंछ अर्थात् जिस से पशु अपने शरीर को पवन देता (अग्नीषोमयोः) अग्नि और जल सम्बन्धी (भासदौ) जो प्रकाश को देवें वे (कुञ्चौ) कोई विशेष पक्षी वा सारस (श्रोणिभ्याम्) चूतड़ों से (इन्द्राबृहस्पती) पवन और सूर्य (ऊरुभ्याम्) जांघों से (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (अल्गाभ्याम्) परिपूर्ण चलने वाले प्राणियों से (आक्रमणम्) चाल तथा (कुष्ठाभ्याम्) निचोड़ और (स्थूराभ्याम्) स्थूल पदार्थों से (बलम्) बल को सिद्ध करना चाहिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को भुजाओं का बल अपने अङ्ग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥ ६ ॥

पूषणमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । निचृदष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्मांछकपिण्डैः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वनिष्ठुना) मांगने से (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (स्थूलगुदया) स्थूल गुदेन्द्रिय के साथ वर्त्तमान (अन्धाहीन्) अन्धे सांपों को (गुदाभिः) गुदेन्द्रियों के साथ वर्त्तमान (विह्रुतः) विशेष कुटिल (सर्पान्) सर्पों को (आन्त्रैः) आंतों से (अपः) जलों को (वस्तिना) नाभि के नीचे के भाग से (वृषणम्) अण्डकोष को (आण्डाभ्याम्) आंडों से (वाजिनम्) घोड़ों को (शेपेन) लिङ्ग और (रेतसा) वीर्य से (प्रजाम्) सन्तान को (पित्तेन) पित्त से (चाषान्) भोजनों को (प्रदरान्) पेट के अङ्गों को (पायुना) गुदेन्द्रिय से और (शकपिण्डैः) शक्तियों से (कूश्मान्) शिखावटों को निरन्तर लेओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—जिस २ से जो २ काम सिद्ध हो उस २ अङ्ग वा पदार्थ से वह २ काम सिद्ध करना चाहिये ॥ ७ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रादयो देवता । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर किस २ के गुण पशुओं में हैं इस वि० ॥

इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवन्तीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याꣳ समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! तुम को उत्तम यत्न के साथ (इन्द्रस्य) बिजुली का (क्रोडः) ढूंढना (अदित्यै) पृथिवी के लिये (पाजस्यम्) अन्नों में जो उत्तम वह (दिशाम्) दिशाओं की (जत्रवः) सन्धि अर्थात् उन का एक दूसरे से मिलना (अदित्यै) अखण्डित प्रकाश के लिये (भसत्) लपट ये सब पदार्थ जानने चाहियें तथा (जीमूतान्) मेघों को (हृदयौपशेन) जो हृदय में सोता है उस जीव से (पुरीतता) हृदयस्थ नाड़ी से (अन्तरिक्षम्) हृदय के अवकाश को (उदर्येण) उदर में होते हुए व्यवहार से (नभः) जल और (चक्रवाकौ) चकई चकवा पक्षियों के समान जो पदार्थ उन को (मतस्नाभ्याम्) गले के दोनों ओर के भागों से (दिवम्) प्रकाश को (वृक्काभ्याम्) जिन क्रियाओं से अपगुणों का त्याग होता है उन से (गिरीन्) पर्वतों को (प्लाशिभिः) उत्तम भोजन आदि क्रियाओं से (उपलान्) दूसरे प्रकार के मेघों को (प्लीह्ना) हृदयस्थ प्लीहा अंग से (वल्मीकान्) मार्गों को (क्लोमभिः) गीलेपन और (ग्लौभिः) हर्ष तथा ग्लानियों से (गुल्मान्) दाहिनी ओर उदर में स्थित जो पदार्थ उन को (हिराभिः) बढ़तियों से (स्रवन्तीः) नदियों को (ह्रदान्) छोटे बड़े जलाशयों को (कुक्षिभ्याम्) कोखों से (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जहां जल जाता उस समुद्र को (उदरेण) पेट और (भस्मना) जले हुए पदार्थ का जो शेष भाग उस राख से (वैश्वानरम्) सब के प्रकाश करने हारे अग्नि को तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनेक विद्याबोधों को प्राप्त होकर ठीक २ यथोचित आहार और

विहारों से सब अंगों को अच्छे प्रकार पुष्ट कर रोगों की निवृत्ति करें तो वे धर्म अर्थ काम और मोक्ष को अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥ ८ ॥

विधृतिमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । पूषादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर किससे क्या होता है इस वि० ॥

विधृतिं नाभ्या घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (नाभ्या) नाभि से (विधृतिम्) विशेष करके धारणा को (घृतम्) घी को (रसेन) रस से (अपः) जलों को (यूष्णा) क्वाथ किये रस से (मरीचीः) किरणों को (विप्रुड्भिः) विशेषतर पूर्ण पदार्थों से (नीहारम्) कुहर को (ऊष्मणा) गरमी से (शीनम्) जमे हुए घी को (वसया) निवास हेतु जीवन से (प्रुष्वाः) जिन से सींचते हैं उन क्रियाओं को (अश्रुभिः) आंसुओं से (ह्रादुनीः) शब्दों की अव्यक्त उच्चारण क्रियाओं को (दूषीकाभिः) विकाररूप क्रियाओं से (चित्राणि) चित्र विचित्र (रक्षांसि) पालना करने योग्य (अस्ना) रुधिरादि पदार्थों को (अङ्गैः) अङ्गों और (रूपेण) रूप से (नक्षत्राणि) तारागणों को (त्वचा) मांस रुधिर आदि को ढांपने वाली खाल आदि से (पृथिवीम्) पृथिवी को जानकर (जुम्बकाय) अतिवेगवान् के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी का प्रयोग अर्थात् उच्चारण करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को धारण आदि क्रियाओं से खोटे आचरण और रोगों की निवृत्ति और सत्यभाषण आदि धर्म के लक्षणों का विचार कर प्रवृत्त करना चाहिये ॥ ९ ॥

हिरण्यगर्भ इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । हिरण्यगर्भो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अथ परमात्मा कैसा है इस वि० ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो (हिरण्यगर्भः) सूर्यादि तेज वाले पदार्थ

जिस के भीतर हैं वह परमात्मा (जातः) प्रादुर्भूत और (भूतस्य) उत्पन्न हुए जगत् का (एकः) असहाय एक (अग्रे) भूमि आदि सृष्टि से पहिले भी (पतिः) पालन करने हारा (आसीत्) है और सब का प्रकाश करने वाला (अवर्त्तत) वर्त्तमान हुआ (सः) वह (पृथिवीम्) अपनी आकर्षण शक्ति से पृथिवी (उत) और (द्याम्) प्रकाश को (सम्, दाधार) अच्छे प्रकार करता है तथा जो (इमाम्) इस सृष्टि को बनाया हुआ अर्थात् जिसने सृष्टि की उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से (विधेम) सेवन का विधान करें वैसे तुम लोग भी सेवन का विधान करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने अपने सामर्थ्य से सूर्य आदि समस्त जगत् को बनाया और धारण किया है उसी की उपासना किया करो ॥ १० ॥

यः प्राणत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (यः) जो सूर्य (प्राणतः) श्वास लेते हुए प्राणी और (निमिषतः) चेष्टा करते हुए (जगतः) संसार का (महित्वा) बड़ेपन से (एकः) असहाय एक (इत्) ही (राजा) प्रकाश करने वाला (बभूव) होता है (यः) तथा जो (अस्य) इस (द्विपदः) दो २ पग वाले मनुष्यादि और (चतुष्पदः) चार २ पग वाले गौ आदि पशुरूप जगत् का (ईशे) प्रकाश करता है उस (कस्मै) सुख करने हारे (देवाय) प्रकाशक जगदीश्वर के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य पदार्थ वा व्यवहार से (विधेम) सेवन करें वैसे तुम लोग भी अनुष्ठान किया करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो सूर्य न हो तो स्थावर वृक्ष आदि और जङ्गम मनुष्यादि जगत् अपना २ काम देने को समर्थ न हो। जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने वाला और ऐश्वर्य की प्राप्ति का हेतु है वह ईश्वर सब को युक्ति के साथ सेवने योग्य है ॥ ११ ॥

यस्येत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर सूर्य के वर्णन वि० ॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस सूर्य के ((महित्वा) बड़प्पन से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमालय आदि पर्वत आकर्षित और प्रकाशित हैं (यस्य) जिस के (रसया) स्नेह के (सह) साथ (समुद्रम्) अच्छे प्रकार जिस में जल ठहरते हैं उस अन्तरिक्ष को (आहुः) करते हैं तथा (यस्य) जिस की (इमाः) इन दिशा और (यस्य) जिस की (प्रदिशः) विदिशाओं को (बाहू) भुजाओं के समान वर्त्तमान कहते हैं उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) मनोहर सूर्यमण्डल के लिये (हविषा) होम करने योग्य पदार्थ से हम लोग (विधेम) सेवन का विधान करें, ऐसे ही तुम भी विधान करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करने और सब पदार्थों से रस का लेने हारा जिस के प्रताप से दिशा और विदिशाओं का विभाग होता है, वह सूर्य्यलोक युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥ १२ ॥

य आत्मदा इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उपासना किया ईश्वर क्या देता है इस वि० ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (आत्मदाः) आत्मा को देने और (बलदाः) बल-देने वाला (यस्य) जिस की (प्रशिषम्) उत्तम शिक्षा को (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) सेवते (यस्य) जिस के समीप से सब व्यवहार उत्पन्न होते (यस्य) जिस का (छाया) आश्रय (अमृतम्) अमृतस्वरूप और (यस्य) जिस की आज्ञा का भङ्ग (मृत्युः) मरण के तुल्य है उस (कस्मै) सुखरूप (देवाय) स्तुति के योग्य परमात्मा के लिये हम लोग (हविषा) होमने के पदार्थ से (विधेम) सेवा का विधान करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की उत्तम शिक्षा में की हुई मर्यादा में सूर्य आदि लोक नियम के साथ वर्तमान हैं, जिस सूर्य के विना जल की वर्षा और अवस्था का नाश नहीं होता वह सवितृमण्डल जिस ने बनाया है उसी की उपासना सब मिल कर करें ॥ १३ ॥

आ न इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस वि० ॥

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (नः) हम लोगों को (विश्वतः) सब ओर से (भद्राः) कल्याण करने वाले (अदब्धासः) जो विनाश को न प्राप्त हुए (अपरीतासः) औरों ने जो न व्याप्त किये अर्थात् सब कामों से उत्तम (उद्भिदः) जो दुःखों को विनाश करते वे (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धि बल (आ, यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (यथा) जैसे (नः) हम लोगों की (सदम्) उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं प्राप्त हुए (अप्रायुवः) जिन की अवस्था नष्ट नहीं होती वे (देवाः) पृथिवी आदि पदार्थों के समान विद्वान् जन (इत्) ही (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालना करने वाले (असन्) हों वैसा आचरण करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को परमेश्वर के विज्ञान और विद्वानों के संग से बहुत बुद्धियों को प्राप्त होकर सब ओर से धर्म का आचरण कर नित्य सब की रक्षा करने वाले होना चाहिये ॥ १४ ॥

देवानामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम् । देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (ऋजूयताम्) कठिन विषयों को सरल करते हुए (देवानाम्) देने वाले विद्वानों का (रातिः) विद्या आदि पदार्थों का देना (नः) हम लोगों को (अभि, नि, वर्त्तताम्) सब ओर से सिद्ध करे सब गुणों से पूर्ण करे (वयम्) हम लोग (देवानाम्) विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उप, सेदिम) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान् (नः) हम को (जीवसे) जीने के लिये (आयुः)

जिस से प्राण का धारण होता उस आयुर्दा को (प्र, तिरन्तु) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रति वर्त्ताव रक्खें ॥ १५ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण शास्त्रवेत्ता विद्वानों के समीप से उत्तम बुद्धियों को पाकर ब्रह्मचर्य आश्रम से आयु को बढ़ा के सदैव धार्मिक जनों के साथ मित्रता रक्खें ॥ १५ ॥

तान्पूर्वयेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तान्पूर्वया निविदा हूमहे व॒यं भगं॑ मि॒त्रमदि॑तिं॒ दक्ष॑म॒स्रिध॑म् ।
अ॒र्य॒मणं॒ वरु॑ण॒ᳪं सोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वती नः सु॒भगा॒ मय॑स्करत् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (पूर्वया) अगले सज्जनों ने स्वीकार की हुई (निविदा) वेद वाणी से (दक्षम्) चतुर (अर्यमणम्) प्रजापालक (अस्रिधम्) न विनाश करने योग्य (भगम्) ऐश्वर्य कराने वाले (मित्रम्) सब के मित्र (अदितिम्) जिस की बुद्धि कभी खण्डित नहीं होती उस (वरुणम्) श्रेष्ठ (सोमम्) ऐश्वर्यवान् तथा (अश्विना) पढ़ाने और पढ़ने वाले को (हूमहे) परस्पर हिरस करते हुए चाहते हैं। जैसे (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य वाली (सरस्वती) समस्त विद्याओं से पूर्ण वेदवाणी (नः) हमारे और तुम्हारे लिये (मयः) सुख को (करत्) करे वैसे (तान्) उन उक्त सज्जनों को तुम भी चाहो और सुख करो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा०—मनुष्यों को चाहिये कि जो २ वेद में कहा हुआ काम है उस २ का ही अनुष्ठान करें। जैसे अच्छे विद्यार्थी दूसरे की हिरस से अपनी विद्या को बढ़ाते हैं वैसे ही सब को विद्या बढ़ानी चाहिये। जैसे परिपूर्ण विद्यायुक्त माता अपने सन्तानों को अच्छी शिक्षा दे, विद्याओं की प्राप्ति करा, उन की विद्या बढ़ाती है वैसे ही सब को सब के लिये सुख देकर सब की वृद्धि करनी चाहिये ॥ १६ ॥

तन्न इत्यस्य गोतम ऋषिः । वायुर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करे इस वि० ॥

तन्नो॒ वातो॑ मयो॒भु वा॑तु भेष॒जं तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत्पि॒ता

द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) पढ़ाने और पढ़नेहारे सज्जनो ! (धिष्ण्या) भूमि के समान धारण करने वाले (युवम्) तुम दोनों हम लोगों ने जो पढ़ा है उस को (शृणुतम्) सुनो। जैसे (नः) हम लोगों के लिये (वातः) पवन (तत्) उस (मयोभु) सुख करनेहारी (भेषजम्) ओषधि को (वातु) प्राप्त करे (तत्) उस ओषधि को (माता) मान्य देने वाली (पृथिवी) विस्तारयुक्त भूमि तथा (तत्) उस को (पिता) पालना का हेतु (द्यौः) सूर्य्यमण्डल प्राप्त करे तथा (तत्) उस को (सोमसुतः) ओषधि और ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करने और (मयोभुवः) सुख की भावना कराने हारे (ग्रावाणः) मेघ प्राप्त करें (तत्) यह सब व्यवहार तुम्हारे लिये भी होवें ॥ १७ ॥

भावार्थः—जिस की पृथिवी के समान माता और सूर्य्य के समान पिता हो वह सब ओर से कुशली सुखी होकर सब को निरोग और चतुर करे ॥ १७ ॥

तमीशानमित्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है और किसलिये उपासना के योग्य है इस वि० ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग (अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पतिम्) रक्षक (धियंजिन्वम्) बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (तम्) उस अखण्ड (ईशानम्) सब को वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये) सुख के लिये (पायुः) सब का रक्षक (अदब्धः) नहीं मारने वाला (असत्) होवे वैसे तुम लोग भी उस की स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥ १८ ॥

भावार्थः—सब विद्वान् लोग सब मनुष्यों के प्रति ऐसा उपदेश करें कि जिस सर्वशक्तिमान् निराकार सर्वत्र व्यापक परमेश्वर की उपासना हम लोग करें तथा उसी को सुख और ऐश्वर्य्य का बढ़ाने वाला जानें उसी की उपासना तुम लोग भी करो और उसीं को सब की उन्नति करने वाला जानो ॥ १८ ॥

स्वस्ति न इत्यस्य गोतम ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा करनी चाहिये इस वि० ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत् में वेद ही जिसका धन है वह (पूषा) सब का पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख जो (तार्क्ष्यः) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महत्तत्व आदि का स्वामी वा पालना करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख को (दधातु) धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने सुख को चाहें वैसे और के लिये भी चाहें। जैसे कोई भी अपने लिये दुःख नहीं चाहता वैसे और के लिये भी न चाहें ॥ १९ ॥

पृषदश्वा इत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कौन क्या करे इस वि० ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ॥ २० ॥

पदार्थः—जो (पृश्निमातरः) जिन को मान्य देने वाला अन्तरिक्ष माता के तुल्य है उन वायुओं के समान (पृषदश्वाः) जिन के पुष्टि आदि से सींचे अङ्गों वाले घोड़े हैं वे (मरुतः) मनुष्य तथा (विदथेषु) संग्रामों में (शुभंयावानः) जो उत्तम सुखको प्राप्त होने और (जग्मयः) संग करने वाले (अग्निजिह्वाः) जिन की अग्नि के समान प्रकाशित वाणी और (सूरचक्षसः) जिन का ऐश्वर्य वा प्रेरणा में दर्शन होवे ऐसे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् (मनवः) जन (अवसा) रक्षा आदि के साथ वर्त्तमान हैं वे लोग (इह) इस संसार वा इस समय में (नः) हम लोगों को (आ, अगमन्) प्राप्त होवें ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को विद्वानों का संग सदैव प्रार्थना करने योग्य है । जैसे इस जगत् में सब वायु आदि पदार्थ सब मनुष्यों वा प्राणियों के जीवन के हेतु हैं वैसे इस जगत् में चेतनों में विद्वान् हैं ॥ २० ॥

भद्रमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

भ॒द्रं कर्णे॑भिः शृणुयाम देवा भ॒द्रं प॑श्येमा॒क्षभि॒र्यज॑त्राः । स्थि॒रैर॒ङ्गैस्तु॑ष्टु॒वाᳲ स॑स्त॒नूभि॒र्व्य॑शेमहि दे॒वहि॑तं॒ यदायुः॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संग करने वाले (देवाः) विद्वानो ! आप लोगों के साथ से हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) जिस से सत्यता जानी जाये उस वचन को (शृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम्) कल्याण को (पश्येम) देखें (स्थिरैः) दृढ (अङ्गैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुख करने हारी (आयुः) अवस्था है उस को (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्था वाले हों। मनुष्यों को चाहिये कि असत्य सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति प्रार्थना प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करें ॥ २१ ॥

शतमित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर हमारे लिये कौन क्या करें इस वि० ॥

श॒तमिन्नु श॒रदो॒ अन्ति॑ देवा॒ यत्रा॑ नश्च॒क्रा ज॒रसं॑ त॒नूना॑म् । पु॒त्रासो॒ यत्र॑ पि॒तरो॒ भव॑न्ति॒ मा नो॑ म॒ध्या री॑रिषता॒युर्गन्तोः॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! आप के (अन्ति) समीप स्थित (नः) हम लोगों के (यत्र) जिस व्यवहार में (तनूनाम्) शरीरों की (जरसम्) वृद्धावस्था और (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष पूरे हों उस व्यवहार को (नु) शीघ्र (चक्र) करो (यत्र) जहां (पुत्रासः) बुढ़ापे के दुःखों से रक्षा करने वाले लड़के (इत्) ही (पितरः) पिता के समान वर्त्तमान (भवन्ति) होते हैं उस (नः) हम लोगों की (गन्तोः) चाल और (आयुः) अवस्था को (मध्या) पूरी अवस्था भोगने के बीच (मा, रीरिषत) मत नष्ट करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदा दीर्घकाल अर्थात् अड़तालीस वर्ष प्रमाणे ब्रह्मचर्य सेवना चाहिये। जिस से पिता आदि के विद्यमान होते ही लड़के भी पिता हो जावें अर्थात् उन के भी लड़के हो जावें। जब सौ वर्ष आयु बीते तभी शरीरों की वृद्धावस्था होवे। जो ब्रह्मचर्य के साथ कम से कम पच्चीस वर्ष व्यतीत होवें उस से पीछे भी अति-

मैथुन करके जो लोग वीर्य का नाश करते हैं तो वे रोगसहित निर्बुद्धि होके अधिक अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ २२ ॥

अदितिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । द्यौरित्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अदिति शब्द के अनेक अर्थ हैं इस वि० ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः । विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम को (द्यौः) कारण रूप से जो प्रकाश वह (अदितिः) अखण्डित (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अदितिः) अविनाशी (माता) सब जगत् की उत्पन्न करने वाली प्रकृति (सः) वह परमेश्वर (पिता) नित्य पालन करने हारा और (सः) वह (पुत्रः) ईश्वर के पुत्र के समान वर्त्तमान (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी संसार (विश्वे) समस्त (देवाः) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि पदार्थ (अदितिः) कारण रूप से विनाशरहित (पञ्च) पांच (जनाः) मनुष्य वा प्राण (अदितिः) कारण रूप से अविनाशी तथा (जातम्) जो कुछ उत्पन्न हुआ कार्यरूप जगत् और (जनित्वम्) जो उत्पन्न होने वाला वह सब (अदितिः) कारण रूप से नित्य है यह जानना चाहिये ॥२३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जितने कुछ कार्यरूप जगत् को देखते हो वह अदृष्ट कारणरूप जानो । जगत् का बनाने वाला परमात्मा, जीव, पृथिवी आदि तत्त्व जो उत्पन्न हुआ था जो होगा और जो प्रकृति वह सब स्वरूप से नित्य है कभी इस का अभाव नहीं होता और यह भी जानना चाहिये कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कभी नहीं होती ॥ २३ ॥

मा न इत्यस्य गोतम ऋषिः । मित्रादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन हम लोगों के किस काम को न करें इस वि० ॥

मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् । यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य॒ सप्तेः॑ प्रव॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॒णि ॥ २४ ॥

पदार्थः-हे विद्वानो ! जैसे (मित्रः) प्राण के समान मित्र (वरुणः) उदान के समान श्रेष्ठ (अर्यमा) और न्यायाधीश के समान नियम करने वाला (इन्द्रः) राजा तथा (ऋभुक्षाः) महात्मा (मरुतः) जन (नः) हम लोगों की (आयुः) आयुर्दा को (मा) मत (परिख्यन्) विनाश करावें जिससे हम लोग (देवजातस्य) दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेगवान् (सप्तेः) घोड़ा के समान उत्तम वीर पुरुष के (विदथे) युद्ध में (यत्) जिन (वीर्याणि) बलों को (प्रवक्ष्यामः) कहें उन का मत विनाश करावें, वैसा आप लोग उपदेश करें ॥ २४ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे सब मनुष्य अपने बलों को बढ़ाना चाहें वैसे औरों के भी बल को बढ़ाने की इच्छा करें ॥ २४ ॥

यन्निर्णिजेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति । सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २५ ॥

पदार्थः-(यत्) जो मनुष्य (निर्णिजा) शुद्धरूप और (रेक्णसा) धन से (प्रावृतस्य) युक्त जन को (रातिम्) देने वा (गृभीताम्) ली हुई वस्तु को (मुखतः) आगे से (नयन्ति) प्राप्त कराते तथा जो (मेम्यत्) प्राप्त होता हुआ (सुप्राङ्) अच्छे प्रकार पूछने वाला (विश्वरूपः) संसार जिसका रूप वह (अजः) जन्म और मरण आदि दोषों से रहित अविनाशी जीव (इन्द्रापूष्णोः) बिजुली और पवन सम्बन्धी (प्रियम्) मनोहर (पाथः) अन्न को (अप्येति) सब ओर से पाता है वे मनुष्य और वह जीव सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य धन को पाकर अच्छे कामों में ख़र्च करते हैं वे सब कामनाओं को पाते हैं ॥ २५ ॥

एष इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर किस के साथ कौन पालना करने योग्य है इस वि० ॥

एष च्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः । अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनᳪसौश्रवसाय जिन्वति ॥ २६ ॥

११५

पदार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जो (एषः) यह (पुरः) प्रथम (विश्वदेव्यः) सब विद्वानों में उत्तम (पूष्णः) पुष्टि करने वाले का (भागः) सेवने योग्य (छागः) पदार्थों को छिन्न भिन्न करता हुआ प्राणी (वाजिना) वेगवान् (अश्वेन) घोड़े के साथ (नीयते) प्राप्त किया जाता और (यत्) जिस (अभिप्रियम्) सब ओर से मनोहर (पुरोडाशम्) पुरोडाश नामक यज्ञभाग को (अर्वतः) पहुंचाते हुए घोड़े के साथ (त्वष्टा) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला (एनम्) उक्त भाग को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति-मान् होने के लिये (इत्) ही (जिन्वति) पाकर प्रसन्न होता है वह सदैव पालने योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—यदि अश्वादिकों के साथ अन्य बकरी आदि पशुओं को बढ़ावें तो वे मनुष्य सुख की उन्नति करें ॥ २६ ॥

यद्धविष्यमित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर किससे कौन क्या करते हैं इस वि० ॥

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मानुषाः) मनुष्य (ऋतुशः) ऋतु २ के योग्य (हविष्यम्) होम में चढ़ाने के पदार्थों के लिये हितकारी (देवयानम्) दिव्य गुण वाले विद्वानों की प्राप्ति कराने हारे (अश्वम्) शीघ्रगामी प्राणी को (त्रिः) तीनवार (परि, नयन्ति) सब ओर पहुंचाते हैं वा जो (अत्र) इस संसार में (पूष्णः) पुष्टि सम्बन्धी (प्रथमः) प्रथम (भागः) सेवने योग्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (यज्ञम्) सत्कार को (प्रति-वेदयन्) जनाता हुआ (अजः) विशेष पशु बकरा (एति) प्राप्त होता है वह सदा रक्षा करने योग्य है ॥ २७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऋतु २ के प्रति उन के गुणों के अनुकूल आहार विहारों को करते तथा घोड़ा और बकरा आदि पशुओं से संगत हुए कामों को करते हैं वे अत्यन्त सुख को पाते हैं ॥ २७ ॥

होतेत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

होता॑ध्वर्युरा॑वया अग्निमिन्धो ग्रा॑वग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः । तेन॑ यज्ञेन॒ स्वरङ्कृतेन॒ स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (होता) ग्रहण करने हारा वा (आवयाः) जिस

से अच्छे प्रकार यज्ञ संग और दान करते वह वा (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने हारा वा (ग्रावग्राभः) मेघ को ग्रहण करने हारा वा (शंस्ता) प्रशंसा करने हारा (उत) और (सुविप्रः) जिस के समीप अच्छे २ बुद्धिमान् हैं वह (अध्वर्युः) अहिंसा यज्ञ का चाहने वाला उत्तम जन जिस (स्वरंकृतेन) सुन्दर सुशोभित किये (स्विष्टेन) सुन्दर भाव से चाहे और (यज्ञेन) मिले हुए यज्ञ आदि उत्तम काम से (वक्षणाः) नदियों को पूर्ण करता अर्थात् यज्ञ करने से पानी वर्षा उस वर्षे हुए जल से नदियों को भरता वैसे (तेन) उस काम से तुम लोग भी (आ, पृणध्वम्) अच्छे प्रकार सुख भोगो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य सुगन्धि आदि से उत्तम बनाये हुए होम करने योग्य पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से पवन और वर्षा जल आदि पदार्थों को शोध कर नदी नद आदि के जलों की शुद्धि करते हैं वे सदैव सुख भोगते हैं ॥ २८ ॥

यूपव्रस्का इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर वे क्या करें इस वि० ॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचनꣳसम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

पदार्थः-(ये) जो (यूपव्रस्काः) यज्ञ खंभों के छेदने बनाने (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले (अश्वयूपाय) घोड़ा के बांधने के लिये (चषालम्) खम्भा के खण्ड को (तक्षति) काटते छांटते (ये, च) और जो (अर्वते) घोड़ा के लिये (पचनम्) जिस में पाक किया जाय उस काम को (सम्भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते (उतो) और जो उत्तम यत्न करते हैं (तेषाम्) उन का (अभिगूर्त्तिः) सब प्रकार से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) व्याप्त और प्राप्त होवे ॥ २९ ॥

भावार्थः-जो काष्ठ शिल्पीजन घोड़ा के बांधने आदि काम के काठों से विशेष काम बनाते और जो वैद्य घोड़े आदि पशुओं की ओषधि और उनकी सजावट की सामग्रियों को इकट्ठा करते हैं वे सदा उद्यम करते हुए हम लोगों को प्राप्त होवें ॥ २९ ॥

उप प्रागादित्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ।

फिर कौन किन से क्या लेवें इस वि०

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः । अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ३० ॥

पदार्थः-जिसने (सुमतः) आप ही (देवानाम्) विद्वानों का (वीतपृष्ठः) जिस का पिछला भाग व्याप्त वह उत्तम व्यवहार (अधायि) धारण किया वा जिस से इन के और (मे) मेरे (मन्म) विज्ञान को तथा (आशाः) दिशा दिशान्तरों को (उप, प्र, अगात्) प्राप्त हो वा जिस (एनम्) इस प्रत्यक्ष व्यवहार के (अनु) अनुकूल (देवानाम्) विद्वानों के बीच (पुष्टे) पुष्ट बलवान् जन के निमित्त (ऋषयः) मंत्रों का अर्थ जानने वाले (विप्राः) धीरबुद्धि पुरुष (उप, मदन्ति) समीप होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं उस (सुबन्धुम्) सुन्दर २ भाइयों वाले जन को हम लोग (चकृम) उत्पन्न करें ॥ ३० ॥

भावार्थः-जो विद्वानों के समीप से उत्तम ज्ञान को पाके ऋषि होते हैं वे सब के विज्ञान देने से पुष्ट करते हैं जो परस्पर एक दूसरे की उन्नति कर परिपूर्ण काम वाले होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ ३० ॥

यद्वाजिन इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन किन से क्या करें इस वि० ॥

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य । यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३१ ॥

पदार्थः-हे विद्वन् ! (वाजिनः) प्रशस्त वेग वाले (अस्य) इस (अर्वतः) बलवान् घोड़े का (यत्) जो (दाम) उदरबन्धन अर्थात् तंगी और (संदानम्) अगाड़ी पछाड़ी पैर आदि में बांधने की रस्सी वा (या) जो (शीर्षण्या) शिर में होने वाली (रशना) मुँह में व्याप्त (रज्जुः) रस्सी मुहेरा आदि (यत्, वा) अथवा जो (अस्य) इस घोड़े के (आस्ये) मुख में (तृणम्) घास दूब आदि विशेष तृण (प्रभृतम्) उत्तमता से धरी हो (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तेरे हों और यह उक्त समस्त वस्तु (घ) ही (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) हो ॥ ३१ ॥

भावार्थः-जो पुरुष घोड़ों को अच्छी शिक्षा कर उनके सब अङ्गों के बन्धन

सुन्दर २ तथा खाने पीने के श्रेष्ठ पदार्थ और उत्तम २ औषध करते हैं वे शत्रुओं को जीतना आदि काम सिद्ध कर सकते हैं ॥ ३१ ॥

यदश्वस्येत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कैसे कौन रक्षा करने योग्य हैं इस वि० ॥

यदश्व॑स्य क्र॒विषो॒ मक्षि॒काश॒ यद्वा॒ स्वरौ॒ स्वधि॑तौ रि॒प्तमस्ति॑ । यद्धस्त॑योः शमि॒तुर्यन्न॒खेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ अपि॑ दे॒वेष्व॑स्तु ॥ ३२ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मक्षिका) मक्खी (क्रविषः) चलते हुए (अश्वस्य) शीघ्र जाने वाले घोड़े का (आश) भोजन करती अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती (वा) अथवा (यत्) जो (स्वरौ) स्वर (स्वधितौ) वज्र के समान वर्त्तमान हैं वा (शमितुः) यज्ञ करनेहारे के (हस्तयोः) हाथों में (यत्) जो वस्तु (रिप्तम्) प्राप्त और (यत्) जो (नखेषु) नखों में प्राप्त (अस्ति) है (ता) वे (सर्वा) सब पदार्थ (ते) तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्यवहार (देवेषु) विद्वानों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३२ ॥

भावार्थः-मनुष्यों को ऐसी घुड़शाल में घोड़े बांधने चाहियें जहां इन का रुधिर आदि मांछि आदि न पीवें । जैसे यज्ञ करने हारे के हाथ में लिपटे हुए हवि को धोने आदि से छुड़ाते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं के शरीर में लिपटी धूलि आदि को नित्य छुड़ावें ॥ ३२ ॥

यदूवध्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन किसलिये क्या न करें इस वि० ॥

यदूव॑ध्यमु॒दर॑स्याप॒वाति॒ य आ॒मस्य॑ क्र॒विषो॑ ग॒न्धो अस्ति॑ । सु॒कृ॒ता तच्छ॑मि॒तारः॑ कृण्वन्तू॒त मेधं॑ शृत॒पाकं॑ पचन्तु ॥ ३३ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! (उदरस्य) पेट के कोष्ठ से (यत्) जो (ऊवध्यम्) मलिन मल (अपवाति) निकलता और (यः) जो (आमस्य) न पचे कच्चे (क्रविषः) खाये हुए पदार्थ का (गन्धः) गन्ध (अस्ति) है (तत्) उस को (शमितारः) शान्ति करने अर्थात् आराम देने वाले (सुकृता) अच्छा सिद्ध (कृण्वन्तु) करें (उत) और (मेधम्) पवित्र (शृतपाकम्) जिस का सुन्दर पाक बने उसको (पचन्तु) पकावें ॥ ३३ ॥

भावार्थः-जो लोग यज्ञ करना चाहें वे दुर्गन्धयुक्त पदार्थ को छोड़ सुगन्धि आदि युक्त सुन्दरता से बनाया पाक कर अग्नि में होम करें वे जगत् का हित चाहने वाले होते हैं ॥ ३३ ॥

यत्ते गात्रादित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या निकालना चाहिये इस वि० ॥

यत्ते गात्रा॑द॒ग्निना॑ प॒च्यमा॑नाद॒भि शूलं॒ निह॑तस्याव॒धाव॑ति । मा तद्भूम्यामाश्रि॑ष॒न्मा तृणे॑षु दे॒वेभ्य॒स्तदु॒शद्भ्यो॑ रा॒तम॑स्तु ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (निहतस्य) निश्चय से श्रम किये हुए (ते) तेरे (अग्नि) अन्तःकरणरूप तेज से (पच्यमानात्) पकाये जाते (गात्रात्) अङ्ग से (यत्) जो (शूलम्) शीघ्रबोध का हेतु वचन (अभि, अवधावति) चारों ओर से निकलता है (तत्) वह (भूम्याम्) भूमि पर (मा, आ, श्रिषत्) नहीं आता है तथा (तत्) वह (तृणेषु) तृणों पर (मा) नहीं आता किन्तु वह तो (उशद्भ्यः) सत्पुरुष (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (रातम्) दिया (अस्तु) होवे ॥ ३४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ज्वर आदि से पीड़ित अङ्ग हों उन को वैद्यजनों से नीरोग कराना चाहिये क्योंकि उन वैद्यजनों से जो औषध दिया जाता है वह रोगी जन के लिये हितकारी होता है ॥ ३४ ॥

ये वाजिनमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन रोकने योग्य हैं इस वि० ॥

ये वा॒जिनं॑ परि॒पश्य॑न्ति प॒क्वं य ई॑मा॒हुः सु॑र॒भिर्निर्ह॒रेति॑ । ये चार्व॑तो मा॒ᳫँसभि॒क्षामु॒पास॑त उ॒तो तेषा॑म॒भिगू॑र्त्तिर्न इन्वतु ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(ये) जो (अर्वतः) घोड़े के (मांसभिक्षाम्) मांस के मांगने की (उपासते) उपासना करते (च) और (ये) जो घोड़ा को (ईम्) पाया हुआ मारने योग्य (आहुः) कहते हैं उनको (निः, हर) निरन्तर हरो दूर पहुंचाओ (ये) जो (वाजिनम्) वेगवान् घोड़ों को (पक्वम्) पक्का सिखा के (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (उतो) और (तेषाम्) उन का (सुरभिः) अच्छा सुगन्ध और (अभिगूर्त्तिः) सब ओर से उद्यम (नः) हम लोगों को (इन्वतु) प्राप्त हो उन के अच्छे काम हमको प्राप्त हों (इति) इस प्रकार दूर पहुँचाओ ॥ ३५ ॥

भावार्थः—जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ पुरुषों को रोकने चाहियें जिससे मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ॥ ३५ ॥

यन्नीक्षणमित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर किस को क्या देखना चाहिये इस वि० ॥

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (ते) तेरे (अर्वतः) घोड़े का (निक्रमणम्) निकलना (निषदनम्) बैठना (विवर्त्तनम्) विशेष कर वर्त्ताव (च) और (यत्) जो (पड्वीशम्) पछाड़ी (यत्, च) और जो यह (पपौ) पीता (यत्, च) और जो (घासिम्) घास (जघास) खाता (ता) वे (सर्वा) सब काम युक्ति के साथ हों और यह सब (देवेषु) दिव्य उत्तम गुण वालों में (अपि) भी (अस्तु) होवे ॥ ३८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप घोड़े आदि पशुओं को अच्छी शिक्षा तथा खान पान के देने से अपने सब कामों को सिद्ध किया करो ॥ ३८ ॥

यदश्वायेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराट् पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदश्वाय वासं उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै । सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप (अस्मै) इस (अश्वाय) घोड़े के लिये (यत्) जो (वासः) वस्त्र (अधीवासम्) चारजामा (सन्दानम्) मुहेरा आदि और (या) जिन (हिरण्यानि) सुवर्ण के बनाये हुए आभूषणों को (उपस्तृणन्ति) ढपाते वा जिस (पड्वीशम्) पैरों से प्रवेश करते और (अर्वन्तम्) जाते हुए घोड़े को (आयामयन्ति) अच्छे प्रकार नियम में रखते हैं वे सब पदार्थ और काम (देवेषु) विद्वानों में (प्रिया) प्रीति देने वाले हों ॥ ३९ ॥

भवार्थः—जो मनुष्य घोड़े आदि पशुओं की यथावत् रक्षा करके उपकार लेवें तो बहुत कार्यों की सिद्धि से उपकारयुक्त हों ॥ ३९ ॥

यत्त इत्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद । स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (ते) आप के (सादे) बैठने के स्थान में (महसा)

बड़प्पन से (वा) अथवा (शूकृतस्य) जल्दी सिखाये हुए घोड़े के (कशया) कोड़े से (यत्) जिस कारण (पार्श्व्यां) पशुली आदि स्थान (वा) वा कक्षाओं में जो उत्तम ताड़ना आदि काम वा (तुतोद) साधारण ताड़ना देना (ता) उन सबको (अध्वरेषु) यज्ञों में (हविषः) होमने योग्य पदार्थ सम्बन्धी (स्रुचेव) जैसे स्रुचा प्रेरणा देती वैसे करते हो (ता) वे (सर्वा) सब काम (ते) तेरे लिये (ब्रह्मणा) धन से (सूदयामि) प्राप्त करता हूं ॥ ४० ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे यज्ञ के साधनों से होमने योग्य पदार्थों को प्रेरणा देते हैं वैसे ही घोड़े आदि पशुओं को अच्छी सिखावट की रीति से प्रेरणा देवें ॥४०॥

चतुस्त्रिंशदित्यस्य गोतम ऋषिः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ सम॑ेति । अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥ ४१ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जैसे घुड़चढ़ा चाबुकी जन (देवबन्धोः) जिसके विद्वान् बन्धु के समान उस (वाजिनः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (चतुस्त्रिंशत्) चौंतीस (वङ्क्रीः) टेढ़ी बेंढ़ी चालों को (सम्, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता और (अच्छिद्रा) छेद भेद रहित (गात्रा) अङ्ग और (वयुना) उत्तम ज्ञानों को (कृणोतु) करे वैसे उसके (परुष्परुः) प्रत्येक मर्म स्थान को (अनुघुष्य) अनुकूलता से बजाकर (स्वधितिः) वज्र के समान वर्त्तमान तुम लोग तिनों को (वि, शस्त) विशेषता से छिन्न भिन्न करो ॥ ४१ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! जैसे घोड़ों को सिखाने वाला चतुर जन चौंतीस चित्र विचित्र गतियों को घोड़े को पहुंचाता और वैद्य जन प्राणियों को नीरोग करता है वैसे ही और पशुओं की रक्षा से उन्नति करना चाहिये ॥ ४१ ॥

एकस्त्वष्टुरित्यस्य गोतम ऋषिः । यजमानो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर किस प्रकार पशु सिखाने चाहियें इस वि० ॥

एक॒स्त्वष्टु॒रश्व॑स्या विश॒स्ता द्वा य॒न्तारा॑ भवत॒स्तथ॑ऽऋ॒तुः । या ते॒ गात्रा॑णामृतु॒था कृ॒णोमि॒ ताता॒ पिण्डा॑नां॒ प्र जु॑होम्य॒ग्नौ ॥ ४२ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जैसे (एकः) अकेला (ऋतुः) वसन्त आदि ऋतु (त्वष्टुः)

शोभायमान (अश्वस्य) घोड़े का (विशस्ता) विशेष करके रूपादि का भेद करने वाला होता है वा जो (द्वा) दो (यन्तारा) नियम करने वाले (भवतः) होते हैं (तथा) वैसे (या) जिन (ते) तुम्हारे (गात्राणाम्) अङ्गों वा (पिण्डानाम्) पिण्डों के (ऋतुथा) ऋतुसम्बन्धी पदार्थों को मैं (कृणोमि) करता हूं (ताता) उन २ को (अग्नौ) आग में (प्र, जुहोमि) होमता हूं ॥ ४२ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे घोड़ों के सिखाने वाले ऋतु २ के प्रति घोड़ों को अच्छा सिखलाते हैं वैसे गुरुजन विद्यार्थियों को क्रिया करना सिखलाते हैं वा जैसे अग्नि में पिण्डों का होम कर पवन की शुद्धि करते हैं वैसे विद्यारूपी अग्नि में अविद्यारूप भ्रमों को होम के आत्माओं की शुद्धि करते हैं ॥ ४२ ॥

मात्वेत्यस्य गोतम ऋषिः। आत्मा देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को आत्मादि पदार्थ कैसे शुद्ध करने चाहियें इस वि० ॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ ४३ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! (ते) आपका जो (प्रियः) प्रीति वा आनन्द देने वाला वह (आत्मा) अपना निजरूप आत्मतत्त्व भी (अपियन्तम्) निश्चय से प्राप्त होते हुए (त्वा) आपको (अतिहाय) अतीव छोड़ के (मा, तपत्) मत संताप को प्राप्त हो (स्वधितिः) वज्र (ते) आप के (तन्वः) शरीर के बीच (मा, तिष्ठिपत्) मत स्थित करावे आपके (छिद्रा) छिन्न भिन्न (गात्राणि) अङ्गों को (अविशस्ता) विशेष न काटने और (गृध्नुः) चाहने वाला जन (मा) मत स्थित करावे तथा (असिना) तलवार से (मिथू) परस्पर मत (कः) चेष्टा करे ॥ ४३ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि अपने २ आत्मा को शोक में न डाले किसी के भी ऊपर वज्र न छोड़ और किसी का उपकार किया हुआ न नष्ट किया करे ॥ ४३ ॥

न वा इत्यस्य गोतम ऋषिः। आत्मा देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसे रथ निर्माण करने चाहियें इस वि० ॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२॥ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ ४४ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! यदि (एतत्) इस पूर्वोक्त विज्ञान को पाते हो तो (न) न तुम (म्रियसे) मरते (न) न (वै) ही (रिष्यसि) मारते हो किन्तु (सुगेभिः) सुगम (पथिभिः) मार्गों से (देवान्) विद्वानों (इत्) ही को (एषि) प्राप्त होते हो यदि (ते) आप के (पृषती) स्थूल शरीरयुक्त (युञ्जा) योग करने हारे घोड़े (हरी) पहुंचाने वाले (अभूताम्) हों (उ) तो (वाजी) वेगवान् एक घोड़ा (रासभस्य) अश्वजाति से सम्बन्ध रखने वाले खिच्चर की (धुरि) धारणा के निमित्त (उप, अस्थात्) उपस्थित हो ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जैसे विद्या से अच्छे प्रकार जिनका प्रयोग किया उन पवन, जल और अग्नि से युक्त रथ में स्थित होके मार्गों को सुख से जाते हैं वैसे ही आत्मज्ञान से अपने स्वरूप को नित्य जान के मरण और हिंसा के डर को छोड़ दिव्य सुखों को प्राप्त हों ॥ ४४ ॥

सुगव्यमित्यस्य गोतम ऋषिः । प्रजा देवता । स्वराट् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

किनसे राज्य की उन्नति होवे इस वि० ॥

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ२॥ उत विश्वापुषꣳ रयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳहविष्मान् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—जो (नः) हमारा (वाजी) घोड़ा (सुगव्यम्) सुन्दर गौओं के लिये सुखस्वरूप (स्वश्व्यम्) अच्छे घोड़ों में प्रसिद्ध हुए काम को करता है वा जो विद्वान् (पुंसः) पुरुषपन से युक्त पुरुषार्थी (पुत्रान्) पुत्रों (उत) और (विश्वापुषम्) समग्र पुष्टि करने वाले (रयिम्) धन को प्राप्त होता वा जैसे (अदितिः) कारणरूप से अविनाशी भूमि (नः) हमारे लिये (अनागास्त्वम्) अपराधरहित होने को करती है वैसे आप (कृणोतु) करें वा जैसे (हविष्मान्) प्रशंसित सुख देने जिसमें हैं वह (अश्वः) व्याप्तिशील प्राणी (नः) हम लोगों के (क्षत्रम्) राज्य को (वनताम्) सेवे वैसे आप सेवा किया करो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघ वीर्य्य पुरुषार्थ से धन पाये हुए न्याय से राज्य की उन्नति देवें वे सुखी होवें ॥ ४५ ॥

इमानुकमित्यस्य गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन धनवान् होते हैं इस वि० ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः । आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत् । यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (च) और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (च) भी (इमा) इन समस्त (भुवना) लोकों को धारण करते हैं वैसे हम लोग (कम्) सुख को (नु) शीघ्र (सीषधाम) सिद्ध करें वा जैसे (सगणः) अपने सहचारी आदि गणों के साथ वर्त्तमान (इन्द्रः) सूर्य (आदित्यैः) महीनों के साथ वर्तमान समस्त लोकों को प्रकाशित करता वैसे (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ वैद्यजन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (भेषजा) ओषधियां (करत्) करें जैसे (आदित्यैः) उत्तम विद्वानों के (सह) साथ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सभापति (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि उत्तम काम (च) और (तन्वम्) शरीर (च) और (प्रजाम्) सन्तान आदि को (च) भी (सीषधाति) सिद्ध करे वैसे हम लोग सिद्ध करें ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस में वाचकलु०-जो मनुष्य सूर्य के तुल्य नियम से वर्त्ताव रख के शरीर को नीरोग और आत्मा को विद्वान् बना तथा पूर्ण ब्रह्मचर्य कर स्वयंवरविधि से हृदय को प्यारी स्त्री को स्वीकार कर उस में सन्तानों को उत्पन्न कर और अच्छी शिक्षा देके विद्वान् करते हैं वे धनपति होते हैं ॥ ४६ ॥

अग्ने त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस वि० ॥

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिन्दाः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) वेदवेत्ता पढ़ाने और उपदेश करने हारे विद्वान् आप (अग्निः) अग्नि के समान (नः) हम लोगों के (अन्तमः) समीपस्थ (त्राता) रक्षा करने वाले (शिवः) कल्याणकारी (उत) और (वरूथ्यः) घरों में उत्तम (वसुश्रवाः) जिन के श्रवण में बहुत धन और (वसुः) विद्याओं में वसाने हारे हो ऐसे (भव) हूजिये जो (द्युमत्तमम्) अतीव प्रकाशमान (रयिम्) धन हम लोगों के लिये (अच्छ, दाः) भली भांति देओ तथा हम को (नक्षि) प्राप्त होते हो सो (त्वम्) आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ॥ ४७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब के उपकारी वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता अध्यापक उपदेशक विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे सत्कार को प्राप्त हुए विद्वान् लोग सब के लिये उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देवें जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े २ सुखों का लाभ होवे ॥ ४७ ॥

तन्त्वेत्यस्य गोतम ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को इस जगत् में कैसे वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सु॒म्नाय॑ नू॒नमी॑महे॒ सखि॑भ्यः । स नो॑ बोधि श्रु॒धी हव॑मुरु॒ष्या णो॑ अघाय॒तः स॑मस्मात् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) उत्तम गुणों से प्रकाशमान (दीदिवः) विद्यादि गुणों से शोभायुक्त विद्वन् जो आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध कराते (तम्) उन (त्वा) आप को (सुम्नाय) सुख और (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (नूनम्) निश्चय से हम लोग (ईमहे) याचते हैं (सः) सो आप (नः) हम लोगों के (हवम्) पुकारने को (श्रुधी) सुनिये और (समस्मात्) अधर्म के तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले (अघायतः) आत्मा के अपराध का आचरण करते हुए दुष्ट डाकू चोर लंपट से हमारी (उरुष्य) रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥

भावार्थः—विद्यार्थी लोग पढ़ाने वालों के प्रति ऐसे कहें कि आप जो हम लोगों ने पढ़ा है उस की परीक्षा लीजिये और हम को दुष्ट आचरण से पृथक् रखिये जिस से हम लोग सब के साथ मित्र के समान वर्त्ताव रक्खें ॥ ४८ ॥

इस अध्याय में संसार के पदार्थों के गुणों का वर्णन, पशु आदि प्राणियों को सिखलाना पालना, अपने अङ्गों की रक्षा, परमेश्वर की प्रार्थना, यज्ञ की प्रशंसा, बुद्धि का देना, धर्म में इच्छा, घोड़े के गुण कहना, उसकी चाल आदि सिखलाना, आत्मा का ज्ञान और धन की प्राप्ति होने का विधान कहा है इस से इस अध्याय में कहे अर्थ की पिछले अध्याय में कहे हुए अर्थ के साथ एकता जाननी चाहिये ॥

यह पचीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ षड्विंशोऽध्याय आरभ्यते

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

अग्निश्चेत्यस्य याज्ञवल्क्य ऋषिः। अग्न्यादयो देवताः। अभिकृतिश्छन्दः।

ऋषभः स्वरः ॥

अब छब्बीसवें अध्याय का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को तत्वों से यथावत् उपकार लेने चाहियें इस विषय का वर्णन किया है ॥

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सन्नमतामदो वायुश्चान्तरिक्षं च सन्नते ते मे सन्नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सन्नमतामद आपश्च वरुणश्च सन्नते ते मे सन्नमतामदः। सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी। सकामाँ२॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो जैसे (मे) मेरे लिये (अग्निः) अग्नि (च) और (पृथिवी) भूमि (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (वायुः) पवन (च) और (अन्तरिक्षम्) आकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे लिये (आदित्यः) सूर्य (च) और (द्यौः) उसका प्रकाश (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे (अदः) इसको (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (मे) मेरे अर्थ (आपः) जल (च) और (वरुणः) जल जिसका अवयव है वह (च) भी (सन्नते) अनुकूल हैं (ते) वे दोनों (अदः) इस को (सन्नमताम्) अनुकूल करें जो (अष्टमी) आठमी (भूतसाधनी) प्राणियों के कार्य्यों को सिद्ध करने हारी वा (सप्त) सात (संसदः)

वे सभा जिन में अच्छे प्रकार स्थिर होते (सकामान्) समान कामना वाले (अध्वनः) मार्गों को करे वैसे तुम (कुरु) करो (अमुना) इस प्रकार से (मे) मेरे लिये (संज्ञानम्) उत्तम ज्ञान (अस्तु) प्राप्त होवे वैसे ही यह सब तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि अग्नि आदि पंचतत्त्वों को यथावत् जान के कोई उन का प्रयोग करे तो वे वर्त्तमान इस अत्युत्तम सुख की प्राप्ति कराते हैं ॥ १ ॥

यथेमामित्यस्य लौगाक्षिर्ऋषिः । ईश्वरो देवता । स्वराडत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर सब मनुष्यों के लिये वेद के पढ़ने और सुनने का अधिकार देता है इस वि० ॥

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) और उत्तम लक्षणयुक्त प्राप्त हुए अन्त्यज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमाम्) इस प्रकट कीहुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेदरूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें । जैसे मैं (दातुः) दान वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर पियारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयम्) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मा) मुझे (अदः) वह परोक्ष सुख (उप, नमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेदरूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैंने उपदेश की है इस में किसी को अनधिकार नहीं है जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्त्तमान हुआ पियारा हूं वैसे आप भी होओ । ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे ॥ २ ॥

बृहस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर वह ईश्वर क्या करता है इस वि० ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े २ प्रकृति आदि पदार्थों और जीवों के पालने हारे ईश्वर जो आप (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए यम नियमादि योग साधनों से जाने गये (असि) हैं उन आप को (बृहस्पतये) बड़ी वेद वाणी की पालना के लिये तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) प्रमाण है उन (बृहस्पतये) बड़े बड़े आप्त विद्वानों की पालना करने वाले के लिये (त्वा) आप को हम लोग स्वीकार करते हैं । हे भगवन् (ऋतप्रजात) जिनसे सत्य उत्तमता से उत्पन्न हुआ है (अर्यः) परमात्मा आप (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य काम से (यत्) जो (द्युमत्) प्रशंसित प्रकाशयुक्त मन (क्रतुमत्) वा प्रशंसित बुद्धि और कर्मयुक्त मन (अति विभाति) विशेष कर प्रकाशमान है वा (यत्) जो (शवसा) बल से (दीदयत्) प्रकाशित होता हुआ वर्त्तमान है (तत्) उस (चित्रम्) आश्चर्यरूप ज्ञान (द्रविणम्) धन और यश को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) धारण स्थापन कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिससे बड़ा दयावान् न्यायकारी और अत्यन्त सूक्ष्म कोई भी पदार्थ नहीं वा जिसने वेद प्रकट करने द्वारा सब मनुष्य सुशोभित किये वा जिस ने अद्भुत ज्ञान और धन जगत् में विस्तृत किया और जो योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य है वही ईश्वर हम सब लोगों को अति उपासना करने योग्य है यह तुम जानो ॥ ३ ॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) जिस की सैकड़ों प्रकार की बुद्धि और (गोमन्) प्रशंसित वाणी है सो ऐसे हे (इन्द्र) विद्वन् पुरुष आप (आ, याहि) आइये (इह) इस संसार में (विद्यद्भिः) विद्यमान (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमवल्ली आदि ओषधियों के रस को (पिब) पिओ जिस से आप (उपयामगृहीतः)

यमनियमों से इन्द्रियों को ग्रहण किये अर्थात् इन्द्रियों को जीते हुए (असि) हो इसलिये (गोमते) प्रशस्त पृथिवी के राज्य से युक्त पुरुष के लिये और (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्य के लिये (त्वा) आप को और जिन (ते) आपका (एषः) यह (योनिः) निमित्त है उस (गोमते) प्रशंसित वाणी और (इन्द्राय) प्रशंसित ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिये (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो वैद्यकशास्त्र विद्या से और सिद्ध मेघों से उत्पन्न हुई ओषधियों का सेवन और योगाभ्यास करते हैं वे सुख तथा ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥ ४ ॥

इन्द्रेत्यस्य रम्याक्षी ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रायाहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि और कर्मयुक्त (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् आप (गोमद्भिः) जिन में बहुत चमकती हुई किरणें विद्यमान उन पदार्थों और (ग्रावभिः) गर्जनाओं से गर्जते हुए मेघों के साथ (आ, याहि) आइये और (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य करने हारे रस को (पिब) पीओ जिस कारण आप (गोमते) बहुत दूध देती हुई गौओं से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से आत्मा को ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आपको तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (गोमते) प्रशंसित भूमि के राज्य से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्य चाहने वाले के लिये (योनिः) घर है उन (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्य ! जैसे मेघहन्ता सूर्य सब जगत् से रस पी के और वर्षा के सब जगत् को प्रसन्न करता है वैसे ही तू बड़ी २ ओषधियों के रस को पी तथा ऐश्वर्य की उन्नति के लिये अच्छे प्रकार यत्न किया कर ॥ ५ ॥

ऋतावानमित्यस्य शादुराक्षिर्ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं घर्ममीमहे ।

उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऋतावानम्) जो जल का सेवन करता उस (वैश्वानरम्) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (ऋतस्य) जल और (ज्योतिषः) प्रकाश की (पतिम्) पालना करने हारे (घर्मम्) प्रताप को (अजस्रम्) निरन्तर (ईमहे) मांगते हैं वैसे तुम इस को मांगो जो आप (वैश्वानराय) संसार के नायक के लिये (उपयामगृहीतः) अच्छे नियमों से मन को जीते हुये (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को (वैश्वानराय) समस्त संसार के हित के लिये सत्कारयुक्त करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जो अग्नि जल आदि मूर्तिमान् पदार्थों को अपने तेज से छिन्न भिन्न करता और निरन्तर जल खींचता है उस को जान के मनुष्य सब ऋतुओं में सुख करनेहारे घर को पूर्ण करें बनावें ॥ ६ ॥

वैश्वानरस्येत्यस्य कुत्सऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—हम लोग जैसे (राजा) प्रकाशमान (भुवनानाम्) लोकों के बीच (अभिश्रीः) सब ओर से ऐश्वर्य की शोभा से युक्त सूर्य (कम्) सुख को (हि) ही सिद्ध करता है और (इतः) इस कारण (जातः) प्रसिद्ध हुआ (इदम्) इस (विश्वम्) विश्व को (वि, चष्टे) प्रकाशित करता है वा जैसे (सूर्येण) सूर्य के साथ (वैश्वानरः) बिजुली रूप अग्नि (यतते) यत्नवान् है वैसे हम लोग (वैश्वानरस्य) संसार के नायक परमेश्वर वा उत्तम सभापति की (सुमतौ) अति उत्तम देश काल को जानने हारी कपट छलादि दोष रहित बुद्धि में (स्याम) होवें हे विद्वान् जिससे आप (उपयामगृहीतः) सुन्दर नियमों से स्वीकृत (असि) हैं इससे (वैश्वानराय) अग्नि के लिये (त्वा) आपको तथा जिस से (ते) आप का (एषः) यह (योनिः) घर है उन (त्वा) आप को भी (वैश्वानराय) अग्नि सम्बन्धी कार्य साधने के लिये सत्कार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः-जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्रि को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥ ७ ॥

वैश्वानर इत्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर मनुष्य किस के समान क्या करें इस वि० ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः-जैसे (वैश्वानरः) समस्त नायक जनों में प्रकाशमान विद्वान् (परावतः) दूर से (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ, प्र, यातु) अच्छे प्रकार आवे वैसे (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य (उक्थेन) प्रशंसा करने योग्य (वाहसा) व्यवहार के साथ प्राप्त हो जो आप (वैश्वानराय) प्रकाशमान के लिये (उपयामगृहीतः) विद्या के विचार से युक्त (असि) हैं उन (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह घर (वैश्वानराय) समस्त नायकों में उत्तम के लिये (योनिः) है उन (त्वा) आप को भी हम लोग स्वीकार करें ॥ ८ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य दूर देश से अपने प्रकाश से दूरस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वान् जन अपने सुन्दर उपदेश से दूरस्थ जिज्ञासुओं को प्रकाशित करते हैं ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य कुत्स ऋषिः । वैश्वानरो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर किन को किससे क्या मांगना चाहिये इस वि० ॥

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जो (पाञ्चजन्यः) पांच जनों वा प्राणों की क्रिया में उत्तम (पुरोहितः) पहिले हित करने द्वारा (पवमानः) पवित्र (ऋषिः) मन्त्रार्थवेत्ता और (अग्निः) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित है (तम्) उस (महागयम्) बड़े २ घर सन्तान वा धन वाले को जैसे हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप (वर्चसे) पढ़ाने हारे और (अग्नये) विद्वान् के लिये (उपयामगृहीतः) समीप के नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं इस से (त्वा) आप को तथा जिन (ते) आप का (एषः)

यह (योनिः) निमित्त (वर्चसे) विद्याप्रकाश और (अग्नये) विद्वान् के लिये है उन (त्वा) आप की हम लोग प्रार्थना करते हैं वैसे तुम भी चेष्टा करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि वेदवेत्ता विद्वानों से सदा विद्याप्राप्ति की प्रार्थना किया करें जिससे वे सब मनुष्य महत्व को प्राप्त होवें ॥ ९ ॥

महानित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ राजा के सत्कार वि० ॥

म॒हाँ२॥ इन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षोड॒शी शर्म॑ यच्छतु हन्तु॑ पा॒प्मानं॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑ । उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒हेन्द्रा॑य॒ त्वैष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्रा॑य॒ त्वा ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (वज्रहस्तः) जिस के हाथों में वज्र (षोडशी) सोलह कला-युक्त (महान्) बड़ा (इन्द्रः) और परम ऐश्वर्यवान् राजा (शर्म) जिसमें दुःख विनाश को प्राप्त होते हैं उस घर को (यच्छतु) देवे (यः) जो (अस्मान्) हम लोगों को (द्वेष्टि) वैरभाव व चाहता उस (पाप्मानम्) पापात्मा खोटे कर्म करने वाले को (हन्तु) मारे। जो आप (महेन्द्राय) बड़े २ गुणों से युक्त के लिये (उपयामगृहीतः) प्राप्त हुए नियमों से ग्रहण किये हुए (असि) हैं उन (त्वा) आप की तथा जिन (ते) आप का (एषः) यह (महेन्द्राय) उत्तम गुण वाले के लिये (योनिः) निमित्त है उन (त्वा) आप का भी हम लोग सत्कार करें ॥ १० ॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सदा सत्कार करने योग्य है ॥ १० ॥

तं व इत्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजा क्या करे इस वि० ॥

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः । अ॒भि व॒त्सं न स्वस॑रेषु धे॒नव॒ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (स्वसरेषु) दिनों में (धेनवः) गौएं (वत्सम्) जैसे बछड़े को (न) वैसे जिस (दस्मम्) दुःखविनाशक (ऋतीषहम्) चाल को सहने वाले (वसोः) धन और (अन्धसः) अन्न के (मन्दानम्) आनन्द को पाए हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् सभापति की (वः) तुम्हारे लिये (गीर्भिः) वाणियों से (अभि, नवामहे) सब ओर से स्तुति करते हैं वैसे ही (तम्) उस सभापति को आप लोग भी सदा प्रीतिभाव से स्तुति कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०-जैसे गौएं प्रतिदिन अपने २ बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा की नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करे ॥ ११ ॥

यद्वाहिष्ठमित्यस्य नोधा गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर वह रानी क्या करे इस वि० ॥

यद्वाहिष्ठन्तद॒ग्नये॑ बृ॒हद॑र्च विभावसो । महि॑षीव॒ त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ उदी॑रते ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (विभावसो) प्रकाशित धन वाले विद्वन् ! (अग्नये) अग्नि के लिये (यत्) जो (बृहत्) बड़ा और (वहिष्ठम्) अत्यन्त पहुंचाने हारा है उस का (अर्च) सत्कार करो (तत्) उसका हम भी सत्कार करें (महिषीव) और रानी के समान (त्वत्) तुम से (रयिः) धन और (त्वत्) तुम से (वाजाः) अन्न आदि पदार्थ (उत, ईरते) भी प्राप्त होते हैं उन आपका हम लोग सत्कार करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप से सब लोग धन और अन्य उत्तम २ वस्तुओं को पावें ॥ १२ ॥

एह्यूष्वित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

एह्यू॒षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिरः॑ । ए॒भिर्व॑र्द्धास॒ इन्दु॑भिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशित बुद्धि वाले विद्वन् ! मैं (इत्था) इस हेतु से (ते) आप के लिये (इतराः) जिन को तुम ने नहीं जाना है उन (गिरः) वाणियों का (सु, ब्रवाणि) सुंदर प्रकार से उपदेश करूं कि जिससे आप इन वाणियों को (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (उ) और (एभिः) इन (इन्दुभिः) जलादि पदार्थों से (वर्द्धासे) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—जिस शिक्षा से विद्यार्थी लोग विज्ञान से बढ़ें उसी शिक्षा का विद्वान् लोग उपदेश किया करें ॥ १३ ॥

ऋतव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । संवत्सरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । निषादः स्वरः ।

फिर उसी वि० ॥

ऋ॒तव॑स्ते य॒ज्ञं वित॑न्वन्तु॒ मासा॑ रक्षन्तु॒ ते ह॒विः । सं॒व॒त्स॒रस्ते॑ य॒ज्ञं द॑धातु नः प्र॒जां च॒ परि॑पातु नः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (ते) आप के (यज्ञम्) सत्कार आदि व्यवहार को (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (वि, तन्वन्तु) विस्तृत करें (ते) आप के (हविः) होमने योग्य वस्तु की (मासाः) कार्त्तिक आदि महीने (रक्षन्तु) रक्षा करें (ते) आप के (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हमारा (संवत्सरः) वर्ष (दधातु) पुष्ट करे (च) और (नः) हमारी (प्रजां) प्रजा की (परि, पातु) सब ओर से आप रक्षा करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्यावर्द्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥ १४ ॥

उपह्वर इत्यस्य वत्स ऋषिः । विद्वान् देवता । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उपह्वरे गिरीणाᳬ सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ॥१५॥

पदार्थः—जो मनुष्य (गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) निकट (च) और (नदीनाम्) नदियों के (सङ्गमे) मेल में योगाभ्यास से ईश्वर की और विचार से विद्या की उपासना करे वह (धिया) उत्तम बुद्धि वा कर्म से युक्त (विप्रः) विचारशील बुद्धिमान् (अजायत) होता है ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग एढ़ के एकान्त में विचार करते हैं वे योगियों के तुल्य उत्तम बुद्धिमान् होते हैं ॥ १५ ॥

उच्चेत्यस्य महीयव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्याददे । उग्रᳬ शर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥

पदार्थः—विद्वन्! मैं (ते) आप के जिस (उच्चा) ऊंचे (अन्धसः) अन्न से (जातम्) प्रसिद्ध हुए (दिवि) प्रकाश में (सत्) वर्त्तमान (उग्रम्) उत्तम (महि) बड़े (श्रवः) प्रशंसा के योग्य (शर्म) घर को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं वह (भूमि) पृथिवी के तुल्य दृढ़ हो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य का प्रकाश और वायु जिस में पहुंचा करे ऐसे अन्नादि से युक्त बड़े ऊंचे घरों को बनाके उन में बसने से सुख भोगें ॥ १६ ॥

स न इत्यस्य महीयव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स नं इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः। वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (सः) सो (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (नः) हमारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य की (यज्यवे) संगति और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये (वरिवोवित्) सेवा कर्म को जानते हुए आप (परिस्रव) सब ओर से प्राप्त हुआ करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—जिस विद्वान् ने जितना सामर्थ्य प्राप्त किया है उसको चाहिये कि उस सामर्थ्य से सब का सुख बढ़ाया करे ॥ १७ ॥

एनेत्यस्य महीयव ऋषिः। विद्वान् देवता। स्वराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये इस वि० ॥

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्। सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो (अर्यः) ईश्वर (मानुषाणाम्) मनुष्यों को (एना) इन (विश्वानि) सब (द्युम्नानि) शोभायमान कीर्त्तियों की शिक्षा करता है उसकी (सिषासन्तः) सेवा करने की इच्छा करते हुए हम लोग (आ, वनामहे) सुखों को मांगते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिये धनों, वेदों और खाने पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसी की उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिये ॥१८॥

अनुवीरैरित्यस्य मुद्गल ऋषिः। विद्वांसो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः। अनु द्विपदाऽनु चतुष्पदा वयन्देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो! जैसे (वयम्) हम लोग (पुष्टैः) पुष्ट (वीरैः) प्रशस्त बल वाले वीर पुरुषों की (अनु, पुष्यास्म) पुष्टि से पुष्ट हों। बलवती (गोभिः) गौओं की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों। बलवान् (अश्वैः) घोड़े आदि की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (सर्वेण) सब की पुष्टि से (अनु) पुष्ट हों (द्विपदा) दो पग वाले मनुष्य आदि

प्राणियों की पुष्टि से (ऋतु) पुष्ट हों और (चतुष्पदा) चार पग वाले गौ आदि की (ऋतु) पुष्टि से पुष्ट हों वैसे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (यज्ञम्) धर्मयुक्त व्यवहार को (ऋतुथा) ऋतुओं से (नयन्तु) प्राप्त करें ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वीरपुरुषों और पशुओं को अच्छे प्रकार पुष्ट करके पश्चात् आप पुष्ट हों। और सदा वसन्तादि ऋतुओं के अनुकूल व्यवहार किया करें ॥१९॥

अग्न इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥
सन्तान कैसे उत्तम हों इस वि० ॥

अग्ने॒ पत्नी॑रि॒हा व॑ह दे॒वाना॑मुश॒तीरुप॑। त्वष्टा॑रꣳ सोम॑पीतये ॥२०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्यापिके! तू (इह) इस गृहाश्रम में अपने तुल्य गुण वाले पतियों वा (उशतीः) कामनायुक्त (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्रियों को और (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों के रस को पीने के लिये (त्वष्टारम्) तेजस्वी पुरुष को (उप, आ, वह) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त कर वा करें ॥ २० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य कन्याओं को अच्छी शिक्षा दे विदुषी बना और स्वयंवर से प्रिय पतियों को प्राप्त करा के प्रेम से सन्तानों को उत्पन्न करावें तो वे सन्तान अत्यन्त प्रशंसित होते हैं ॥ २० ॥

अभीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। विद्वान् देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥
कौन विद्वान् हों इस वि० ॥

अ॒भि य॒ज्ञं गृ॑णीहि नो॒ ग्नावो॒ नेष्टः॒ पिब॑ ऋ॒तुना॑। त्वꣳहि र॑त्न॒धा असि॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (ग्नावः) प्रशस्त वाणी वाले (नेष्टः) नायक जन आप (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतु के साथ (नः) हमारे (यज्ञम्) उत्तम व्यवहार की (अभि, गृणीहि) सन्मुख स्तुति कीजिये जिस कारण (त्वं, हि) तुम ही (रत्नधाः) प्रसन्नता के हेतु वस्तु के धारणकर्त्ता (असि) हो इससे उत्तम ओषधियों के रसों को (पिब) पी ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो अच्छी शिक्षा को प्राप्त वाणी के संगत व्यवहार को जानने की इच्छा करें वे विद्वान् होवें ॥ २१ ॥

द्रविणोदा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर विद्वान् मनुष्यों को क्या चाहिये इस वि० ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोदाः) धन वा यश का देने वाला जन (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (नेष्ट्रात्) विनय से रस को (पिपीषति) पिया चाहता है वैसे तुम लोग रस को (इष्यत) प्राप्त होओ (जुहोत) ग्रहण वा हवन करो (च) और (प्र, तिष्ठत) प्रतिष्ठा को प्राप्त होओ ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जैसे उत्तम वैद्य सुन्दर पथ्य भोजन और उत्तम विद्या से आप रोगरहित हुए दूसरों को रोगों से पृथक् कर के प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही तुम लोगों को भी आचरण करना अवश्य चाहिये ॥ २२ ॥

तवायमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ॥

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तवायꣳ सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा वाले विद्वन् ! जो (तव) आप का (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य का योग है उस को (त्वम्) आप (आ, इहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (सुमनाः) धर्म कार्यों में प्रसन्नचित्त (अर्वाङ्) सन्मुख प्राप्त हुए (अस्य) इस अपने आत्मा के (शश्वत्तमम्) अधिकतर अनादि धर्म की (पाहि) रक्षा कीजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम (यज्ञे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थित हो के (जठरे) जाठराग्नि में (इमम्) इस प्रत्यक्ष (इन्दुम्) रोगनाशक ओषधियों के रस को (आ, दधिष्व) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—विद्वान् लोग सब के साथ सदा सन्मुखता को प्राप्त होके प्रसन्नचित्त हुए सनातन धर्म तथा विज्ञान का उपदेश किया करें, पथ्य अन्न आदि का भोजन करें और सदा पुरुषार्थ में प्रवृत्त रहें ॥ २३ ॥

अमेवेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । विद्वान् देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

११८

अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ आ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन ।
अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णो अन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥२४॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) तेजस्वि विद्वन् ! (जुजुषाणः) प्रसन्नचित्त गुरु आदि की सेवा करते हुए (सुमद्गणः) सुन्दर प्रसन्न मण्डली वाले आप (देवेभिः) उत्तम गुण (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्नादि उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में (मदस्व) आनन्दित हूजिये (अथ) इस के अनन्तर (अमेव) उत्तम घर के तुल्य औरों को आनन्दित कीजिये । हे विद्वान् लोगो ! (सुहवाः) सुन्दर प्रकार बुलाने हारे तुम लोग उत्तम घर के समान (बर्हिषीः) उत्तम व्यवहार में (नः) हम को (आ, गन्तन) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये । इस स्थान में (हि) निश्चित होकर (नि, सदतन) निरन्तर बैठिये और (रणिष्टन) अच्छा उपदेश कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-जो आप उत्तम व्यवहार में स्थित हो के औरों को स्थित करें वे सदा आनन्दित हों । स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं ॥ २४ ॥

स्वादिष्ठयेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या । इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त विद्वन् ! आप जो (इन्द्राय) संपत्ति की (पातवे) रक्षा करने के लिये (सुतः) निकाला हुआ उत्तम रस है उस को (स्वादिष्ठया) अतिस्वादयुक्त (मदिष्ठया) अतिआनन्द देने वाली (धारया) धारण करनेहारी क्रिया से (पवस्व) पवित्र हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य सब रोगों के नाशक आनन्द देने वाले ओषधियों के रस को पी के अपने शरीर और आत्मा को पवित्र करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥ २५ ॥

रक्षोहेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

र॒क्षो॒हा वि॒श्वच॑र्षणिर॒भि योनि॒मयो॑हते । द्रोणे॑ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥ २६ ॥

पदार्थः—जो (रक्षोहा) दुष्ट प्राणियों को मारने हारा (विश्वचर्षणिः) सब संसार

का प्रकाशक विद्वान् (अपोहते) सुवर्ण से प्राप्त हुए (द्रोणे) वीस सेर अन्न रखने के पात्र में (सधस्थम्) समान स्थिति वाले (योनिम्) घर में (अभि, आ, असदत्) अच्छे प्रकार स्थित होवे वह संपूर्ण सुख को प्राप्त होवे ॥ २६ ॥

भावार्थः–जो अविद्या अज्ञान के नाशक विज्ञान के प्रकाशक सब ऋतुओं में सुख-कारी सुवर्ण आदि से युक्त घरों में बैठ के विचार करें वे सुखी होते हैं ॥ २६ ॥

इस अध्याय में पुरुषार्थ के फल, सब मनुष्यों को वेद पढ़ने सुनने का अधिकार, परमेश्वर विद्वान् और सत्य का निरूपण, अग्न्यादि पदार्थ, यज्ञ, सुन्दर घरों का बनाना और उत्तम स्थान में स्थिति आदि कही है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ सप्तविंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

समा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सत्ताईसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मंत्र में आप्तों को कैसा आचरण करना चाहिये इस वि० ॥

समा॑स्त्वाऽग्न ऋ॒तवो॑ वर्द्धयन्तु संवत्स॒रा ऋष॑यो॒ यानि॑ स॒त्या । सं दि॒व्येन॑ दीदिहि रोच॒नेन॒ विश्वा॒ आ भा॑हि प्र॒दिश॒श्चत॑स्रः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (समाः) वर्ष (ऋतवः) शरद् आदि ऋतु (संवत्सराः) प्रभवादि संवत्सर (ऋषयः) मंत्रों के अर्थ जानने वाले विद्वान् और (यानि) जो (सत्या) सत्य कर्म हैं वे (त्वा) आप को (वर्द्धयन्तु) बढ़ावें । जैसे अग्नि (दिव्येन) शुद्ध (रोचनेन) प्रकाश से (विश्वाः) सब (प्रदिशः) उत्तमगुणयुक्त (चतस्रः) चारदि-शाओं को प्रकाशित करता है वैसे विद्या की (सं, दीदिहि) सुन्दर प्रकार कामना कीजिये और न्याययुक्त धर्म का (आ, भाहि) अच्छे प्रकार प्रकाश कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—आप्तपुरुषों को चाहिये कि सब काल में सत्य विद्या और उत्तम कामों का उपदेश करके सब शरीरधारियों के आरोग्य, पुष्टि, विद्या और सुशीलता को बढ़ावें जैसे सूर्य अपने सन्मुख के पदार्थों को प्रकाशित करता है वैसे सब मनुष्यों को शिक्षा से सदैव आनन्दित किया करें ॥ १ ॥

सं चेत्यस्याग्निर्ऋषिः । सामिधेन्यो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वानों को ही उत्तम अधिकार पर नियुक्त करना चाहिये इस वि० ॥

सं चे॒ध्यस्वा॑ग्ने॒ प्र च॑ बोधयै॒नमुच्च॑ तिष्ठ मह॒ते सौभ॑गाय । मा च॑ रिषदुपस॒त्ता ते॑ अग्ने ब्र॒ह्माण॑स्ते य॒शस॑: सन्तु॒ माऽन्ये ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन्! आप (सम्, इध्यस्व) अच्छे प्रका॰ प्रकाशित हूजिये (च) और (एनम्) इस जिज्ञासु जन को (प्रबोधय) अच्छा बोध कराइये (च) और (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य होने के लिये (उत, तिष्ठ) उद्यत हूजिये तथा (उपसत्ता) समीप बैठने वाले आप सौभाग्य को (मा, रिषत्) मत बिगाड़िये । हे (अग्ने) तेजस्वि जन ! (ते) आप के (ब्रह्माणः) चारों वेद के जानने वाले (अन्ये) भिन्न बुद्धि वाले (च) भी (मा, सन्तु) न हो जावें (च) और (ते) आप अपने (यशसः) यश कीर्त्ति की उन्नति को न बिगाड़िये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु॰—जो विद्वानों से भिन्न इतर जनों को उत्तम अधिकार में नहीं युक्त करते, सदा उन्नति के लिये प्रयत्न करते और अन्याय से किसी को नहीं मारते हैं वे कीर्त्ति और ऐश्वर्य से युक्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

त्वामित्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

जिज्ञासु लोगों को क्या करना चाहिये इस वि॰ ॥

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णा इ॒मे शि॒वो अ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः । स॒प॒त्न॒हा नो॑ अभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॒ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वि विद्वन्! अग्नि के समान वर्त्तमान जो (इमे) ये (ब्राह्मणाः) ब्रह्मवेत्ता जन (त्वाम्) आप को (वृणते) स्वीकार करते हैं उन के प्रति आप (संवरणे) सम्यक् स्वीकार करने में (शिवः) मङ्गलकारी (भव) हूजिये (नः) हमारे (सपत्नहा) शत्रुओं के दोषों के हननकर्त्ता हूजिये । हे (अग्ने) अग्निवत् प्रकाशमान ! (अप्रयुच्छन्) प्रमाद नहीं करते हुए (च) और (अभिमातिजित्) अभिमान को जीतने वाले आप (स्वे) अपने (गये) घर में (जागृहि) जागो अर्थात् गृह कार्य करने में निद्रा आलस्यादि को छोड़ो (नः) हम को भी चेतन करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग ब्रह्म को स्वीकार कर के आनन्द मंगल को प्राप्त होते और दोषों को निर्मूल नष्ट कर देते हैं वैसे जिज्ञासु लोग ब्रह्मवेत्ता विद्वानों को प्राप्त होके आनन्द मंगल का आचरण करते हुए बुरे स्वभावों के मूल को नष्ट करें और आलस्य को छोड़ के विद्या की उन्नति किया करें ॥ ३ ॥

इहैवेत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहैवाग्ने अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन्पूर्वचितो निकारिणः।
क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां ते अनिष्टृतः ॥ ४ ॥

पदार्थः-हे (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान विद्वन् ! आप (इह) इस संसार में (रयिम्) लक्ष्मी को (धारय) धारण कीजिये (पूर्वचितः) प्रथम प्राप्त किये विज्ञानादि से श्रेष्ठ (निकारिणः) निरन्तर कर्म करने के स्वभाव वाले जन (त्वा) आप को (मा, नि, क्रन्) नीच गति को प्राप्त न करें। हे अग्ने विनय से शोभायमान सभापते ! (ते) आप का (सुयमम्) सुन्दर नियम जिससे चले वह (क्षत्रम्) धन वा राज्य (अस्तु) होवे जिससे (उपसत्ता) समीप बैठते हुए (अनिष्टृतः) हिंसा वा विघ्न को नहीं प्राप्त हो के (एव) ही आप (अधि, वर्द्धताम्) अधिकता से वृद्धि को प्राप्त हूजिये (तुभ्यम्) आप के लिये राज्य वा धन सुखदायी होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिये जिससे प्राचीन वृद्धजन आप को बड़ा माना करें। राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिस से आप और आप का राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आप को सर्वोपरि माना करें ॥ ४ ॥

क्षत्रेणेत्यस्याग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (इह) इस जगत् में वा राज्याधिकार में (क्षत्रेण) राज्य वा धन के साथ (स्वायुः) सुन्दर युवाऽवस्था का (सम्, रभस्व) अच्छे प्रकार आरम्भ कीजिये। हे (अग्ने) विद्या और विनय से शोभायमान राजन् ! (मित्रेण) धर्मात्मा विद्वान् मित्रों के साथ (मित्रधेये) मित्रों से धारण करने योग्य व्यवहार में (यतस्व) प्रयत्न कीजिये। हे (अग्ने) न्याय का प्रकाश करनेहारे सभापति ! (सजातानाम्) एक साथ उत्पन्न हुए बराबर की अवस्था वाले (राज्ञाम्) धर्मात्मा राजाधिराजों के बीच (मध्यमस्थाः) मध्यस्थ वादिप्रतिवादि के साक्षी (एधि) हूजिये और (विहव्यः) विशेष कर स्तुति के योग्य हुए (दीदिहि) प्रकाशित हूजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मन्त्रियों के साथ विचारकर्ता अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला, पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्टव्यसनों से पृथक् हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे २ सिद्ध करे ॥ ५ ॥

अति निह इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अति॒ निहो॒ अति॒ स्रिधोऽत्यचि॑त्ति॒मत्यरा॑तिमग्ने । विश्वा॒ ह्य॑ग्ने दुरि॒ता सह॒स्वाथा॒स्मभ्य॑ᳬ स॒हवी॑राᳬ र॒यिन्दाः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तेजस्वि सभापते! आप (अति, निहः) निश्चय करके असत्य को छोड़ने वाले होते हुए (स्रिधः) दुराचारियों को (अति, सहस्व) अधिक सहन कीजिये (अचित्तिम्) अज्ञान का (अति) अतिक्रमण कर (अरातिम्) दान के निषेध को सहन कीजिये (हे अग्ने) दृढ़ विद्या वाले तेजस्वि विद्वन्! आप (हि) ही (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणों का (अति) अधिक सहन कीजिये (अथ) इस के पश्चात् (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सहवीराम्) वीर पुरुषों से युक्त सेना और (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सित जनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करते और दुर्व्यसनों से पृथक् हुए, सुख दुःख के सहने और वीरपुरुषों की सेना में प्रीति करने वाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पावें, सदा सुखी होवें ॥ ६ ॥

अनाधृष्य इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ना॒धृ॒ष्यो जा॒तवे॑दा॒ अनि॑ष्टृतो वि॒राड॑ग्ने क्षत्र॒भृद्दी॑दिही॒ह । विश्वा॒ आशाः॑ प्रमु॒ञ्चन्मानु॑षीर्भि॒यः शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो वृ॒धे ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अच्छे प्रकार राजनीति का संग्रह करने वाले राजन्! जो आप (अद्य) इस समय (इह) इस राजा के व्यवहार में (मानुषीः) मनुष्यसम्बन्धी (भियः) रोगशोकादि भयों को नष्ट कीजिये (शिवेभिः) कल्याणकारी सभ्य सज्जनों के साथ (अनिष्टृतः) दुःख से पृथक् हुए (अनाधृष्यः) सभ्यों से नहीं धमकाने योग्य (जातवेदाः)

विद्या को प्राप्त (विराट्) विशेष कर प्रकाशमान (क्षत्रभृत्) राज्य के पोषक हैं सो आप (नः) हमारी (दीदिहि) कामना कीजिये (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (प्रमुञ्चन्) अच्छे प्रकार मुक्त करते हुए हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः-जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करें और सब विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें ॥ ७ ॥

बृहस्पते इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑नꣳ॒ सꣳशि॑तं चित्सन्त॒राꣳ सꣳशि॑शाधि । व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौ॑भगाय॒ विश्व॑ऽएन॒मनु॑ मदन्तु दे॒वाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े सज्जनों के रक्षक (सवितः) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त संपूर्ण विद्या के उपदेशक आप (एनम्) इस राजा को (संशितम्) तीक्ष्ण बुद्धि के स्वभाव वाला करते हुए (बोधय) चेतनतायुक्त कीजिये और (शम्, शिशाधि) सम्यक् शिक्षा कीजिये (चित्) और (सन्तराम्) अतिशय करके प्रजा को शिक्षा कीजिये (एनम्) इस राजा को (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य होने के लिये (वर्धय) बढ़ाइये और (विश्वे) सब (देवाः) सुन्दर श्रेष्ठ विद्वान् (एनम्) इस राजा के (अनु, मदन्तु) अनुकूल प्रसन्न हों ॥ ८ ॥

भावार्थः-जो राजसभा का उपदेशक है वह इस राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्रवृत्त करे ॥ ८ ॥

अमुत्रेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब अध्यापक और उपदेशकों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अ॒मु॒त्र॒भूया॒दध॒ यद्य॒मस्य॒ बृह॑स्पते अ॒भिश॑स्ते॒रमु॑ञ्चः । प्रत्यौ॑हता-म॒श्विना॑ मृ॒त्युम॑स्माद्दे॒वाना॑मग्ने भि॒षजा॒ शची॑भिः ॥ ९ ॥

पदार्थः-हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक विद्वन् ! आप (अमुत्रभूयात्) परजन्म में होने वाले (अभिशस्तेः) सब प्रकार के अपराध से (अमुञ्चः) छूटिये (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (यमस्य) धर्मात्मा नियमकर्त्ता जन की शिक्षा में रहे उस के (मृत्युम्) मृत्यु को छुड़ाइये । हे (अग्ने) उत्तम वैद्य आप जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक (शचीभिः) कर्म वा बुद्धियों से (भिषजाः) रोगनिवारक पदार्थों को (प्रति, औहताम्)

विशेष तर्क से सिद्ध करें वैसे (अस्मात्) इस से (देवानाम्) विद्वानों के आरोग्य को सिद्ध कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-वे ही श्रेष्ठ अध्यापक और उपदेशक हैं जो इस लोक और परलोक में सुख होने के लिये सब को अच्छी शिक्षा करें जिससे ब्रह्मचर्यादि कर्मों का सेवन कर मनुष्य अल्पावस्था में मृत्यु और आनन्द की हानि को न प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

उद्वयमित्यस्याग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । निराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का वि० ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (ज्योतिः) प्रकाशमान सूर्यमण्डल को (पश्यन्तः) देखते हुए (स्वः) सुख के साधक (उत्तरम्) सब लोगों को दुःख से पार उतारने वाले (देवत्रा) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में वर्त्तमान (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ (सूर्यम्) चराचर के आत्मा (देवम्) प्रकाशमान जगदीश्वर को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कर्षपूर्वक प्राप्त हों वैसे उस ईश्वर को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य सूर्य के समान अविद्यारूप अन्धकार से पृथक् हुए स्वयं प्रकाशित बड़े देवता सब से उत्तम सब के अन्तर्यामी परमात्मा की ही उपासना करते हैं वे मुक्ति के सुख को भी अवश्य निर्विघ्न प्रीतिपूर्वक प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

ऊर्ध्वा इत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब अग्नि कैसा है इस वि० ॥

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचींष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (अस्य) इस (सुप्रतीकस्य) सुन्दर प्रतीतिकारक कर्मों से युक्त (सूनोः) प्राणियों के गर्भों को छुड़ाने हारे (अग्नेः) अग्नि की (ऊर्ध्वाः) उत्तम (समिधः) सम्यक् प्रकाश करने वाली समिधा तथा (ऊर्ध्वा) ऊपर को जाने वाले

(द्युमत्तमा) अति उत्तम प्रकाशयुक्त (शुक्रा) शुद्ध (शोचींषि) तेज (भवन्ति) होते हैं उस को तुम जानो ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यह ऊपर को उठने वाला सब के देखने का हेतु सब की रक्षा का निमित्त अग्नि है उसको जान के कार्य्यों को निरन्तर सिद्ध किया करो ॥ ११ ॥

तनूनपादित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अब वायु किस के समान कार्यसाधक है इस वि० ॥

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवेषु) उत्तम गुण वाले पदार्थों में (देवः) उत्तम गुण वाला (असुरः) प्रकाशरहित वायु (विश्ववेदाः) सब को प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो शरीर में नहीं गिरता (देवः) कामना करने योग्य (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल के साथ (पथः) श्रोत्रादि के मार्गों को (अनक्तु) प्रकट करे उसको तुम जानो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे परमेश्वर बड़ा देव सब में व्यापक और सब का सुख करने हारा है वैसा वायु भी है क्योंकि इस वायु के विना कोई कहीं भी नहीं जा सकता ॥ १२ ॥

मध्वेत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर कैसे मनुष्य सुखी होवें इस वि० ॥

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशंसो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (नराशंसः) मनुष्यों की प्रशंसा करने (सुकृत्) उत्तम काम करने और (विश्ववारः) प्रशंसा को स्वीकार करने वाले (प्रीणानः) चाहना करते हुए (सविता) ऐश्वर्य्य को चाहने वाले (देवः) व्यवहार में चतुर आप (मध्वा) मधुर वचन से (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार को (नक्षसे) प्राप्त होते हो उन आप को हम लोग प्रसन्न करें ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ में सुगन्धादि पदार्थों के होम से वायु जल को शुद्ध कर सब को सुखी करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

अच्छायमित्यस्याग्निर्ऋषिः । वह्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
अब अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस वि० ॥

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निꣳ स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (ईडानः) स्तुति करता हुआ (वह्निः) विद्या का पहुंचाने वाला विद्वान् जन (प्रयत्सु) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य (अध्वरेषु) विघ्नों से पृथक् वर्त्तमान यज्ञों में (शवसा) बल (घृतेन) जल और (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (अग्निम्) अग्नि तथा (स्रुचः) होम के साधन स्रुवा आदि को (अच्छ, एति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उसका तुम लोग सत्कार करो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो अग्नि इन्धनों और जल से युक्त यानों में प्रयुक्त किया हुआ बल से शीघ्र चलाता है उस को जान के उपकार में लाओ ॥१४॥

सप्तधृतिस्यस्याग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स यन्त्रस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ॥ १५ ॥

पदार्थः—(सः) वह पूर्वोक्त विद्वान् मनुष्य (सुप्रयसः) प्रीतिकारक सुन्दर अन्नादि के हेतु (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (महिमानम्) बड़प्पन को (यक्षत्) सम्यक् प्राप्त हो तथा (सः) वह (वसुः) निवास का हेतु (चेतिष्ठः) अतिशय कर जानने वाला (च) और (वसुधातमः) अत्यन्त धनों को धारण करने वाला हुआ (ईम्) जल तथा (मन्द्रा) आनन्ददायक होमने योग्य पदार्थों को प्राप्त होवे ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अतिधनी होवे ॥१५॥

द्वारो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । द्वियो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—जो (विश्वे) सब (पत्यमानाः) मालिकपन करते हुए विद्वान् (उरुव्यचसः) बहुतों में व्यापक (अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के (धाम्ना) स्थान से (देवीः)

प्रकाशित (द्वारः) द्वारों तथा (व्रता) सत्यभाषणादि व्रतों का (अनु, वदन्ते) अनुकूल उपदेश देते हैं वे सुन्दर ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो लोग अग्नि की विद्या के द्वारों को जानते हैं वे सत्य आचरण करते हुए अति आनन्दित होते हैं ॥ १६ ॥

ते अस्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ते) वे (उषासानक्ता) रात्रि और दिन (अस्य) इस पुरुष के (योना) घर में (दिव्ये) उत्तम रूप वाली (योषणे) दो स्त्रियों के (न) समान वर्त्तमान (नः) हमारे जिस (इमम्) इस (अध्वरम्) विनाश न करने योग्य (यज्ञम्) यज्ञ की (अवताम्) रक्षा करें उस को तुम लोग जानो ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विदुषी स्त्री घर के कार्यों को सिद्ध करती है वैसे अग्नि से उत्पन्न हुए रात्रि दिन सब व्यवहार को सिद्ध करते हैं ॥ १७ ॥

दैव्येत्यस्याग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दैव्या होतारा ऊर्ध्वमध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभिगृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—जो (दैव्या) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए दो विद्वान् (होतारा) सुख के देने वाले (नः) हमारे (ऊर्ध्वम्) उन्नति को प्राप्त (अध्वरम्) नहीं बिगाड़ने योग्य व्यवहार की (अभि, गृणीतम्) सब ओर से प्रशंसा करें वे दोनों (नः) हमारी (स्विष्टिम्) सुन्दर यज्ञ के निमित्त (अग्ने) अग्नि की (जिह्वाम्) ज्वाला को (कृणुतम्) सिद्ध करें ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो जिज्ञासु और अध्यापक लोग अग्नि की विद्या को जानें तो विश्व की उन्नति करें ॥ १८ ॥

तिस्रो देवीरित्यस्याऽग्निर्ऋषिः । इडादयो लिङ्गोक्ता देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये इस वि० ॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ सदन्त्विडा सरस्वती भारती। मही गृणाना ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (मही) बड़ी (गृणाना) स्तुति करती हुई (इडा) स्तुति करने योग्य (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली और (भारती) सब शास्त्रों का धारण करने हारी जो (तिस्रः) तीन (देवीः) चाहने योग्य वाणी (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों उन तीनों प्रकार की वाणियों को सम्यक् जानो ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य व्यवहार में चतुर सब शास्त्र की विद्याओं से युक्त सत्यादि व्यवहारों को धारण करने हारी वाणी को प्राप्त हों वे स्तुति के योग्य हुए महान् होवें ॥ १९ ॥

तव इत्यस्याग्निर्ऋषिः । त्वष्टा देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस वि० ॥

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम्। रायस्पोषं विष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

पदार्थः—(त्वष्टा) विद्या से प्रकाशित ईश्वर (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्यप्रदेश के प्रति (तुरीपम्) शीघ्रता को प्राप्त होने वाले (अद्भुतम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म और स्वभावों से युक्त (पुरुक्षु) बहुत पदार्थों में बसने वाले (सुवीर्य्यम्) सुन्दर बलयुक्त (तम्) उस प्रसिद्ध (रायः) धन को (पोषम्) पुष्टि को देवे और (नः) हम लोगों को दुःख से (वि,स्यतु) छुड़ावे ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शीघ्रकारी आश्चर्यरूप बहुतों में व्यापक धन वा बल है इस को तुम लोग ईश्वर की प्रार्थना से प्राप्त हो के आनन्दित होओ ॥ २० ॥

वनस्पत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । विद्वांसो देवताः । विराडुष्णिक् छन्दः ।

ऋषभः स्वरः ॥

जिज्ञासु कैसा हो इस वि० ॥

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु। अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

पदार्थः—(वनस्पते) सेवने योग्य शास्त्र के रक्षक जिज्ञासु पुरुष ! जैसे (शमिता)

यज्ञसम्बन्धी (अग्निः) अग्नि (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य होम के द्रव्यों को (सुवयाति) सूक्ष्म कर वायु में पसारता है वैसे (त्मना) अपने आत्मा से (देवेषु) दिव्य गुणों के समान विद्वानों में (रराणः) रमण करते हुए ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (अव, सृज) उत्तम प्रकार से बनाओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शुद्ध आकाश आदि में अग्नि शोभायमान होता है वैसे विद्वानों में स्थित जिज्ञासु पुरुष सुन्दर प्रकाशित स्वरूप वाला होता है ॥ २१ ॥

अग्ने स्वाहेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने॒ स्वाहा॑ कृणुहि जातवेद॒ इन्द्रा॑य ह॒व्यम् । विश्वे॑ दे॒वा ह॒विरि॒दं जु॑षन्ताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विद्या में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (इन्द्राय) उक्त ऐश्वर्य्य के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (कृणुहि) प्रसिद्ध कीजिये और (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (इदम्) इस (हविः) ग्रहण करने योग्य उत्तम वस्तु को (जुषन्ताम्) सेवन करें ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऐश्वर्य बढ़ाने के लिये प्रयत्न करें तो सत्य परमात्मा और विद्वानों का सेवन किया करें ॥ २२ ॥

पीवो अन्नेऽत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे सन्तान सुखी करता है इस वि० ॥

पीवो॑ अन्ना रयि॒वृधः॑ सुमे॒धाः श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः । ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वि त॑स्थु॒र्विश्वेन्नरः॑ स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः ॥ २३ ॥

पदार्थः—जो (समनसः) तुल्य ज्ञान वाले (रयिवृधः) धन को बढ़ाने वाले (सुमेधाः) सुन्दर बुद्धिमान् (नरः) नायक पुरुष (पीवोअन्ना) पुष्टिकारक अन्नों वाले (विश्वा) सब (स्वपत्यानि) सुन्दर सन्तानों को (चक्रुः) करें (ते) वे (इत्) ही (वायवे) वायु की विद्या के लिये (वि, तस्थुः) विशेषकर स्थित हों जब (नियुताम्) निश्चित चलने हारे जनों का (अभिश्रीः) सब ओर से शोभायुक्त (श्वेतः) गमनशील वा वृद्धि करने हारा वायु सब को (सिषक्ति) सींचता है तब वह शोभायुक्त होता है ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे वायु सब के जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सब के सुख के निमित्त होते हैं ॥ २३ ॥

राय इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अर्ध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इमे) ये (रोदसी) आकाश भूमी (राये) धन के अर्थ (यम्) जिस को (जज्ञतुः) उत्पन्न करें (देवी) उत्तम गुण वाली (धिषणा) बुद्धि के समान वर्त्तमान स्त्री जिस (देवम्) उत्तम पति को (राये) धन के लिये (नु) शीघ्र (धाति) धारण करती है (अध) इस के अनन्तर (निरेके) निश्शङ्क स्थान में (स्वाः) अपने सम्बन्धी (नियुतः) निश्चय कर मिलाने वा पृथक् करने वाले जन (श्वेतम्) शुद्ध (उत) और (वसुधितिम्) पृथिव्यादि वसुओं के धारण के हेतु (वायुम्) वायु को (सश्चत) प्राप्त होते हैं उसको तुम लोग जानो ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! आप लोग बल आदि गुणों से युक्त सब के धारण करने वाले वायु को जान के धन और बुद्धि को बढ़ावें । जो एकान्त में स्थित हो के इस प्राण के द्वारा अपने स्वरूप और परमात्मा को जाना चाहें तो इन दोनों आत्माओं का साक्षात्कार होता है ॥ २४ ॥

आप इत्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २५ ॥

पदार्थः—(बृहतीः) महत् परिमाण वाली (जनयन्तीः) पृथिव्यादि को प्रकट करने हारी (यत्) जिस (विश्वम्) सब में प्रवेश किये हुए (गर्भम्) सब के मूल प्रधान को (दधानाः) धारण करती हुई (आपः) व्यापक जलों की सूक्ष्ममात्रा (आयन्) प्राप्त हों (ततः) उस से (अग्निम्) सूर्यादिरूप अग्नि को (देवानाम्) उत्तम पृथिव्यादि पदार्थों का सम्बन्धी (एकः) एक असहाय (असुः) प्राण (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् प्रवृत्त करे उस (ह) ही (कस्मै) सुख के निमित्त (देवाय) उत्तम गुणयुक्त ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) धारण करने से (विधेम) सेवा करने वाले हों ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो स्थूल पञ्चतत्त्व दीख पड़ते हैं उनका सूक्ष्म प्रकृति के कार्य पञ्चतन्मात्र नामक से उत्पन्न हुए जानो जिनके बीच जो एक सूत्रात्मा वायु है वह सब को धारण करता है यह जानो जो उस वायु के द्वारा योगाभ्यास से परमात्मा को जानना चाहो तो उस को साक्षात् जान सको ॥ २५ ॥

यश्चिदित्यस्य हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन मनुष्य आनन्दित होते हैं इस वि० ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् । यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २६ ॥

पदार्थः—(यः) जो परमेश्वर (महिना) अपने व्यापकपन के महिमा से (दक्षम्) बल को (दधानाः) धारण करती (यज्ञम्) सङ्गत संसार को (जनयन्तीः) उत्पन्न करती हुई (आपः) व्याप्तिशील सूक्ष्म जल की मात्रा हैं इन को (पर्यपश्यत्) सब ओर से देखता है (यः) जो ईश्वर (देवेषु) उत्तम गुण वाले प्रकृति आदि और जीवों में (एकः) एक (अधि, देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाला (आसीत्) है उस (चित्) ही (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सब सुखों के दाता ईश्वर की हम लोग (हविषा) आज्ञा पालन और योगाभ्यास के धारण से (विधेम) सेवा करें ॥ २६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोग सब के द्रष्टा धर्त्ता कर्त्ता अद्वितीय अधिष्ठाता परमात्मा के जानने को नित्य योगाभ्यास करते हैं वे आनन्दित होते हैं ॥ २६ ॥

प्रयाभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिये इस वि० ॥

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे । नि नो रयिꣳ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वन् ! वायु के समान वर्त्तमान आप (प्र, याभिः) अच्छे प्रकार चाहने योग्य (नियुद्भिः) नियत गुणों से (इष्टये) अभीष्ट सुख के अर्थ (अच्छ, यासि) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हो (दुरोणे) घर में (नः) हमारे (सुभोजसम्) सुन्दर भोगने के हेतु (दाश्वांसम्) सुख के दाता (रयिम्) धन को (नि, युवस्व) निरन्तर मिश्रित कीजिये (वीरम्) विज्ञानादि गुणों को प्राप्त (गव्यम्) गौ के हितकारी (च) तथा (अश्व्यम्) घोड़े के लिये हितैषी (राधः) धन को (नि) निरन्तर प्राप्त कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस में वाचकलु०-जैसे वायु सब जीवन आदि इष्ट कर्मों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् पुरुष इस संसार में वर्त्ते ॥ २७ ॥

आ न इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो॑ नि॒युद्भिः॑ श॒तिनी॑भिरध्व॒रꣳ स॑ह॒स्रिणी॑भि॒रुप॑ याहि य॒ज्ञम्। वायो॑ अ॒स्मिन्त्सव॑ने मादयस्व यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य बलवान् विद्वन्! जैसे वायु (नियुद्भिः) निश्चित मिली वा पृथक् जाने आने रूप (शतिनीभिः) बहुत कर्मों वाली (सहस्रिणीभिः) बहुत वेगों वाली गतियों से (अस्मिन्) इस (सवने) उत्पत्ति के आधार जगत् में (नः) हमारे (अध्वरम्) न विगाड़ने योग्य (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (उप) निकट प्राप्त होता है वैसे आप (आयाहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (मादयस्व) और आनन्दित कीजिये। हे विद्वानो! (यूयम्) आप लोग इस विद्या से (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् लोग, जैसे वायु विविध प्रकार की चालों से सब पदार्थों को पुष्ट करते हैं वैसे ही अच्छी शिक्षा से सब को पुष्ट करें ॥ २८ ॥

नियुत्वानित्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। निचृद् गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

नि॒यु॒त्वान् वा॑यवा ग॑ह्य॒यꣳ शु॒क्रो अ॑यामि ते। गन्ता॑सि सुन्व॒तो गृ॒हम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य शीघ्रगन्ता! (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर आप जैसे (अयम्) यह (शुक्रः) पवित्रकर्त्ता (गन्ता) गमनशील वायु (सुन्वतः) रस खींचने वाले के (गृहम्) घर को प्राप्त होता है वैसे मुझ को (आ, गहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये जिस से आप ईश्वर (असि) हैं इस से (ते) आप के स्वरूप को मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु सब को शोधने और सर्वत्र पहुंचने वाला तथा सबको प्राण से भी प्यारा है वैसे ईश्वर भी है ॥ २९ ॥

वायो शुक्र इत्यस्य पुरुमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर मनुष्य को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वायो॑ शु॒क्रो अ॑यामि ते॒ मध्वो॒ अग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु। आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (वायो) जो वायु के समान वर्त्तमान विद्वन् (शुक्रः) शुद्धिकारक आप हैं (ते) आप के (मध्वः) मधुर वचन के (अग्रम्) उत्तम भाग को (दिविष्टिषु) उत्तम संगतियों में मैं (अयामि) प्राप्त होता हूं हे (देव) उत्तम गुणयुक्त विद्वान् पुरुष (स्पार्हः) उत्तम गुणों की अभिलाषा से युक्त के पुत्र आप (नियुत्वता) वायु के साथ (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों का रस पीने के लिये (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे वायु सब रस और गन्ध आदि को पीके सब को पुष्ट करता है वैसे तूभी सब को पुष्ट किया कर ॥ ३० ॥

वायुरित्यस्याजमीढ ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वा॒युर॑ग्रे॒गा य॑ज्ञ॒प्रीः सा॒कं ग॒न्मन॑सा य॒ज्ञम्। शि॒वो नि॒युद्भिः॑ शि॒वाभिः॑ ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वायुः) पवन (नियुद्भिः) निश्चित (शिवाभिः) मङ्गलकारक क्रियाओं से (यज्ञम्) यज्ञ को (गन्) प्राप्त होता है वैसे (शिवः) मङ्गलस्वरूप (अग्रेगाः) अग्रगामी (यज्ञप्रीः) यज्ञ को पूर्ण करने हारे हुए आप (मनसा) मन की वृत्ति के (साकम्) साथ यज्ञ को प्राप्त हूजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—इस मन्त्र में (आ, याहि) इस पद की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। जैसे वायु अनेक पदार्थों के साथ जाता आता है वैसे विद्वान् लोग धर्मयुक्त कर्मों को विज्ञान से प्राप्त होवें ॥ ३१ ॥

वायो ये त इत्यस्य गृत्समद ऋषिः। वायुर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

वायो॒ ये ते॑ सह॒स्रिणो॒ रथा॑स॒स्तेभि॒रा ग॑हि। नि॒युत्वा॒न्त्सोम॑पीतये ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ये) जो (ते) आप के (सहस्रिणः) प्रशस्त सहस्रों मनुष्यों से युक्त (रथासः) सुन्दर आराम देने वाले यान हैं (तेभिः) उन के सहित (नियुत्वान्) समर्थ हुए आप (सोमपीतये) सोम ओषधि का रस पीने के लिये (आ, गहि) आइये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे वायु की असंख्य रमण करने योग्य गति हैं वैसे अनेक प्रकार की गतियों से समर्थ होके ऐश्वर्य को भोगो ॥ ३२ ॥

एकयेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एक॑या च द॒शभि॑श्च स्वभूते॒ द्वाभ्या॑मि॒ष्टये॑ वि॒ꣳश॒ती च॑ । ति॒सृभि॑श्च॒ वह॑से त्रि॒ꣳशता॑ च नि॒युद्भि॑र्वायवि॒ह ता वि मु॑ञ्च ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (स्वभूते) अपने ऐश्वर्य से शोभायमान ! (वायो) वायु के तुल्य अर्थात् जैसे पवन (इह) इस जगत् में सङ्गति के लिये (एकया) एक प्रकार की गति (च) और (दशभिः) दशविध गतियों (च) और (द्वाभ्याम्) विद्या और पुरुषार्थ से (इष्टये) विद्या की संगति के लिये (विंशती) दो बीसी (च) और (तिसृभिः) तीन प्रकार की गतियों से (च) और (त्रिंशता) तीस (च) और (नियुद्भिः) निश्चित नियमों के साथ यज्ञ को प्राप्त होता वैसे (वहसे) प्राप्त होते सो आप (ता) उन सब को (वि, मुञ्च) विशेष कर छोड़िये अर्थात् उनका उपदेश कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु, इन्द्रिय, प्राण और अनेक गतियों और पृथिव्यादि लोकों के साथ सब के इष्ट को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् भी सिद्ध करें ॥ ३३ ॥

तव वाय इत्यस्याङ्गिरस ऋषिः । वायुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब किस के तुल्य वायु का स्वीकार करें इस वि० ॥

तव॑ वायवृतस्पते॒ त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत । अवा॒ꣳस्या वृ॑णीमहे ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (ऋतस्पते) सत्य के रक्षक ! (जामातः) जमाई के तुल्य वर्त्तमान (अद्भुत) आश्चर्यरूप कर्म करने वाले (वायो) बहुत बलयुक्त विद्वन् हम लोग जो (त्वष्टुः) विद्या से प्रकाशित (तव) आप के (अवांसि) रक्षा आदि कर्मों का (आ वृणीमहे) स्वीकार करते हैं उनका आप भी स्वीकार करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जैसे जमाई उत्तम आश्चर्य गुणों वाला सत्य ईश्वर का सेवक हुआ स्वीकार के योग्य होता है वैसे वायु भी स्वीकार करने योग्य है ॥ ३४ ॥

अभि त्वेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि त्वा॑ शूर नोनु॒मोऽदु॑ग्धा इव धे॒नवः॑ । ईशा॑नम॒स्य जग॑तः स्व॒र्दृश॒मीशा॑नमिन्द्र त॒स्थुषः॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सभापते ! (अदुग्धा इव) विना दूध की (धेनवः) गौओं के समान हम लोग (अस्य) इस (जगतः) चर तथा (तस्थुषः) अचर संसार के (ईशानम्) नियन्ता (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने योग्य ईश्वर के तुल्य (ईशानम्) समर्थ (त्वा) आप को (अभि, नोनुमः) सन्मुख से सत्कार वा प्रशंसा करें ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! जो आप पक्षपात छोड़ के ईश्वर के तुल्य न्यायाधीश होवें जो कदाचित् हम लोग कर भी न देवें तो भी हमारी रक्षा करें तो आप के अनुकूल हम सदा रहें ॥ ३५ ॥

न त्वावानित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर ही उपासना करने योग्य है इस वि० ॥

न त्वावाँ॑२॥ अ॒न्यो दि॒व्यो न पार्थि॑वो न जा॒तो न ज॑निष्यते । अ॒श्वा॒यन्तो॑ मघवन्निन्द्र वा॒जिनो॑ ग॒व्यन्त॑स्त्वा हवामहे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूजित उत्तम ऐश्वर्य से युक्त ! (इन्द्र) सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर ! (वाजिनः) वेगवाले (गव्यन्तः) उत्तम वाणी बोलते हुए (अश्वायन्तः) अपने को शीघ्रता चाहते हुए हम लोग (त्वा) आप की (हवामहे) स्तुति करते हैं क्योंकि जिस कारण कोई (अन्यः) अन्य पदार्थ (त्वावान्) आप के तुल्य (दिव्यः) शुद्ध (न) न कोई (पार्थिवः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (न) न कोई (जातः) उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यते) होगा इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं ॥ ३६ ॥

भावार्थः—न कोई परमेश्वर के तुल्य शुद्ध हुआ, न होगा और न है इसी से सब मनुष्यों को चाहिये कि इसको छोड़ अन्य किसी की उपासना इसके स्थान में कदापि न करें यही कर्म इस लोक परलोक में आनन्ददायक जानें ॥ ३६ ॥

त्वामिदित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजधर्म विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के तुल्य जगत् के रक्षक राजन्! (वाजस्य) विद्या वा विज्ञान से हुए कार्य के (हि) ही (कारवः) करने वाले (नरः) नायक हम लोग (सातौ) रण में (त्वाम्) आप को जैसे (वृत्रेषु) मेघों में सूर्य को वैसे (सत्पतिम्) सत्य के प्रचार से रक्षक (त्वाम्) आप को (अर्वतः) शीघ्रगामी घोड़े के तुल्य सेना में देखें (काष्ठासु) दिशाओं में (त्वाम्) आप को (इत्) ही (हवामहे) ग्रहण करें ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे सेना और सभा के पति ! तुम दोनों सूर्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करके और सत्य के प्रचार करने वाले होओ ॥ ३७ ॥

स त्वमित्यस्य शम्युर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड्बृहती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

विद्वान् क्या करता है इस वि० ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया महस्तवानो अद्रिवः । गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (चित्र) आश्चर्यस्वरूप (वज्रहस्त) वज्र हाथ में लिये (अद्रिवः) प्रशस्त पत्थर के बने हुए वस्तुओं वाले (इन्द्र) शत्रुनाशक विद्वन् (धृष्णुया) ढीठता से (महः) बहुत (स्तवानः) स्तुति करते हुए (सः) सो पूर्वोक्त (त्वम्) आप (जिग्युषे) जय करने वाले पुरुष के लिये तथा (नः) हमारे लिये (सत्रा) सत्य (वाजम्) विज्ञान के (न) तुल्य (गाम्) बैल तथा (रथ्यम्) रथ के योग्य (अश्वम्) घोड़े को (संकिर) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे मेघसम्बन्धी सूर्य वर्षा से सब को सम्बद्ध करता है वैसे विद्वान् सत्य के विज्ञान से सब के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है ॥ ३८ ॥

कया न इत्यस्य वामदेवऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कया॑ नश्चि॒त्र आ भु॑व॒दूती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑ । कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥ ३९ ॥

पदार्थः—विद्वन् पुरुष ! (चित्रः) आश्चर्य कर्म करनेहारे (सदावृधः) जो सदा बढ़ता है उस के (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये (कया) किसी (ऊती) रक्षणादि क्रिया से (नः) हमारी रक्षा कीजिये (कया) किसी (शचिष्ठया) अत्यन्त निकट सम्बन्धिनी (वृता) वर्त्तमान क्रिया से हम को युक्त कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—जो आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला विद्वान् सब का मित्र हो और कुकर्मों की निवृत्ति कर के उत्तम कर्मों से हम को युक्त करे उस का हम को सत्कार करना चाहिये ॥ ३९ ॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मंहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः । दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (कः) सुखदाता (सत्यः) श्रेष्ठों में उत्तम (मंहिष्ठः) अति महत्वयुक्त विद्वान् (त्वा) आप को (अन्धसः) अन्न से हुए (मदानाम्) आनन्दों में (मत्सत्) प्रसन्न करे (आरुजे) अति रोग के अर्थ ओषधियों को जैसे इकट्ठा करे (चित्) वैसे (दृढा) दृढ (वसु) द्रव्यों का सञ्चय करे सो हम को सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सत्य में प्रीति रखने और आनन्द देने वाला विद्वान् परोपकार के लिये रोगनिवारणार्थ ओषधियों के तुल्य वस्तुओं का सञ्चय करे वही सत्कार के योग्य होवे ॥ ४० ॥

अभीषुण इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे जन धन को प्राप्त होते इस वि० ॥

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् । श॒तं भ॑वास्यू॒तये॑ ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो आप (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों तथा (जरितॄणाम्) स्तुति करने वाले जनों के (अविता) रक्षक (ऊतये) प्रीति आदि के अर्थ

(शतम्) सैकड़ों प्रकार से (सु, भवासि) सुन्दर रीति करके हूजिये सो आप (अभि) सब ओर से सत्कार के योग्य हों ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने मित्रों के रक्षक असंख्य प्रकार का सुख देने हारे अनाथों की रक्षा में प्रयत्न करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥ ४१ ॥

यज्ञायज्ञेत्यस्य शम्युर्ऋषिः । यज्ञो देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

युज्ञा यंज्ञावो अुग्नयें गिरागिंरा चु दक्षंसे । प्रप्रं वृयमृमृतं जातवेंदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (अग्नये) अग्नि के लिये (च) और (गिरागिरा) वाणी २ से (दक्षसे) बल के अर्थ (यज्ञायज्ञा) यज्ञ २ में (वः) तुम लोगों की (प्र प्र, शंसिषम्) प्रशंसा करूं (वयम्) हम लोग (जातवेदसम्) ज्ञानी (अमृतम्) आत्मरूप से अविनाशी (प्रियम्) प्रीति के विषय (मित्रम्) मित्र के (न) तुल्य तुम्हारी प्रशंसा करें वैसे तुम भी आचरण किया करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य उत्तम शिक्षित वाणी से यज्ञों का अनुष्ठान कर बल बढ़ा और मित्रों के समान विद्वानों का सत्कार करके समागम करते हैं वे बहुत ज्ञान वाले धनी होते हैं ॥ ४२ ॥

पाहि न इत्यस्य भार्गवऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

आप्त धर्मात्मा जन क्या करें इस वि० ॥

पाहि नों अग्न एकंया पाह्युत द्वितीयंया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चंतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे (वसो) सुन्दर वास देने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप (एकया) उत्तम शिक्षा से (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से (पाहि) रक्षा कीजिये (तिसृभिः) कर्म उपासना ज्ञान को जताने वाली तीन (गीर्भिः) वाणियों से (पाहि) रक्षा कीजिये हे (ऊर्जाम्) बलों के (पते) रक्षक आप हमारी (चतसृभिः) धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन का विज्ञान कराने वाली चार प्रकार की वाणी से (उत) भी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥ ४३ ॥

भावार्थः—सत्यवादी धर्मात्मा आप्तजन उपदेश करने और पढ़ाने से भिन्न किसी

साधन को मनुष्य का कल्याणकारक नहीं जानते इससे नित्यप्रति अज्ञानियों पर कृपा कर सदा उपदेश करते और पढ़ाते हैं ॥ ४३ ॥

ऊर्जो नपातमित्यस्य अग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

ऊर्जो नपा॑त॒ꣳ स हि॒नायम॑स्म॒युर्दाशे॑म ह॒व्यदा॑तये । भुव॒द्वाजे॑-ष्ववि॒ता भुव॑द्वृ॒ध उ॒त त्रा॒ता त॒नूना॑म् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्यार्थिन् ! (सः) सो आप (ऊर्जः) पराक्रम को (नपातम्) न नष्ट करने हारे विद्याबोध को (हिन) बढ़ाइये जिससे (अयम्) यह प्रत्यक्ष आप (अस्मयुः) हम को चाहने और (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षा करने वाले (भुवत्) होवें (उत) और (तनूनाम्) शरीरों के (वृधे) बढ़ने के अर्थ (त्राता) पालन करने वाले (भुवत्) होवें इस से आप को (हव्यदातये) देने योग्य पदार्थों के देने के लिये हम लोग (दाशेम) स्वीकार करें ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो पराक्रम और बल को न नष्ट करे, शरीर और आत्मा की उन्नति करता हुआ रक्षक हो उसके लिये आप्तजन विद्या देवें । जो इससे विपरीत लम्पट दुष्टाचारी निन्दक हो वह विद्या-ग्रहण में अधिकारी नहीं होता यह जानो ॥ ४४ ॥

संवत्सर इत्यस्य अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

सं॒व॒त्स॒रो॑ऽसि परिवत्स॒रो॑ऽसीदावत्स॒रो॑ऽसीद्वत्स॒रो॑ऽसि वत्स॒रो॑ऽसि । उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्तां॒ मासा॑स्ते कल्पन्तामृ॒तव॑स्ते कल्पन्ताꣳ संवत्स॒रस्ते॑ कल्पताम् । प्रेत्या॒ एत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय । सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वः सी॑द ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा जिज्ञासु पुरुष ! जिस से तूं (संवत्सरः) संवत्सर के तुल्य नियम से वर्त्तमान (असि) है (परिवत्सरः) त्याज्य वर्ष के समान दुराचरण का त्यागी (असि) है (इदावत्सरः) निश्चय से अच्छे प्रकार वर्त्तमान वर्ष के तुल्य (असि) है (इद्वत्सरः) निश्चित संवत्सर के सदृश (असि) है (वत्सरः) वर्ष के समान (असि) है इस से (ते) तेरे लिये (उषसः) कल्याणकारिणी

उषा प्रभात वेला (कल्पताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (अहोरात्राः) दिन रातें मंगलदायक (कल्पताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (अर्द्धमासाः) शुक्ल कृष्ण पक्ष (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे (मासाः) चैत्र आदि महीने (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे लिये (ऋतवः) वसन्तादि ऋतु (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (ते) तेरे अर्थ (संवत्सरः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थ हो (च) और तू (प्रेत्यै) उत्तम प्राप्ति के लिये (सम्, अञ्च) सम्यक् प्राप्त हो (च) और तू (एत्यै) अच्छे प्रकार जाने के लिये (प्र, सारय) अपने प्रभाव का विस्तार कर जिस कारण तू (सुपर्णचित्) सुन्दर रक्षा के साधनों का संचयकर्त्ता (असि) है इस से (तया) उस (देवतया) उत्तम गुणयुक्त समयरूप देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूत्रात्मा प्राणवायु के समान (ध्रुव) दृढ़ निश्चल (सीद) स्थिर हो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—जो आप्त मनुष्य व्यर्थ काल नहीं खोते सुन्दर नियमों से वर्त्तते हुए कर्त्तव्य कर्मों को करते, छोड़ने योग्यों को छोड़ते हैं उनके प्रभात काल, दिन रात, पक्ष, महीने ऋतु सब सुन्दर प्रकार व्यतीत होते हैं इसलिये उत्तम गति के अर्थ प्रयत्न कर अच्छे मार्ग से चल शुभगुणों और सुखों का विस्तार करें। सुन्दर लक्षणों वाली वाणी वा स्त्री के सहित धर्मग्रहण और अधर्म के त्याग में दृढ़ उत्साही सदा होवें ॥ ४५ ॥

इस अध्याय में सत्य की प्रशंसा का जानना, उत्तम गुणों का स्वीकार, राज्य का बढ़ाना, अनिष्ट की निवृत्ति, जीवन को बढ़ाना, मित्र का विश्वास, सर्वत्र कीर्त्ति करना, ऐश्वर्य्य का बढ़ाना, अपमृत्यु का निवारण, शुद्धि करना, सुकर्म का अनुष्ठान, यज्ञ करना, बहुत धन का धारण, मालिकपन का प्रतिपादन, सुन्दर वाणी का ग्रहण, सद्गुणों की इच्छा, अग्नि की प्रशंसा, विद्या और धन का बढ़ाना, कारण का वर्णन, धन का उपयोग, परस्पर की रक्षा, वायु के गुणों का वर्णन, आधार आधेय का कथन, ईश्वर के गुणों का वर्णन, शूरवीर के कृत्यों का कहना, प्रसन्नता करना, मित्र की रक्षा, विद्वानों का आश्रय, अपने आत्मा की रक्षा, धर्म की रक्षा और युक्त आहार विहार कहे हैं इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ २७ ॥

ओ३म्

अथाष्टाविंशोऽध्याय आरम्यते ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

अब अट्ठाईसवें अध्याय का आरम्भ है उसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को
यज्ञ से कैसे बल बढ़ाना चाहिये इस वि० ॥

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि। दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यजमान! तू जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहणकर्त्ता जन (समिधा) ज्ञान के प्रकाश से (इडः) वाणीसम्बन्धी (पदे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) मध्य और (दिवः) प्रकाश के (अधि) ऊपर (वर्ष्मन्) वर्षने हारे मेघमण्डल में (इन्द्रम्) बिजुलीरूप अग्नि को (यक्षत्) सङ्गत करे उस से (ओजिष्ठः) अतिशय कर बली हुआ (चर्षणीसहाम्) मनुष्यों के झुंडों को सहने वाले योद्धाओं में (सम्, इध्यते) सम्यक् प्रकाशित होता है और (आज्यस्य) घृत आदि को (वेतु) प्राप्त होवे (यज) वैसे समागम किया कर ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि वेदमन्त्रों से सुगन्धित आदि द्रव्य अग्नि में छोड़ मेघमण्डल को पहुंचा और जल को शुद्ध करके सब के लिये बल बढ़ावें ॥ १ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥
राजपुरुष कैसे हों इस वि०॥

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॑तमू॒तिभि॒र्जेता॑र॒मप॑राजितम्। इन्द्रं॑ दे॒वꣳ स्व॒र्विदं॑ प॒थिभि॒र्मधु॑मत्तमै॒र्नरा॒शꣳसे॑न॒ तेज॑सा॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ २॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने वाले पुरुष! आप जैसे (होता) सुख का दाता (ऊतिभिः) रक्षाओं तथा (मधुमत्तमैः) अति मीठे जल आदि से युक्त (पथिभिः) धर्मयुक्त मार्गों से (तनूनपातम्) शरीरों के रक्षक (जेतारम्) जयशील (अपराजितम्) शत्रुओं से न जीतने योग्य (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त (देवम्) विद्या और विनय से सुशोभित (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यकारक राजा का (यक्षत्) संग करे (नराशंसेन) मनुष्यों से प्रशंसा किई गई (तेजसा) प्रगल्भता से (आज्यस्य) जानने योग्य विषय को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (यज) संग कीजिये॥ २॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा लोग स्वयं राज्य में न्यायमार्ग में चलते हुए प्रजाओं की रक्षा करें वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं के जीतने वाले हों॥ २॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः॥
फिर उसी वि०॥

होता॑ यक्ष॒दिडा॑भि॒रिन्द्र॑मीडि॒तमा॑जु॒ह्वा॑न॒मम॑र्त्यम्। दे॒वो दे॒वैः स॒वी॑र्यो॒ वज्र॑हस्तः पुर॒न्दरो॒ वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥ ३॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहीता पुरुष आप जैसे (होता) सुखदाता जन (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विलक्षण (आजुह्वानम्) स्पर्द्धा करते हुए (ईडितम्) प्रशंसित (इन्द्रम्) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य से युक्त राजपुरुष को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे यह (वज्रहस्तः) हाथों में शस्त्र अस्त्र धारण किये (पुरन्दरः) शत्रुओं के नगरों का तोड़ने वाला (सुवीर्यः) बलयुक्त (देवः) विद्वान् जन (देवैः) विद्वानों के साथ (आज्यस्य) विज्ञान से रक्षा करने योग्य राज्य के अवयवों को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये॥ ३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं की पालना करें वैसे ही प्रजा इन को पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें॥ ३॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । रुद्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यजद्ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम् । वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑दद्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) उत्तम दान के दाता पुरुष ! (होता) सुख चाहने वाला पुरुष जैसे (सयुग्भिः) एक साथ योग करने वाले (वसुभिः) प्रथम कक्षा के (रुद्रैः) मध्यम कक्षा के और (आदित्यैः) उत्तम कक्षा के विद्वानों के साथ (बर्हिषि) उत्तम विद्वानों की सभा में (निषद्वरम्) जिस के निकट श्रेष्ठजन बैठें उस (वृषभम्) सब से उत्तम बली (नर्यापसम्) मनुष्यों के उत्तम कामों का सेवन करने हारे (इन्द्रम्) नीति से शोभित राजा को (यजत्) प्राप्त होवे (आज्यस्य) करने योग्य न्याय की (बर्हिः) उत्तम सभा में (आ, असदत्) स्थित होवे और (वेतु) सुख को प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे पृथिवी आदि लोक प्राण आदि वायु तथा काल के अवयव महिने सब साथ वर्त्तमान हैं वैसे जो राजा और प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं ॥ ४ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर कैसे मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

होता॑ यक्ष॒दोजो॒ न वी॒र्य॑ᳪ सहो॒ द्वार॒ इन्द्र॑मवर्द्धयन् । सु॒प्रा॒य॒णा अ॒स्मिन् य॒ज्ञे वि श्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वार॒ इन्द्रा॑य मी॒ढुषे॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे जो (सुप्रायणाः) सुन्दर अवकाश वाले (द्वारः) द्वार (ओजः) जल-वेग के (न) समान (वीर्यम्) बल (सहः) सहन और (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें उन (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (द्वारः) विद्या और विनय के द्वारों को (मीढुषे) स्निग्ध वीर्यवान् (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त राजा के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य संसार में विद्वान् लोग (वि, श्रयन्ताम्) विशेष सेवन करें (आज्यस्य) जानने योग्य राज्य के विषय को (व्यन्तु) प्राप्त हों और (होता) ग्रहीता जन (यक्षत्) यज्ञ करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य इस संसार में विद्या और धर्म के द्वारों को प्रसिद्ध कर पदार्थ-विद्या को सम्यक् सेवन करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे मनुष्य सुखों को पाते हैं ॥ ५ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

होता॑ यक्षद्दु॒घे इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही। स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्समिन्द्र॑मवर्द्धतां वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (होतः) सुखदाता जन! आप जैसे (इन्द्रस्य) बिजुली की (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं की पूरक (मातरा) माता के तुल्य वर्त्तमान (मही) बड़ी (धेनू, सुवातरौ) वायु के साथ वर्त्तमान दुग्ध देने वाली दो गौ के (न) समान (दुघे) प्रतापयुक्त भौतिक और सूर्यरूप अग्नि के (तेजसा) तीक्ष्ण प्रताप से (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (वत्सम्) बालक को (वीताम्) प्राप्त हों तथा (होता) दाता (आज्यस्य) फेंकने योग्य वस्तु का (यक्षत्) सङ्ग करे और (अवर्द्धताम्) बढ़े वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो! तुम जैसे वायु से प्रेरणा किये भौतिक और विद्युत् अग्नि सूर्यलोक के तेज को बढ़ाते हैं और जैसे दुग्धदात्री गौ के तुल्य वर्त्तमान प्रतापयुक्त दिन रात सब व्यवहारों के आरम्भ और निवृत्ति कराने हारे होते हैं वैसे यत्न किया करो ॥ ६ ॥

होतेत्यस्य बृहदुक्थो गोतम ऋषिः। अश्विनौ देवते। जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒द्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒ सखा॑या ह॒विषेन्द्रं॑ भिषज्यतः। क॒वी दे॒वौ प्रचे॑तसा॒विन्द्रा॑य धत्त इन्द्रि॒यं वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥७॥

पदार्थः—हे (होतः) युक्त आहार विहार के करने हारे वैद्य जन! जैसे (होता) सुख देनेहारे आप (आज्यस्य) जानने योग्य निदान आदि विषय को (यक्षत्) सङ्गत करते हैं (दैव्या) विद्वानों में उत्तम (होतारा) रोग को निवृत्त कर सुख के देने वाले

(सखाया) परस्पर मित्र (कवी) बुद्धिमान् (प्रचेतसौ) उत्तम विज्ञान से युक्त (दैवौ) वैद्यक विद्या से प्रकाशमान (भिषजा) चिकित्सा करने वाले दो वैद्य (हविषा) यथा-योग्य ग्रहण करने योग्य व्यवहार से (इन्द्रम्) परमऐश्वर्य के चाहने वाले जीव की (भिषज्यतः) चिकित्सा करते (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (इन्द्रियम्) धन को (धत्तः) धारण करते और अवस्था को (वीताम्) प्राप्त होते हैं वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोगियों पर कृपा कर ओषधि आदि के उपाय से रोगों को निवृत्त कर ऐश्वर्य और आयुर्दा को बढ़ाते हैं वैसे तुम लोग सब प्राणियों में मित्रता की वृत्ति कर सब के सुख और अवस्था को बढ़ाओ ॥ ७ ॥

होतेत्यस्य वृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृज्जगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः । इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख चाहने वाले जन ! जैसे (होता) विद्या का देने लेने वाला अध्यापक (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (यक्षत्) प्राप्त होवे जैसे (त्रिधातवः) हाड़, मज्जा और वीर्य इन तीन धातुओं के वर्धक (अपसः) कर्मों में चेष्टा करते हुए (त्रयः) अध्यापक, उपदेशक और वैद्य (तिस्रः) तीन (देवीः) सब विद्याओं की प्रकाशिका वाणियों के (न) समान (भेषजम्) औषध को (महीः) बड़ी पूज्य (इडा) प्रशंसा के योग्य (सरस्वती) बहुत विज्ञान वाली और (भारती) सुन्दर विद्या का धारण वा पोषण करने वाली (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों के सहित (इन्द्रपत्नीः) जीवात्मा की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान वाणी (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) उन को संगत कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रशंसित विज्ञानवती और उत्तम बुद्धिमती स्त्रियां अपने योग्य पतियों को प्राप्त होकर प्रसन्न होती हैं वैसे अध्यापक उपदेशक और वैद्य लोग स्तुति ज्ञान और योगधारणायुक्त तीन प्रकार की वाणियों को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥ ८ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजंꣳसुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥९॥

पदार्थः—हे (होतः) शुभ गुणों के दाता जैसे (होता) पथ्य आहार विहार कर्त्ता जन (त्वष्टारम्) धातुवैषम्य से हुए दोषों को नष्ट करने वाले सुन्दर पराक्रम युक्त (मघोनम्) परम प्रशस्त धनवान् (पुरुरूपम्) बहुरूप (घृतश्रियम्) जल से शोभायमान (सुयजम्) सुन्दर सङ्ग करने वाले (भिषजम्) वैद्य (देवम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष का (यक्षत्) संग करता है और (आज्यस्य) जानने योग्य वचन के (इन्द्राय) प्रेरक जीव के लिये (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्वष्टा) तेजस्वी हुआ (वेतु) प्राप्त होता है वैसे तू (यज) संग कर ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो! तुम लोग आप्त सत्यवादी रोगनिवारक सुन्दर ओषधि देने धन ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले वैद्यजन का सेवन कर शरीर आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के बल को यहां के परम ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ ९ ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । स्वराडतिजगती छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳशमितारꣳशतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन्पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन! जैसे (होता) यज्ञकर्त्ता पुरुष (वनस्पतिम्) किरणों के स्वामी सूर्य के तुल्य (शमितारम्) यजमान (शतक्रतुम्) अनेक प्रकार की बुद्धि से युक्त (धियः) बुद्धि वा कर्म को (जोष्टारम्) प्रसन्न वा सेवन करते हुए पुरुष का (यक्षत्) संग करे (मध्वा) मधुर विज्ञान से (सुगेभिः) सुखपूर्वक गमन करने के आधार (पथिभिः) मार्गों करके (आज्यस्य) जानने योग्य संसार के (इन्द्रियम्) धन

को (समञ्जन्) सम्यक् प्रकट करता हुआ (स्वदाति) स्वाद लेवे और (मधुना) मधुर (घृतेन) घी वा जल से (यक्षत्) संगति के योग्य व्यवहार को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) तुम भी प्राप्त होओ ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या बुद्धि धर्म और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले धर्मयुक्त मार्गों से चलते हुए सुखों को भोगें वे औरों को भी सुख देने वाले होते हैं ॥ १० ॥

होतेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒दिन्द्र॑ᳪ स्वाहाऽऽज्य॑स्य॒ स्वाहा॒ मेद॑सः॒ स्वाहा॑ स्तो॒काना॒ᳪ स्वाहा॒ स्वाहा॑कृतीना॒ᳪ स्वाहा॑ ह॒व्यसू॑क्तीनाम् । स्वाहा॑ दे॒वा आ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णा इन्द्र॒ आज्य॑स्य॒ व्यन्तु॒ होत॒र्यज॑ ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्यादाता पुरुष ! जैसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (होता) विद्योन्नति को ग्रहण करने हारा जन (आज्यस्य) जानने योग्य शास्त्र की (स्वाहा) सत्य वाणी को (मेदसः) चिकने धातु की (स्वाहा) यथार्थ क्रिया को (स्तोकानाम्) छोटे बालकों की (स्वाहा) उत्तम प्रिय वाणी को (स्वाहाकृतीनाम्) सत्य वाणी तथा क्रिया के अनुष्ठानों की (स्वाहा) होम-क्रिया को और (हव्यसूक्तीनाम्) बहुत ग्रहण करने योग्य शास्त्रों के सुन्दर वचनों से युक्त बुद्धियों की (स्वाहा) उत्तम क्रिया युक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (यक्षत्) प्राप्त होता है जैसे (स्वाहा) सत्यवाणी करके (आज्यस्य) स्निग्ध वचन को (जुषाणाः) प्रसन्न किये हुए (आज्यपाः) घी आदि को पीने वा उससे रक्षा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष शरीर, आत्मा, सन्तान, सत्कार और विद्यावृद्धि करना चाहते हैं वे सब ओर से सुखयुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिरिन्द्र॑ᳪ सुदे॒वं दे॒वैर्वी॒रव॑त्स्ती॒र्णं वेद्या॑मवर्द्धयत् ।

वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृतꣳ राया। बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (बर्हिष्मतः) अन्तरिक्ष के साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु जलों को (अति, अगात्) उल्लङ्घन कर जाता (वसुधेयस्य) जिस में धनों का धारण होता है उस जगत् के (वसुवने) धनों के सेवने तथा (वेद्याम्) हवन के कुण्ड में (स्तीर्णाम्) समिधा और घृतादि से रक्षा करने योग्य (वस्तोः) दिन में (वृतम्) स्वीकार किया (अक्तोः) रात्रि में (भृतम्) धारण किया हवन किया हुआ द्रव्य नीरोगता को (प्र, अवर्द्धयत्) अच्छे प्रकार बढ़ावे तथा सुख को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य (राया) धन के साथ (देवम्) उत्तम गुण वाले (देवैः) विद्वानों के साथ (वीरवत्) वीरजनों के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले (सुवेषम्) सुन्दर विद्वान् का (यज) संग कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे यजमान वेदी में समिधाओं में सुन्दर प्रकार चयन किये और घृत चढ़ाये हुए अग्नि को बढ़ा अन्तरिक्षस्थ वायु जल आदि को शुद्ध कर रोग के निवारण से सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे ही सज्जन जन धनादि से सब को सुखी करते हैं ॥ १२ ॥

देवीरित्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिक् शक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

देवीर्द्वार इन्द्रꣳ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाणꣳ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (वीड्वीः) विशेष कर स्तुति के योग्य (देवीः) प्रकाशमान (द्वारः) द्वार (रेणुककाटम्) धूलि से युक्त कूप अर्थात् अन्धकुआ को (यामन्) मार्ग में छोड़ के (तरुणेन) ज्वान (मीवता) क्रूर हुए हिंसा करते हुए (च) और (कुमारेण) ब्रह्मचारी (वत्सेन) बछड़े के तुल्य जन के साथ वर्त्तमान (अर्वाणम्) चलते हुए घोड़े तथा (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (आ, अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (वसुवने) धन के सेवने योग्य (सङ्घाते) सम्बन्ध में (वसुधेयस्य) धनधारक संसार के विघ्न को (अप, नुदन्ताम्) प्रेरित करो और (व्यन्तु) प्राप्त होओ वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे बटोही जन मार्ग में वर्त्तमान कूप को छोड़ शुद्ध मार्ग कर प्राणियों को सुख से पहुंचाते हैं वैसे बाल्यावस्था में विवाहादि विघ्नों को हटा विद्या प्राप्त कराके अपने सन्तानों को सुख के मार्ग में चलावें ॥ १३ ॥

देवीत्यस्याश्विनावृषी। अहोरात्रे देवते। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वी उ॒षासा॒नक्तेन्द्रं॑ य॒ज्ञे प्र॑य॒त्य॑ह्वेताम्। दै॒वीर्विशः॒ प्राया॑सिष्टा॒ꣳ सुप्री॑ते॒ सुधि॑ते वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (सुप्रीते) सुन्दर प्रीति के हेतु (सुधिते) अच्छे हितकारी (देवी) प्रकाशमान (उषासानक्ता) रात दिन (प्रयति) प्रयत्न के निमित्त (यज्ञे) सङ्गति के योग्य यज्ञ आदि व्यवहार में (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त यजमान को (अह्वेताम्) शब्द व्यवहार कराते (वसुधेयस्य) जिस में धन धारण हो उस खजाने के (वसुवने) धन विभाग में (दैवीः) न्यायकारी विद्वानों की इन (विशः) प्रजाओं को (प्र, अयासिष्टाम्) प्राप्त होते हैं और सब जगत् को (वीताम्) प्राप्त हों वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे दिन रात नियम से वर्त्त कर प्राणियों को शब्दादि व्यवहार कराते हैं वैसे तुम लोग नियम से वर्त्त कर प्रजाओं को आनन्द दे सुखी करो ॥ १४ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्र॑मवर्धताम्। अया॑व्य॒न्याघा द्वेषा॑ꣳस्या॒न्या व॑क्ष॒द्वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒ते व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (वसुधिती) द्रव्य को धारण करने वाले (जोष्ट्री) सब पदार्थों को सेवन करते हुए (देवी) प्रकाशमान दिन रात (देवम्) प्रकाशस्वरूप (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ाते हैं उन दिन रात के बीच (अन्या) एक (अघा) अन्धकाररूप रात्रि (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त जन्तुओं को (आ, अयावि) अच्छे प्रकार पृथक् करती और (अन्या) उन दोनों में से एक प्रातःकाल रूप उषा (वसु) धन तथा

(वार्याणि) उत्तम जलों को (वक्षत्) प्राप्त करे (यजमानाय) पुरुषार्थी मनुष्य के लिये (वसुधेयस्य) आकाश के बीच (वसुवने) जिस में पृथिवी आदि का विभाग हो ऐसे जगत् में (शिक्षिते) जिन में मनुष्यों ने शिक्षा की ऐसे हुए दिन रात (वीताम्) व्याप्त होवें (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे रात दिन विभाग को प्राप्त हुए मनुष्यादि प्राणियों के सब व्यवहार को बढ़ाते हैं । उन में से रात्रि प्राणियों को सुला कर हेष आदि को निवृत्त करती और दिन उन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है वैसे प्रातःकाल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शांति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम् । इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य धारण करने योग्य ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में वर्त्तमान विद्वानों ने (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य (वसु) धन को (शिक्षिते) जिन में शिक्षा की जाये वे रात दिन (यजमानाय) संगति के लिये प्रवृत्त हुए जीव के लिये व्यवहार को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (ऊर्जाहुती) बल तथा प्राण को धारण करने और (देवी) उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले दिन रात (पयसा) जल से (दुघे) सुखों को पूर्ण और (सुदुघे) सुन्दर कामनाओं के बढ़ाने वाले होते हुए (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (अवर्धताम्) बढ़ाते हैं उन में से (अन्या) एक (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बल को (वक्षत्) पहुंचाती और (अन्या) दिनरूप वेला (सपीतिम्) पीने के सहित (सग्धिम्) ठीक समान भोजन को पहुंचाती है (दयमाने) आवागमन गुण वाली अगली पिछली दो रात्रि प्रवृत्त हुई (नवेन) नये पदार्थ के साथ (पूर्वम्) प्राचीन और (पुराणेन) पुराणे के साथ (नवम्) नवीन स्वरूप वस्तु को (अधाताम्)

धारण करें (ऊर्जयमाने) बल करते हुए (ऊर्जाहुती) अवस्था घटाने से बल को लेने हारे दिन रात (ऊर्जम्) जीवन को धारण करें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे रात दिन अपने वर्त्तमान रूप से पूर्वापररूप को जताने तथा आहार विहार को प्राप्त कराने वाले होते हैं वैसे अग्नि में होमी हुई आहुती सब सुखों को पूर्ण करने वाली होती हैं। जो मनुष्य काल की सूक्ष्म वेला को भी व्यर्थ गमावें, वायु आदि पदार्थों को शुद्ध न करें, अदृष्ट पदार्थ को अनुमान से न जानें तो सुख को भी न प्राप्त हों ॥ १६ ॥

देवा इत्यस्याश्विनावृषी । अश्विनौ देवते । भुरिग्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम् । हताघशꣳसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (दैव्या) उत्तम गुणों में प्रसिद्ध (होतारा) जगत् के धर्त्ता (देवा) सुख देने हारे वायु और अग्नि (देवम्) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्द्धताम्) बढ़ावें (हताघशंसौ) चोरों को मारने के हेतु हुए रोगों को (आ, अभार्ष्टाम्) अच्छे प्रकार नष्ट करें (यजमानाय) कर्म में प्रवृत्त हुए जीव के लिये (शिक्षितौ) जताये हुए (वसुधेयस्य) सब ऐश्वर्य के आधार ईश्वर के (वसुवने) धन दान के स्थान जगत् में (वसु) धन और (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य जलों को (वीताम्) व्याप्त होवें वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्यलोक के निमित्त वायु और बिजुली को जान और उपयोग में ला के धनों का संचय करें तो चोरों को मारने वाले होवें ॥१७॥

देवी इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पतिमिन्द्रमवर्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (रुद्रैः) प्राणों से (भारती) धारण करने हारी (दिवम्) प्रकाश को (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (यज्ञम्) सङ्गति के योग्य व्यवहार को (वसुमती) बहुत द्रव्यों वाली (इडा) प्रशंसा के योग्य वाणी (गृहान्) घरों वा गृहस्थों को धारण करती हुई (देवीः, तिस्रः) (तिस्रः, देवीः) तीन दिव्य क्रिया "यहां पुनरुक्ति आवश्यकता जताने के लिये है" (पतिम्) पालन करने हारे (इन्द्रम्) सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी जीव को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन दान में घरों को (व्यन्तु) प्राप्त हों उन को आप (यज) प्राप्त हूजिये और आप (अस्पृक्षत्) अभिलाषा कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—जैसे जल अग्नि और वायु की गति उत्तम क्रियाओं और सूर्य के प्रकाश को बढ़ती हैं वैसे जो मनुष्य सब विद्याओं का धारण करने सब क्रिया का हेतु और सब दोष गुणों को जताने वाली तीन प्रकार की वाणी को जानते हैं वे इस सब द्रव्यों के आधार संसार में लक्ष्मी को प्राप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाऽध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (त्रिबन्धुरः) भूमि आदि रूप तीन बन्धनों वाला (त्रिवरूथः) तीन सुखदायक घरों का स्वामी (नराशंसः) मनुष्यों की स्तुति करने और (इन्द्रः) ऐश्वर्य को चाहने वाला (देवः) जीव (शतेन) सैकड़ों प्रकार के कर्म से (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) विद्युद्रूप अग्नि को (अवर्धयत्) बढ़ावे । जो (शितिपृष्ठानाम्) जिनकी पीठ पर बैठने से शीघ्र गमन होते हैं उन पशुओं के बीच (आहितः) अच्छे प्रकार स्थिर हुआ (सहस्रेण) असङ्ख्य प्रकार के पुरुषार्थ से (प्र, वर्त्तते) प्रवृत्त होता है (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (अस्य) इस (इत्) ही (होत्रम्) भोजन को (अर्हतः) योग्यता रखने वाले जीव के सम्बन्धी (वसुधेयस्य) संसार के (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का रक्षक बिजुली रूप अग्नि (स्तोत्रम्) स्तुति के साधन (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (अध्वर्यवम्) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले जन को (वसुवने) धन मांगने वाले के लिये (वेतु) कमनीय करे वैसे (यज) सङ्ग कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विविध प्रकार के सुख करने वाले तीनों अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान काल का प्रबन्ध जिन में हो सके ऐसे घरों को बना उन में असंख्य सुख पा और पथ्य भोजन करके मांगने वाले के लिये यथायोग्य पदार्थ देते हैं वे कीर्ति को प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं इस वि० ॥

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्धयत् । दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवैः) दिव्य प्रकाशमान गुणों के साथ वर्त्तमान (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के तुल्य झिलकते हुए पत्तों वाला (मधुशाखः) मीठी डालियों से युक्त (सुपिप्पलः) सुन्दर फलों वाला (देवः) उत्तम गुणों का दाता (वनस्पति) सूर्य की किरणों में जल पहुंचा कर उष्णता की शान्ति से किरणों का रक्षक वनस्पति (देवम्) उत्तम गुणों वाले (इन्द्रम्) दरिद्रता के नाशक मेघ को (अवर्धयत्) बढ़ावे (अग्रेण) अग्रगामी होने से (दिवम्) प्रकाश को (अस्पृक्षत्) चः है (अन्तरिक्षम्) अवकाश, उस में स्थित लोकों और (पृथिवीम्) भूमि को (आ, अदृंहीत्) अच्छे प्रकार धारण करे (वसुधेयस्य) संसार के (वसुवने) धनदाता जीव के लिये (वेतु) उत्पन्न होवे वैसे आप (यज) यज्ञ कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वनस्पति ऊपर जल चढ़ा कर मेघ को बढ़ाते और सूर्य अन्य लोकों को धारण करता है वैसे विद्वान् लोग विद्या को चाहने वाले विद्यार्थी को बढ़ाते हैं ॥ २० ॥

देवमित्यस्याश्विनावृषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हींष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (देवम्) दिव्य (वारितीनाम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों के बीच वर्त्तमान (स्वासस्थम्) सुन्दर प्रकार स्थिति के आधार (इन्द्रेण) परमेश्वर के साथ (आसदम्) निकटवर्त्ती (बर्हिः) आकाश (देवम्) उत्तम गुण वाले (इन्द्रम्) बिजुली को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अन्या) और (बर्हिषि) अन्तरिक्ष के अवयवों को (अभि, अभूत्) सब ओर से व्याप्त होवे (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थविद्या को चाहने वाले जन के लिये (वेतु) प्राप्त होवे आप (यज) प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सब ओर से व्याप्त आकाश सब पदार्थों को व्याप्त होता और सब के समीप है वैसे ईश्वर के निकटवर्त्ती जीव को जान के इस संसार में मांगने वाले सुपात्र के लिये धनादि का दान देओ ॥ २१ ॥

देव इत्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्धयत् । स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर प्रकार इष्ट का साधक (देवः) उत्तम गुणों वाला (अग्निः) अग्नि (इन्द्रम्, देवम्) उत्तम गुणों वाले जीव को (अवर्धयत्) बढ़ावे तथा जैसे (स्विष्टम्) सुन्दर इष्ट को (कुर्वन्) सिद्ध करता और (स्विष्टकृत्) उत्तम इष्टकारी हुआ अग्नि (स्विष्टम्) अत्यन्त चाहे हुए कार्य को करता है वैसे (अद्य) आज (नः) हमारे लिये सुख को (करोतु) कीजिये (वेतु) धन को प्राप्त हूजिये और (वसुधेयस्य) सब द्रव्यों के आधार जगत् के बीच (वसुवने) पदार्थ-विद्या को चाहते हुए मनुष्य के लिये (यज) दान कीजिये ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे गुण कर्म स्वभावों करके जाना गया कर्मों में नियुक्त किया अग्नि अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वानों को वर्त्तना चाहिये ॥ २२ ॥

अग्निमित्यस्याश्विनावृषी । अग्निर्देवता । कृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम् । सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने हारे विद्वन् ! जैसे (अयम्) यह (यजमानः) यज्ञ करने हारा पुरुष (अद्य) आज (इन्द्राय) ऐश्वर्य-प्राप्ति के अर्थ (पक्तीः) पाकों को (पचन्) पकाता (पुरोडाशम्) होम के लिये पाकविशेष को (पचन्) पकाता और (छागम्) रोगों को नष्ट करने हारी बकरी को (बध्नन्) बांधता हुआ (होतारम्) यज्ञ करने में कुशल (अग्निम्) तेजस्वी विद्वान् को (अवृणीत) स्वीकार करे। जैसे (वनस्पतिः) किरणसमूह का रक्षक (देवः) प्रकाशयुक्त सूर्यमण्डल (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (छागेन) छेदन करने के साथ (अद्य) इस समय (अभवत्) प्रसिद्ध होवे (मेदस्तः) चिकनाई वा गीलेपन से (तम्) उस हुत पदार्थ को (अघत्) खाता (पचता) सब पदार्थों को पकाते हुए सूर्य से (सूपस्थाः) सुन्दर उपस्थान करने वाले हों वैसे (प्रति, अग्रभीत्) ग्रहण करता है (पुरोडाशेन) होम के लिये पकाये पदार्थ विशेष से (अवीवृधत्) अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे (त्वाम्) आपको (अद्य) मैं बढ़ाऊं और आप भी वैसे ही वर्त्ताव कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे रसोइये लोग साग आदि को काट कूट के अन्न और कढ़ी आदि बनाते हैं वैसे सूर्य सब पदार्थों को पकाता है जैसे सूर्य वर्षा के द्वारा सब पदार्थों को बढ़ाता है वैसे सब मनुष्यों को चाहिये कि सेवादि के द्वारा मंत्रार्थ देखने वाले विद्वानों को बढ़ावें ॥ २३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः। अग्निर्देवता। स्वराड्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॑नं म॒हद्यशः॒ सुस॑मिद्धं॒ वरे॑ण्यम॒ग्निमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। गा॒य॒त्रीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्र्यवि॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) विद्यादि के ग्रहण करने हारे जन ! आप जैसे (होता) दाता पुरुष (अग्निम्) अग्नि के तुल्य (समिधानम्) सम्यक् प्रकाशमान (सुसमिद्धम्) सुन्दर शोभायमान (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य (महत्) बड़ी (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट अवस्था के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य करने वाले योग (गायत्रीम्) सत्य अर्थों का प्रकाश करने वाली गायत्री (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) धन वा श्रोत्रादि इन्द्रियों (त्र्यविम्) तीन प्रकार से रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) सङ्ग करे और (आज्यस्य) विज्ञान के रस को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप भी (यज) समागम कीजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष सत् विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे मनुष्य कीर्ति को पाकर आप सुखी होते और दूसरों को सुखी करते हैं ॥ २४ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम् । उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (होता) ग्रहण करने हारे यज्ञ के कर्त्ता ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहण करने वाला जन (तनूनपातम्) शरीरादि के रक्षक (उद्भिदम्) शरीर का भेदन कर निकलने वाले (गर्भम्) गर्भ को जैसे (अदितिः) माता धारण करती है वैसे (यम्) जिसको (दधे) धारण करता है (वयोधसम्) अवस्था के धारक (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) सूर्य को (यक्षत्) हवन का पदार्थ पहुंचाता है (आज्यस्य) विज्ञान सम्बन्धी (उष्णिहम्) उष्णिक् छन्द से कहे हुए (छन्दः) बलकारी (इन्द्रियम्) जीव के श्रोत्रादि चिह्नों और (दित्यवाहम्) खण्डितों को पहुंचाने वाले (गाम्) वाणी और (वयः) सुन्दर २ पक्षियों को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इन सब को आप (यज) सङ्गत कीजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे माता गर्भ और उत्पन्न हुए बालक की रक्षा करती है वैसे शरीर और इन्द्रियों की रक्षा करके विद्या और आयुर्दा को बढ़ाओ ॥ २५ ॥

होतेत्यस्य सरस्वती ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यं सहः सोममिन्द्रं वयोधसम् । अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता

पुरुष (वृत्रहन्तमम्) मेघ को अत्यन्त फाटने वाले सूर्य का जैसे, वैसे (इडाभिः) अच्छी शिक्षित वाणियों से (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य (ईडितम्) प्रशंसित (सहाः) बल (ईड्यम्) प्रशंसा के योग्य (सोमम्) सोम आदि ओषधिगण और (वयोधसम्) मनोहर प्राणों के धारक (इन्द्रम्) जीवात्मा को (यक्षत्) सङ्गत करे और (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि (अनुष्टुभम्) अनुकूल थांभने वाली (छन्दः) स्वतन्त्रता से (पञ्चाविम्) पांच प्राणों की रक्षा करने वाली (गाम्) पृथिवी और (आज्यस्य) जानने योग्य जगत् के बीच (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) प्राप्त होवे वैसे आप इन सब को (यज) सङ्गत कीजिये ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य के तुल्य प्रशंसित हो के विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य का धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ २६ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षत्सु॒बर्हि॑षं पूष॒ण्वन्त॒मम॑र्त्यꣳ॒ सीद॑न्तं ब॒र्हिषि॑ प्रि॒येऽमृ॒तेन्द्रं॒ वयो॒धस॑म् । बृ॒ह॒तीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्रि॑व॒त्सं गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने वाले पुरुष ! तू जैसे वह (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (अमृता) नाशरहित (बर्हिषि) आकाश के तुल्य व्याप्त (प्रिये) चाहने योग्य परमेश्वर के स्वरूप में (सीदन्तम्) स्थिर हुए (अमर्त्यम्) शुद्ध स्वरूप से मृत्युरहित (पूषण्वन्तम्) बहुत पोढ़ा (सुबर्हिषम्) सुन्दर अवकाश वा जलों वाला (वयोधसम्) व्याप्ति को धारण करने हारे (इन्द्रम्) अपने जीवस्वरूप का (यक्षत्) सङ्ग करे वह (आज्यस्य) जानने योग्य विज्ञान का सम्बन्धी (बृहतीम्) बृहती (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) श्रोत्र आदि इन्द्रिय (त्रिवत्सम्) कर्म, उपासना, ज्ञान जिस को पुत्रवत् हैं उस वेदसम्बन्धी (गाम्) प्राप्त होने योग्य बोध तथा (वयः) मनोहर सुख को (दधत्) धारण करता हुआ कल्याण को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे इनको (यज) सङ्गत करे ॥२७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य वेदपाठी ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष का सेवन करते हैं वे सब अभीष्ट सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ २७ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्स्वर्चस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने वाले पुरुष ! तू जैसे (इह) इस संसार में (होता) ग्रहीता जन (स्वचस्वतीः) निकलने के अवकाश वाले (सुप्रायणाः) सुन्दर निकलना जिन में हो (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने हारे (हिरण्ययीः) सुनहरी चित्रों वाले (देवीः) उत्तम गुणयुक्त (द्वारः) द्वारों को (वयोधसम्) कामना के योग्य विद्या तथा बोध आदि के धारण करने हारे (ब्रह्माणम्) चारों वेद के ज्ञाता (इन्द्रम्) विद्यारूप ऐश्वर्य वाले विद्वान् को (पंक्तिम्) पंक्ति (छन्दः) छन्द (इन्द्रियम्) धन (तुर्यवाहम्) चौगुणा बोझ के चलाने हारे (गाम्) बैल और (वयः) गमन को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि के सम्बन्धी इन उक्त पदार्थों को (यक्षत्) संगत करें और जैसे मनुष्य को (व्यन्तु) प्राप्त होवें इस लिये को (यज) प्राप्त हो ॥ २८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य लोग अत्युत्तम सुन्दर द्वारों वाले सुवर्णादि पदार्थों से युक्त घरों को बना के वहां निवास और विद्या का अभ्यास करें वे रोगरहित होते हैं ॥ २८ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अश्विनौ देवते । निचृदतिशक्करी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे पुरुष ! तू जैसे (इह) इस जगत् में (बृहती) बड़े (उभे) दोनों (सुशिल्पे) सुन्दर शिल्प कार्य जिन में हों वे (दर्शते) देखने योग्य (नक्तोषासा) रात्रि दिन के (न) समान (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले अध्यापक उपदेशक दो विद्वान् (विश्वम्) सब (वयोधसम्) कामना के आधार (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (त्रिष्टुभम्) त्रिष्टुप् छन्द का अर्थ (छन्दः) बल (वयः) अवस्था (इन्द्रियम्)

श्रोत्रादि इन्द्रिय और (पष्ठवाहम्) पीठ पर भार ले चलने वाले (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (श्राज्यस्य) प्राप्त होने योग्य घृतादि पदार्थ के सम्बन्धी इन को (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहण करता पुरुष (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य करने हारे शिल्प कार्यों को इस जगत् में सिद्ध करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ २९ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अश्विनौ देवते । निचृदतिशक्करी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् । जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे पुरुष तू जैसे (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्धी (प्रचेतसा) उत्कृष्ट विज्ञान वाले (सयुजा) साथ योग रखने वाले (दैव्या) उत्तम कर्मों में साधु (होतारा) दाता (कवी) बुद्धिमान् पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने हारे (उत्तमम्) उत्तम (यशः) कीर्त्ति (वयोधसम्) अभीष्ट सुख के धारक (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य (जगतीम्, छन्दः) जगती छन्द (वयः) विज्ञान (इन्द्रियम्) धन और (अनड्वाहम्) गाड़ी चलाने हारे (गाम्) बैल को (वीताम्) प्राप्त हों जैसे (श्राज्यस्य) जानने योग्य पदार्थ के बीच इन उक्त सब का (दधत्) धारण करता हुआ (होता) ग्रहण करता जन (यक्षत्) प्राप्त होवे वैसे (यज) प्राप्त हूजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि मनुष्य पुरुषार्थ करें तो विद्या कीर्त्ति और धन को प्राप्त होके माननीय होवें ॥ ३० ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । वायवो देवताः । भुरिक्शक्करी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम् । विराजं छन्द इहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! जैसे (इह) इस जगत् में जो (होता)

शुभ गुणों का ग्रहीता जन (तिस्रः) तीन (हिरण्ययीः) सुवर्ण के तुल्य प्रिय (पेशस्वतीः) सुन्दर रूपों वाली (भारतीः) धारण करने हारी (बृहतीः) बड़ी गम्भीर (महीः) महान् पुरुषों ने ग्रहण की (देवीः) दानशील स्त्रियों तीन प्रकार की वाणियों (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (पतिम्) रक्षक (इन्द्रम्) राजा (विराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक (छन्दः) विराट् छन्द (वयः) कामना के योग्य वस्तु और (इन्द्रियम्) जीवों ने सेवन किये सुख को (वहत्) प्राप्त होता है वह (धेनुम्) दूध देने हारी (गाम्) गौ के (न) समान हम को (व्यन्तु) प्राप्त हो वैसे इन सब को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य विज्ञान के फल को (यज) प्राप्त हूजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—जो मनुष्य कर्म उपासना और विज्ञान के जानने वाली वाणी को जानते हैं वे बड़ी कीर्ति को प्राप्त होते हैं। जैसे धेनु बछड़ों को तृप्त करती हैं वैसे विद्वान् लोग मूर्ख बालबुद्धि लोगों को तृप्त करते हैं ॥ २१ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक्शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे पुरुष ! जैसे (होता) शुभ गुणों का ग्रहीता पुरुष (सुरेतसम्) सुन्दर पराक्रम वाले (त्वष्टारम्) प्रकाशमान (पुष्टिवर्धनम्) जो पुष्टि से बढ़ाता उस (रूपाणि) सुन्दर रूपों को (पृथक्) अलग २ (बिभ्रतम्) धारण करने हारे (वयोधसम्) बड़ी अवस्था वाले (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (द्विपदम्) दो पग वाले मनुष्यादि (छन्दः) स्वतन्त्रता (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय (उक्षाणम्) वीर्य सींचने में समर्थ (गाम्) ज्वान बैल के (न) समान (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) विज्ञान के सम्बन्धी पदार्थ का (यक्षत्) होम करे तथा (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) होम कीजिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ाता है वैसे गृहस्थ लोग स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को

बढ़ावें । जो सन्तानों की चाहना करें तो शरीरादि की पुष्टि अवश्य करनी चाहिये। जैसे सूर्य रूप को जताने वाला है वैसे विद्वान् पुरुष विद्या और अच्छी शिक्षा का प्रकाश करने वाला होता है ॥ ३२ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्ष॒द्वन॒स्पति॑ᳩ शमि॒तार॑ᳩ श॒तक्र॑तुᳩ हिर॑ण्यपर्णमु॒क्थिन॑ᳩ रश॒नां बिभ्र॑तं व॒शिं भग॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । क॒कुभं॒ छन्द॑ इ॒हेन्द्रि॒यं व॒शां वे॒हतं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (होतः) दान देने हारे जन ! जैसे (इह) इस संसार में (आज्यस्य) घी आदि उत्तम पदार्थ का होता होम करने वाला (शमितारम्) शान्तिकारक (हिरण्यपर्णम्) तेजरूप रक्षाओं वाले (वनस्पतिम्) किरण पालक सूर्य के तुल्य (शतक्रतुम्) बहुत बुद्धि वाले (उक्थिनम्) प्रशस्त कहने योग्य वचनों से युक्त (रशनाम्) अङ्गुलि को (बिभ्रतम्) धारण करते हुए (वशिम्) वश में करने हारे (भगम्) सेवने योग्य ऐश्वर्य (वयोधसम्) अवस्था के धारक (इन्द्रम्) जीव (ककुभम्) अर्थ के निरोधक (छन्दः) प्रसन्नताकारक (इन्द्रियम्) धन (वशाम्) वन्ध्या तथा (वेहतम्) गर्भ गिराने हारी (गाम्) गौ और (वयः) अभीष्ट वस्तु को (दधत्) धारण करता हुआ (यक्षत्) यज्ञ करे तथा (वेतु) चाहना करे वैसे (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य विद्या धर्म और उत्तम शिक्षा के प्रकाश करने हारे बुद्धिमान् अपने अङ्गों को धारण करते हुए विद्या और ऐश्वर्य को प्राप्त हो के औरों को देते वे प्रशंसा पाते हैं ॥ ३३ ॥

होतेत्यस्य सरस्वत्यृषिः । अग्निर्देवता । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

होता॑ यक्षत्स्वा॒हाकृ॑तीर॒ग्निं गृ॒हप॑तिं पृथ॒ग्वरु॑णं भेष॒जं क॒विं क्ष॒त्रमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म् । अति॑छन्दसं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं बृ॒हदृ॑ष॒भं गां वयो॒ दध॒द्व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) यज्ञ करने हारे जन ! तू जैसे (होता) ग्रहणकर्ता पुरुष (स्वाहाकृतीः) वाणी आदि से सिद्ध किया (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान

तेजस्वी (गृहपतिम्) घर के रक्षक (वरुणम्) श्रेष्ठ (पृथक्) अलग (भेषजम्) औषध (कविम्) बुद्धिमान् (वयोधसम्) मनोहर अवस्था को धारण करने हारे (इन्द्रम्) राजा (क्षत्रम्) राज्य (अतिछन्दसम्) अतिजगती आदि छन्द से कहे हुए अर्थ (छन्दः) गायत्री आदि छन्द (बृहत्) बड़े (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय (ऋषभम्) अतिउत्तम (गाम्) बैल और (वयः) अवस्था को (दधत्) धारण करता हुआ (आज्यस्य) घी की आहुती का (यजतु) होम करे और जैसे लोग इन सब को (व्यन्तु) चाहें वैसे (यज) होम यज्ञ कीजिये ॥ ३४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जो मनुष्य वेदस्थ गायत्री आदि छन्द तथा अतिजगती आदि अतिछन्दों को पढ़ के अर्थ जानने वाले होते हैं वे सब विद्याओं को प्राप्त होजाते हैं ॥ ३४ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य बढ़ते हैं इस वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्व॑यो॒धसं॑ दे॒वमिन्द्र॑मवर्धयत् । गा॒य॒त्र्या छन्द॑सेन्द्रि॒यं चक्षु॒रिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (देवम्) उत्तम गुणों वाला (बर्हिः) अन्तरिक्ष (वयोधसम्) अवस्थावर्धक (देवम्) उत्तम रूप वाले (इन्द्रम्) सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है अर्थात् चलने का अवकाश देता है और जैसे (गायत्र्या, छन्दसा) गायत्री छन्द से (इन्द्रियम्) जीव के चिह्न (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय को और (वयः) जीवन को (इन्द्रे) जीव में (दधत्) धारण करता हुआ (वसुधेयस्य) द्रव्य के आधार संसार के (वसुवने) धन का विभाग करने हारे मनुष्य के लिये (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (यज) समागम कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है वैसे वेदों का अभ्यास करने में बुद्धि बढ़ती है । जो इस जगत् में वेद के द्वारा सब सत्य विद्याओं को जानें वे सब ओर से बढ़ें ॥ ३५ ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस वि० ॥

दे॒वीर्द्वारो॑ वयो॒धस॒ᳬ शुचि॒मिन्द्र॑मवर्धयन् । उ॒ष्णिहा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं प्रा॒णमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ३६ ॥

पदार्थः-हे विद्वन्! जैसे (देवीः) प्रकाशमान हुए (द्वारः) जाने आने के लिये द्वार (वयोधसम्) जीवन के आधार (शुचिम्) पवित्र (इन्द्रम्) शुद्ध वायु (इन्द्रियम्) जीवने से सेवे हुए (प्राणम्) प्राण को (इन्द्रे) जीव के निमित्त (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन को मांगने वाले के लिये (अवर्धयत्) बढ़ाते हैं और (व्यन्तु) शोभायमान होवें वैसे (उष्णिहा, छन्दसा) उष्णिक् छन्द से इन पूर्वोक्त पदार्थों और (वयः) कामना के योग्य प्रिय पदार्थों को (दधत्) धारण करते हुए (यज) हवन कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो घर समुहे द्वार वाले जिन में सब ओर से वायु आवे ऐसे हैं उनमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और निरोगता बढ़ती है इसलिये बहुत द्वारों वाले बड़े २ घर बनाने चाहियें ॥ ३६ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

दे॒वी उ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्द्धताम्। अ॒नु॒ष्टुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ ३७ ॥

पदार्थः-हे विद्वन् जन! जैसे (उसासानक्ता) दिन रात्रि के समान (देवी) सुन्दर शोभायमान पढ़ाने पढ़ने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) जीवन का धारण करने वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) उत्तम पतिव्रता स्त्री (देवम्) उत्तम स्त्रीव्रत लम्पटतादि दोषरहित पति को पढ़ावे वैसे (अवर्धताम्) पढ़ावें और जैसे (वसुधेयस्य) धनाऽऽधार कोष के (वसुवने) धन को चाहने वाले के अर्थ (वीताम्) उत्पत्ति करें वैसे (वयः) प्राणों के धारण को (दधत्) पुष्ट करते हुए (अनुष्टुभा, छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये (बलम्) बल को (यज) सङ्गत कीजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो! जैसे प्रीति से स्त्री पुरुष और व्यवस्था से दिन रात बढ़ते हैं वैसे प्रीति और धर्म की व्यवस्था से आप लोग बढ़ा करें ॥ ३७ ॥

देवीत्यस्य सरस्वत्यृषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगतिजगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अब स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

दे॒वी जोष्ट्री॒ वसु॑धिती दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्द्धताम्।

बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (देवी) तेजस्विनी (जोष्ट्री) प्रीति वाली (वसुधिती) विद्या को धारण करने हारी पढ़ने पढ़ाने वाली दो स्त्रियां (वयोधसम्) प्राप्त होके (अवर्धताम्) उन्नति को प्राप्त हों (बृहत्या, छन्दसा) बृहतीछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा में (इन्द्रियम्) ईश्वर ने रचे हुए (श्रोत्रम्) शब्द सुनने के हेतु कान को (वीताम्) व्याप्त हों वैसे (वसुधेयस्य) धन के आधार कोष के (वसुवने) धन की चाहना के अर्थ (वयः) उत्तम मनोहर सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञादि कीजिये॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां अपने सन्तानों अन्य कन्याओं वा स्त्रियों को विद्या तथा शिक्षा से बढ़ाती हैं वैसे ही पुरुष परमप्रीति से विद्या के विचार के साथ अपने सन्तानों को बढ़ावें और आप बढ़ें ॥ ३८ ॥

देवी इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृच्छक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष जैसे (दुघे) पदार्थों को पूर्ण करने और (सुदुघे) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने हारी (देवी) सुगन्धि को देने वाली (ऊर्जाहुती) अच्छे संस्कार किये हुए अन्न की दो आहुती (पयसा) जल की वर्षा से (वयोधसम्) प्राणधारी (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवी) पतिव्रता विदुषी स्त्री (देवम्) व्यभिचारादि दोषरहित पति को बढ़ाती है वैसे (अवर्धताम्) बढ़ावें (पङ्क्त्या, छन्दसा) पङ्क्तिछन्द से (इन्द्रे) जीवात्मा के निमित्त (शुक्रम्) पराक्रम और (इन्द्रियम्) धन को (वीताम्) प्राप्त करें वैसे (वसुधेयस्य) धन के कोष के (वसुवने) धन का सेवन करने हारे के लिये (वयः) सुन्दर ग्राह्यसुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ३९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि में छोड़ी हुई आहुति

मेघमण्डल को प्राप्त हो फिर आकर शुद्ध किये हुए जल से सब जगत् को पुष्ट करती है वैसे विद्या के ग्रहण और दान से सब को पुष्ट किया करो ॥ ३९ ॥

देवा इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्द्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (होतारा) दानशील अध्यापक उपदेशक लोगो ! जैसे (दैव्या) कामना के योग्य पदार्थ बनाने में कुशल (देवा) चाहने योग्य दो विद्वान् (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) जीवात्मा को जैसे (देवौ) शुभ गुणों की चाहना करते हुए माता पिता (देवम्) अभीष्ट पुत्र को बढ़ावें वैसे (अवर्द्धताम्) बढ़ावें (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन सेवने वाले जन के लिये (वीताम्) प्राप्त हूजिये तथा हे विद्वन् पुरुष ! (त्रिष्टुभा, छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (त्विषिम्) प्रकाशयुक्त (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय और (वयः) सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कर ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पढ़ने और उपदेश करने हारे विद्यार्थी और शिष्यों को तथा माता पिता सन्तानों को पढ़ाते हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष वेद विद्या से सब को बढ़ावें ॥ ४० ॥

देवीरित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग् जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब राजप्रजा का धर्म वि० ॥

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन् । जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (तिस्रः) तीन (देवीः) तेजस्विनी विदुषी (तिस्रः) तीन पढ़ाने, उपदेश करने और परीक्षा लेने वाली (देवीः) विदुषी स्त्री (वयोधसम्) जीवन धारण करने हारे (पतिम्) रक्षक स्वामी (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य वाले चक्रवर्त्ती राजा को (अवर्धयन्) बढ़ावें तथा (व्यन्तु) व्याप्त होवें वैसे (जगत्या, छन्दसा) जगती छन्द से (इन्द्रे) अपने आत्मा में (शूषम्, वयः) शत्रुसेना में व्यापक होने वाले अपने बल तथा (इन्द्रियम्) कान आदि इन्द्रिय को (दधत्) धारण करते हुए (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन-दाता के अर्थ (यज) अग्निहोत्रादि यज्ञ कीजिये ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इन की यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजा-पुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥ ४१ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

देवो नराशंसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । विराजा छन्दसेन्द्रियꣳ रूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसा करने योग्य (देवः) विद्वान् (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (इन्द्रम्) राजा को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्वान् को वैसे (अवर्द्धयत्) बढ़ावे (विराजा, छन्दसा) विराट् छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (रूपम्) सुन्दर रूप वाले (इन्द्रियम्) श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त करे वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन को सेवने वाले जन के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) सङ्गम वा दान कीजिये ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि कभी आपस में ईर्ष्या करके एक दूसरे की हानि नहीं करें किन्तु सदैव प्रीति से उन्नति किया करें ॥ ४२ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (वनस्पतिः) वनों का रक्षक वट आदि (देवः) उत्तम गुणों वाला (वयोधसम्) अधिक उमर वाले (देवम्) उत्तम गुणयुक्त (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को जैसे (देवः) उत्तम सभ्य जन (देवम्) उत्तम स्वभाव वाले विद्वान् को वैसे (अवर्द्धयत्) बढ़ावे (द्विपदा) दो पाद वाले (छन्दसा) छन्द से (इन्द्रे) आत्मा में (भगम्) ऐश्वर्य तथा (इन्द्रियम्) धन को (वेतु) प्राप्त हो वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के

(वसुवने) धन को देने हारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करता हुआ तू (यज) यज्ञ कर ॥ ४३ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम को जैसे वनस्पति पुष्कल जल को नीचे पृथिवी से आकर्षण कर के वायु और मेघमण्डल में फैला के सब घास आदि की रक्षा करते और जैसे राजपुरुष राजपुरुषों की रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

देवमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वं ब॒र्हिर्वारि॑तीनां दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वं दे॒वम॑वर्धयत् । क॒कुभा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं यश॒ इन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जन ! जैसे (वारितीनाम्) अन्तरिक्ष के समुद्र का (देवम्) उत्तम (बर्हिः) जल (वयोधसम्) बहुत अवस्था वाले (देवम्) उत्तम (इन्द्रम्) राजा को और (देवम्) उत्तम गुणवान् (देवम्) प्रकाशमान प्रत्येक जीव को (अवर्धयत्) बढ़ाता है (ककुभा, छन्दसा) ककुप्छन्द से उत्तम ऐश्वर्य के निमित्त (यशः) कीर्त्ति तथा (इन्द्रियम्) जीव के चिह्नरूप श्रोत्रादि इन्द्रिय को (वेतु) प्राप्त होवे वैसे (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन को सेवने हारे के लिये (वयः) अभीष्ट सुख को (दधत्) धारण करते हुए (यज) यज्ञ कीजिये ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे जल समुद्रों को भर और जीवों की रक्षा करके मोती आदि रत्नों को उत्पन्न करता है वैसे धर्म से धन के कोष को पूर्ण कर और अन्य दरिद्रियों की सम्यक् रक्षा करके कीर्त्ति को बढ़ाओ ॥ ४४ ॥

देव इत्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । स्वराडतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वो अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्धयत् । अति॑छन्दसा॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यं क्ष॒त्रमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (स्विष्टकृत्) सुन्दर अभीष्ट को सिद्ध करने हारा (देवः)

सर्वेश (अग्निः) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर (वयोधसम्) अवस्था के धारक (देवम्) धार्मिक (इन्द्रम्) जीव को जैसे (देवः) विद्वान् (देवम्) विद्यार्थी को वैसे (अवर्धयत्) बढ़ाता है (अतिछन्दसा, छन्दसा) अतिजगती आदि आनन्दकारक छन्द से (इन्द्रे) विद्या विनय से युक्त राजा के निमित्त (वसुधेयस्य) धन कोष के (वसुवने) धन के दाता के लिये (वयः) मनोहर वस्तु (क्षत्रम्) राज्य और (इन्द्रियम्) जीवने से सेवन किये हुए इन्द्रिय को (दधत्) धारण करता हुआ (वेतु) व्याप्त होवे वैसे (यज) यज्ञादि उत्तम कर्म कीजिये ॥ ४५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने अपनी दया से सब पदार्थों को उत्पन्न कर और जीवों के लिये समर्पण करके जगत् की वृद्धि की है वैसे विद्या, विनय, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ और धर्म के अनुष्ठानों से राज्य को बढ़ाओ ॥ ४५ ॥

अग्निमित्यस्य सरस्वत्यृषिः । इन्द्रो देवता । आकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न्पुरो॒डाशं॑म्बध्नन्निन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छाग॑म् । सू॒प॒स्था अ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभव॒दिन्द्रा॑य वयो॒धसे॒ छागे॑न । अघ॑त्तं॒ मेद॒स्तः प्रति॑ प॒चताग्र॑भीद॒वी॑वृधत्पु॒रो॒डाशे॑न त्वाम॒द्य ऋ॑षे ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे (ऋषे) मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे (अयम्) (यजमानः) यज्ञ करने हारा (अद्य) इस समय (पक्तीः) नाना प्रकार के पाकों को (पचन्) पकाता और (पुरोडाशम्) यज्ञ में होमने के पदार्थ को (पचन्) पकाता हुआ (अग्निम्) तेजस्वि (होतारम्) होता को (अद्य) आज (अवृणीत) स्वीकार करे वैसे (वयोधसे) सब के जीवन को बढ़ाने हारे (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (छागम्) छेदन करने वाले बकरी आदि पशु को (बध्नन्) बांधते हुए स्वीकार कीजिये जैसे आज (वनस्पतिः) वनों का रक्षक (देवः) विद्वान् (वयोधसे) अवस्थावर्धक (इन्द्राय) शत्रुविनाशक राजा के लिये (छागेन) छेदन के साथ उद्यत (अभवत्) होवे वैसे सब लोग (सूपस्थाः) सुन्दर प्रकार समीप रहने वाले हों जैसे (पचता) पकाये हुए (पुरोडाशेन) यज्ञ पाक से (मेदस्तः) चिकनाई से (त्वाम्) आप को (प्रति, अग्रभीत्) ग्रहण करे और (अवीवृधत्) बढ़े वैसे हे यजमान ! और होता लोगो तुम दोनों यज्ञ के शेष भाग को (अघत्तम्) खाओ ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे रसोइये लोग उत्तम अन्न व्यञ्जनों को बना के भोजन करावें वैसे ही भोक्ता लोग उन का मान्य करें जैसे बकरी आदि पशु घास आदि को खाके सम्यक् पचा लेते हैं वैसे ही भोजन किये हुए अन्नादि को पचाया करें ॥ ४६ ॥

इस अध्याय में होता के गुणों, वाणी और अश्वियों के गुणों, फिर भी होता के कर्त्तव्य, यज्ञ की व्याख्या और विद्वानों की प्रशंसा को कहा है इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

समिद्ध इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता ।
त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उनतीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के पहिले मन्त्र में मनुष्यों
को अग्नि जलादि से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

समि॑द्धो अ॒ञ्जन् कृद॑रं मती॒नां घृ॒तम॑ग्ने॒ मधु॑म॒त् पिन्व॑मानः ।
वा॒जी वह॑न् वा॒जिनं॑ जातवेदो दे॒वानां॑ वक्षि प्रि॒यमा स॒धस्थ॑म् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् जन ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् जलाया (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ अग्नि (मतीनाम्) मनुष्यों के (कृदरम्) पेट और (मधुमत्) बहुत उत्तम गुणों वाले (घृतम्) जल वा घी को (पिन्वमानः) सेवन करता हुआ जैसे (वाजी) वेगवान् मनुष्य (वाजिनम्) शीघ्रगामी घोड़े को (वहन्) चलाता वैसे (देवानाम्) विद्वानों के (सधस्थम्) साथ स्थिति को (आ) प्राप्त करता है वैसे (प्रियम्) प्रीति के निमित्त स्थान को (वक्षि) प्राप्त कीजिये ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य जाठराग्नि को तेज रक्खें और बाहर के अग्नि को कलाकौशलादि में युक्त किया करें तो यह अग्नि घोड़े के तुल्य सवारियों को देशान्तर में शीघ्र पहुंचावे ॥ १ ॥

घृतेनेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

घृतेनाऽञ्जन्त्सं पथो देवयानान्प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (सप्ते) घोड़े के समान वेग से वर्त्तमान विद्वान् जन! जैसे (वाजी, अपि) वेगवान् भी अग्नि (घृतेन) घी वा जल से (अञ्जन्) प्रकट हुआ (देवयानान्) विद्वान् लोग जिन में चलते हैं उन (पथः) मार्गों को (सम, एतु) सम्यक् प्राप्त होवे उस को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए आप (देवान्) विद्वानों को (एहि) प्राप्त हूजिये जिस से (त्वा) आपके (अनु) अनुकूल (प्रदिशः) सब दिशा विदिशाओं को (सचन्ताम्) सम्बन्ध करें आप (अस्मै) इस (यजमानाय) यज्ञ करने वाले पुरुष के लिये (स्वधाम्) अन्न को (धेहि) धारण कीजिये ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष अग्नि और जलादि से युक्त किये भाफ से चलनेवाले यानों से शीघ्र मार्गों में जा आके सब दिशाओं में भ्रमण करें वे वहां २ सर्वत्र पुष्कल अन्नादि को प्राप्त कर बुद्धि से कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥ २ ॥

ईड्य इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अग्निर्देवता। पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते। अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) प्रशंसित वेग वाले (सप्ते) घोड़े के तुल्य पुरुषार्थी उत्साही कारीगर विद्वन्! जिस कारण (जातवेदाः) प्रसिद्ध भोगों वाले (सजोषाः) समान प्रीतियुक्त हुए आप (वसुभिः) पृथिवी आदि (देवैः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के साथ (प्रीतम्) प्रशंसा को प्राप्त (वह्निम्) यज्ञ में होमे हुए पदार्थों को मेघमण्डल में पहुंचाने वाले अग्नि को (वहतु) प्राप्त कीजिये और जिस (त्वा) आप को (अग्निः) अग्नि पहुंचावे। इसलिये आप (ईड्यः) स्तुति के योग्य (च) भी (असि) हैं (वन्द्यः) नमस्कार करने योग्य (च) भी हैं (च) और (आशुः) शीघ्रगामी (च) तथा (मेध्यः) समागम करने योग्य (असि) हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि विकारों से सवारी आदि को रच के उस में वेगवान् पहुंचाने वाले अग्नि को संप्रयुक्त करें वे प्रशंसा के योग्य मान्य होवें ॥ ३ ॥

स्तीर्णमित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! हम लोग जैसे (पृथिव्याम्) भूमि में (उरु) बहुत (पृथु) विस्तीर्ण (प्रथमानम्) प्रख्यात (स्तीर्णम्) सब ओर से अङ्ग उपाङ्गों से पूर्ण यान और (बर्हिः) जल वा अन्तरिक्ष को (जुषाणा) सेवन करती हुई (सजोषाः) समान गुण वालों ने सेवन की (देवेभिः) दिव्य पदार्थों से (युक्तम्) युक्त (स्योनम्) सुख को (कृण्वाना) करती हुई (अदितिः) नाशरहित बिजुली सब को (सुविते) प्रेरणा किये यन्त्र में (दधातु) धारण करे उस को (सुष्टरीमा) सुन्दर रीति से विस्तार करे वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में व्याप्त अखण्डित बिजुली विस्तृत बड़े २ कार्यों को सिद्ध कर सुख को उत्पन्न करती है उस को कार्यों में प्रयुक्त कर प्रयोजनों की सिद्धि करो ॥ ४ ॥

एता इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
कैसे द्वारों वाले घर हों इस वि० ॥

एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः । ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वः) तुम्हारी (एताः) ये दीप्ति (सुभगाः) सुन्दर ऐश्वर्यदायक (विश्वरूपाः) विविध प्रकार के रूपों वाले (ऋष्वाः) बड़े ऊंचे चौड़े (कवषाः) जिन में बोलने से शब्द की प्रतिध्वनि हो (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभायुक्त (सतीः) हुए (देवीः) रंगों से चिलचिलाते हुए (उत्, आतैः) उत्तम रीति से निरन्तर जाने के हेतु (पक्षोभिः) वायें दाहिने भागों से (श्रयमाणाः) सेवित पक्षियों की पङ्क्तियों के तुल्य (सुप्रायणाः) सुख से जाने के आधार (द्वारः) द्वार (वि, भवन्तु) सर्वत्र घरों में हों वैसे (उ) ही आप लोग भी बनावें ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को चाहिये कि ऐसे द्वारों वाले घर बनावें

कि जिन से वायु न रुके। जैसे आकाश में विना रुकावट के पक्षी सुखपूर्वक उड़ते हैं वैसे उन द्वारों में जावें आवें ॥ ५ ॥

अन्तरेत्यस्य वृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। मनुष्या देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः॥ धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने। उषासा वाथं सुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या के प्रचारक दो विद्वानो ! जैसे मैं (अन्तरा) भीतर शरीर में (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदान (चरन्ती) प्राप्त होते हुए (यज्ञानाम्) सङ्गति के योग्य पदार्थों के (मुखम्) मुख्य भाग को (अभि, संविदाने) सब ओर से सम्यक् ज्ञान के हेतु (सुहिरण्ये) सुन्दर तेजयुक्त (सुशिल्पे) सुन्दर कारीगरी जिस में हो (उषासा) प्रातः तथा सायंकाल की वेलाओं को (ऋतस्य) सत्य के (योनौ) निमित्त (इह) इस घर में (सादयामि) स्थापन करता हूं वैसे (वाम्) तुम दोनों मेरे लिये स्थापन करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे सवेरे तथा सायंकाल की वेला शुद्ध स्थान में सेवी हुई मनुष्यों को प्राण उदान के समान सुखकारिणी होती हैं वैसे शुद्ध देश में बनाया बड़े २ द्वारों वाला घर सब प्रकार सुखी करता है ॥ ६ ॥

प्रथमेत्यस्य वृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे होवें इस वि० ॥

प्रथमा वां सरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा। अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थः—हे दो विद्यार्थियो ! जो (प्रथमा) पहिले (सरथिना) रथ वालों के साथ वर्त्तमान (सुवर्णा) सुन्दर गौरवर्ण वाले दो विद्वान् (विश्वा) सब (भुवनानि) बसने के आधार लोकों को (पश्यन्तौ) देखते हुए (वाम्) तुम दोनों के (चोदना) प्रेरणारूप कर्मों को (मिमाना) जांचते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (प्रदिशा) अच्छे प्रकार जानते तथा (दिशन्ता) उच्चारण करते हुए तुम को (होतारा) दानशील (देवौ) तेजस्वी विद्वान् करें जैसे उन को मैं (अपिप्रयम्) तृप्त करता हूं वैसे (वाम्) तुम दोनों उन विद्वानों को प्राप्त होओ ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्यार्थी लोग निष्कपटता से विद्वानों का सेवन करते हैं वे विद्या के प्रकाश को प्राप्त होते हैं जो विद्वान् लोग कपट और आलस्य को छोड़ सब को सत्य का उपदेश करें तो वे सुखी कैसे न होवें ॥ ७ ॥

आदित्यैरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सरस्वती देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञꣳ सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् । इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो (आदित्यैः) पूर्ण विद्या वाले उत्तम विद्वानों ने उपदेश की (उपहूता) यथावत् स्पर्द्धा से ग्रहण की (भारती) सब विद्याओं को धारण और सब प्रकार पुष्टि करने हारी वाणी (नः) हमारे लिये (यज्ञम्) सङ्गत हमारे योग्य बोध को सिद्ध करती है उस के (सह) साथ (नः) हम को (वष्टु) कामना वाले कीजिये जो (रुद्रैः) मध्य कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की (सरस्वती) उत्तम प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी (नः) हम को (आवीत्) प्राप्त होवे जो (सजोषाः) एक से विद्वानों ने सेवी (इडा) स्तुति की हेतु वाणी (वसुभिः) प्रथम कक्षा के विद्वानों ने उपदेश की हुई (यज्ञम्) प्राप्त होने योग्य आनन्द को सिद्ध करती है। हे मनुष्यो ! ये (देवीः) दिव्यरूप तीन प्रकार की वाणी हम को (अमृतेषु) नाशरहित जीवादि नित्य पदार्थों में धारण करें उन को तुम लोग भी हमारे अर्थ (धत्त) धारण करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि उत्तम मध्यम निकृष्ट विद्वानों से सुनी वा पढ़ी विद्या तथा वाणी का स्वीकार करें किन्तु मूर्खों से नहीं, यह वाणी मनुष्यों को सब काल में सुख सिद्ध करने वाली होती है ॥ ८ ॥

त्वष्टेत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । त्वष्टा देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः । त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने हारे जन ! तू जैसे (त्वष्टा) विद्या आदि उत्तम गुणों से शोभित विद्वान् (देवकामम्) विद्वानों की कामना करने हारे (वीरम्) वीर पुरुष को (जजान) उत्पन्न करता है जैसे (त्वष्टुः) प्रकाशरूप शिल्पी से (आशुः)

शीघ्रगामी (अर्वा) वेगवान् (अश्वः) घोड़ा (जायते) होता है । जैसे (त्वष्टा) अपने स्वरूप से प्रकाशित ईश्वर (इदम्) इस (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोकमात्र को (जजान) उत्पन्न करता है उस (बहोः) बहुविध संसार के (कर्त्तारम्) रचने वाले परमात्मा का (इह) इस जगत् में (यक्षि) पूजन कीजिये वैसे हम लोग भी करें ॥ ९ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जो विद्वान् लोग विद्या चाहने वाले मनुष्यों को विद्वान् करें, शीघ्र जिस को शिक्षा हुई हो उस घोड़े के समान तीव्रता से विद्या को प्राप्त होता है जैसे बहुत प्रकार के संसार का स्रष्टा ईश्वर सब की व्यवस्था करता है वैसे अध्यापक और अध्येता होवें ॥ ९ ॥

अश्व इत्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवाँ२॥ ऋतुशः पाथं एतु ।
वनस्पतिर्देवलोकं प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (देवलोकम्) सब को मार्ग दिखाने वाले विद्वानों के मार्ग को (प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानते हुए जैसे (घृतेन) जल से संयुक्त किया (अश्वः) शीघ्रगामी अग्नि (त्मन्या) आत्मा से (ऋतुशः) ऋतु २ में (देवान्) उत्तम व्यवहारों को (समक्तः) सम्यक् प्रकट करता हुआ (पाथः) अन्न को (उप, एतु) निकट से प्राप्त हूजिये (अग्निना) अग्नि के साथ (वनस्पतिः) किरणों का रक्षक सूर्य (स्वदितानि) स्वादिष्ट (हव्या) भोजन के योग्य अन्नों को (वक्षत्) प्राप्त करे वैसे आत्मा से वर्त्ताव कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे सूर्य ऋतुओं का विभाग कर उत्तम सेवने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न करता है वैसे उत्तम अधम विद्यार्थी और विद्या अविद्या को अलग २ परीक्षा कर अच्छे शिक्षित करें और अविद्या की निवृत्ति करें ॥ १० ॥

प्रजापतेरित्यस्य बृहदुक्थो वामदेव्यऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने। स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि! आप (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुए (प्रजापतेः) प्रजारक्षक ईश्वर के (तपसा) प्रताप से (वावृधानः) बढ़ते हुए (स्वाहाकृतेन) सुन्दर संस्काररूप क्रिया से सिद्ध हुए (हविषा) होम में देने योग्य पदार्थ से (यज्ञम्) यज्ञ को (दधिषे) धारते हो जो (पुरोगाः) मुखिया वा अगुआ (साध्याः) साधनों से सिद्ध करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोग (हविः) ग्राह्य अन्न का (अदन्तु) भोजन करें उन को (याहि) प्राप्त हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के, समान प्रजा के रक्षक धर्म से प्राप्त हुए पदार्थ के भोगने वाले होते हैं वे सर्वोत्तम गिने जाते हैं ॥ ११ ॥

यदक्रन्द इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। यजमानो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वेग वाले विद्वान् पुरुष! (यत्) जब (समुद्रात्) अन्तरिक्ष (उत, वा) अथवा (पुरीषात्) रक्षक परमात्मा से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुए वायु के समान (उद्यन्) उदय को प्राप्त हुए (अक्रन्दः) शब्द करते हो तब (हरिणस्य) हरणशील वीर जन (ते) आपके (बाहू) भुजा (श्येनस्य) श्येनपक्षी के (पक्षा) पंखों के तुल्य बलकारी हैं यह (महि) महत् कर्म (जातम्) प्रसिद्ध (उपस्तुत्यम्) समीपस्थ स्तुति का विषय होता है ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे अन्तरिक्ष से उत्पन्न हुआ वायु कर्मों को कराता वैसे मनुष्यों के शुभ गुणों को तुम लोग ग्रहण करो जैसे पशुओं में घोड़ा वेगवान् है वैसे शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले बढ़ वीर होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारा प्रशंसित होवे ॥ १२ ॥

यमेनेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यमेन॑ द॒त्तं त्रि॒त ए॑नमायुन॒गिन्द्र॑ एणं प्रथ॒मो अध्य॑तिष्ठत् । ग॒न्ध॒र्वो अ॑स्य रश॒नाम॑गृभ्णा॒त्सूरा॑दश्वं वसवो॒ निर॑तष्ट ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (वसवः) विद्वान् ! जो (इन्द्रः) बिजुली (त्रितः) पृथिवी जल और आकाश से (यमेन) नियमकर्त्ता वायु ने (दत्तम्) दिये अर्थात् उत्पन्न किये (एनम्) इस अग्नि को (आयुनक्) युक्त करती है (एनम्) इस को प्राप्त हो के (प्रथमः) विस्तीर्ण प्रख्यात विद्युत् (अध्यतिष्ठत्) सर्वोपरि स्थित होती है (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करता हुआ (अस्य) इस सूर्य की (रशनाम्) रस्सी के तुल्य किरणों की गति को (अगृभ्णात्) ग्रहण करता है इस (सूरात्) सूर्य रूप से (अश्वम्) शीघ्रगामी वायु को (निरतष्ट) सूक्ष्म करता है उस को तुम लोग विस्तृत करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! ईश्वर ने इस संसार में जिस पदार्थ में जैसी रचना की है उसको तुम लोग विद्या से जानो और इस सृष्टिविद्या को ग्रहण कर अनेक सुखों को सिद्ध करो ॥ १३ ॥

असीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

असि॑ य॒मो अस्या॑दि॒त्यो अ॑र्व॒न्नसि॑ त्रि॒तो गुह्ये॑न व्र॒तेन॑ । असि॒ सोमे॑न स॒मया॒ विपृ॑क्त आ॒हुस्ते॒ त्रीणि॑ दि॒वि बन्ध॑नानि ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) वेगवान् अग्नि के समान जन ! जिस से तू (गुह्येन) गुप्त (व्रतेन) स्वभाव तथा (त्रितः) कर्म उपासना ज्ञान से युक्त (यमः) नियमकर्त्ता न्यायाधीश के तुल्य (असि) है (आदित्यः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशित जैसा (असि) है विद्वान् के सदृश (असि) है (सोमेन) ऐश्वर्य के निकट (विपृक्तः) विशेष कर संबद्ध (असि) है उस (ते) तेरे (दिवि) प्रकाश में (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को अर्थात् ऋषि देव पितृ ऋणों के बन्धनों को (आहुः) कहते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि न्यायाधीश

सूर्य और चन्द्रमा आदि के गुणों से युक्त होवें जैसे इस संसार के बीच वायु और सूर्य के आकर्षणों से बन्धन हैं वैसे ही परस्पर शरीर वाणी मन के आकर्षणों से प्रेम के बन्धन करें ॥ १४ ॥

त्रीणीत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे। उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त विद्वान् जन! (यत्र) जिस (दिवि) विद्या के प्रकाश में (ते) आप के (त्रीणि) तीन (बन्धनानि) बन्धनों को विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं जहां (अप्सु) प्राणों में (त्रीणि) तीन जहां (अन्तः) बीच में और (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (त्रीणि) तीन बन्धनों को (आहुः) कहते हैं और (ते) आप के (परमम्) उत्तम (जनित्रम्) जन्म को कहते हैं जिससे (वरुणः) श्रेष्ठ हुए विद्वानों का (छन्त्सि) सत्कार करते हो (उतेव) उत्प्रेक्षा के तुल्य वे सब (मे) मेरे होवें ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! आत्मा मन और शरीर में ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो द्वितीय विद्या जन्म को पाकर पूजित होओ जिस २ के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उस को जानो ॥ १५ ॥

इमेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को घोड़ों के रखने से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना। अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (वाजिन्) घोड़े के तुल्य वेगादि गुणों से युक्त सेनाधीश! जैसे मैं (ते) आप के (इमा) इन प्रत्यक्ष घोड़ों को (अवमार्जनानि) शुद्धि क्रियाओं और (इमा) इन (शफानाम्) खुरों के (सनितुः) रखने के नियम के (निधाना) स्थानों को (अपश्यम्) देखता हूं (अत्र) इस सेना में (ते) आप के घोड़े की (याः) जो (भद्राः) सुन्दर शुभकारिणी (गोपाः) उपद्रव से रक्षा करने

हारी (रशनाः) लगाम की रस्सी (ऋतस्य) सत्य की (अभिरक्षन्ति) सब ओर से रक्षा करती हैं उन को मैं देखूं वैसे आप भी देखें ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग स्नान से घोड़े आदि की शुद्धि तथा उन के शुम्मों की रक्षा के लिये लोहे के बनाये नालों को संयुक्त और लगाम की रस्सी आदि सामग्री को संयुक्त कर अच्छी शिक्षा दे रक्षा करते हैं वे युद्धादि कार्यों में सिद्धि करने वाले होते हैं ॥ १६ ॥

आत्मानमित्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

यान रचना से क्या करना चाहिये इस वि० ॥

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् । शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं जैसे (मनसा) विज्ञान से (आरात्) निकट में (अवः) नीचे से (दिवा) आकाश के साथ (पतङ्गम्) सूर्य के प्रति (पतयन्तम्) चलते हुए (ते) आप के (आत्मानम्) आत्मा स्वरूप को (अजानाम्) जानता हूं और (अरेणुभिः) धूलिरहित निर्मल (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलना हो उन (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानम्) प्रयत्न के साथ जाते हुए (पतत्रि) पक्षिवत् उड़ने वाले (शिरः) दूर से शिर के तुल्य गोलाकार लक्षित होते विमानादि यान को (अपश्यम्) देखता हूं वैसे आप भी देखिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम लोग सब से अतिवेग वाले शीघ्र चलाने हारे अग्नि के तुल्य अपने आत्मा को देखो, सम्प्रयुक्त किये अग्नि आदि के सहित यानों में बैठ के जल स्थल और आकाश में प्रयत्न से जाओ आओ, जैसे शिर उत्तम है वैसे विमान यान को उत्तम मानना चाहिये ॥ १७ ॥

अत्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब शूरवीर लोग क्या करें इस वि० ॥

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः । यदा ते मर्तो अनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुष ! (ते) आप के (जिगीषमाणम्) शत्रुओं को जीतते हुए (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) और (गोः) पृथिवी के (पदे) प्राप्त होने योग्य (अत्र) इस व्यवहार में (इषः) अन्नों के दानों को (आ, अपश्यम्) अच्छे प्रकार देखूं (ते) आप का (मर्तः) मनुष्य (यदा) जब (भोगम्) भोग्य वस्तु को

(प्रानट्) व्याप्त होता है तब (आत्) (इत्) इस के अनन्तर ही (ग्रसिष्ठः) अति खाने वाले हुए आप (ओषधीः) ओषधियों को (अनु, अजीगः) अनुकूलता से भोगते हो ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम घोड़े आदि सेना के अङ्ग विजय करने वाले हों वैसे शूरवीर विजय के हेतु होकर भूमि के राज्य में भोगों को प्राप्त हों ॥ १८ ॥

अनुत्वेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता ।
विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे राज प्रजा के कार्य सिद्ध करने चाहिये इस वि० ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् । अनु व्रातांसुस्तव सुख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यन्ते ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान विद्वन् ! (ते) आप के (कनीनाम्) शोभायमान मनुष्यों के बीच वर्त्तमान (देवाः) विद्वान् (व्रातासः) मनुष्य (अनु, वीर्यम्) बल पराक्रम के अनुकूल (अनु, ममिरे) अनुमान करें और (तव) आप की (सख्यम्) मित्रता को (अनु, ईयुः) अनुकूल प्राप्त हों (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (रथः) विमानादि यान (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे आश्रित (मर्यः) साधारण मनुष्य (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल वा पीछे (गावः) गौ और (त्वा) आप के (अनु) अनुकूल (भगः) ऐश्वर्य होवे ॥ १९ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य अच्छे शिक्षित होकर औरों को सुशिक्षित करें उन में से उत्तमों को सभासद् और सभासदों में से अत्युत्तम सभापति को स्थापन कर राज प्रजा के प्रधान पुरुषों की एक अनुमति से राजकार्यों को सिद्ध करें तो सब आपस में अनुकूल हो के सब कार्यों को पूर्ण करें ॥ १९ ॥

हिरण्यशृङ्ग इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता ।
निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अश्वादि पदार्थों के गुण ज्ञान से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

हिरण्यशृङ्गोऽयोऽस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् । देवा इदस्य हविरद्यमायुन्योऽअर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अवरः) नवीन (हिरण्यशृङ्गः) शृङ्ग के तुल्य जिस के तेज हैं वह (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला बिजुली के समान सभापति (आसीत्)

होवे जो (प्रथमः) पहिला (अर्वन्तम्) घोड़े के तुल्य मार्ग को प्राप्त होते हुए अग्नि तथा (अयः) सुवर्ण का (अध्यतिष्ठत्) अधिष्ठाता अर्थात् अग्नि प्रयुक्त यान पर बैठ के चलाने वाली होवे राजा (अस्य) इसके (पादाः) पग (मनोजवाः) मन के तुल्य वेग वाले हों अर्थात् पग का चलना काम विमानादि से लेवे (देवाः) विद्वान् सभासद् लोग (अस्य) इस राजा के (हविरद्यम्) देने और भोजन करने योग्य अन्न को (इत्, आयन्) ही प्राप्त होवें उस को तुम लोग जानो ॥ २० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्न्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को यथावत् जानें वे बहुत अद्भुत कार्यों को सिद्ध कर सकें, जो प्रीति से राजकार्यों को सिद्ध करें वे सत्कार को और जो नष्ट करें वे दण्ड को अवश्य प्राप्त होवें ॥ २०॥

ईर्मान्तास इत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कैसे राजपुरुष विजय पाते हैं इस वि० ॥

ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सꣳशूरणासो दिव्यासो अत्याः । हꣳसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य (ईर्मान्तासः) जिन का बैठने का स्थान प्रेरणा किया गया (सिलिकमध्यमासः) गदा आदि से लगा हुआ है मध्यप्रदेश जिन का ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्ध में विजय के हेतु (दिव्यासः) उत्तमशिक्षित (अत्याः) निरन्तर चलने वाले (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़े (श्रेणिशः) पंक्ति बांधे हुए (हंसा इव) हंस पक्षियों के तुल्य (यतन्ते) प्रयत्न करते हैं और (दिव्यम्) शुद्ध (अज्मम्) मार्ग को (सम्, आक्षिषुः) व्याप्त होवें उन को तुम लोग प्राप्त होओ ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिन राजपुरुषों के सुशिक्षित उत्तम गति वाले घोड़े अग्न्यादि पदार्थों के समान कार्यसाधक होते हैं वे सर्वत्र विजय पाते हैं ॥ २१ ॥

तवेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । वायवो देवताः । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को अनित्य शरीर पा के क्या करना चाहिये इस वि० ॥

तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातऽइव ध्रजीमान् । तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (अर्वन्) घोड़े के तुल्य वर्त्तमान वीर पुरुष ! जिस (तव) तेरा (पतयिष्णु) नाशवान् (शरीरम्) शरीर (तव) तेरे (चित्तम्) अन्तःकरण की वृत्ति (वातः इव) वायु के सदृश (ध्रजीमान्) वेगवाली अर्थात् शीघ्र दूरस्थ विषयों के तत्त्व जानने वाली (तव) तेरे (पुरुत्रा) बहुत (अरण्येषु) जङ्गलों में (जर्भुराणा) शीघ्र धारण पोषण करने वाले (विष्ठिता) विशेष कर स्थित (शृङ्गाणि) शृङ्गों के तुल्य ऊंचे सेना के अवयव (चरन्ति) विचरते हैं सो तू धर्म का आचरण कर ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य अनित्य शरीरों में स्थित हो नित्य कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं और जो वन के पशुओं के तुल्य भृत्य और सेना हैं वे घोड़े के तुल्य शीघ्रगामी हो के शत्रुओं को जीतने को समर्थ होते हैं॥२२॥

उपप्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्या देवताः । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

कैसे विद्वान् हितैषी होते हैं इस वि० ॥

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

पदार्थः—जो (दीध्यानः) सुन्दर प्रकाशमान हुआ (अजः) फेंकने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) चालाक घोड़ा (देवद्रीचा) विद्वानों को प्राप्त होते हुए (मनसा) मन से (शसनम्) जिस में हिंसा होती है उस युद्ध को (उप, प्र, अगात्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होता है । विद्वानों से (अस्य) इस का (नाभिः) मध्यभाग अर्थात् पीठ (पुरः) आगे (नीयते) प्राप्त की जाती अर्थात् उस पर बैठते हैं उस को (पश्चात्) पीछे (रेभाः) सब विद्याओं की स्तुति करने वाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (अनु, यन्ति) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग उत्तम विचार से घोड़ों को अच्छी शिक्षा दे और अग्नि आदि पदार्थों को सिद्ध कर ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं वे जगत् के हितैषी होते हैं ॥ २३ ॥

उप प्रेत्यस्य भार्गवो जमदग्निर्ऋषिः । मनुष्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

कौन जन राज्यशासन करने योग्य होते हैं इस वि० ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ अच्छा पितरं मातरं च। अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (यत्) जो (अर्वान्) ज्ञानी जन (जुष्टतमः) अतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) साथियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों को (अद्य) इस समय (आ, शास्ते) अधिक इच्छा करता है (अथ) इस के अनन्तर (दाशुषे) दाताजन के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, अगात्) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उस को (हि) ही आप (अच्छ, गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग न्याय और विनय से परोपकारों को करते हैं वे उत्तम २ जन्म श्रेष्ठ पदार्थों विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वानों के सेवक हो के महान् सुख को प्राप्त हों वे राज्यशासन करने को समर्थ होवें ॥२४॥

समिद्ध इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

धर्मात्मा लोग क्या करें इस वि० ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः। आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धि को प्राप्त हुए (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले विद्वन्! जो (त्वम्) आप (अद्य) इस समय (समिद्धः) सम्यक् प्रकाशित अग्नि के तुल्य (मनुषः) मननशील (देवः) विद्वान् हुए (यजसि) संग करते हो (च) और (चिकित्वान्) विज्ञानवान् (दूतः) दुष्टों को दुःखदाई (प्रचेताः) उत्तम चेतनता वाला (कविः) सब विषयों में अव्याहत बुद्धि (असि) हो सो आप (दुरोणे) घर में (देवान्) विद्वानों वा उत्तम गुणों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—जैसे अग्नि दीपक आदि के रूप से घरों को प्रकाशित करता है वैसे धार्मिक विद्वान् लोग अपने कुलों को प्रकाशित करते हैं जो सब के साथ मित्रवत् वर्त्तते हैं वे ही धर्मात्मा हैं ॥ २५ ॥

तनूनपादित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व । मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (सुजिह्व) सुन्दर जीभ वा वाणी से युक्त (तनूनपात्) विस्तृत पदार्थों को न गिराने वाले विद्वान् जन ! आप (ऋतस्य) सत्य वा जल के (यानान्) जिन में चलें उन (पथः) मार्गों को अग्नि के तुल्य (मध्वा) मधुरता अर्थात् कोमल भाव से (समञ्जन्) सम्यक् प्रकार करते हुए (स्वदय) स्वाद लीजिये अर्थात् प्रसन्न कीजिये (धीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (मन्मानि) यानों को (उत) और (नः) हमारे (अध्वरम्) नष्ट न करने और (यज्ञम्) सङ्गत करने योग्य व्यवहार को (ऋन्धन्) सम्यक् सिद्ध करता हुआ (च) भी (देवत्रा) विद्वानों में स्थित होकर (कृणुहि) कीजिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-धार्मिक मनुष्यों को चाहिये कि पथ्य औषध पदार्थों का सेवन करके सुन्दर प्रकार प्रकाशित होवें, आप्त विद्वानों की सेवा में स्थित हो तथा बुद्धियों को प्राप्त हो के अहिंसारूप धर्म का सेवें ॥ २६ ॥

नराशꣳसस्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । विद्वान्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः । ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ये) जो (सुक्रतवः) सुन्दर बुद्धियों और कर्मों वाले (शुचयः) पवित्र (धियन्धाः) श्रेष्ठ धारणावती बुद्धि और कर्म को धारण करने हारे (देवाः) विद्वान् लोग (उभयानि) दोनों शरीर आत्मा को सुखकारी (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) भोगते हैं (एषाम्) इन विद्वानों के (यज्ञैः) सत्सङ्गादि रूप यज्ञों से (नराशंसस्य) मनुष्यों से प्रशंसित (यजतस्य) संग करने योग्य व्यवहार के (महिमानम्) बड़प्पन को (उप, स्तोषाम) समीप प्रशंसा करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् पवित्र नहीं कर सकते । जिन के जैसे गुण जैसे कर्म हों उन की धर्मात्मा लोगों को यथार्थ प्रशंसा करनी चाहिये ॥ २७ ॥

आजुह्वान इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चायाह्यग्ने वसुभिः सजोषाः । त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (यह्व) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य पवित्र विद्वन् ! जो (त्वम्) आप (देवानाम्) विद्वानों के बीच (होता) दानशील (यजीयान्) अति समागम करने हारे (असि) हैं (इषितः) प्रेरणा किये हुए (एनान्) इन विद्वानों का (यक्षि) संग कीजिये (सः) सो आप (वसुभिः) निवास के हेतु विद्वानों के साथ (सजोषाः) समान प्रीति निबाहने वाले (आजुह्वानः) अच्छे प्रकार स्पर्द्धा ईर्ष्या करते हुए (ईड्यः) प्रशंसा (च) तथा (वन्द्यः) नमस्कार के योग्य इन विद्वानों के निकट (आ) (याहि) आया कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य पवित्रात्मा प्रशंसित विद्वानों के सङ्ग से आप पवित्रात्मा होवें तो वे धर्मात्मा हुए सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होवें ॥ २८ ॥

प्राचीनमित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अन्तरिक्षं देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् । व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्याः) इस (पृथिव्याः) भूमि के बीच (प्राचीनम्) सनातन (बर्हिः) अन्तरिक्ष के तुल्य व्यापक ब्रह्म (वस्तोः) दिन के प्रकाश से (वृज्यते) अलग होता (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) आरम्भ प्रातःकाल में (देवेभ्यः) विद्वानों (उ) और (अदितये) अविनाशी आत्मा के लिये (वितरम्) विशेष कर दुःखों से पार करने हारे (वरीयः) अतिश्रेष्ठ (स्योनम्) सुख को (वि, प्रथते) विशेष कर प्रकट करता उसको तुम लोग (प्रदिशा) वेद शास्त्र के निर्देश से जानो और प्राप्त होओ ॥ २९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वानों के लिये सुख देवें वे सर्वोत्तम सुख को प्राप्त हों जैसे आकाश सब दिशाओं और पृथिव्यादि में व्याप्त है वैसे जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त है । जो लोग ऐसे ईश्वर की प्रातःकाल उपासना करते वे धर्मात्मा हुए विस्तीर्ण सुखों वाले होते हैं ॥ २९ ॥

व्यचस्वतीरित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । स्त्रियो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (उर्विया) अधिकता से शुभ गुणों में (व्यचस्वती) व्याप्ति वाली (बृहतीः) महती (विश्वमिन्वाः) सब व्यवहारों में व्याप्त (सुप्रायणाः) जिनके होने में उत्तम घर हों (देवीः) आभूषणादि से प्रकाशमान (द्वारः) दरवाजों के (न) समान अवकाश वाली (पतिभ्यः) पाणिग्रहण विवाह करने वाले (देवेभ्यः) उत्तम गुणयुक्त पतियों के लिये (शुम्भमानाः) उत्तम शोभायमान हुई (जनयः) सब स्त्रियां अपने २ पतियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर सेवन करें वैसे तुम लोग सब विद्याओं में व्यापक (भवत) होओ ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-जैसे व्यापक हुई दिशा अवकाश देने और सब के व्यवहारों की साधक होने से आनन्द देने वाली होती हैं वैसे ही आपस में प्रसन्न हुए स्त्री पुरुष उत्तम सुखों को प्राप्त होके अन्यों के हितकारी होवें ॥ ३० ॥

आ सुष्वयन्तीत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। स्त्रियो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ राजप्रजाधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ सुष्वयन्ती यजुते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहुती सुरुक्मे अधि श्रियंꣳशुक्रपिशं दधाने ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! यदि (दिव्ये) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली (योषणे) दो स्त्रियों के समान (सुरुक्मे) सुन्दर शोभायुक्त (बृहती) बड़ी (अधि) अधिक (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को तथा (शुक्रपिशम्) प्रकाश और अन्धकाररूपों को (दधाने) धारण करती हुई (सुष्वयन्ती) सोती हुइयों के समान (उपाके) निकटवर्त्तिनी (उषासानक्ता) दिन रात (योनौ) कालरूप कारण में (नि, आ, सदताम्) निरन्तर अच्छे प्रकार चलते हैं उन को (यजते) सङ्गत करते तो मनोज्ञ शोभा को प्राप्त होओ ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो! जैसे काल के साथ वर्त्तमान रात दिन एक दूसरे से सम्बद्ध विलक्षण स्वरूप से वर्त्तते हैं वैसे राजा प्रजा परस्पर प्रीति के साथ वर्त्ता करें ॥ ३१ ॥

दैव्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वांसो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब कारीगर लोगों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै। प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) दानशील (प्रथमा) प्रसिद्ध (सुवाचा) प्रशंसित वाणी वाले (मिमाना) विधान करते हुए (यज्ञम्) सङ्गतिरूप यज्ञ के (यजध्यै) करने को (मनुषः) मनुष्यों को (विदथेषु) विज्ञानों में (प्रचोदयन्ता) प्रेरणा करते हुए (प्रदिशा) वेदशास्त्र के प्रमाण से (प्राचीनम्) सनातन (ज्योतिः) शिल्पविद्या के प्रकाश का (दिशन्ता) उपदेश करते हुए (कारू) दो कारीगर लोग होवें उन में से शिल्पविज्ञान शास्त्र पढ़ना चाहिये ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में (कारू) शब्द में द्विवचन अध्यापक और हस्तक्रिया-शिक्षक इन दो शिल्पियों के अभिप्राय से है। जो कारीगर होवें वे जितनी शिल्पविद्या जानें उतनी सब दूसरों के लिये शिक्षा करें जिससे उत्तर २ विद्या की सन्तति बढ़े ॥ ३२ ॥

आ न इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। वाग्देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳ सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (भारती) शिल्पविद्या को धारण करने हारी क्रिया (इडा) सुन्दर शिक्षित मीठी वाणी (सरस्वती) विज्ञान वाली बुद्धि (इह) इस शिल्पविद्या के ग्रहणरूप व्यवहार में (नः) हम को (तूयम्) वर्धक (यज्ञम्) शिल्पविद्या के प्रकाशरूप यज्ञ को (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (चेतयन्ती) जनाती हुई हम को (आ, एतु) सब ओर से प्राप्त होवे ये पूर्वोक्त (तिस्रः) तीन (देवीः) प्रकाशमान (इदम्) इस (बर्हिः) बढ़े हुए (स्योनम्) सुखकारी काम को (स्वपसः) सुन्दर कर्मों वाले हम को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त कर ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस शिल्प व्यवहार में सुन्दर उपदेश और क्रियाविधि का जताना और विद्या का धारण इष्ट है। यदि इन तीन रीतियों को मनुष्य ग्रहण करें तो बड़ा सुख भोगें ॥ ३३ ॥

य इमे इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विद्वान् देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा । तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (होतः) ग्रहण करने वाले जन ! (यः) जो (यजीयान्) अतिसमागम करने वाला (इषितः) प्रेरणा किया हुआ (विद्वान्) सब ओर से विद्या को प्राप्त विद्वान् जैसे ईश्वर (इह) इस व्यवहार में (रूपैः) चित्र विचित्र आकारों से (इमे) इन (जनित्री) अनेक कार्यों को उत्पन्न करने वाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और पृथिवी आदि (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों को (अपिंशत्) अवयवरूप करता है वैसे (तम्) उस (त्वष्टारम्) वियोग संयोग अर्थात् प्रलय उत्पत्ति करने हारे (देवम्) ईश्वर का (अद्य) आज तू (यक्ष) सङ्ग करता है इससे सत्कार करने योग्य है ॥३४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को इस सृष्टि में परमात्मा की रचनाओं की विशेषताओं को जान के वैसे ही शिल्पविद्या का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३४ ॥

उपावसृजेत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ऋतु २ में होम करना चाहिये इस वि० ॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि । वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! तू (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) भोगने योग्य अन्न आदि को (मधुना) मीठे कोमल आदि रस युक्त (घृतेन) घी आदि से (समञ्जन्) सम्यक् मिलाते हुए (त्मन्या) अपने आत्मा से (हवींषि) लेने भोजन करने योग्य पदार्थों को (ऋतुथा) ऋतु २ में (उपावसृज) यथावत् दिया कर अर्थात् होम किया कर । उस तेरे दिये (हव्यम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (वनस्पतिः) किरणों का स्वामी सूर्य्य (शमिता) शान्तिकर्त्ता (देवः) उत्तम गुणों वाला मेघ और (अग्निः) अग्नि (स्वदन्तु) प्राप्त होवें अर्थात् हवन किया पदार्थ उन को पहुंचे ॥ ३५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शुद्ध पदार्थों का ऋतु २ में होम किया करें जिससे वह द्रव्य सूक्ष्म हो और मन से अग्नि सूर्य्य तथा मेघ को प्राप्त होके वर्षा के द्वारा सब का उपकारी होवे ॥ ३५ ॥

१२७

सद्य इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य सब को आनन्द करता है इस वि० ॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः । अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अग्निः) विद्या से प्रकाशित विद्वान् (होतुः) ग्रहण करने हारे पुरुष के (ऋतस्य) सत्य का (प्रदिशि) जिस से निर्देश किया जाता है उस (वाचि) वाणी में (यज्ञम्) अनेक प्रकार के व्यवहार को (वि, अमिमीत) विशेष कर निर्माण करता और (देवानाम्) विद्वानों में (पुरोगाः) अग्रगामी (अभवत्) होता है (अस्य) इस के (स्वाहाकृतम्) सत्य व्यवहार से सिद्ध किये वा होम किये से बचे (हविः) भोजन के योग्य अन्नादि को (देवाः) विद्वान् लोग (अदन्तु) खावें उस को सर्वोपरि विराजमान मानो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य सब प्रकाशक पदार्थों के बीच प्रकाशक है वैसे जो विद्वानों में विद्वान् सब का उपकारी जन होता है वही सब को आनन्द का भुगवाने वाला होता है ॥ ३६ ॥

केतुमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । विद्वांसो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

आप्त लोग कैसे होते हैं इस वि० ॥

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (मर्याः) मनुष्य (अपेशसे) जिस के सुवर्ण नहीं है उसके लिये (पेशः) सुवर्ण को और (अकेतवे) जिस को बुद्धि नहीं है उस के लिये (केतुम्) बुद्धि को करते हैं उन (उषद्भिः) होम करने वाले यजमान पुरुषों के साथ बुद्धि और धन को (कृण्वन्) करते हुए आप (सम्, अजायथाः) सम्यक् प्रसिद्ध हूजिये ॥ ३७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही आप्त जन हैं जो अपने आत्मा के तुल्य अन्यों का भी सुख चाहते हैं उन्हीं के संग से विद्या की प्राप्ति अविद्या की हानि धन का लाभ और दरिद्रता का विनाश होता है ॥ ३७ ॥

जीमूतस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वान्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

वीर राजपुरुष क्या करें इस वि० ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। अनाविद्धया तन्वा जय त्वꣳस त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु॥ ३८॥

पदार्थः—(यत्) जो (वर्मी) कवच वाला योद्धा (अनाविद्धया) जिस में कुछ भी घाव न लगा हो उस (तन्वा) शरीर से (समदाम्) आनन्द के साथ जहां वर्तें उन युद्धों के (उपस्थे) समीप में (प्रतीकम्) जिस से निश्चय करे उस चिह्न को (याति) प्राप्त होता है (सः) वह (जीमूतस्येव) मेघ के निकट जैसे बिजुली वैसे (भवति) होता है। हे विद्वन्! जिस (त्वा) आप को (वर्मणः) रक्षा का (महिमा) महत्त्व (पिपर्तु) पाले सो (त्वम्) आप शत्रुओं को (जय) जीतिये॥ ३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे मेघ की सेना सूर्य के प्रकाश को रोकती है वैसे कवच आदि से शरीर का आच्छादन करे जैसे समीपस्थ सूर्य और मेघ का संग्राम होता है वैसे ही वीर राजपुरुषों को युद्ध और रक्षा भी करनी चाहिये॥ ३८॥

धन्वनेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि०॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम॥ ३९॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! जैसे हम लोग जो (धनुः) शस्त्र अस्त्र (शत्रोः) वैरी की (अपकामम्) कामनाओं को नष्ट (कृणोति) करता है उस (धन्वना) धनुष् आदि शस्त्र अस्त्र विशेष से (गाः) पृथिवियों को और (धन्वना) उक्त शस्त्र विशेष से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) तोप आदि शस्त्र अस्त्रों से (तीव्राः) तीव्र वेग वाली (समदः) आनन्द के वर्त्तमान शत्रुओं की सेनाओं को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं को (जयेम) जीतें वैसे तुम लोग भी इस धनुष् आदि से जीतो॥ ३९॥

भावार्थः—जो मनुष्य धनुर्वेद के विज्ञान की क्रियाओं में कुशल हों तो सब जगह ही उन का विजय प्रकाशित होवे जो विद्या विनय और शूरता आदि गुणों से भूगोल के एक राज्य को चाहें तो कुछ भी आश्चर्य न हो॥ ३९॥

वक्ष्यन्तीवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि०॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! जो (इयम्) यह (विततः) विस्तारयुक्त (धन्वन्) धनुष् में (अधि) ऊपर लगी (ज्या) प्रत्यंचा तांत (वक्ष्यन्तीव) कहने को उद्यत हुई विदुषी स्त्री के तुल्य (इत्) ही (आगनीगन्ति) शीघ्र बोध को प्राप्त कराती हुई जैसे (कर्णम्) जिसकी स्तुति सुनी जाती (प्रियम्) प्यारे (सखायम्) मित्र के तुल्य वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से संग करती हुई (योषेव) स्त्री बोलती वैसे (शिङ्क्ते) शब्द करती है (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय को प्राप्त कराती हुई वर्त्तमान है उस के बनाने बांधने और चलाने को जानो ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालंकार हैं। जो मनुष्य धनुष् की प्रत्यञ्चा आदि शस्त्र अस्त्रों की रचना सम्बन्ध और चलाना आदि क्रियाओं को जानें तो उपदेश करने और माता के तुल्य सुख देने वाली पत्नी और विजय-सुख को प्राप्त हों ॥ ४० ॥

ते आचरन्ती इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः। वीरा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यताꣳ संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो! दो धनुष् की प्रत्यञ्चा (योषा) विदुषी (समनेव) प्राण के समान सम्यक् पति को प्यारी स्त्री स्वपति को और (मातेव) जैसे माता (पुत्रम्) अपने सन्तान को (बिभृताम्) धारण करें वैसे (उपस्थे) समीप में (आचरन्ती) अच्छे प्रकार प्राप्त हुई (शत्रून्) शत्रुओं को (अप) (विध्यताम्) दूर तक ताड़ना करें (इमे) ये (संविदाने) अच्छे प्रकार विज्ञान की निमित्त (आर्त्नी) प्राप्त हुई (अमित्रान्) शत्रुओं को (विष्फुरन्ती) विशेष कर चलायमान करती वर्त्तमान हैं (ते) उन दोनों का यथावत् सम्यक् प्रयोग करो अर्थात् उन को काम में लाओ ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में दो उपमालं०-जैसे हृदय को प्यारी स्त्री पति को और विदुषी माता अपने पुत्र को अच्छे प्रकार पुष्ट करती हैं वैसे सम्यक् प्रसिद्ध काम देने

वाली धनुष् की दृढ़ प्रत्यञ्चा शत्रुओं को पराजित कर वीरों को प्रसन्न करती है ॥ ४१ ॥

बह्वीनामित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य । इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (बह्वीनाम्) बहुत प्रत्यञ्चाओं का (पिता) पिता के तुल्य रखने वाला (अस्य) इस पिता का (बहुः) बहुत गुण वाले (पुत्रः) पुत्र के समान सम्बन्धी (पृष्ठे) पिछले भाग में (निनद्धः) निश्चित बंधा हुआ (इषुधिः) बाण जिस में धारण किये जाते वह धनुष् (प्रसूतः) उत्पन्न हुआ (समना) संग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होके (चिश्चा) चिं, चिं, चिं, ऐसा शब्द (कृणोति) करता है और जिस से वीर पुरुष (सर्वाः) सब (संकाः) इकट्ठी वा फैली हुई (पृतनाः) सेनाओं को (जयति) जीतता है उस की यथावत् रक्षा करो ॥ ४२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अनेक कन्याओं और बहुत पुत्रों का पिता अपत्य शब्द से संयुक्त होता है वैसे ही धनुष् प्रत्यंचा और बाण मिलकर अनेक प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करते हैं जिस के वाम हाथ में धनुष् पीठ पर बाण दहिने हाथ से बाण को निकाल के धनुष् की प्रत्यञ्चा से संयुक्त कर छोड़ के अभ्यास से शीघ्रता करने की शक्ति को करता है वही विजयी होता है ॥ ४२ ॥

रथ इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः । अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (सुषारथिः) सुन्दर सारथि घोड़ों वा अग्न्यादि को नियम में रखने वाला (रथे) रमण करने योग्य पृथिवी जल वा आकाश में चलाने वाले यान में (तिष्ठन्) बैठा हुआ (यत्रयत्र) जिस २ संग्राम वा देश में (कामयते) चाहता है वहां २ (वाजिनः) घोड़ों वा वेगवाले अग्न्यादि पदार्थों को (पुरः) आगे (नयति) चलाता है जिस का (मनः) मन अच्छा शिक्षित (रश्मयः) लगाम की रस्सी वा क्रियाएं हस्तगत हैं (पश्चात्) पीछे से घोड़ों वा अग्न्यादि का (अनु यच्छन्ति) अनुकूल

निग्रह करते हैं उन (अभीशूनाम्) सब ओर से शीघ्र चलने हारों के (महिमानम्) महत्त्व की तुम लोग (पनायत) प्रशंसा करो ॥ ४३ ॥

भावार्थः—जो राजा और राजपुरुष चक्रवर्त्ती राज्य और निश्चल विजय चाहें तो अच्छे शिक्षित मन्त्री अश्व आदि तथा अन्य चलाने वाली सामग्री अध्यक्षों शस्त्र अस्त्रों और शरीर आत्मा के बल को अवश्य सिद्ध करें ॥ ४३ ॥

तीव्रानित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तीव्रान्घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः । अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्क्षिणन्ति शत्रूँ॥ रनपव्ययन्तः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो (वृषपाणयः) जिन के बलवान् बैल आदि उत्तम प्राणी हाथों के समान रक्षा करने वाले हैं (रथेभिः) रमण के योग्य यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) वीर आदि को शीघ्र चलाने हारे (प्रपदैः) उत्तम पगों की चालों से (अमित्रान्) मित्रतारहित दुष्टों को (अवक्रामन्तः) धमकाते हुए (अश्वाः) शीघ्र चलाने हारे घोड़े (तीव्रान्) तीखे (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और जो (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च न कराते हुए योद्धा (शत्रून्) वैरियों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उन को तुम लोग प्राण के तुल्य पालो ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष हाथी, घोड़ा, बैल आदि भृत्यों और अध्यक्षों को अच्छी शिक्षा दे तथा अनेक प्रकार के यानों को बना के शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करते हैं तो उनका निश्चल दृढ़ विजय होता है ॥ ४४ ॥

रथवाहनमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

रथवाहनꣳहविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म । तत्रा रथमुप शग्मꣳसदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो ! (अस्य) इस योद्धाजन के (यत्र) जिस यान में (रथवाहनम्) जिस से विमानादि यान चलते वह (हविः) ग्रहण करने योग्य अग्नि, इन्धन, जल, काष्ठ और धातु आदि सामग्री तथा (आयुधम्) बन्दूक, तोप, भुशुण्डी, धनुष, बाण, शक्ति और पाशफांसी आदि शस्त्र और (अस्य) इस योद्धा के (वर्म) कवच और (नाम) नाम (निहितम्) स्थित हैं (तत्र) उस यान में (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम्) हम लोग (शग्मम्) सुख तथा

उस (रथम्) रमण योग्य यान को (विश्वाहा) सब दिन (उप, सदेम) निकट प्राप्त होवें ॥ ४५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस यान में अग्नि आदि तथा घोड़े आदि संयुक्त किये जाते उस में युद्ध की सामग्री धर नित्य उस की देख भाल कर उस में बैठ और सुन्दर विचार से शत्रुओं के साथ सम्यक् युद्ध कर के नित्य सुख को प्राप्त होओ ॥ ४५ ॥

स्वादुषंसद इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः । चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥४६॥

पदार्थः—हे युद्ध करने हारे वीर पुरुषो ! तुम लोग जो (स्वादुषंसदः) भोजन के योग्य अन्नादि पदार्थों को सम्यक् सेवने वाले (वयोधाः) अधिक अवस्था युक्त (कृच्छ्रेश्रितः) उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये कष्ट सेवते हुए (शक्तीवन्तः) सामर्थ्य वाले (गभीराः) महाशय (चित्रसेनाः) आश्चर्य गुणयुक्त सेना वाले (इषुबलाः) शस्त्र अस्त्रों के सहित जिन की सेना (अमृध्राः) दृढ़ शरीर वाले (उरवः) बड़े २ जिन के अंधा और छाती (व्रातसाहाः) वीरों के समूहों को सहने वाले (सतोवीराः) विद्यमान सेना के बीच युद्धविद्या की शिक्षा को प्राप्त और (पितरः) पालन करने हारे राजपुरुष हों उन का आश्रय ले युद्ध करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—उन्हीं का सदा विजय राज्य श्री प्रतिष्ठा बड़ी अवस्था बल और विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता आप्त सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित होते हैं ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणास इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । धनुर्वेदाऽध्यापका देवताः । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

किन का सत्कार करना चाहिये इस वि०

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा । पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥४७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सोम्यासः) उत्तम आनन्दकारक गुणों के योग्य (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाले (पितरः) रक्षक (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने

द्वारे विद्वान् जन (नः) हमारे लिये कल्याण करने हारे और (अनेहसा) कारणरूप से अविनाशी (द्यावापृथिवी) प्रकाश पृथिवी (शिवे) कल्याणकारी हों (पूषा) पुष्टि करने हारा परमात्मा (नः) हम को (दुरितात्) दुष्ट अन्याय के आचरण से (पातु) बचावे जिस से (नः) हम को मारने को (अघशंस) पाप की प्रशंसा करने हारा चोर (माकिः) न (ईशत) समर्थ हो उन विद्वानों की तू रक्षा कर और चोरों को मार ॥ ४७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम को धर्मयुक्त कर्त्तव्य में प्रवृत्त कर दुष्ट आचरण से पृथक् रखते दुराचारियों के बल को नष्ट और हमारी पुष्टि करते वे सदैव सत्कार करने योग्य हैं ॥ ४७ ॥

सुपर्णमित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर राजधर्म अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो (यत्र) जिस सेना में (नरः) नायक लोग हों जो (सुपर्णम्) सुन्दर पूर्ण रक्षा के साधन उस रथादि को (वस्ते) धारण करती और जहां (गोभिः) गौओं के सहित (दन्तः) जिस का दमन किया जाता उस (मृगः) कस्तूरी से शुद्ध करने वाले मृग के तुल्य (इषवः) बाण आदि शस्त्र विशेष चलते हैं जो (सन्नद्धा) सम्यक् गोष्ठी बंधी (प्रसूता) प्रेरणा की हुई शत्रुओं में (पतति) गिरती (च) और इधर उधर (अस्याः) इस सेना के वीर पुरुष (सम्, द्रवन्ति) सम्यक् चलते (च) और (वि) विशेष कर दौड़ते हैं (तत्र) उस सेना में (अस्मभ्यम्) हमारे लिये आप लोग (शर्म) सुख (यंसन्) देओ ॥ ४८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजपुरुषो ! तुम लोगों को चाहिये कि शत्रुओं से न धमकने वाली दृढ़ पुष्ट सेना सिद्ध करो उसमें सुन्दर परीक्षित योद्धा और अध्यक्ष रक्खो उन शस्त्र अस्त्रों के चलाने में कुशल जनों से विजय को प्राप्त होओ ॥ ४८ ॥

ऋजीत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः । सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! आप (ऋजीते) सरल व्यवहार में (नः) हमारे शरीर से रोगों को (परि, वृङ्ग्धि) सब ओर से पृथक् कीजिये जिस से (नः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा) पत्थर के तुल्य दृढ़ (भवतु) हो जो (सोमः) उत्तम ओषधि है उस और जो (अदितिः) पृथिवी है उन दोनों का आप (अधि, ब्रवीतु) अधिकार उपदेश कीजिये और (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख वा घर (यच्छतु) दीजिये ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषध, पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीरों की रक्षा करें तो उन के शरीर दृढ़ होवें जैसे शरीरों का पृथिवी आदि का बना घर है वैसे जीव का यह शरीर घर है ॥ ४९ ॥

आजङ्घन्तीत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर राजधर्म को कहते हैं ॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२॥उप जिघ्नते । अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषि राणी जैसे वीर पुरुष (एषाम्) इन घोड़े आदि के (सानु) अवयव को (आ, जङ्घन्ति) अच्छे प्रकार शीघ्र ताड़ना करते हैं (जघनान्) जांघों को (उपजिघ्नते) समीप से चलाते हैं वैसे तू (समत्सु) सङ्ग्रामों में (प्रचेतसः) शिक्षा से विशेष कर चेतन किये (अश्वान्) घोड़ों को (चोदय) प्रेरणा कर ॥ ५० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे राजा और राजपुरुष विमानादि रथ और घोड़ों के चलाने तथा युद्ध के व्यवहारों को जानें वैसे उन की स्त्रियां भी जानें ॥ ५० ॥

अहिरिवेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । महावीरः सेनापतिर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारने वाले (विद्वान्) विद्वान् (पुमान्) पुरुषार्थी आप (ज्यायाः) प्रत्यञ्चा से (हेतिम्) बाण को चला के (बाधम्) बाधा देने वाले शत्रु को (परिबाधमानः) सब ओर से निवृत्त करते हुए (पुमांसम्) पुरुषार्थी जन की (विश्वतः) सब प्रकार से (परि, पातु) चारों ओर से रक्षा कीजिये सो (अहिरिव) मेघ के तुल्य गर्जते हुए आप (भोगैः) उत्तम भोगों के सहित (विश्वा) सब (वयुनानि) विज्ञानों को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होते हो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् भुजबल वाला शस्त्र, अस्त्र के चलाने के ज्ञाता शत्रुओं को निवृत्त करता पुरुषार्थ से सब की सब से रक्षा करता हुआ मेघ के तुल्य सुख और भोगों का बढ़ाने वाला हो वह सब मनुष्यों को विद्या प्राप्त कराने को समर्थ होवे ॥ ५१ ॥

वनस्पत इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सुवीरो देवता । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः ॥

पञ्चमः स्वरः ॥

फिर राजप्रजा धर्म वि० ॥

वन॑स्पते वी॒ड्व॑ङ्गो॒ हि भू॒या अ॒स्मत्स॑खा प्र॒तर॑णः सु॒वीरः॑ । गोभिः॒ सन्न॑द्धो असि वी॒डय॑स्वास्था॒ता ते॑ जयतु॒ जेत्वा॑नि ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य के समान वन आदि के रक्षक विद्वन् राजन् ! आप (अस्मत्सखा) हमारे रक्षक मित्र (प्रतरणः) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करने हारे (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (वीड्वङ्गः) प्रशंसित अवयव वाले (हि) निश्चय कर (भूयाः) हूजिये जिस कारण आप (गोभिः) पृथिवी आदि के साथ (सन्नद्धः) सम्बन्ध रखते तत्पर (असि) हैं इसलिये हम को (वीडयस्व) दृढ़ कीजिये (ते) आप का (आस्थाता) युद्ध में अच्छे २ प्रकार स्थिर रहने वाला वीर सेनापति (जेत्वानि , जीतने योग्य शत्रुओं को (जयतु) जीते ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचक्लु०—जैसे सूर्य के साथ किरणों और किरणों के साथ सूर्य का नित्य सम्बन्ध है वैसे राजा सेना तथा प्रजाओं का सम्बन्ध होने योग्य है जो सेनापति आदि जितेन्द्रिय शूर हों तो सेना और प्रजा भी वैसी ही जितेन्द्रिय होवें ॥ ५२ ॥

दिव इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दिवः पृथिव्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्याभृ॑त॒ᳪ सहः॑ । अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्र॑ᳪ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ॥५३॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (उद्भृतम्) उत्कृष्टता से धारण किये (ओजः) पराक्रम को (परि, यज) सब ओर से दीजिये (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (आभृतम्) अच्छे प्रकार पुष्ट किये (सहः) बल को (परि) सब ओर से दीजिये (अपाम्) जलों के सम्बन्ध से (ओज्मानम्) पराक्रम वाले रस को (परि) चारों ओर से दीजिये । तथा (इन्द्रस्य) सूर्य की (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) युक्त चिलकते हुए (वज्रम्) वज्र के तुल्य (रथम्) यान को (हविषा) ग्रहण से संगत कीजिये ॥ ५३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी आदि भूतों और जल से उत्पन्न हुई सृष्टि के सम्बन्ध से बल और पराक्रमों को बढ़ावें और इन के योग से विमान आदि यानों को बनाया करें ॥ ५३ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ । सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम विद्या वाले (रथः) रमणीय स्वरूप विद्वन् ! (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य पदार्थों के दान को (जुषाणः) सेवते हुए (सः) पूर्वोक्त आप जो (इन्द्रस्य) बिजुली का (वज्रः) गिरना (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना (मित्रस्य) मित्र के (गर्भः) अन्तःकरण का आशय और (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (नाभिः) आत्मा का मध्यवर्त्ती विचार है उस को (नः) और हम को (हव्या) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (प्रति, गृभाय) प्रतिगृह अर्थात् स्वीकार कीजिये ॥ ५४ ॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों की सेना अति श्रेष्ठ, बिजुली की विद्या, मित्र का आशय, आप्त सत्यवक्ताओं का विचार और विद्यादि का दान स्वीकार किये तथा दूसरों को दिये हैं वे सब ओर से मंगलयुक्त होवें ॥ ५४ ॥

उपश्वासयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वीरा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़े के तुल्य गरजने हारे (सः) सो आप (इन्द्रेण) ऐश्वर्य से युक्त (देवैः) उत्तम विद्वान् वा गुणों के साथ (सजूः) संयुक्त (दूरात्) दूर से भी (दवीयः) अति दूर (शत्रून्) शत्रुओं को (अपसेध) पृथक् कीजिये (पुरुत्रा) बहुत विध (पृथिवीम्) आकाश (उत) और (द्याम्) बिजुली के प्रकाश को (उपश्वासय) निकट जीवन धारण कराइये आप उन अन्तरिक्ष और बिजुली से (विष्ठितम्) व्याप्त (जगत्) संसार को (मनुताम्) मानो उस (ते) आपको राज्य आनन्दित होवे ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्युत् विद्या से हुए अस्त्रों से शत्रुओं को दूर फेंक ऐश्वर्य से विद्वानों को दूर से बुला के सत्कार करें अन्तरिक्ष और बिजुली से व्याप्त सब जगत् को जान विविध प्रकार की विद्या और क्रियाओं को सिद्ध करें वे जगत् को आनन्द कराने वाले होवें हैं ॥ ५५ ॥

आक्रन्दयेत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वादयितारो वीरा देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ आ धा॒ निष्ट॑निहि दुरि॒ता बाध॑मानः ।
अप॑ प्रोथ दुन्दुभे दु॒च्छुना॑ इ॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वी॒डय॑स्व ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) नगाड़ों के तुल्य जिन की सेना गर्जती ऐसे सेनापते (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) निवृत्त करते हुए आप (नः) हमारे लिये (बलम्) बल को (आ, क्रन्दय) पहुंचाइये (ओजः) पराक्रम को (आ, धाः) अच्छे प्रकार धारण कीजिये सेना को (नि, स्तनिहि) विस्तृत कीजिये जो (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के तुल्य वर्त्तमान हैं उन को (अप) बुरे प्रकार रुलाइये जिस कारण आप (मुष्टिः) मूठों के तुल्य प्रबन्धकर्त्ता (असि) हैं इस से (इतः) इस सेना से (इन्द्रस्य) बिजुली के अवयवों को (वीडयस्व) दृढ़ कीजिये और सुखों को (प्रोथ) पूरण कीजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि श्रेष्ठों का सत्कार करें दुष्टों को रुलावें सब मनुष्यों के दुर्व्यसनों को दूर करके सुखों को प्राप्त करें ॥ ५६ ॥

आमूरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । वादयितारो वीरा देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति । समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजपुरुष ! आप (अमूः) उन शत्रु सेनाओं को (आ, अज) अच्छे प्रकार दूर फेंकिये (केतुमत्) ध्वजा वाली (इमाः) इन अपनी सेनाओं को (प्रति आवर्त्तय) लौटा लावो जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (वावदीति) अत्यन्त बजता है वैसे (नः) हम को (अश्वपर्णाः)घोड़ों का जिन में पालन हो वे सेना (सम्, चरन्ति) सम्यक् विचरती हैं जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथों पर चढ़े हुए वीर (नरः) नायक जन शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें वे सत्कार को प्राप्त हों ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजपुरुष शत्रुओं की सेनाओं को निवृत्त करने और अपनी सेनाओं को युद्ध करने को समर्थ हों वे सर्वत्र शत्रुओं को जीत सकें ॥ ५७ ॥

आग्नेय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । विद्वांसो देवताः । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

अब कैसे पशु कैसे गुणों वाले होते हैं इस वि० ॥

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः संहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला अर्थात् अग्नि के उत्तम गुणों से युक्त है वह (कृष्णग्रीवः) काले गले वाला पशु जो (सारस्वती) सरस्वती वाणी के गुणों वाली वह (मेषी) भेड़ जो (सौम्यः) चन्द्रमा के गुणों वाला वह (बभ्रुः) धुमेला पशु जो (पौष्णः) पुष्टि आदि गुणों वाला वह (श्यामः) श्याम रंग से युक्त पशु जो (बार्हस्पत्यः) बड़े आकाशादि के पालन आदि गुणयुक्त वह (शितिः

पृष्ठः) काली पीठ वाला पशु जो (वैश्वदेवः) सब विद्वानों के गुणों वाला वह (शितः) अनेक वर्ण युक्त जो (ऐन्द्रः) सूर्य के गुणों वाला वह (अरुणः) लालरंग युक्त जो (मारुतः) वायु के गुणों वाला वह (कल्माषः) खाखी रंगयुक्त जो (ऐन्द्राग्नः) सूर्य अग्नि के गुणों वाला वह (संहितः) मोटे दृढ़ अंगयुक्त जो (सावित्रः) सूर्य के गुणों से युक्त वह (अधोरामः) नीचे विचरने वाला पक्षी जो (एकशितिपात्) जिस का एक पग काला (पेत्वः) उड़ने वाला और (कृष्णः) काले रंग से युक्त वह (वारुणः) जल के शान्त्यादि गुणों वाला है इस प्रकार इन सब को जानो ॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि जिस २ देवता वाले जो २ पशु विख्यात हैं वे २ उन २ गुणों वाले उपदेश किये हैं ऐसा जानो ॥ ५८ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । भुरिगतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नयेऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सावि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः क॒ल्माष॑ आग्ने॒यः कृ॒ष्णो॒ऽजः सा॑रस्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्वः॑ ॥ ५९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (अनीकवते) प्रशंसित सेना वाले (अग्नये) विज्ञान आदि गुणों के प्रकाशक सेनापति के लिये (रोहिताञ्जिः) लाल चिह्नों वाला (अनड्वान्) बैल (सावित्रौ) सूर्य के गुण वाले (अधोरामौ) नीचे भाग में श्वेत वर्ण वाले (पौष्णौ) पुष्टि आदि गुणयुक्त (रजतनाभी) चांदी के वर्ण के तुल्य जिन की नाभि (वैश्वदेवौ) सब विद्वानों के सम्बन्धी (तूपरौ) मुण्डे (पिशङ्गौ) पीले दो पशु (मारुतः) वायु देवता वाला (कल्माषः) खाखी रंगयुक्त (आग्नेयः) अग्नि देवता वाला (कृष्णः, अजः) काला बकरा (सारस्वती) वाणी के गुणों वाली (मेषी) भेड़ और (वारुणः) जल के गुणों वाला (पेत्वः) शीघ्रगामी पशु है उन सब को गुणों के अनुकूल काम में लाओ ॥ ५९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पशुओं के जितने गुण कहे हैं वे सब एक अग्नि में इकट्ठे हैं यह जानना चाहिये ॥ ५९ ॥

अग्नय इत्यस्य भारद्वाज ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । पूर्वस्य विराट् प्रकृतिः, वैराजाभ्यामित्युत्तरस्य प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य कार्यसिद्धि कर सकते हैं इस वि० ॥

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पञ्चदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पाङ्क्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः ॥ ६० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि (त्रिवृते) सत्व रज और तमोगुण इन तीन गुणों से युक्त (राथन्तराय) रथों अर्थात् जलयानों से समुद्रादि को तरने वाले (गायत्राय) गायत्री छन्द से जताये हुए (अग्नये) अग्नि के अर्थ (अष्टाकपालः) आठ खपरों में संस्कार किया (पञ्चदशाय) पन्द्रहवें प्रकार के (त्रैष्टुभाय) त्रिष्टुप् छन्द से प्रख्यात (बार्हताय) बड़ों के साथ सम्बन्ध रखने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (एकादशकपालः) ग्यारह खपरों में संस्कार किया पाक (विश्वेभ्यः) सब (जागतेभ्यः) जगती छन्द से जताये हुए (सप्तदशेभ्यः) सत्रहवें (वैरूपेभ्यः) विविध रूपों वाले (देवेभ्यः) दिव्य गुणयुक्त मनुष्यों के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया पाक (आनुष्टुभाभ्याम्) अनुष्टुप्छन्द से प्रकाशित हुए (एकविंशाभ्याम्) इक्कीसवें (वैराजाभ्याम्) विराट् छन्द से जताये हुए (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान के अर्थ (पयस्या) जलक्रिया में कुशल विद्वान् (बृहस्पतये) बड़ों के रक्षक (पाङ्क्ताय) पान्तों में श्रेष्ठ (त्रिणवाय) कर्म उपासना और ज्ञानों से स्तुति किये (शाक्वराय) शक्ति से प्रकट हुए के लिये (चरुः) पाकविशेष (औष्णिहाय) उष्णिक् छन्द से जताये हुए (त्रयस्त्रिंशाय) तेतीसवें (रैवताय) धन के सम्बन्धी (सवित्रे) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे के लिये (द्वादशकपालः) बारह खपरों में संस्कार किया (प्राजापत्यः) प्रजापति देवता वाला (चरुः) बटलोई में पका अन्न (आदित्यै) अखण्डित (विष्णुपत्न्यै) विष्णु व्यापक ईश्वर से रक्षित अन्तरिक्षरूप के लिये (चरुः) पाक (वैश्वानराय) सब मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नये) बिजुली रूप अग्नि के लिये

(अष्टाकपालः) बारह खपरों में पका हुआ और (अनुमत्यै) पीछे मानने वाले के लिये (अष्टाकपालः) आठ खपरों में सिद्ध किया पाक बनाना चाहिये ॥ ६० ॥

भावार्थः-जो मनुष्य अग्नि आदि के प्रयुक्त करने के लिये आठ प्रकार आदि के यन्त्रों को बनावें वे रचे हुए प्रसिद्ध पदार्थों से अनेक कार्यों को सिद्ध कर सकें ॥ ६० ॥

इस अध्याय में अग्नि, विद्वान्, घर, प्राण, अपान, अध्यापक, उपदेशक, वाणी, घोड़ा, अग्नि, विद्वान्, प्रशस्त पदार्थ, घर, द्वार, रात्रि, दिन, शिल्पी, शोभा, शस्त्र, अस्त्र, सेना, ज्ञानियों की रक्षा, सृष्टि से उपकार ग्रहण, विघ्न निवारण, शत्रुसेना का पराजय अपनी सेना का सङ्ग और रक्षा पशुओं के गुण और यज्ञों का निरूपण होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्॥

अथ त्रिंशोऽध्याय आरभ्यते॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व॥ १॥

देवेत्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब तीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर से क्या प्रार्थना करनी चाहिये इस वि०॥

देव॑ सवितः॒ प्र सु॑व य॒ज्ञं प्र सु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु॥ १॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्यस्वरूप (सवितः) समस्त ऐश्वर्य से युक्त और जगत् को उत्पन्न करने हारे जगदीश्वर जो आप (दिव्यः) शुद्धस्वरूप में हुआ (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने हारा (केतपूः) विज्ञान को पवित्र करने वाला राजा (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करे और जो (वाचः) वाणी का (पतिः) रक्षक (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मीठी चिकनी कोमल प्रिय करे उस (यज्ञपतिम्) राज्य के रक्षक राजा को (भगाय) ऐश्वर्ययुक्त धन के लिये (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिये और (यज्ञम्) राजधर्मरूप यज्ञ को भी (प्र, सुव) सिद्ध कीजिये॥ १॥

भावार्थः—जो विद्या की शिक्षा को बढ़ाने वाला शुद्ध गुण कर्म स्वभाव युक्त राज्य की रक्षा करने को यथायोग्य ऐश्वर्य को बढ़ाने हारा धर्मात्माओं का रक्षक परमेश्वर का उपासक और समस्त शुभ गुणों से युक्त हो वही राजा होने के योग्य होता है॥ १॥

तत्सवितुरित्यस्य नारायण ऋषिः। सविता देवता। निचृद् गायत्री छन्दः।

षड्जः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

तत्स॑वितुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (सवितुः) समग्र जगत् के उत्पादक सब ऐश्वर्य तथा (देवस्य) सुख के देने हारे ईश्वर के जो (वरेण्यम्) ग्रहण करने योग्य अत्युत्तम (भर्गः) जिससे दुःखों का नाश हो उस शुद्ध स्वरूप को जैसे हम लोग (धीमहि) धारण करें वैसे (तत्) उस ईश्वर के शुद्ध स्वरूप को तुम लोग भी धारण करो ॥ २ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे परमेश्वर जीवों को अशुभाचरण से अलग कर शुभ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी करे जैसे परमेश्वर में पितृभाव करते अर्थात् उसको पिता मानते हैं वैसे राजा को भी मानें जैसे परमेश्वर जीवों में पुत्रभाव का आचरण करता है वैसे राजा भी प्रजाओं में पुत्रवत् वर्त्ते जैसे परमेश्वर सब दोष क्लेश और अन्यायों से निवृत्त है वैसे राजा भी होवे ॥ २ ॥

विश्वामित्रस्य नारायण ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (सवितः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा देने वाले परमेश्वर आप हमारे (विश्वानि) सब (दुरितानि) दुष्ट आचरण वा दुःखों को (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारी धर्मयुक्त आचरण वा सुख है (तत्) उस को (नः) हमारे लिये (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे उपासना किया हुआ जगदीश्वर अपने भक्तों को दुष्ट आचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करता है वैसे राजा भी अधर्म से प्रजाओं को निवृत्त कर धर्म में प्रवृत्त करे और आप भी वैसा होवे ॥ ३ ॥

विभक्तारमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । सविता देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (वसोः) सुखों के निवास के हेतु (चित्रस्य) आश्चर्यस्वरूप (राधसः) धन का (विभक्तारम्) विभाग करने हारे (सवितारम्) सब के उत्पादक (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के अन्तर्यामि स्वरूप से सब कामों के देखनेहारे परमात्मा की हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करें उस की तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे राजन् ! जैसे परमेश्वर अपने २ कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है वैसे आप भी देओ जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्यरूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये जैसे परमेश्वर पक्षपात को छोड़ के सब जीवों में वर्त्तता है वैसे आप भी हूजिये ॥ ४ ॥

ब्रह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । परमेश्वरो देवता । स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को भी करना चाहिये इस वि० ॥

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीबमाक्रयाया अयोगूं कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप इस जगत् में (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञान के प्रचार के अर्थ (ब्राह्मणम्) वेद ईश्वर के जानने वाले को (क्षत्राय) राज्य वा राज्य की रक्षा के लिये (राजन्यम्) राजपूत को (मरुद्भ्यः) पशु आदि प्रजा के लिये (वैश्यम्) प्रजाओं में प्रसिद्ध जन को (तपसे) दुःख से उत्पन्न होने वाले सेवन के अर्थ (शूद्रम्) प्रीति से सेवा करने तथा शुद्धि करने हारे शूद्र को सब ओर से उत्पन्न कीजिये (तमसे) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (तस्करम्) चोर को (नारकाय) दुःख बन्धन में हुए कारागार के लिये (वीरहणम्) वीरों को मारने हारे जन को (पाप्मने) पापाचरण के लिये प्रवृत्त हुए (क्लीबम्) नपुंसक को (आक्रयायै) प्राणियों की जिस में आगाभूगी होती उस हिंसा के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयोगूम्) लोहे के हथियार विशेष के साथ चलने हारे जन को (कामाय) विषय सेवन के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) पुरुषों

के साथ जिसका चित्त चलायमान उस व्यभिचारिणी स्त्री को और (अतिक्रुष्टाय) अत्यन्त निन्दा करने के लिये प्रवृत्त हुए (मागधम्) भाट को दूर पहुंचाइये ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे जगदीश्वर जगत् में परोपकार के लिये पदार्थों को उत्पन्न करता और दोषों को निवृत्त करता है वैसे आप इस राज्य में सज्जनों की उन्नति कीजिये दुष्टों को निकालिये, दण्ड और ताड़ना भी दीजिये, जिससे शुभगुणों की प्रवृत्ति और दुष्टव्यसनों की निवृत्ति होवे ॥ ५ ॥

नृत्तायेत्यस्य नारायण ऋषिः। परमेश्वरो देवता। निचृदष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

फिर राजपुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभᳪ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर! वा राजन्! आप (नृत्ताय) नाचने के लिये (सूतम्) क्षत्रिय से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुए सूत को (गीताय) गाने के अर्थ (शैलूषम्) गानेहारे नट को (धर्माय) धर्म की रक्षा के लिये (सभाचरम्) सभा में विचरने हारे सभापति को (नर्माय) कोमलता के अर्थ (रेभम्) स्तुति करने हारे को (आनन्दाय) आनन्द भोगने के अर्थ (स्त्रीषखम्) स्त्री से मित्रता रखने वाले पति को (मेधायै) बुद्धि के लिये (रथकारम्) विमानादि को रचनेहारे कारीगर को (धैर्याय) धीरज के लिये (तक्षाणम्) महीन काम करने वाले बढ़ई को उत्पन्न कीजिये (नरिष्ठायै) अतिदुष्ट नरों की गोष्ठी के लिये प्रवृत्त हुए (भीमलम्) भयंकर विषयों को ग्रहण करने वाले को (हसाय) हंसने के अर्थ प्रवृत्त हुए (कारिम्) उपहासकर्त्ता को और (प्रमदे) प्रमाद के लिये प्रवृत्त हुए (कुमारीपुत्रम्) विवाह से पहिले व्यभिचार से उत्पन्न हुए को दूर कर दीजिये ॥ ६ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश और राजा की आज्ञा से सब श्रेष्ठ धर्मात्मा जनों को उत्साह दें हंसी करने और भय देने वालों को निवृत्त करें अनेक सभाओं को बना के सब व्यवस्था और शिल्पविद्या की उन्नति किया करें ॥ ६ ॥

तपस इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वांसो देवता। निचृदष्टिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तपसे कौलालं मायायै कर्मारᳪ रूपाय मणिकारᳪ शुभे वपᳪ

शरव्याया इषुकारꣳ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्यवे मृगयुमन्तकाय श्वनिनम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (तपसे) वर्त्तन पकाने के ताप को झेलने के अर्थ (कौलालम्) कुम्हार के पुत्र को (मायायै) बुद्धि बढ़ाने के लिये (कर्मारम्) उत्तम शोभित काम करने हारे को (रूपाय) सुन्दर स्वरूप बनाने के लिये (मणिकारम्) मणि के बनाने वाले को (शुभे) शुभ आचरण के अर्थ (वपम्) जैसे किसान खेत को वैसे विद्यादि शुभ गुणों के बोने वाले को (शरव्यायै) बाणों के बनाने के लिये (इषुकारम्) बाणकर्त्ता को (हेत्यै) वज्र आदि हथियार बनाने के अर्थ (धनुष्कारम्) धनुष् आदि के कर्त्ता को (कर्मणे) क्रियासिद्धि के लिये (ज्याकारम्) प्रत्यञ्चा के कर्त्ता को (दिष्टाय) और जिस से अति रचना हो उस के लिये (रज्जुसर्जम्) रज्जु बनाने वाले को उत्पन्न कीजिये और (मृत्यवे) मृत्यु करने को प्रवृत्त हुए (मृगयुम्) व्याध को तथा (अन्तकाय) अन्त करने वाले के हितकारी (श्वनिनम्) बहुत कुत्ते पालने वाले को अलग बसाइये ॥ ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे परमेश्वर ने सृष्टि में रचनाविशेष दिखाये हैं वैसे शिल्पविद्या से और सृष्टि के दृष्टान्त से विशेष रचना क्रिया करें और हिंसक तथा कुत्तों के पालने वाले चाण्डालादि को दूर बसावें ॥ ७ ॥

नदीभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वांसो देवताः । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य उन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (नदीभ्यः) नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हुए (पौञ्जिष्ठम्) घातुक को (ऋक्षीकाभ्यः) गमन करने वाली स्त्रियों के अर्थ प्रवृत्त हुए (नैषादम्) निषाद के पुत्र को (पुरुषव्याघ्राय) व्याघ्र के तुल्य हिंसक पुरुष के हितकारी (दुर्मदम्) दुष्ट अभिमानी को (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) गाने नाचने वाली स्त्रियों के लिये प्रवृत्त हुए (व्रात्यम्) संस्कार रहित मनुष्य को (प्रयुग्भ्यः) प्रयोग करने वालों

के अर्थ प्रवृत्त हुए (उन्मत्तम्) उन्माद रोग वाले को (सर्पदेवजनेभ्यः) सांप तथा मूर्खों के लिये हितकारी (अप्रतिपदम्) संशयात्मा को (अयेभ्यः) जो पदार्थ प्राप्त किये जाते उन के लिये प्रवृत्त (कितवम्) ज्वारी को (ईर्य्यतायै) कम्पन के लिये प्रवृत्त हुए (अकितवम्) जुआ न करने हारे को (पिशाचेभ्यः) दुष्टाचार करने से जिनकी आशा नष्ट होगई वा रुधिर सहित कच्चा मांस खाने के लिये प्रवृत्त (विदलकारीम्) पृथक् २ टुकड़ों को करने हारी को और (यातुधानेभ्यः) मार्गों से जिनके धन आता उस के लिये प्रवृत्त हुई (कण्टकीकारीम्) कांटे बोने वाली को पृथक् कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे राजन् जैसे परमेश्वर दुष्टों से महात्माओं को दूर बसाता और दुष्ट परमेश्वर से दूर बसते हैं वैसे आप दुष्टों से दूर बसो और अपने से दुष्टों को दूर बसाइये वा सुशिक्षा से श्रेष्ठ कीजिये ॥ ८ ॥

सन्धय इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्या एदिधिषुः पतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीᳬं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापति राजन् ! आप (सन्धये) परस्त्रीगमन के लिये प्रवृत्त (जारम्) व्यभिचारी को (गेहाय) गृहपत्नी के सङ्ग के लिये प्रवृत्त हुए (उपपतिम्) पति की विद्यमानता में दूसरे व्यभिचारी पति को (आर्त्यै) काम पीड़ा के लिये प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) छोटे भाई का विवाह होने में विना विवाहे ज्येष्ठ भाई को (निर्ऋत्यै) पृथिवी के लिये प्रवृत्त हुए (परिविविदानम्) ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुए छोटे भाई को (अराध्यै) अविद्यमान पदार्थ को सिद्ध करने के लिये प्रवृत्त हुए (एदिधिषुःपतिम्) ज्येष्ठ पुत्री के विवाह से पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री के पति को (निष्कृत्यै) प्रायश्चित्त के लिये प्रवृत्त हुई (पेशस्कारीम्) शृङ्गार विशेष से रूप करने हारी व्यभिचारिणी को (संज्ञानाय) उत्तम कामदेव को जगाने के अर्थ प्रवृत्त हुई (स्मरकारीम्) कामदेव को चेतन कराने वाली दूती को (प्रकामोद्याय) उत्कृष्ट कामों से उद्यत हुए के लिये (उपसदम्) साथी को (वर्णाय) स्वीकार के लिये प्रवृत्त हुए (अनुरुधम्) पीछे से रोकने वाले को (बलाय) बल बढ़ाने के अर्थ (उपदाम्) नज़र भेंट वा घूंस को पृथक् कीजिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे परमेश्वर जार आदि दुष्ट जनों को दण्ड देता वैसे आप भी इन को दण्ड दीजिये और ईश्वर पाप छोड़ने वालों पर कृपा करता है वैसे आप धार्मिक जनों पर अनुग्रह किया कीजिये ॥ ९ ॥

उत्सादेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। भुरिगत्यष्टिश्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामꣳ स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षायाऽअभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन्! आप (उत्सादेभ्यः) नाश करने को प्रवृत्त हुए (कुब्जम्) कुबड़े को (प्रमुदे) प्रबल कामादि के आनन्द के लिये (वामनम्) छोटे मनुष्य को (द्वार्भ्यः) आच्छादन के अर्थ (स्रामम्) जिस के नेत्रों से निरन्तर जल निकले उसको (स्वप्नाय) सोने के लिये (अन्धम्) अन्धे को और (अधर्माय) धर्माचरण से रहित के लिये (बधिरम्) बहिरे को पृथक् कीजिये और (पवित्राय) रोग की निवृत्ति करने के अर्थ (भिषजम्) वैद्य को (प्रज्ञानाय) उत्तम ज्ञान बढ़ाने के अर्थ (नक्षत्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वा इनसे उत्तम विषयों को दिखाने हारे गणितज्ञ ज्योतिषी को (आशिक्षायै) अच्छे प्रकार विद्या ग्रहण के लिये (प्रश्निनम्) प्रशंसित प्रश्नकर्त्ता को (उपशिक्षायै) उपवेदादि विद्या के ग्रहण के लिये (अभि, प्रश्निनम्) सब ओर से बहुत प्रश्न करने वाले को और (मर्यादायै) न्याय अन्याय की व्यवस्था के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों के विवेचन कर उत्तर देने वाले को उत्पन्न कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे ईश्वर पापाचरण के फल देने से लूले, लंगड़े, बौना, चिपड़े, अंधे, बहिरे मनुष्यादि को करता और वैद्य ज्योतिषी, अध्यापक, परीक्षक तथा प्रश्नोत्तरों के विवेचकों के अर्थ श्रेष्ठ कर्मों के फल देने से पवित्रता बुद्धि विद्या के ग्रहण पढ़ने परीक्षा लेने और प्रश्नोत्तर करने का सामर्थ्य देता है वैसे ही आप भी जिस २ अङ्ग से मनुष्य विरुद्ध करते हैं उस २ अङ्ग पर दण्ड मारने और वैद्यादि की प्रतिष्ठा करने से राजधर्म की निरन्तर उन्नति कीजिये ॥ १० ॥

अर्मेभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः। विद्वान् देवता। स्वराडति शक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायाश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहपᳪ श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षत्तारम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे ईश्वर वा राजन् ! आप (अर्मेभ्यः) प्राप्ति कराने वालों के लिये (हस्तिपम्) हाथियों के रक्षक को (जवाय) वेग के अर्थ (अश्वपम्) घोड़ों के रक्षक शिक्षक को (पुष्ट्यै) पुष्टि रखने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालने हारे को (वीर्याय) वीर्य बढ़ाने के अर्थ (अविपालम्) गड़रिये को (तेजसे) तेज वृद्धि के लिये (अजपालम्) बकरे बकरियों को (इरायै) अन्नादि के बढ़ाने के अर्थ (कीनाशम्) खितिहर को (कीलालाय) अन्न के लिये (सुराकारम्) सोम ओषधियों के रस को निकालने वाले को और (भद्राय) कल्याण के अर्थ (गृहपम्) घरों के रक्षक को (श्रेयसे) धर्म, अर्थ और कामना की प्राप्ति के अर्थ (वित्तधम्) धन धारण करने वालों को और (आध्यक्ष्याय) अध्यक्षों के स्वत्व के लिये (अनुक्षत्तारम्) अनुकूल सारथि को उत्पन्न कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अच्छे शिक्षित हाथी आदि को रखने वाले पुरुषों को ग्रहण कर इनसे बहुतसे व्यवहार सिद्ध करें ॥ ११ ॥

भाया इत्यस्य नारायण ऋषिः । विद्वान् देवता । विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारᳪ सर्वेभ्यो लोकेभ्य उपसेक्तारमव ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रकामाय रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (भायै) दीप्ति के लिये (दार्वाहारम्) काष्ठों को पहुंचाने वाले को (प्रभायै) कान्ति शोभा के लिये (अग्न्येधम्) अग्नि और इन्धन को (ब्रध्नस्य) घोड़े के (विष्टपाय) मार्ग के अर्थ (अभिषेक्तारम्) अभिषेक राजतिलक करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अति श्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों से रहित सुख विशेष के लिये (परिवेष्टारम्) परोसने वाले को (देवलोकाय)

विद्वानों के दर्शन के लिये (पेशितारम्) विद्या के अवयवों को जानने वाले को (मनुष्यलोकाय) मनुष्यपन के देखने को (प्रकरितारम्) विक्षेप करने वाले को (सर्वेभ्यः) सब (लोकेभ्यः) लोकों के लिये (उपसेक्तारम्) उपसेचन करने वाले को (मेधाय) सङ्गम के अर्थ (वासः पल्पूलीम्) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली ओषधि को और (प्रकामाय) उत्तम कामना की सिद्धि के लिये (रजयित्रीम्) उत्तम रंग करने वाली ओषधि को उत्पन्न प्रकट कीजिये और (अवऋत्यै) विरुद्ध प्राप्ति जिस में हो उस (वधाय) मारने के लिये प्रवृत्त हुए (उपमन्थितारम्) ताड़नादि से पीड़ा देने वाले दुष्ट को दूर कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषादि मनुष्यों को चाहिये कि ईश्वर रचित सृष्टि से सब सामग्रियों को ग्रहण करें उन से शरीर का बल विद्या और न्याय का प्रकाश बड़ा सुख राज्य का अभिषेक दुःखों का विनाश विद्वानों का संग मनुष्यों का स्वभाव वस्त्रादि की पवित्रता अच्छी सिद्ध करें और विरोध को छोड़ें ॥ १२ ॥

ऋतय इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईश्वरो देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियवादिनमरिष्ट्या अश्वसादꣳस्वर्गाय लोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे परमात्मन् वा राजन् आप (ऋतये) हिंसा करने के लिये प्रवृत्त हुए (स्तेनहृदयम्) चोर के तुल्य हृदय कपटी को और (वैरहत्याय) वैर तथा हत्या जिस कर्म में हो उस के लिये प्रवृत्त हुए (पिशुनम्) निन्दक को पृथक् कीजिये (विविक्त्यै) विविक्त करने के लिये (क्षत्तारम्) ताड़ना से रक्षा करने हारे धर्मात्मा को (औपद्रष्ट्याय) उपद्रष्टा होने के लिये (अनुक्षत्तारम्) धर्मात्मा के अनुकूलवर्त्ती को (बलाय) बल के अर्थ (अनुचरम्) सेवक को (भूम्ने) वृद्धि की अधिकता के लिये (परिष्कन्दम्) सब ओर से वीर्य सींचने वाले को (प्रियाय) प्रीति के अर्थ (प्रियवादिनम्) प्रियवादी को (अरिष्ट्यै) कुशल प्राप्ति के लिये (अश्वसादम्) घोड़ों को चलाने वाले को (स्वर्गाय) सुख विशेष के (लोकाय) देखने वा संचित करने के लिये (भागदुघम्) अंशों को

पूर्ण करने वाले को (वर्षिष्ठाय) अति श्रेष्ठ (नाकाय) सब दुःखों से रहित आनन्द के लिये (परिवेष्टारम्) सब ओर से व्याप्त विद्या वाले विद्वान् को प्रकट कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—राजा आदि उत्तम मनुष्यों को चाहिये कि दुष्टों के संग को छोड़ श्रेष्ठों का संग कर विवेक आदि को उत्पन्न कर सुखी होवें ॥ १३ ॥

मन्यव इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारᳬशोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतᳬशीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा सभापते राजन् ! आप (मन्यवे) आन्तर्य क्रोध के अर्थ प्रवृत्त हुए (अयस्तापम्) लोह वा सुवर्ण को तपाने वाले को (क्रोधाय) बाह्य क्रोध के लिये प्रवृत्त हुए (निसरम्) निश्चित चलने वाले को (शोकाय) शोच के लिये प्रवृत्त हुए (अभिसर्त्तारम्) सन्मुख चलने वाले को और (यमाय) दण्ड देने के लिये प्रवृत्त हुई (असूम्) क्रोध से इधर उधर हाथ आदि फेंकने वाली को दूर कीजिये और (योगाय) योगाभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले को (क्षेमाय) रक्षा के लिये (विमोक्तारम्) दुःख से छुड़ाने वाले को (उत्कूलनिकूलेभ्यः) ऊपर नीचे किनारों पर चढ़ाने उतारने के लिये (त्रिष्ठिनम्) जल स्थल और आकाश में रहने वाले विमानादि यानों से युक्त पुरुष को (वपुषे) शरीर के हित के लिये (मानस्कृतम्) मन से किये विचारों में प्रवीण को (शीलाय) जितेन्द्रियता आदि उत्तम स्वभाव वाले के लिये (आञ्जनीकारीम्) प्रसिद्ध क्रियाओं के करने हारे स्वभाव वाली स्त्री को और (निर्ऋत्यै) भूमि के लिये (कोशकारीम्) कोश का संचय करने वाली स्त्री को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जो तपे लोहे के तुल्य क्रोध को प्राप्त हुए औरों को दुःख देने और धर्म नियमों को नष्ट करने वाले हों उनको दण्ड देकर योगाभ्यास करने वाले आदि का सत्कार कर सब जगह सवारी चलाने वालों को इकट्ठा कर तुम को यथावत् सुख बढ़ाना चाहिये ॥ १४ ॥

यमायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳬं संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳬं संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धᳬं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (यमाय) नियमकर्त्ता के लिये (यमसूम्) नियन्ताओं को उत्पन्न करने वाली को (अथर्वभ्यः) अहिंसकों के लिये (अवतोकाम्) जिस की सन्तान बाहर निकल गई हो उस स्त्री को (संवत्सराय) प्रथम संवत्सर के अर्थ (पर्यायिणीम्) सब ओर से काल के क्रम को जानने वाली को (परिवत्सराय) दूसरे वर्ष के निर्णय के लिये (अविजाताम्) ब्रह्मचारिणी कुमारी को (इदावत्सराय) तीसरे इदा वत्सर में कार्य साधने के अर्थ (अतीत्वरीम्) अत्यन्त चलने वाली को (इद्वत्सराय) पांचवें इद्वत्सर के ज्ञान के अर्थ (अतिष्कद्वरीम्) अतिशय कर जानने वाली को (वत्सराय) सामान्य संवत्सर के लिये (विजर्जराम्) वृद्धा स्त्री को (संवत्सराय) चौथे अनुवत्सर के लिये (पलिक्नीम्) श्वेत केशों वाली को (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के अर्थ (अजिनसन्धम्) नहीं जीतने योग्य पुरुषों से मेल रखने वाले को (साध्येभ्यः) और साधने योग्य कार्यों के लिये (चर्मम्नम्) विज्ञान शास्त्र का अभ्यास करने वाले पुरुष को उत्पन्न कीजिये ॥ १५ ॥

भावार्थः—प्रभव आदि ६० साठ संवत्सरों में पांच २ कर १२ बारह युग होते हैं उन प्रत्येक युग में क्रम से संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर, ये पांच संज्ञा हैं उन सब काल के अवयवों के मूल संवत्सरों को विशेष कर जो स्त्री लोग यथावत् जान के व्यर्थ नहीं गंवातीं वे सब प्रयोजनों की सिद्धि को प्राप्त होती हैं ॥ १५ ॥

सरोभ्य इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् कृतिश्छन्दः ।

निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालᳬं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातᳬं सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (सरोभ्यः) बड़े तलावों के लिये (धैवरम्) धीमर के लड़के को (उपस्थावराभ्यः) समीपस्थ निकृष्ट क्रियाओं के अर्थ (दाशम्) जिस को दिया जावे उस सेवक को (वैशन्ताभ्यः) छोटे २ जलाशयों के प्रबन्ध के लिये (बैन्दम्) निषाद के अपत्य को (नड्वलाभ्यः) नरसल वाली भूमि के लिये (शौष्कलम्) मच्छियों से जीवने वाले को और (विषमेभ्यः) विकट देशों के लिये (मैनालम्) कामदेव को रोकने वाले को (अवाराय) अपनी ओर आने के लिये (कैवर्त्तम्) जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाले को (तीर्थेभ्यः) तरने के साधनों के लिये (आन्दम्) बांधने वाले को उत्पन्न कीजिये (पाराय) हरिण आदि की चेष्टा को समाप्त करने को प्रवृत्त हुए (मार्गारम्) व्याध के पुत्र को (स्वनेभ्यः) शब्दों के लिये (पर्णकम्) रक्षा करने में निन्दित भील को (गुहाभ्यः) गुहाओं के अर्थ (किरातम्) बहेलिये को (सानुभ्यः) शिखरों पर रहने के लिये प्रवृत्त हुए (जम्भकम्) नाश करने वाले को और (पर्वतेभ्यः) पहाड़ों से (किम्पूरुषम्) खोटे जंगली मनुष्य को दूर कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल कर्मों से कहार आदि की रक्षा करें और बहेलिये आदि हिंसकों को छोड़ के उत्तम सुख पावें ॥ १६ ॥

बीभत्साया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । विराट् धृतिश्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बीभत्सायै पौल्कसं वर्णाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्ध्या अपगल्भꣳ सꣳशराय प्रच्छिदम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन्! आप (बीभत्सायै) धमकाने के लिये प्रवृत्त हुए (पौल्कसम्) भंगी के पुत्र को (पश्चादोषाय) पीछे दोष देने को प्रवृत्त हुए (ग्लाविनम्) हर्ष को नष्ट करने वाले को (अभूत्यै) दरिद्रता के अर्थ समर्थ (स्वपनम्) सोने को (व्यृद्ध्यै) संपत् के बिगाड़ने के अर्थ प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) प्रगल्भतारहित पुरुष को तथा (संशराय) सम्यक् मारने के लिये प्रवृत्त हुए (प्रच्छिदम्) अधिक छेदन करने वाले को पृथक् कीजिये और (वर्णाय) सुन्दररूप बनाने के लिये (हिरण्यकारम्) सुनार वा सूर्य्य को (तुलायै) तोलने के अर्थ (वाणिजम्) बनिये के पुत्र को

(विश्वेभ्यः) सब (भूतेभ्यः) प्राणियों के लिये (सिध्मलम्) सुख सिद्ध करने वाले जिस के सहायी हों उस जन को (भूत्यै) ऐश्वर्य होने के अर्थ (जागरणम्) प्रबोध को और (आर्त्यै) पीड़ा की निवृत्ति के लिये (जनवादिनम्) मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य वाद विवाद करने वाले उत्तम मनुष्य को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य नीचों का सङ्ग छोड़ के उत्तम पुरुषों की संगति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्य वाले होते हैं जो अनालसी हो के सिद्धि के लिये यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं ॥ १७ ॥

अक्षराजायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्प्रकृतिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्य्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप (अक्षराजाय) पासों से खेलने वालों के प्रधान के हितकारी (कितवम्) जुआ करने वाले को (मृत्यवे) मारने के अर्थ (गोव्यच्छम्) गौओं में बुरी चेष्टा करने वाले को (अन्तकाय) नाश के अर्थ (गोघातम्) गौओं के मारने वाले को (क्षुधे) क्षुधा के लिये (यः) जो (गाम्) गौ को मारता उस (विकृन्तन्तम्) काटते हुए को जो (भिक्षमाणः) भीख मांगता हुआ (उपतिष्ठति) उपस्थित होता है (दुष्कृताय) दुष्ट आचरण के लिये प्रवृत्त हुए उस (चरकाचार्य्यम्) भक्षण करने वालों के गुरु को (पाप्मने) पापी के हितकारी (सैलगम्) दुष्ट के पुत्र को दूर कीजिये (कृताय) किये हुए के अर्थ (आदिनवदर्शम्) आदि में नवीनों को देखने वाले को (त्रेतायै) तीन के होने के अर्थ (कल्पिनम्) प्रशंसित सामर्थ्य वाले को (द्वापराय) दो जिस के इधर सम्बन्धी हों उस के अर्थ (अधिकल्पिनम्) अधिकार सामर्थ्ययुक्त को और (आस्कन्दाय) अच्छे प्रकार सुखाने के अर्थ (सभास्थाणुम्) सभा में स्थिर होने वाले को प्रकट वा उत्पन्न कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ज्योतिषी आदि सत्याचारियों का सत्कार करते और दुष्टाचारी गोघातादि को ताड़ना देते हैं वे राज्य करने को समर्थ होते हैं ॥ १८ ॥

प्रतिश्रुत्काया इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिग्धृतिश्छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

प्रतिश्रुत्काया अर्त्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकथं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (प्रतिश्रुत्कायै) प्रतिज्ञा करने वाली के अर्थ (अर्त्तनम्) प्राप्ति कराने वाले को (घोषाय) घोषणे के लिये (भषम्) सब ओर से बोलने वाले को (अन्ताय) समीप वा मर्य्यादा वाले के लिये (बहुवादिनम्) बहुत बोलने वाले को (अनन्ताय) मर्यादा रहित के लिये (मूकम्) गूंगे को (महसे) बड़े के लिये (वीणावादम्) वीणा बजाने वाले को (अवरस्पराय) नीचे के मनुष्यों के अर्थ (शङ्खध्मम्) शङ्ख बजाने वाले को और (वनाय) वन के लिये (वनपम्) जङ्गल की रक्षा करने वाले को उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (शब्दाय) शब्द करने को प्रवृत्त हुए (आडम्बराघातम्) हल्ला गुल्ला करने वाले को (क्रोशाय) कोशने को प्रवृत्त हुए (तूणवध्मम्) बाजे विशेष को बजाने वाले को (अन्यतोरण्याय) अन्य अर्थात् ईश्वरीय सृष्टि से जहां वन हों उस देश की हानि के लिये (दावपम्) वन को जलाने वाले दूर कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने स्त्री पुरुष आदि के साथ पढ़ाने और संवाद करने आदि व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ १९ ॥

नर्मायेत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगतिजगती छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (नर्माय) क्रीड़ा के लिये प्रवृत्त हुई (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को (हसाय) हंसने को प्रवृत्त हुए (कारिम्) विक्षिप्त पागल को और (यादसे) जल जन्तुओं के मारने को प्रवृत्त हुई (शाबल्याम्)

कबरे मनुष्य की कल्पा को दूर कीजिये (ग्रामण्यम्) ग्रामाधीश (गणकम्) ज्योतिषी और (अभिक्रोशकम्) सब ओर से बुलाने वाले जन (तान्) इन सब को (महसे) सत्कार के अर्थ (वीणावादम्) वीणा बजाने (पाणिघ्नम्) हाथों से वादित्र बजाने और (तूणवध्मम्) तूणवनामक बाजे को बजाने वाले (तान्) उन सब को (नृत्ताय) नाचने के लिये और (आनन्दाय) आनन्द के अर्थ (तलवम्) ताली आदि बजाने वाले को उत्पन्न वा प्रसिद्ध कीजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि हँसी और व्यभिचारादि दोषों को छोड़ और गाने बजाने नाचने आदि की शिक्षा को प्राप्त होके आनन्दित होवें ॥ २० ॥

अग्नय इत्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । भुरिगत्यष्टिश्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नये॒ पीवा॑नं पृथि॒व्यै पी॑ठस॒र्पिणं॑ वा॒यवे॑ चाण्डा॒लम॒न्तरि॑क्षाय वꣳशन॒र्त्तिनं॑ दि॒वे ख॑ल॒तिꣳ सूर्या॑य हर्य॒क्षं नक्ष॑त्रेभ्यः किर्मि॒रं च॒न्द्रम॑से कि॒लास॒मह्ने॑ शु॒क्लं पि॑ङ्गा॒क्षꣳरात्र्यै॑ कृ॒ष्णं पि॑ङ्गा॒क्षम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा राजन् ! आप (अग्नये) अग्नि के लिये (पीवानम्) मोटे पदार्थ को (पृथिव्यै) पृथिवी के लिये (पीठसर्पिणम्) विना पगों के कढ़िरके चलनेवाले सांप आदि को (अन्तरिक्षम्) आकाश और पृथिवी के बीच में खेलने को (वंशनर्त्तिनम्) बांस से नाचने वाले नट आदि को (सूर्याय) सूर्य के ताप प्रकाश मिलने के लिये (हर्यक्षम्) बांदर की सी छोटी आंखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को (चन्द्रमसे) चन्द्रमा के तुल्य आनन्द देने के लिये (किलासम्) थोड़े श्वेतवर्ण वाले को और (अह्ने) दिन के लिये (शुक्लम्) शुद्ध (पिङ्गलम्) पीली आंखों वाले को उत्पन्न कीजिये (वायवे) वायु के स्पर्श के अर्थ (चाण्डालम्) भंगी को (दिवे) क्रीड़ा के अर्थ प्रवृत्त हुए (खलितम्) गंजे को (नक्षत्रेभ्यः) राज्य विरोध के लिये प्रवृत्त हुओं के लिये (किर्मिरम्) कबरों को और (रात्र्यै) अन्धकार के लिये प्रवृत्त हुए (कृष्णम्) काले रङ्ग वाले (पिङ्गाक्षम्) पीले नेत्रों से युक्त पुरुष को दूर कीजिये ॥ २१ ॥

भावार्थः—अग्नि स्थूल पदार्थों के जलाने को समर्थ होता है सूक्ष्म को नहीं । पृथिवी पर निरन्तर सर्पादि फिरते हैं किन्तु पक्षी आदि नहीं । भंगी के शरीर में आया वायु दुर्गन्धयुक्त होने से सेवने योग्य नहीं होता इत्यादि तात्पर्य जानना चाहिये ॥ २१ ॥

अथैतानित्यस्य नारायण ऋषिः । राजेश्वरौ देवते । निचृत्कृतिश्छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अथैतान॒ष्टौ विरू॑पा॒नाल॑भ॒तेऽति॑दीर्घं॒ चाति॑ह्र॒स्वं चाति॑स्थू॒लं चाति॑कृ॒शं चाति॑शु॒क्लं चाति॑कृ॒ष्णं चाति॑कु॒ल्वं चाति॑लोम॒शं च॑ । अशू॑द्रा॒ अब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः । मा॒ग॒धः पुं॒श्च॒ली कि॑त॒वः क्ली॒बोऽशू॑द्रा॒ अब्रा॑ह्मणा॒स्ते प्रा॑जाप॒त्याः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे राजा लोगो ! जैसे विद्वान् (अतिदीर्घम्) बहुत बड़े (च) और (अतिह्रस्वम्) बहुत छोटे (च) और (अतिस्थूलम्) बहुत मोटे (च) और (अतिकृशम्) बहुत पतले (च) और (अतिशुक्लम्) अतिश्वेत (च) और (अतिकृष्णम्) बहुत काले (च) और (अतिकुल्वम्) लोमरहित (च) और (अतिलोमशम्) बहुत लोमों वाले को (च) भी (एतान्) इन (विरूपान्) अनेक प्रकार के रूपों वाले (अष्टौ) आठों को (आ, लभते) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम लोग भी प्राप्त होओ (अथ) इस के अनन्तर जो (अशूद्राः) शूद्रभिन्न (अब्राह्मणाः) तथा ब्राह्मणभिन्न (प्राजापत्याः) प्रजापति देवता वाले हैं (ते) वे भी प्राप्त हों जो (मागधः) मनुष्यों में निन्दित जो (पुंश्चली) व्यभिचारिणी (कितवः) जुआरी (क्लीबः) नपुंसक (अशूद्राः) जिन में शूद्र और (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण नहीं उन को दूर बसाना चाहिये और जो (प्राजापत्याः) राजा वा ईश्वर के सम्बन्धी हैं (ते) वे समीप में बसने चाहिये ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् छोटे बड़े पदार्थों को जान के यथायोग्य व्यवहार को सिद्ध करते हैं वैसे और लोग भी करें सब लोगों को चाहिये कि प्रजा के रक्षक ईश्वर और राजा की आज्ञा सेवन तथा उपासना नित्य किया करें ॥ २२ ॥

इस अध्याय में परमेश्वर के स्वरूप और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

सहस्रशीर्षेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब इकतीसवें अध्याय का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में परमात्मा
की उपासना, स्तुतिपूर्वक सृष्टि विद्या के विषय को कहते हैं ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिꣳसर्वतस्पृत्वा-
त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सहस्रशीर्षा) सब प्राणियों के हजारों शिर (सहस्राक्षः) हज़ारों नेत्र और (सहस्रपात्) असङ्ख्य पाद जिस के बीच में हैं ऐसा (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक जगदीश्वर है (सः) वह (सर्वतः) सब देशों से (भूमिम्) भूगोल में (स्पृत्वा) सब ओर से व्याप्त हो के (दशाङ्गुलम्) पांच स्थूल भूत पांच सूक्ष्म भूत ये दश जिस के अवयव हैं उस सब जगत् को (अति, अतिष्ठत्) उल्लङ्घकर स्थित होता अर्थात् सब से पृथक् भी स्थिर होता है ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस पूर्ण परमात्मा में हम मनुष्य आदि के असंख्य शिर आंखें और पग आदि अवयव हैं जो भूमि आदि से उपलक्षित हुए पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों से युक्त जगत् को अपनी सत्ता से पूर्ण कर जहां जगत् नहीं वहां भी पूर्ण हो रहा है उस सब जगत् के बनाने वाले परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध,

मुक्तस्वभाव परमेश्वर को छोड़ के अन्य की उपासना तुम कभी न करो किन्तु उस ईश्वर की उपासना से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करो ॥ १ ॥

पुरुष इत्यस्य नारायण ऋषिः । ईशानो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पुरु॑ष एवेदꣳ सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म् । उ॒तामृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) पृथिवी आदि के सम्बन्ध से (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का (ईशानः) अधिष्ठाता (पुरुषः) सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा (एव) ही रचता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने जब २ सृष्टि हुई तब २ रची इस समय धारण करता फिर विनाश करके रचेगा। जिस के आधार से सब वर्त्तमान हैं और बढ़ता है उसी सब के स्वामी परमात्मा की उपासना करो इस से भिन्न की नहीं ॥ २ ॥

एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ꣳश्च॒ पूरु॑षः । पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्वसूचक है (अतः) इस ब्रह्माण्ड से यह (पूरुषः) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अतिप्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिव्यादि चराचर जगत् एक (पादः) अंश है और (अस्य) इस जगत् स्रष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (अमृतम्) नाशरहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥ ३ ॥

भावार्थः—यह सब सूर्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलयरूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुर्थांश में ही रहता किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य

के तीन अंश अपने अविनाशि मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत् की अपेक्षा उस का महत्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ॥ ३ ॥

त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

पदार्थः—पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरुषः) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्वः) सब से उत्तम मुक्तिस्वरूप संसार से पृथक् (उत्, ऐत्) उदय को प्राप्त होता है (अस्य) इस पुरुष का (पादः) एक भाग (इह) इस जगत् में (पुनः) बार २ उत्पत्ति प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है (ततः) इस के अनन्तर (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विष्वङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि, अक्रामत्) विशेष कर व्याप्त होता है ॥ ४ ॥

भावार्थः—यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्य जगत् से पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत् को बार २ उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत् में व्याप्त होकर स्थित है ॥ ३ ॥

ततो विराडित्यस्य नारायण ऋषिः। स्रष्टा देवता। अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (ततः) उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता (विराजः) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पूरुषः) परिपूर्ण परमात्मा होता है (अथो) इस के अनन्तर (सः) वह पुरुष (पुरः) पहिले से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अति, अरिच्यत) जगत् से अतिरिक्त होता है (पश्चात्) पीछे (भूमिम्) पृथिवी को उत्पन्न करता है उस को जानो ॥ ५ ॥

भावार्थः—परमेश्वर ही से सब समष्टिरूप जगत् उत्पन्न होता है वह उस जगत् से पृथक् उस में व्याप्त भी हुआ उस के दोषों से लिप्त न होके इस सब का अधिष्ठाता है।

इस प्रकार सामान्य कर जगत् की रचना कहके विशेष कर भूमि आदि की रचना को क्रम से कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒: सम्भृ॑तं पृषदा॒ज्यम् । प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे वाय॒व्या॒नार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तस्मात्) उस पूर्वोक्त (सर्वहुतः) जो सब से ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरुष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक् सिद्ध उत्पन्न हुआ (ये) जो (आरण्याः) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्याः) ग्राम में हुए गौ आदि हैं (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुणों वाले (पशून्) पशुओं को जो (चक्रे) उत्पन्न करता है उस को तुम लोग जानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस सब को ग्रहण करने योग्य पूजनीय परमेश्वर ने सब जगत् के हित के लिये दही आदि भोगने योग्य पदार्थों और ग्राम के तथा वन के पशु बनाये हैं उस की सब लोग उपासना करो ॥ ६ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । स्रष्टेश्वरो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व॒हुत॒ ऋच॒: सामा॑नि जज्ञिरे । छन्दा॑ᳬसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑दजायत ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त पूजनीय (सर्वहुतः) जिस के अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते (तस्मात्) उस परमात्मा से (छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता और (तस्मात्) उस पुरुष से (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) उत्पन्न होता है उस को जानो ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस से सब वेद उत्पन्न हुए हैं उस परमात्मा की उपासना करो वेदों को पढ़ो और उस की आज्ञा के अनुकूल वर्त्त के सुखी होओ ॥ ७ ॥

तस्मादित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुमको (अश्वाः) घोड़े तथा (ये) जो (के) कोई (च) गदहा आदि (उभयादतः) दोनों ओर ऊपर नीचे दांतों वाले हैं वे (तस्मात्) उस परमेश्वर से (अजायन्त) उत्पन्न हुए (तस्मात्) उसी से (गावः) गौएं (यह एक ओर दांत वालों का उपलक्षण है इस से अन्य भी एक ओर दांत वाले लिये जाते हैं) (ह) निश्चय कर (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उस से (अजावयः) बकरी भेड़ (जाताः) उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग गौ घोड़े आदि ग्राम के सब पशु जिस सनातन पूर्ण पुरुष परमेश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन कभी मत करो ॥८॥

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (देवाः) विद्वान् (च) और (साध्याः) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषयः) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रतः) सृष्टि के पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र, औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उस का पूजन करते हैं (तम्) उसको तुम लोग भी जानो ॥ ९ ॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ॥ ९ ॥

यत्पुरुषमित्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! आप (यत्) जिस (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (वि, अदधुः) विविधप्रकार से धारण करते हो उस को (कतिधा) कितने प्रकार से (वि, अकल्पयन्) विशेष कर कहते हैं और (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (मुखम्) मुख के समान श्रेष्ठ (किम्) कौन (आसीत्) है (बाहू) भुजबल का धारण करने वाला (किम्) कौन (ऊरू) घोंटू के कार्य्य करने हारे और (पादौ) पांव के समान नीच (किम) कौन (उच्येते) कहे जाते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! इस संसार में असंख्य सामर्थ्य ईश्वर का उस समुदाय में उत्तम अङ्ग मुख और बाहू आदि अङ्ग कौन हैं ? यह कहिये ॥ १० ॥

ब्राह्मण इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु लोगो ! तुम (अस्य) इस ईश्वर की सृष्टि में (ब्राह्मणः) वेद ईश्वर का ज्ञाता इन का सेवक वा उपासक (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण (आसीत्) है (बाहू) भुजाओं के तुल्य बल पराक्रमयुक्त (राजन्यः) रजपूत (कृतः) किया (यत्) जो (ऊरू) जांघों के तुल्य वेगादि काम करने वाला (तत्) वह (अस्य) इस का (वैश्यः) सर्वत्र प्रवेश करने हारा वैश्य है (पद्भ्याम्) सेवा और अभिमान रहित होने से (शूद्रः) मूर्खपन आदि गुणों से युक्त शूद्र (अजायत) उत्पन्न हुआ ये उत्तर क्रम से जानो ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और शमदमादि उत्तम गुणों में मुख के तुल्य उत्तम हों वे ब्राह्मण, जो अधिक पराक्रम वाले भुजा के तुल्य कार्य्यों को सिद्ध करने हारे हों वे क्षत्रिय, जो व्यवहार विद्या में प्रवीण हों वे वैश्य और जो सेवा में प्रवीण विद्याहीन पगों के समान मूर्खपन आदि नीच गुणयुक्त हैं वे शूद्र करने और मानने चाहियें ॥ ११ ॥

चन्द्रमा इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! इस पूर्णब्रह्म के (मनसः) ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से (चन्द्रमाः) चन्द्रलोक (जातः) उत्पन्न हुआ (चक्षोः) ज्योतिःस्वरूप सामर्थ्य से (सूर्यः) सूर्य्यमण्डल (अजायत) उत्पन्न हुआ (श्रोत्रात्) श्रोत्र नाम अवकाशरूप सामर्थ्य से (वायुः) वायु (च) तथा आकाश प्रदेश (च) और (प्राणः) जीवन के निमित्त दश प्राण और (मुखात्) मुख्य ज्योतिर्मय भक्षण स्वरूप सामर्थ्य से (अग्निः) अग्नि (अजायत) उत्पन्न हुआ है ऐसा तुम को जानना चाहिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो यह सब जगत् कारण से ईश्वर ने उत्पन्न किया है उस में चन्द्रलोक मनरूप सूर्य्यलोक नेत्ररूप वायु और प्राण श्रोत्र के तुल्य मुख के तुल्य अग्नि ओषधि और वनस्पति रोमों के तुल्य नदी नाड़ियों के तुल्य और पर्वतादि हड्डी के तुल्य हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ १२ ॥

नाभ्या इत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नाभ्या॑ आसीद॒न्तरि॑क्षꣳ शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्त्तत । प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिशः॒ श्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒काँ२॥ अ॑कल्पयन् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे इस पुरुष परमेश्वर के (नाभ्याः) अवकाशरूप मध्यम सामर्थ्य से (अन्तरिक्षम्) लोकों के बीच का आकाश (आसीत्) हुआ (शीर्ष्णः) शिर के तुल्य उत्तम सामर्थ्य से (द्यौः) प्रकाशयुक्त लोक (पद्भ्याम्) पृथिवी के कारणरूप सामर्थ्य से (भूमिः) पृथिवी (सम्, अवर्त्तत) सम्यक् वर्त्तमान हुई और (श्रोत्रात्) अवकाशरूप सामर्थ्य से (दिशः) पूर्व आदि दिशाओं की (अकल्पयन्) कल्पना करते हैं (तथा) वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से अन्य (लोकान्) लोकों को उत्पन्न हुए जानो ॥ १३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो २ इस सृष्टि में कार्यरूप वस्तु है वह २ सब विराट्रूप कार्यकारण का अवयवरूप है ऐसा जानना चाहिये ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेणेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत । व॒स॒न्तो᳕ऽस्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्म इ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यत्) जब (हविषा) ग्रहण करने योग्य (पुरुषेण) पूर्ण परमात्मा के साथ (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (अतन्वत)

विस्तृत करते हैं । (अस्य) इस यज्ञ के (वसन्तः) पूर्वाह्न काल ही (आज्यम्) घी (ग्रीष्मः) मध्याह्न काल (इध्मः) इन्धन प्रकाशक और (शरत्) आधीरात (हविः) होमने योग्य पदार्थ (आसीत्) है । ऐसा जानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—जब बाह्य सामग्री के अभाव में विद्वान् लोग सृष्टिकर्त्ता ईश्वर की उपासनारूप मानस ज्ञान यज्ञ को विस्तृत करें तब पूर्वाह्न आदि काल ही साधनरूप से कल्पना करने चाहियें ॥ १४ ॥

सप्तास्येत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुप्तास्यांसन्परिधयुस्त्रिः सुप्त सुमिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं त॑न्वाना अब॑ध्नन्पुरु॑षं पुशुम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जिस (यज्ञम्) मानसज्ञान यज्ञ को (तन्वानाः) विस्तृत करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (पशुम्) जानने योग्य (पुरुषम्) परमात्मा को हृदय में (अबध्नन्) बांधते हैं (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधयः) चारों ओर से सूत के सात लपेटों के समान (आसन्) हैं (त्रिः, सप्त) इक्कीस अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय और सत्त्व, रजस्, तमस्, तीन गुण ये (समिधः) सामग्री रूप (कृताः) किये उस यज्ञ को यथावत् जानो ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग इस अनेक प्रकार से कल्पित परिधि आदि सामग्री से युक्त मानस यज्ञ को कर उस से पूर्ण ईश्वर को जान के सब प्रयोजनों को सिद्ध करो ॥ १५ ॥

यज्ञेनेत्यस्य नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

युज्ञेन॑ युज्ञम॑यजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथुमान्या॑सन् । ते ह नाकं॑ महिमानः॑ सचन्त यत्र पूर्वे॑ साध्याः सन्ति॑ देवाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञेन) पूर्वोक्त ज्ञान यज्ञ से (यज्ञम्) पूजनीय सर्वरक्षक अग्निवत् तेजस्वि ईश्वर की (अयजन्त) पूजा करते हैं (तानि) वे ईश्वर की पूजा आदि (धर्माणि) धारणारूप धर्म (प्रथमानि) अनादि रूप से मुख्य (आसन्) हैं (ते) वे विद्वान् (महिमानः) महत्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) इस समय से पूर्व हुए (साध्याः) साधनों को किये

हुए (देवाः) प्रकाशमान विद्वान् (सन्ति) हैं उस (नाकम्) सब दुःख रहित मुक्ति सुख को (ह) ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं उस को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि योगाभ्यास आदि से सदा ईश्वर की उपासना करें इस अनादिकाल से प्रवृत्त धर्म से मुक्ति सुख को पाके पहिले मुक्त हुए विद्वानों के समान आनन्द भोगें ॥ १६ ॥

अद्भ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒द्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै रसा॑च्च वि॒श्वक॑र्मणः॒ सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ । तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रू॒पमे॑ति॒ तन्मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वमा॒जान॒मग्रे॑ ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अद्भ्यः) जलों (पृथिव्यै) पृथिवी (च) और (विश्वकर्मणः) सब कर्म जिस के आश्रय से होते उस सूर्य से (सम्भृतः) सम्यक् पुष्ट हुआ उस (रसात्) रस से (अग्रे) पहिले यह सब जगत् (सम्, अवर्त्तत) वर्त्तमान होता है (तस्य) उस इस जगत् के (तत्) उस (रूपम्) स्वरूप को (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला ईश्वर (विदधत्) विधान करता हुआ (अग्रे) आदि में (मर्त्यस्य) मनुष्य के (आजानम्) अच्छे प्रकार कर्त्तव्य कर्म और (देवत्वम्) विद्वत्ता को (एति) प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण कार्य करने द्वारा परमेश्वर कारण से कार्य बनाता है सब जगत् के शरीरों के रूपों को बनाता है उसका ज्ञान और उसकी आज्ञा का पालन ही देवत्व है ऐसा जानो ॥ १७ ॥

वेदाहमित्यस्योत्तर नारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्वान् जिज्ञासु के लिये कैसा उपदेश करे इस वि० ॥

वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त् । तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ विद्य॒तेऽय॑नाय ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु पुरुष ! (अहम्) मैं जिस (एतम्) इस पूर्वोक्त (महान्तम्) बड़े २ गुणों से युक्त (आदित्यवर्णम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (तमसः) अन्धकार वा अज्ञान से (परस्तात्) पृथक् वर्त्तमान (पुरुषम्) स्व स्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा

को (वेद) जानता हूं (तम्, एव) उसी को (विदित्वा) जान के आप (मृत्युम्) दुःखदायी मरण को (अति, एति) उल्लङ्घन कर जाते हो किन्तु (अन्यः) इस से भिन्न (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) अभीष्ट स्थान मोक्ष के लिये (न, विद्यते) नहीं विद्यमान है ॥ १८ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य इस लोक परलोक के सुखों की इच्छा करें तो सब से अति बड़े स्वयं प्रकाश और आनन्दस्वरूप अज्ञान के लेश से पृथक् वर्त्तमान परमात्मा को जान के ही मरणादि अथाह दुःखसागर से पृथक् हो सकते हैं यही सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न कोई भी मनुष्यों की मुक्ति का मार्ग नहीं है ॥ १८ ॥

प्रजापतिरित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) विचरता है और (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वि, जायते) विशेष कर प्रकट होता (तस्य) उस प्रजापति के जिस (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) ध्यानशील विद्वान् जन (परि, पश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं (तस्मिन्) उस में (ह) प्रसिद्ध (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं ॥ १९ ॥

भावार्थः—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उस में प्रविष्ट हो के सर्वत्र विचरता है जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य इत्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । सूर्यो देवता । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब सूर्य कैसा है इस वि० ॥

यो देवेभ्यं आतपंति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो सूर्यलोक (देवेभ्यः) उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ (आतपति) अच्छे प्रकार तपता है (यः) जो (देवानाम्) पृथिवी आदि लोकों के (पुरोहितः) प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया (यः) जो (देवेभ्यः) पृथिवी आदि से (पूर्वः) प्रथम (जातः) उत्पन्न हुआ उस (रुचाय) रुचि कराने वाले (ब्राह्मये) परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य से (नमः) अन्न उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य को बनाया है उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥ २० ॥

रुचमित्यस्योत्तरनारायण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अथ विद्वानों का कृत्यक० ॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्यं देवा असुन्वशे ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष ! जो (रुचम्) रुचिकारक (ब्राह्मम्) ब्रह्म के उपासक (त्वा) आप को (जनयन्तः) सम्पन्न करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अग्रे) पहिले (तत्) ब्रह्म जीव और प्रकृति के स्वरूप को (अब्रुवन्) कहें (यः) जो (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (एवम्) ऐसे (विद्यात्) जाने (तस्य) उस के वे (देवाः) विद्वान् (वशे) वश में (असन्) हों ॥ २१ ॥

भावार्थः—यही विद्वानों का पहिला कर्त्तव्य है कि जो वेद ईश्वर और धर्म आदि में रुचि, उपदेश, अध्यापन, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता, शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाना, ऐसा करने से ही सब उत्तम गुण और भोग प्राप्त हो सकते हैं ॥ २१ ॥

श्रीश्चेत इत्यस्योत्तर नारायण ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर कैसा है इस वि० ॥

श्रीश्चं ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस (ते) आप की (श्रीः) समग्र शोभा (च) और (लक्ष्मीः) सब ऐश्वर्य (च) भी (पत्न्यौ) दो स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान (अहोरात्रे)

दिन रात (पार्श्वे) आगे पीछे जिस आप की सृष्टि में (अश्विनौ) सूर्य चन्द्रमा (व्यात्तम्) फैले मुख के समान (नक्षत्राणि) नक्षत्र (रूपम्) रूप वाले हैं सो आप (मे) मेरे (अमुम्) परोक्ष सुख को (इष्णन्) चाहते हुए (इषाण) चाहना कीजिये (मे) मेरे लिये (सर्वलोकम्) सब के दर्शन को (इषाण) प्राप्त कीजिये मेरे लिये सब सुखों को (इषाण) पहुंचाइये ॥ २२ ॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य, रचना और सत्य नियम हैं वैसे ही तुम लोगों के भी हों जिससे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े ॥ २२ ॥

इस अध्याय में ईश्वर सृष्टि और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्वाध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह इकत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

अथ द्वात्रिंशत्तमाध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

तदेवेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब परमेश्वर कैसा है ? इस वि० ॥

तदे॒वाग्निस्तदा॑दि॒त्यस्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑ । तदे॒व शु॒क्रं तद्ब्रह्म॒ ता आपः॒ स प्र॒जाप॑तिः ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापि सनातन अनादि सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव न्यायकारी, दयालु, जगत् का स्रष्टा धारणकर्त्ता और सब का अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञानस्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (वायुः) अनन्त बलवान् और सब का धर्त्ता होने से वायु (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्दस्वरूप और आनन्दकारक होने से चन्द्रमा (तत्, एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्र व्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है ऐसा तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के ये अग्नि आदि गौण नाम हैं वैसे और भी इन्द्रादि नाम हैं उसी की उपासना फल वाली है ऐसा जानो ॥ १ ॥

सर्वे इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सर्वे॑ नि॒मेषा॑ जज्ञि॒रे वि॒द्युतः॒ पुरु॑षा॒दधि॑ । नैन॑मू॒र्ध्वं न ति॒र्यञ्चं॒ न मध्ये॒ परि॑जग्रभत् ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (विद्युतः) विशेष कर प्रकाशमान (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) निमेष कला काष्ठा आदि काल के अवयव (अधि; जज्ञिरे) अधिक कर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्ध्वम्) ऊपर (न) न (तिर्य्यञ्चम्) तिर्छा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न (मध्ये) बीच में (परि, जग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उस को तुम सेवो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस के रचने से सब काल के अवयव उत्पन्न हुए और जो ऊपर नीचे बीच में पीछे दूर समीप कहा नहीं जा सकता जो सर्वत्र पूर्णब्रह्म है उस को योगाभ्यास से जान के सब आप लोग उपासना करो ॥ २ ॥

न तस्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । हिरण्यगर्भः परमात्मा देवता । निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

न तस्य॑ प्रति॒मा अ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ । हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ इत्ये॒ष मा॒ मा॑ हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त इत्ये॒षः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस का (महत्) पूज्य बड़ा (यशः) कीर्त्ति करने द्वारा धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही (नाम) नामस्मरण है जो (हिरण्यगर्भः) सूर्य्य बिजुली आदि पदार्थों का आधार (इति) इस प्रकार (एषः) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिस की (मा) मुझ को (मा, हिंसीत्) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझ को विमुख मत करे (इति) इस प्रकार (एषा) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (यस्मात्) जिस कारण (न) नहीं (जातः) उत्पन्न हुआ (इति) इस प्रकार (एषः) यह परमात्मा उपासना के योग्य है (तस्य) उस परमेश्वर की (प्रतिमा) प्रतिमा-परिमाण उस के तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति, मूर्त्ति वा आकृति (न, अस्ति) नहीं है । अथवा द्वितीय पक्ष यह है कि (हिरण्यगर्भः) इस पचीसवें अध्याय में १० मन्त्र से १३ मन्त्र तक का (इति, एषः) यह कहा हुआ अनुवाक (मा, मा, हिंसीत्) (इति) इसी प्रकार (एषा) यह ऋचा बारहवें अध्याय की १०२ मन्त्र है और (यस्मान्न जातः इत्येषः०) यह आठवें अध्याय के ३६ । ३७ दो मन्त्र का अनुवाक (यस्य) जिस परमेश्वर की (नाम) प्रसिद्ध (महत्) महती (यशः) कीर्त्ति है (तस्य) उस का (प्रतिमा) प्रतिबिम्ब (तस्वीर) नहीं है ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो कभी देहधारी नहीं होता जिसका कुछ भी परिमाण सीमा का कारण नहीं है जिस की आज्ञा का पालन ही नामस्मरण है जो उपासना किया हुआ अपने उपासकों पर अनुग्रह करता है वेदों के अनेक स्थलों में जिस का महत्व कहा गया है जो नहीं मरता न विकृत होता, न नष्ट होता उसी की उपासना निरन्तर करो जो इस से भिन्न की उपासना करोगे तो इस महान् पाप से युक्त हुए आप लोग दुःख क्लेशों से नष्ट होगे ॥ ३ ॥

एष इत्यस्य स्वयम्भू ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः ॥
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥४॥

पदार्थः—हे (जनाः) विद्वानो! (एषः) यह (ह) प्रसिद्ध परमात्मा (देवः) उत्तम-स्वरूप (सर्वाः) सब दिशा और (प्रदिशः) विदिशाओं को (अनु) अनुकूलता से व्याप्त होके (सः) (उ) वही (गर्भे) अन्तःकरण के (अन्तः) बीच (पूर्वः) प्रथम कल्प के आदि में (ह) प्रसिद्ध (जातः) प्रकटता को प्राप्त हुआ (सः, एव) वही (जातः) प्रसिद्ध हुआ (सः) वह (जनिष्यमाणः) आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा (सर्वतोमुखः) सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ (तिष्ठति) अचल सर्वत्र स्थिर है । यही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है ॥ ४ ॥

भावार्थः—यह पूर्वोक्त ईश्वर जगत् को उत्पन्न कर प्रकाशित हुआ सब दिशाओं में व्याप्त हो के इन्द्रियों के विना सब इन्द्रियों के काम सर्वत्र व्याप्त होने से करता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थिर है वह भूत भविष्यत् कल्पों में जगत् की उत्पत्ति के लिये पहिले प्रकट होता है वह ध्यानशील मनुष्य के जानने योग्य है अन्य के जानने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

यस्मादित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमेश्वरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मान्न जातं न पुरा किं चुनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यस्मात्) जिस परमेश्वर से (पुरा) पहिले (किम्, चन) कुछ भी (न, जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ (यः) जो सब ओर (आबभूव) अच्छे प्रकार से वर्त्तमान है जिस में (विश्वा) सब (भुवनानि) वस्तुओं के आधार सब लोक वर्त्तमान हैं (सः, एव) वही (षोडशी) सोलह कला वाला (प्रजया) प्रजा के साथ (सम्, रराणः) सम्यक् रमण करता हुआ (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक अधिष्ठाता (त्रीणि) तीन (ज्योतींषि) तेजोमय बिजुली, सूर्य्य, चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को (सचते) संयुक्त करता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जिस से ईश्वर अनादि है इस कारण उससे पहिले कुछ भी हो नहीं सकता वही सब प्रजाओं में व्याप्त जीवों के कर्मों को देखता और उन के अनुकूल फल देता हुआ न्याय करता है जिसने प्राण आदि सोलह वस्तुओं को बनाया है इस से वह षोडशी कहाता है (प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम) ये षोडश कला प्रश्नोपनिषद् में हैं यह सब षोडश वस्तुरूप जगत् में है उसी ने बनाया और वही पालन करता है ॥ ५ ॥

येनेत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (येन) जगदीश्वर ने (उग्रा) तीव्र तेज वाले (द्यौः) प्रकाशयुक्त सूर्य्यादि पदार्थ (च) और (पृथिवी) भूमि (दृढा) दृढ की है (येन) जिसने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण किया (येन) जिसने (नाकः) सब दुःखों से रहित मोक्ष धारण किया (यः) जो (अन्तरिक्षे) मध्यवर्त्ती आकाश में वर्त्तमान (रजसः) लोकसमूह का (विमानः) विविध मान करने वाला उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) स्वयं प्रकाशमान सकल सुख दाता ईश्वर के लिये हम लोग (हविषा) प्रेम भक्ति से (विधेम) सेवाकारी वा प्राप्त होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो समस्त जगत् का धर्त्ता सब सुखों का दाता मुक्ति का साधक आकाश के तुल्य व्यापक परमेश्वर है उसी की भक्ति करो ॥ ६ ॥

यं क्रन्दसीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । स्वराडतिजगती छन्दः ॥ निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने । यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम । आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिदापः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यम्) जिस परमात्मा को प्राप्त अर्थात् उस के अधिकार में रहने वाले (तस्तभाने) सब को धारण करने हारे (रेजमाने) चलायमान (क्रन्दसी) स्वगुणों से प्रशंसा करने योग्य सूर्य्य और पृथिवी लोक (अवसा) रक्षा आदि से सब को धारण करते हैं (यत्र) जिस ईश्वर में (सूरः) सूर्य लोक (अधि, उदितः) अधिकतर उदय को प्राप्त हुआ (यत्) जो (बृहतीः) महत् (आपः) व्याप्त जल (ह) ही (यः) और जो कुछ (चित्) भी (आपः) आकाश है उस को भी (विभाति) विशेष कर प्रकाशित करता हुआ प्रकाशक होता है उस ईश्वर को अध्यापक और उपदेशक (मनसा) विज्ञान से (अभि, ऐक्षेताम्) आभिमुख्य कर देखते उस (कस्मै) सुखसाधक (देवाय) शुद्धस्वरूप परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास से हम (विधेम) सेवा करने वाले हों उस को तुम लोग भी भजो ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिस सब ओर से व्यापक परमेश्वर में सूर्य पृथिवी आदि लोक भ्रमते हुए दीखते हैं जिस ने प्राण और आकाश को भी व्याप्त किया उस अपने आत्मा में स्थित ईश्वर की तुम लोग उपासना करो ॥ ७ ॥

वेनस्तदित्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ॥ धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । तस्मिन्निदꣳ सं च वि चैति सर्वꣳ स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस में (विश्वम्) सब जगत् (एकनीडम्) एक आश्रय वाला (भवति) होता (तत्) उस (गुहा) बुद्धि वा गुप्त कारण में (निहितम्) स्थित (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म को (वेनः) पण्डित विद्वान् जन (पश्यत्) ज्ञानदृष्टि से देखता है (तस्मिन्) उस में (इदम्) यह (सर्वम्) सब जगत् (सम्, एति) प्रलय समय में संगत होता (च) और उत्पत्ति समय में (वि) पृथक् स्थूलरूप (च) भी होता है (सः) वह (विभूः) विविध प्रकार व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः) ठाढ़े सूतों में जैसे वस्त्र (च) तथा (प्रोतः) आड़े सूतों में जैसे वस्त्र वैसे ओत प्रोत हो रहा है वही सब को उपासना करने योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वान् ही जिस को बुद्धिबल से जानता जो सब आकाशादि पदार्थों का आधार प्रलय समय सब जगत् जिस में लीन होता और उत्पत्ति समय में जिस से निकलता है और जिस व्याप्त ईश्वर के विना कुछ भी वस्तु नहीं खाली है उस को छोड़ किसी अन्य को उपास्य ईश्वर मत जानो ॥ ८ ॥

प्र तदित्यस्य स्वयम्भुब्रह्म ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र तद्वो॑चेद॒मृतं॒ नु वि॒द्वान् ग॑न्ध॒र्वो धाम॒ विभृ॑तं॒ गुहा॒ सत् । त्रीणि॑ प॒दानि॒ निहि॑ता॒ गुहा॑स्य॒ यस्तानि॒ वेद॒ स पि॒तुः पि॒तास॑त् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (गन्धर्वः) वेदवाणी को धारण करने वाला (विद्वान्) पण्डित (गुहा) बुद्धि में (विभृतम्) विशेष धारण किये (अमृतम्) नाशरहित (धाम) मुक्ति के स्थान (तत्) उस (सत्) नित्य चेतन ब्रह्म का (नु) शीघ्र (प्र, वोचेत्) गुणकर्मस्वभावों के सहित उपदेश करे और जो (अस्य) इस अविनाशी ब्रह्म के (गुहा) ज्ञान में (निहिता) स्थित (पदानि) जानने योग्य (त्रीणि) तीन उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय वा भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान काल हैं (तानि) उनको (वेद) जानता है (सः) वह (पितुः) अपने पिता वा सर्वरक्षक ईश्वर का (पिता) ज्ञान देने वा आस्तिकत्व से रक्षक (असत्) होवे ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग ईश्वर के मुक्तिसाधक बुद्धिस्थ स्वरूप

का उपदेश करें ठीक-२ पदार्थों के और ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को जानें वे अवस्था में बड़े पितादिकों के भी रक्षा के योग्य होते हैं ऐसा जानो ॥ ६ ॥

स न इत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस (तृतीये) जीव और प्रकृति से विलक्षण (धामन्) आधाररूप जगदीश्वर में (अमृतम्) मोक्ष-सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) सर्वत्र अपनी इच्छापूर्वक विचरते हैं जो (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) जन्म स्थान नामों को (वेद) जानता है (सः) वह परमात्मा (नः) हमारा (बन्धुः) भाई के तुल्य मान्य सहायक (जनिता) उत्पन्न करने हारा (सः) वही (विधाता) सब पदार्थों और कर्मफलों का विधान करने वाला है यह निश्चय करो ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस शुद्धस्वरूप परमात्मा में योगिराज विद्वान् लोग मुक्ति-सुख को प्राप्त हो आनन्द करते हैं उसी को सर्वत्र सर्वोपासक और सर्वदा सहायकार मानना चाहिये अन्य को नहीं ॥ १० ॥

परीत्येत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप ! जो (भूतानि) प्राणियों को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (लोकान्) पृथिवी सूर्यादि लोकों को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (च) और ऊपर नीचे (सर्वाः) सब (प्रदिशः) आग्नेयादि उपदिशा तथा (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को (परीत्य) सब ओर से व्याप्त हो के (ऋतस्य) सत्य के (आत्मानम्) स्वरूप वा अधिष्ठान को (अभि, सम्, विवेश), सन्मुखता से सम्यक् प्रवेश करता है (प्रथमजाम्) प्रथम कल्पादि में उत्पन्न चार वेदरूप वाणी को (उपस्थाय), यह वा

सम्यक् सेवन करके (आत्मना) अपने शुद्धस्वरूप वा अन्तःकरण से उस को प्राप्त हूजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्म के आचरण, वेद और योग के अभ्यास तथा सत्संग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को संपादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त हो के सुखी होओ ॥ ११ ॥

परीत्यस्य स्वयम्भु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्य इ॒त्वा परि॑ लो॒कान् परि॒ दिशः॒ परि॒ स्वः᳖ । ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि को (सद्यः) शीघ्र (इत्वा) प्राप्त होके (परि, अपश्यत्) सब ओर से देखता है जो (लोकान्) देखने योग्य सृष्टिस्थ भूगोलों को शीघ्र प्राप्त हो के (परि, अभवत्) सब ओर से प्रकट होता जो (दिशः) पूर्वादि दिशाओं को शीघ्र प्राप्त होके (परि, आसीत्) सब ओर से विद्यमान है जो (स्वः) सुख को शीघ्र प्राप्त हो के (परि) सब ओर से देखता है जो (ऋतस्य) सत्य के (विततम्) विस्तृत (तन्तुम्) कारण को (विचृत्य) विविध प्रकार से बांध के (तत्) उस सुख को देखता जिस से (तत्) वह सुख हुआ और जिससे (तत्) वह विज्ञान हुआ है उसको यथावत् जान के उपासना करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर ही का भजन करते और उस की रची सृष्टि को सुख के लिये उपयोग में लाते हैं वे इस लोक परलोक और विद्या से हुए सुख को शीघ्र प्राप्त हो के निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ १२ ॥

सदसस्पतिमित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म् । स॒निं मे॒धाम॑यासिष॒ᳬस्वाहा॑ ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं (स्वाहा) सत्य क्रिया वा वाणी से जिस (सदसः) सभा, ज्ञान, न्याय वा दण्ड के (पतिम्) रक्षक (अद्भुतम्) आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाले

(इन्द्रस्य) इन्द्रियों के मालिक जीव के (काम्यम्) कमनीय (प्रियम्) प्रीति के विषय प्रसन्न करने हारे वा प्रसन्नरूप परमात्मा की उपासना और सेवा करके (सनिम्) सत्य असत्य का जिस से सम्यक् विभाग किया जाय उस (मेधाम्) उत्तम बुद्धि को (अयासिषम्) प्राप्त होऊं, उस ईश्वर की सेवा करके इस बुद्धि को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का सेवन करते हैं वे सब विद्याओं को पाकर शुद्ध बुद्धि से सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

यामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमात्मा देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की याचना करनी चाहिये इस वि० ॥

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप होने से विद्या के जताने हारे ईश्वर ! वा अध्यापक विद्वन् ! (देवगणाः) अनेकों विद्वान् (च) और (पितरः) रक्षा करने हारे ज्ञानी लोग (याम्) जिस (मेधाम्) बुद्धि वा धन को (उपासते) प्राप्त होके सेवन करते हैं (तया) उस (मेधया) बुद्धि वा धन से (माम्) मुझ को (अद्य) आज (स्वाहा) सत्यवाणी से (मेधाविनम्) प्रशंसित बुद्धि वा धन वाला (कुरु) कीजिये ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग परमेश्वर की उपासना और आप्त विद्वान् की सम्यक् सेवा करके शुद्ध विज्ञान और धर्म से हुए धन को प्राप्त होने की इच्छा करें और दूसरों को भी ऐसे ही प्राप्त करावें ॥ १४ ॥

मेधामित्यस्य मेधाकाम ऋषिः । परमेश्वरविद्वांसौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वरुणः) अति श्रेष्ठ परमेश्वर वा विद्वान् (स्वाहा) धर्मयुक्त क्रिया से (मे) मेरे लिये (मेधाम्) शुद्ध बुद्धि वा धन को (ददातु) देवे (अग्निः) विद्या से प्रकाशित (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (मेधाम्) बुद्धि को देवे

(इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्यवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (वायुः) बलदाता बलवान् (मेधाम्) बुद्धि को देवे (च) और (धाता) सब संसार वा राज्य का धारण करने हारा ईश्वर वा विद्वान् (मे) मेरे लिये बुद्धि धन को (ददातु) देवे वैसे तुम लोगों को भी देवे ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे अपने लिये गुण कर्म स्वभाव और सुख को चाहे वैसे औरों के लिये भी चाहें। जैसे अपनी २ उन्नति की चाहना करें वैसे परमेश्वर और विद्वानों के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें। केवल प्रार्थना ही न करें किन्तु सत्य आचरण भी करें। जब २ विद्वानों के निकट जावें तब २ सब के कल्याण के लिये प्रश्न और उत्तर किया करें ॥ १५ ॥

इदं म इत्यस्य श्रीकाम ऋषिः। विद्वद्राजानौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर! आप की कृपा और हे विद्वन्! तेरे पुरुषार्थ से (स्वाहा) सत्याचरणरूप क्रिया से (मे) मेरे (इदम्) ये (ब्रह्म) वेद ईश्वर का विज्ञान वा इन का ज्ञाता पुरुष (च) और (क्षत्रम्) राज्य धनुर्वेद विद्या और क्षत्रिय कुल (च) भी ये (उभे) दोनों (श्रियम्) राज्य की लक्ष्मी को (अश्नुताम्) प्राप्त हों जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (मयि) मेरे निमित्त (उत्तमाम्) अतिश्रेष्ठ (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को (दधतु) धारण करें। हे जिज्ञासु जन! (ते) तेरे लिये भी (तस्यै) उस श्री के अर्थ हम लोग प्रयत्न करें ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालन और विद्वानों की सेवा सत्कार से सब मनुष्यों के बीच से ब्राह्मण क्षत्रिय को सुन्दर शिक्षा विद्यादि सद्गुणों से संयुक्त और सब की उन्नति का विधान कर अपने आत्मा के तुल्य सब में वर्त्तें वे सब को पूजने योग्य होवें ॥ १६ ॥

इस अध्याय में परमेश्वर विद्वान् और बुद्धि तथा धन की प्राप्ति के उपायों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अस्येत्यस्य वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्नयो देवताः। स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब तैंतीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि पदार्थों को ज्ञान कार्य साधना चाहिये इस वि० ॥

अ॒स्याज॑रासो द॒माम॒रित्रा॑ अ॒र्चद्धू॑मासो अ॒ग्नय॑: पाव॒काः। श्वि॒ती॒चय॑: श्वा॒त्रासो॑ भुर॒ण्यवो॑ वन॒र्षदो॑ वा॒यवो॒ न सोमा॑: ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (अस्य) इस पूर्वाध्यायोक्त ईश्वर की सृष्टि में (अजरासः) एकसी अवस्था वाले (अरित्राः) शत्रुओं से बचाने हारे (अर्चद्धूमासः) सुगन्धित धूमों से युक्त (पावकाः) पवित्रकारक (श्वितीचयः) श्वेतवर्ण को सञ्चित करने हारे (श्वात्रासः) धन को बढ़ाने के हेतु (भुरण्यवः) धारण करने हारे वा गमनशील (सोमाः) ऐश्वर्य को प्राप्त करने हारे (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (वनर्षदः) वनों वा किरणों में रहने हारे (वायवः) पवनों के (न) समान (दमाम्) घरों के धारण करने हारे उनको तुम लोग जानो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य अग्नि वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे बहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं ॥ १ ॥

हरय इत्यस्य विरूपक ऋषिः। अग्नयो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

हर॑यो धू॒मके॑तवो॒ वात॑जूता॒ उप॒ द्यवि॑। यत॑न्ते वृथ॒ग॒ग्नय॑: ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (धूमकेतवः) जिन का जताने वाला धूम ही पताका के तुल्य है (वातजूताः) वायु से तेज को प्राप्त हुए (हरयः) हरणशील (अग्नयः) पावक (वृथक्) नाना प्रकार से (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप, यतन्ते) यत्न करते हैं उन को कार्य्यसिद्धि के अर्थ उपयोग में लाओ ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिन का धूम ज्ञान कराने और वायु जलाने वाला है और जिन में हरणशीलता वर्त्तमान है वे अग्नि हैं ऐसा जानो ॥ २ ॥

यजान इत्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

विद्वान् मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

यजा॑ नो मि॒त्रावरु॑णा॒ यजा॑ दे॒वाँ२॥ ऋ॒तं बृ॒हत् । अग्ने॒ यक्षि॒ स्वं दम॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! आप (नः) हमारे (मित्रावरुणा) मित्र और श्रेष्ठ जनों तथा (देवान्) विद्वानों का (यज) सत्कार कीजिये (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य का (यज) उपदेश कीजिये जिससे (स्वम्) अपने (दमम्) घर को (यक्षि) सङ्गत कीजिये ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो! हमारे मित्र, श्रेष्ठ और विद्वानों का सत्कार करने हारे सत्य के उपदेशक और अपने घर के कार्यों को सिद्ध करने हारे तुम लोग होओ ॥ ३ ॥

युक्ष्वेत्यस्य विश्वरूप ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यु॒क्ष्वा हि दे॑व॒हूत॑माँ२॥ अश्वाँ२॥ अग्ने र॒थीरि॑व । नि होता॑ पू॒र्व्यः स॑दः ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! आप (रथीरिव) सारथि के समान (देवहूतमान्) विद्वानों से अत्यन्त स्तुति किये हुए (अश्वान्) शीघ्रगामी अग्नि आदि वा घोड़ों को (युक्ष्व) युक्त कीजिये (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वानों से विद्या को प्राप्त (होता) ग्रहण करते हुए (हि) निश्चय कर (नि, सदः) स्थिर हूजिये ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे उत्तम शिक्षित सारथि घोड़ों से अनेक कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे विद्वान् जन अग्नि आदि से अनेक कार्य्यों को सिद्ध करें ॥ ४ ॥

द्वे इत्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

रात्रि दिन जगत् की रक्षा करने वाले हैं इस वि० ॥

द्वे विरू॑पे चरतः॒ स्वर्थे॑ अ॒न्यान्या॑ व॒त्समुप॑ धापयेते । हरि॑र॒न्यस्यां॒ भव॑ति स्व॒धावा॑ञ्छु॒क्रो अ॒न्यस्यां॑ ददृशे सु॒वर्चाः॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वर्थे) सुन्दर प्रयोजन वाली (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न २ रूप की स्त्रियां (चरतः) भोजनादि आचरण करती हैं और (अन्यान्या) एक २ अलग २ समय में (वत्सम्) निरन्तर बोलने वाले एक बालक को (उप, धापयेते) निकट कर दूध पिलाती हैं उन दोनों में से (अन्यस्याम्) एक में (स्वधावान्) प्रशस्त शान्ति आदि अमृत तुल्य गुणयुक्त (हरिः) मन को हरने वाला पुत्र (भवति) होता और (शुक्रः) शीघ्रकारी (सुवर्चाः) सुन्दर तेजस्वी (अन्यस्याम्) दूसरी में हुआ (ददृशे) दीख पड़ता है वैसे ही सुन्दर प्रयोजन वाले दो काले श्वेत भिन्न रूप वाले रात्रि दिन वर्त्तमान हैं और एक २ भिन्न २ समय में एक संसाररूप बालक को दुग्धादि पिलाते हैं उन दोनों में से एक रात्रि में अमृतरूप गुणों वाला मन का प्रसादक चन्द्रमा उत्पन्न होता और द्वितीय दिनरूप वेला में पवित्रकर्त्ता सुन्दर तेज वाला सूर्यरूप पुत्र दीख पड़ता है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अनुमयाभेदरूपकालंकार है-जैसे दो स्त्रियां वा गार्ये सन्तान प्रयोजनवाली पृथक् २ वर्त्तमान भिन्न २ समय में एक बालक की रक्षा करें उन दोनों में से एक में हृदय को प्यारा महागुणी शान्तिशील बालक हो और दूसरी में शीघ्रकारी तेजस्वी शत्रुओं को दुःखदायी बालक होवे वैसे भिन्नस्वरूप वाले दो रात्रि दिन अलग २ समय में एक संसाररूप बालक की पालना करते हैं किस प्रकार-रात्रि अमृतवर्षक चित्त को प्रसन्न करने हारे चन्द्रमारूप बालक को उत्पन्न करके और दिनरूप स्त्री तेजोमय सुन्दर प्रकाश वाले सूर्यरूप पुत्र को उत्पन्न करके ॥ ५ ॥

अयमित्यस्य कुत्स ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (धातृभिः) धारण करने वालों से (इह) इस संसार में (विशे विशे) प्रजा २ के लिये (अयम्) यह (प्रथमः) विस्तार वाला (होता) सुखदाता (यजिष्ठः) अतिशय कर सङ्गत करने वाला (अध्वरेषु) रक्षणीय व्यवहारों में (ईड्यः) खोजने योग्य विद्युत् आदि स्वरूप अग्नि (धायि) धारण किया जाता और जैसे (भृगवः) दृढ़ ज्ञान वाले (अप्नवानः) सुसन्तानों के सहित उत्तम शिष्य लोग (यम्) जिस (वनेषु) वनों वा किरणों में (चित्रम्) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभाव वाले (विभ्वम्)

व्यापक विद्युद्रूप अग्नि को (विवक्षुः) विशेष कर प्रदीप्त करें वैसे उस को तुम लोग भी धारण और प्रकाशित करो ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् लोग इस संसार में बिजुली की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार प्रजाओं को सब सुखों से युक्त करने को समर्थ होते हैं ॥ ६ ॥

त्रीणि शतेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवताः । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कारीगर विद्वान् क्या करें इस वि० ॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् । औक्षन् घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीस (च) और (नव) नव प्रकार के (च) ये सब और (देवाः) विद्वान् लोग (त्रीणि) तीन (शता) सौ (त्री) तीन (सहस्राणि) हज़ार कोस मार्ग में (अग्निम्) अग्नि को (असपर्यन्) सेवन करें (घृतैः) घी वा जलों से (औक्षन्) सींचें (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (अस्तृणन्) आच्छादित करें (अस्मै) इस अग्नि के अर्थ (होतारम्) हवन करने वाले को (आत् इत्) सब ओर से ही (नि, असादयन्त) निरन्तर स्थापित करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट वेगों से अनेक सैकड़ों हज़ारों कोस मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं ॥ ७ ॥

मूर्द्धानमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वांसो देवता । भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् । कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (दिवः) आकाश के (मूर्द्धानम्) उपरिभाग में सूर्यरूप से वर्त्तमान (पृथिव्याः) पृथिवी को (अरतिम्) प्राप्त होने वाले (वैश्वानरम्) सब मनुष्यों के हितकारी (ऋते) यज्ञ के निमित्त (आ, जातम्) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (कविम्) सर्वत्र दिखाने वाले (सम्राजम्) सम्यक् प्रका-

शमान (जनानाम्) मनुष्यों के (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य प्रथम भोजन का भाग लेने वाले (पात्रम्) रक्षा के हेतु (आसन्) ईश्वर के मुखरूप सामर्थ्य में उत्पन्न हुए जो (अग्निम्) अग्नि को (आ, जनयन्त) अच्छे प्रकार प्रकट करें वैसे तुम लोग भी इस को प्रकट करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो लोग पृथिवी जल वायु और आकाश में व्याप्त विद्युत्रूप अग्नि को प्रकट कर यन्त्र कलादि और युक्ति से चलावें वे किस २ कार्य को न सिद्ध करें ॥ ८ ॥

अग्निरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य सूर्य के तुल्य दोषों को विनाशे इस वि० ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (समिद्धः) सम्यक् प्रदीप्त (शुक्र) शीघ्रकारी (अग्निः) सूर्यादि रूप अग्नि (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को (जङ्घनत्) शीघ्र काटता है वैसे (द्रविणस्युः) अपने को धन चाहने वाले (आहुतः) बुलाये हुए आप (विपन्यया) विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जैसे व्यवहार का जानने वाला पुरुष धन को पाके सत्कार को प्राप्त होकर दोषों का नष्ट करता है वैसे सूर्य्य मेघ को ताड़ना देता है ॥ ९ ॥

विश्वेभिरित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे सूर्य्य (विश्वेभिः) सब (धामभिः) धामों से (इन्द्रेण) धन के धारक (वायुना) बलवान् पवन के साथ (सोम्यम्) उत्तम ओषधियों में हुए (मधु) मीठे आदि गुण वाले रस को पीता है वैसे (मित्रस्य) मित्र के सब स्थानों से सुन्दर ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे सूर्य सब पदार्थों

से रस को खींच के वर्षा के सब पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे विद्या और विनय से सब को पुष्ट करो ॥ १० ॥

आ यदित्यस्य पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके। अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवानꣳ स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यत्) जब (इषे) वर्षा के लिये (निषिक्तम्) अग्नि में घृतादि के पड़ने से निरन्तर बढ़ा हुआ (शुचि) पवित्र (तेजः) यज्ञ से उठा तेज (नृपतिम्) जैसे राजा का तेज व्याप्त हो वैसे सूर्य को (आ, आनट्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता है तब (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (शर्द्धम्) बलहेतु (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) ज्वानी को करने हारे (स्वाध्यम्) जिन का सब चिन्तन करते (रेतः) ऐसे पराक्रमकारी वृष्टि-जल को (द्यौः) आकाश के (अभीके) निकट (जनयत्) उत्पन्न करता (च) और (सूदयत्) वर्षा करता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सब की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्षकाल में फिर दे श्रेष्ठों का सम्यक् पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देके प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अग्न इत्यस्य विश्ववारा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अग्ने शर्द्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु। सं जास्पत्यꣳ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् वा राजन्! आप (महते) बड़े (सौभगाय) सौभाग्य के अर्थ (शर्द्ध) दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को (आ कृणुष्व) अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिस से (तव) आप के (द्युम्नानि) धन वा यश (उत्तमानि) श्रेष्ठ (सन्तु) हों आप (जास्पत्यम्) स्त्री पुरुष के भाव को (सुयमम्) सुन्दर नियमयुक्त शास्त्रानुकूल ब्रह्मचर्ययुक्त (सम्, आ) सम्यक् अच्छे प्रकार कीजिये और आप (शत्रूयताम्) शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के (महांसि) तेजों को (अभि, तिष्ठ) तिरस्कृत कीजिये ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो अच्छे संयम में रहने वाले मनुष्य हैं उनके बड़ा ऐश्वर्य, बल, कीर्त्ति, उत्तम स्वभाव वाली स्त्री और शत्रुओं का पराजय होता है ॥ १२ ॥

त्वामित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

त्वाꣳ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने । इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! वा विद्वज्जन (हि) जिस से आप (नः) हम ब्रह्मचर्यादि सत्कर्मों में प्रवृत्त जनों के (महि) महत् गम्भीर वचन को (श्रोषि) सुनते हो इस से (मन्द्रतमम्) अतिशय कर प्रशंसादि से सत्कार को प्राप्त (त्वाम्) आप को (अर्कशोकैः) सूर्य के समान प्रकाश से युक्त जनों के साथ हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं और (नृतमाः) अतिशय कर नायक श्रेष्ठ जन (शवसा) बल से युक्त (इन्द्रम्) सूर्य के (न) समान तेजस्वी और (वायुम्) वायु के तुल्य वर्त्तमान बलवान् (देवता) दिव्यगुणयुक्त (त्वा) आपको (राधसा) धन से (पृणन्ति) पालन वा पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो दुःखों को सहन कर सूर्य के समान तेजस्वि और वायु के तुल्य बलवान् विद्वान् मनुष्य विद्या सुशिक्षा का ग्रहण करते हैं वे मेघ से सूर्य जैसे वैसे सब को आनन्द देने वाले उत्तम पुरुष होते हैं ॥ १३ ॥

त्वे इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । विद्वांसो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
विद्वानों के तुल्य अन्य जनों को वर्त्तना चाहिये इस वि० ॥

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार से विद्या को ग्रहण किये हुये (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच वीर पुरुष (यन्तारः) जितेन्द्रिय (मघवानः) बहुत धन से युक्त जन (गोनाम्) पृथिवी वा गौ आदि के (ऊर्वान्) हिंसकों को (दयन्त) मारते हैं वे (सूरयः) विद्वान् लोग (त्वे) आप के (प्रियासः) पियारे (सन्तु) हों ॥ १४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों के पियारे हों, दुष्टों को मार और गौ आदि की रक्षा कर मनुष्यों को पियारे होते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १४ ॥

श्रुधीत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब राजधर्म वि० ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (श्रुत्कर्ण) अर्थियों के वचनों को सुनने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! वा राजन् ! आप (सयावभिः) जो साथ चलते उन (वह्निभिः) कार्यों का निर्वाह करने हारे (देवैः) विद्वानों के साथ (अध्वरम्) रक्षा के योग्य राज्य के व्यवहार को (श्रुधि) सुनिये तथा (प्रातर्यावाणः) प्रातःकाल राजकार्यों को प्राप्त करने हारे (मित्रः) पक्षपातरहित सब का मित्र और (अर्यमा) वैश्य वा अपने अधिष्ठाताओं को यथार्थ मानने वाला ये सब (बर्हिषि) अन्तरिक्ष के तुल्य सभा में (आ, सीदन्तु) अच्छे प्रकार बैठें ॥ १५ ॥

भावार्थः—सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों को स्वीकार कर उन के साथ सभा में बैठ विवाद करने वालों के वचन सुन के उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करे ॥ १५ ॥

विश्वेषामित्यस्य गोतम ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् । अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृडीको भवतु जातवेदाः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे सभापते ! आप (विश्वेषाम्) सब (यज्ञियानाम्) पूजा सत्कार के योग्य (देवानाम्) विद्वानों के बीच (अदितिः) अखण्डित बुद्धि वाले (विश्वेषाम्) सब (मनुष्याणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) पूजनीय (अवः) रक्षा आदि को (आवृणानः) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हुए (सुमृडीकः) सुन्दर सुख देने वाले (जातवेदाः) विद्या और योग के अभ्यास से प्रसिद्ध बुद्धि वाले (अग्निः) तेजस्वी राजा (भवतु) हूजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गंभीर बुद्धि वाला सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य्य को स्वीकार करता सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जानने वाला शूरवीर हो उसी को राजा करें ॥ १६ ॥

मह इत्यस्य लुशोधानाक ऋषिः । सविता देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मही अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये । श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥ १७ ॥

पदार्थः—हम राजपुरुष (महः) बड़े (समिधानस्य) प्रकाशमान (अग्ने) विद्वान् सभापति के (शर्मणि) आश्रय में (श्रेष्ठे) श्रेष्ठ (मित्रे) मित्र और (वरुणे) स्वीकार के योग्य मनुष्यों के निमित्त (अनागाः) अपराधरहित (स्याम) हों (अद्य) आज (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर की (सवीमनि) आज्ञा में वर्त्तमान (स्वस्तये) सुख के लिये (देवानाम्) विद्वानों के (तत्) उस वेदोक्त (अवः) रक्षा आदि कर्म को (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं ॥ १७ ॥

भावार्थः—धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों परमेश्वर की सृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें ॥ १७ ॥

आप इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अध्यापक उपदेशक क्या करें इस वि० ॥

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! (ते) आपके (जरितारः) स्तुति करने हारे (आपः) जलों के तुल्य (पिप्युः) बढ़ते हैं और (स्तर्यः) विस्तार के हेतु (गावः) किरणें (न) जैसे (ऋतम्) सत्य को (नक्षन्) व्याप्त होते हैं वैसे (वायुः) पवन के (न) तुल्य (वाजान्) विज्ञान वाले (नः) हम लोगों को और (नियुतः) वायु के वेग आदि गुणों को (त्वम्) आप (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये

(हि) जिस कारण (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (वि, दयसे) विशेष कर कृपा करते हो इससे (चित्) भी सत्कार के योग्य हो ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जो पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों की स्तुति करने वाले उपदेशक और अध्यापक हों तो सब मनुष्य विद्या में व्याप्त हुए दया वाले हों ॥१८॥

गाव इत्यस्य पुरुमीढाजमीढावृषी । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्यों को आभूषण आदि की रक्षा करनी चाहिये इस वि० ॥

गाव॒ उपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ । उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (गावः) गौएं वा किरणें (उभा) दोनों (रप्सुदा) रूप देने वाली (महि) बड़ी आकाश पृथिवी की रक्षा करती हैं वैसे तुम लोग (हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण से युक्त (कर्णा) दोनों कानों और (यज्ञस्य) संगत यज्ञ के (अवतम्) वेदि आदि अवयवों की (उप, अवत) निकट रक्षा करो ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०-जैसे सूर्य किरण और गौ आदि पशु सब वस्तुमात्र की रक्षा करते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि सुवर्ण आदि के बने कुण्डल आदि आभूषण की सदा रक्षा करें ॥ १९ ॥

यद्द्येत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । सविता देवता । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

राजा कैसा हो इस वि० ॥

यद॒द्य सूर॒ उदि॒तेऽना॑गा मि॒त्रो अ॑र्य॒मा । सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अद्य) आज (सूरे) सूर्य के (उदिते) उदय होते अर्थात् प्रातःकाल (अनागाः) अधर्म के आचरण से रहित (मित्रः) सुहृद् (सविता) राज्य के नियमों से प्रेरणा करने हारा (भगः) ऐश्वर्यवान् (अर्यमा) न्यायकारी राजा स्वस्थता को (सुवाति) उत्पन्न करे वह राज्य करने के योग्य होवे ॥ २० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त हो के प्रकाश के होने में सब लोग आनन्दित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होते प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ॥ २० ॥

आ सुत इत्यस्य सुनीतिर्ऋषिः । वेनो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ सुते सिञ्चत श्रिय ७ रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् । * तं प्रत्नथा अयं वेनः ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (रसा) आनन्द देने वाले तुम लोग (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (वृषभम्) अतिबली (रोदस्योः) आकाश पृथिवी को (अभिश्रियम्) सब ओर से शोभित करने हारे (श्रियम्) शोभायुक्त सभापति राजा का (आ, सिञ्चत) अच्छे प्रकार अभिषेक करो और वह सभापति तुम लोगों को (दधीत) धारण करे ॥ २१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् का प्रकाशक सुन्दरता आदि गुणों से युक्त अतिबलवान् विद्वान् शूर पूर्ण अवयवों वाले मनुष्य को राज्य में अभिषेक करें और वह राजा प्रजाओं में सुख धारण करे ॥ २१ ॥

आतिष्ठन्तमित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्युत् अग्नि कैसा है इस वि० ॥

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः । महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (विश्वे) सब आप जैसे (श्रियः) धनों वा शोभाओं को (वसानः) धारण करता हुआ (स्वरोचिः) स्वयमेव दीप्ति वाला (विश्वरूपः) सब पदार्थों में उन २ के रूप से व्याप्त अग्नि (चरति) विचरता और (अमृतानि) नाशरहित वस्तुओं में (तस्थौ) स्थित है वैसे इस (आतिष्ठन्तम्) अच्छे प्रकार स्थिर अग्नि को (परि, अभूषन्) सब ओर से शोभित कीजिये । जो (वृष्णः) वर्षा करने हारे (असुरस्य) हिंसक इस विद्युद्रूप अग्नि का (महत्) बड़ा (तत्) वह परोक्ष (नाम) नाम है उस से सब कार्यों को शोभित करो ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस कारण यह विद्युद्रूप अग्नि सब पदार्थों

* (तंप्रत्नथा । अयंवेनः) ये दो प्रतीकें पूर्व कहे अ० ७ मं० १२ । १६ की यहां किसी कर्मकाण्ड विशेष में बोलने को अर्थ रखती हैं इसीलिये अर्थ नहीं किया वही पूर्वोक्त अर्थ जानना चाहिये ।

में स्थित हुआ भी किसी को प्रकाशित नहीं करता इस से इस की असुर संज्ञा है जो इस विद्युत् विद्या को जानते हैं वे सब ओर से सुभूषित होते हैं ॥ २२ ॥

प्र व इत्यस्य सुचीक ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
मनुष्य को ईश्वर ही की पूजा करनी चाहिये इस वि० ॥

प्र वो॑ म॒हे मन्द॑माना॒यान्ध॒सोऽर्चा॑ वि॒श्वान॑राय विश्वा॒भुवे॑ । इन्द्र॑स्य॒ यस्य॒ सुम॑खꣳ सहो॒ महि॒ श्रवो॑ नृ॒म्णञ्च॒ रोद॑सी सप॒र्यतः॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तुम (रोदसी) आकाश भूमि (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (सुमखम्) सुन्दर यज्ञ जिस में हों ऐसे (नृम्णम्) धन (सहः) बल (च) और (महि) बड़े (श्रवः) यश को (सपर्यतः) सेवते हैं उस (विश्वानराय) सब मनुष्य जिस में हों (महे) महान् (मन्दमानाय) आनन्दस्वरूप (विश्वाभुवे) सब को प्राप्त वा सब पृथिवी के स्वामी वा संसार जिस से हो ऐसे ईश्वर के अर्थ (प्र, अर्च) पूजन करो अर्थात् उस को मानो वह (वः) तुम्हारे लिये (अन्धसः) अन्नादि के सुख को देवे ॥ २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस के उत्पन्न किये धन और बलादि को सब सेवते उसी महाकीर्ति वाले सब के स्वामी आनन्दस्वरूप सर्वव्याप्त ईश्वर की तुम को पूजा और प्रार्थना करनी चाहिये वह तुम्हारे लिये अन्नादि से होने वाले सुख को देगा ॥ २३ ॥

बृहन्निदित्यस्य त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
मनुष्य परमेश्वर को ही मित्र करें इस वि० ॥

बृ॒हन्निदि॒ध्म ए॑षां॒ भूरि॑ श॒स्तं पृ॒थुः स्वरुः॑ । येषा॒मिन्द्रो॒ युवा॒ सखा॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(येषाम्) जिन का (इध्मः) तेजस्वी (पृथुः) विस्तारयुक्त (स्वरुः) प्रतापी (युवा) ज्वान (बृहन्) महान् (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्य वाला परमात्मा (सखा) मित्र है (एषाम्) उन (इत्) ही का (भूरि) बहुत (शस्तम्) स्तुति के योग्य कर्म होता है ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस का उत्तम परमेश्वर मित्र होवे वह जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्य प्रताप वाला है वैसे प्रतापयुक्त हो ॥ २४ ॥

इन्द्र इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ२॥ अभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले विद्वन् ! जिस कारण आप (ओजसा) पराक्रम के साथ (महान्) बड़े (अभिष्टिः) सब ओर से सत्कार के योग्य (विश्वेभिः) सब (सोमपर्वभिः) सोमादि ओषधियों के अवयवों और (अन्धसा) अन्न से (मत्सि) तृप्त होते हो इस से हम को (आ, इहि) प्राप्त हूजिये ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस कारण अन्न आदि से मनुष्यादि प्राणियों के शरीरादि का निर्वाह होता है इस से इन के वृद्धि सेवन आहार और विहार यथावत् जानो ॥२५॥

इन्द्र इत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ॥

राजपुरुष कैसे हों इस वि० ॥

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्र मायिनामभिनाद्वर्पणीतिः । अहन् व्यꣳसमुशधग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(शर्द्धनीतिः) बल को प्राप्त (वर्पणीतिः) नाना प्रकार के रूपों वाला (उशधक्) पर पदार्थों को चाहने वाले चोरादि को नष्ट करने हारा (इन्द्रः) सूर्य्य के तुल्य प्रतापी सभापति (वृत्रम्) प्रकाश को रोकने हारे मेघ के तुल्य धर्म के निरोधक दुष्ट शत्रु को (अवृणोत्)युद्ध के लिये स्वीकार करे (मायिनाम्) दुष्ट बुद्धि वाले छली कपटी आदि को (प्र, अमिनात्) मारे जो (वनेषु) वनों में रहने वाले (व्यंसम्) कपटी हैं भुजा जिस की ऐसे चोर को (अहन्) मारे और (राम्याणाम्) आनन्द देने वाले उपदेशकों की (धेनाः) वाणियों को (आविः, अकृणोत्) प्रकट करे वही राजा होने को योग्य है ॥ २६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करते, जैसे अग्नि वनों को वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारते, दिन जैसे रात्रि को निवृत्त करे वैसे छल कपटता और अविद्यारूप अन्धकारादि को निवृत्त करते और बल को प्रकट करते हैं वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं ॥ २६ ॥

कुत इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किन्त इत्था । सम्पृ-
च्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे * ॥ महाँ२॥
इन्द्रो य ओजसा । कदा चन स्तरीरसि । कदा चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (सत्पते) श्रेष्ठ सत्य व्यवहार वा श्रेष्ठ पुरुषों के रक्षक (इन्द्र) सभापते! (माहिनः) महत्त्वयुक्त सत्कार को प्राप्त (त्वम्) आप (एकः) असहायी (सन्) होते हुए (कुतः) किस कारण (यासि) प्राप्त होते वा विरचते हो ? (किम्, ते) (इत्था) इस प्रकार करने में आपका क्या प्रयोजन है ? । हे (हरिवः) प्रशंसित मनोहारी घोड़ों वाले राजन्! (यत्) जिस कारण (अस्मे) हम लोग (ते) आप के हैं इससे (समराणः) सम्यक् चलते हुए आप (नः) हम को (सम्, पृच्छसे) पूछिये और (शुभानैः) मंगलमय वचनों के साथ (तत्) उस एकाकी रहने के कारण को (वोचेः) कहिये ॥२७॥

भावार्थः—राज प्रजा पुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते! आप को विना सहाय के कुछ राजकार्य न करना चाहिये, किन्तु आप को उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाययुक्त सदैव रहें शुभाचरण से युक्त अस्मदादि शिष्टों की सम्मतिपूर्वक कोमल वचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें ॥ २७ ॥

आ तदित्यस्य गोरीवितिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् । सकृत्
स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन्! (ये) जो (आयवः) सत्य को प्राप्त होने वाले प्रजा जन (सकृत्स्वम्) एक वार उत्पन्न करने वाली (पुरुपुत्राम्) बहुत अन्नादि व्यक्ति वाले पुत्रों से युक्त (सहस्रधाराम्) असंख्य सुवर्णादि धातु जिस में धारारूप हों वा असंख्य

* इस मन्त्र के आगे (महा०, कदा०, कदा०) ये तीन प्रतीकें पूर्व अ० ७ । ४०॥ अ० ८ । २ । ३ । में कहे क्रम से तीन मन्त्रों की किसी कर्मकांड विशेष के लिये लिखी हैं इसी से इन का अर्थ यहां नहीं किया, उक्त ठिकाने से जान लेना चाहिये ।

प्राणिमात्र को धारण करने हारी (बृहतीम्) विस्तारयुक्त (महीम्) बड़ी भूमि को (दुदुक्षन्) दोहना चाहें अर्थात् उससे इच्छापूर्ति किया चाहें (ये) जो मनुष्य (गोमन्तम्) खोटे इन्द्रियों वाले लम्पट (ऊर्वम्) हिंसक जन को (अभि, तितृत्सान्) सन्मुख होकर मारने की इच्छा करें और जो (ते) आप के (तत्) उस राजधर्म की (आ, पनन्त) प्रशंसा करें उन की आप उन्नति किया कीजिये ॥ २८ ॥

भावार्थः—जो लोग राजभक्त दुष्ट हिंसक एक वार में बहुत फल फूल देने और सब को धारण करने वाली भूमि के दुहने को समर्थ हों वे राजकार्य करने के योग्य होवें ॥२८॥

इमामित्यस्य कुत्स ऋषिः । इन्द्रो देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इमान्ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे । तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे सभाध्यक्ष ! मैं (महीम्) सुन्दर पूज्य (इमाम्) इस (ते) आप की (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (प्र, भरे) धारण करता हूं (स्तोत्रे) स्तुति होने में (अस्य) इस मेरी (धिषणा) बुद्धि (यत्) जिस (ते) आप को (आनजे) प्रकट करती है (तम्) उस (शवसा) बल के साथ (सासहिम्) शीघ्र सहने वाले (इन्द्रम्) उत्तम बल के योग से शत्रुओं को विदीर्ण करने हारे सभापति को (महः) महान् कार्य के (उत्सवे) करने योग्य आनन्द समय (च) और (प्रसवे) उत्पत्ति में (च) भी (देवासः) विद्वान् लोग (अनु, अमदन्) अनुकूलता से आनन्दित करें ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तम बुद्धि वा वाणी को ग्रहण करते हैं वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनन्दित हो के औरों को प्रसन्न करते हैं ॥ २९ ॥

विभ्राडित्यस्य विभ्राडृषिः । सूर्यो देवता । विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥ ३० ॥

पदार्थः—(यः) जो (वातजूतः) वायु से वेग को प्राप्त सूर्य के तुल्य (विभ्राट्) विशेष कर प्रकाश वाला राजपुरुष (अविह्रुतम्) अखण्ड संपूर्ण (आयुः) जीवन

(यज्ञपतौ) युक्त व्यवहार पालक अधिष्ठाता में (दधत्) धारण करता हुआ (त्मना) आत्मा से (प्रजाः) प्रजाओं को (अभि, रक्षति) सब ओर से रक्षा करता हुआ (पुपोष) पुष्ट करता और (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (वि, राजति) विशेष कर प्रकाशमान होता है सो आप (बृहत्) बड़े (सोम्यम्) सोमादि ओषधियों के (मधु) मिष्टादि गुणयुक्त रस को (पिबतु) पीजिये ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे राजादि मनुष्यो ! जैसे सूर्य वृष्टि द्वारा सब जीवों के जीवन पालन को करता है उस के तुल्य उत्तम गुणों से महान् हो के न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥ ३० ॥

उदुत्यमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सूर्यमण्डल कैसा है इस वि० ॥

उदु॒त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तवः॑ । दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य॑म् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (देवम्) चिलचिलाते हुए (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (विश्वाय) संसार को (दृशे) देखने के लिये (केतवः) किरणें (उत्, वहन्ति) ऊपर को आश्चर्यरूप प्राप्त कराती हैं (त्यम्) उस (उ) ही को तुम लोग जानो ॥ ३१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य किरणों से संसार को दिखाता और आप सुशोभित होता वैसे विद्वान् लोग सब विद्या और शिक्षाओं को दिखाकर सुन्दर शोभायमान हों ॥ ३१ ॥

येनेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर राजधर्म वि० ॥

येना॑ पावक॒ चक्ष॑सा भुर॒ण्यन्तं॒ जनाँ॒२॥ अनु॑ । त्वं व॑रुण॒ पश्य॑सि ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्रकर्त्ता (वरुण) श्रेष्ठ विद्वन् वा राजन् ! (त्वम्) आप (येन) जिस (चक्षसा) प्रकट दृष्टि वा उपदेश से (भुरण्यन्तम्) रक्षा करते हुए (अनु, पश्यसि) अनुकूल देखते हो उससे (जनान्) हम आदि मनुष्यों को देखिये और आप के अनुकूल हम वर्त्तें ॥ ३२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्त्तें वैसे ही भाव से इन में प्रजा लोग भी वर्त्तें ॥ ३२ ॥

देव्याविरयस्य प्रस्कण्व ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दैव्या॑वध्वर्यू आ ग॑तꣳ रथे॑न सूर्य॑त्वचा । मध्वा॑ य॒ज्ञꣳ सम॑ञ्जाथे ॥ * तं प्र॒त्नथा॑ । अ॒यं वे॒नः । चि॒त्रं दे॒वाना॑म् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (दैव्यौ) अच्छे उत्तम विद्वानों वा गुणों में प्रवीण (अध्वर्यू) अपने को अहिंसारूप यज्ञ को चाहते हुए दो पुरुषो ! आप (सूर्यत्वचा) जिसका बाहरी आवरण सूर्य के तुल्य प्रकाशमान होने (रथेन) चलने वाले विमानादि यान से (आ, गतम्) आइये और (मध्वा) कोमल सामग्री से (यज्ञम्) यात्रा, संग्राम वा हवनरूप यज्ञ को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट करो ॥ ३३ ॥

भावार्थः—राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश के तुल्य विमानादि यान संग्राम वाहनादि को उत्पन्न कर यात्रादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध किया करें ॥ ३३ ॥

आ न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब उपदेशक लोग क्या करें इस वि० ॥

आ न॒ इडा॑भिर्वि॒दथे॑ सुश॒स्ति वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒व ए॑तु । अपि॑ यथा॑ युवानो॒ मत्स॑था नो॒ विश्वं॒ जग॑दभिपि॒त्वे म॑नी॒षा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे (युवानः) ज्वान ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़े हुए उपदेशा लोगो ! (यथा) जैसे (विश्वानरः) सब का नायक (देवः) उत्तम गुणों वाला (सविता) सूर्य के तुल्य प्रकाशमान विद्वान् (इडाभिः) वाणियों से (विदथे) जताने योग्य व्यवहार में (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसायुक्त (नः) हमारे (विश्वम्) सब (जगत्) चेतन पुत्र गौ आदि को (आ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे (अभिपित्वे) सन्मुख जाने में तुम लोग (मत्सथ) आनन्दित हूजिये जो (नः) हमारी (मनीषा) बुद्धि है उस को (अपि) भी शुद्ध कीजिये ॥ ३४ ॥

* ये तीन प्रतीकें पूर्व अ० ७ । मं० १२ । १६ । ४२ । कहे मंत्रों को कर्मकाण्ड विशेष में कार्य्य के लिये यहां रक्खी गई हैं । इन्हीं से इन का अर्थ यहां नहीं लिखा, उक्त पते में लिखा गया है ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशस्वरूप शरीर और आत्मा से युवावस्था को प्राप्त सुशिक्षित जितेन्द्रिय सुशील होते हैं वे सब को उपदेश से ज्ञान कराने को समर्थ होते हैं ॥ ३४ ॥

यदद्येत्यस्य श्रुतकक्षसुकक्षावृषी । सूर्यो देवता । पिपीलिका मध्यानिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य । सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥३५॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघहन्ता सूर्य्य के तुल्य शत्रुहन्ता (सूर्य) विद्यारूप ऐश्वर्य के उत्पादक (इन्द्र) अन्नदाता सज्जनपुरुष ! (ते) आप के (यत्) जो (अद्य) आज दिन (सर्वम्) सब कुछ (वशे) वश में है (तत्) उस को (कत्, च) कब (अभि, उत्, अगाः) सब ओर से उदित प्रगट संबद्ध कीजिये ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पुरुष सूर्य के तुल्य अविद्यारूप अन्धकार और दुष्टता को निवृत्त कर सब को वशीभूत करते हैं वे अभ्युदय को प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

तरणिरित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्य्यो देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब राजपुरुष कैसे हों इस वि० ॥

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्यो॒ति॒ष्कृद॑सि सूर्य । विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (सूर्य) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् ! जैसे (तरणिः) अन्धकार से पार करने वाला (विश्वदर्शतः) सब को देखने योग्य (ज्योतिष्कृत्) अग्नि, विद्युत्, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, तारे आदि को प्रकाशित करने वाले सूर्यलोक (रोचनम्) रुचिकारक (विश्वम्) समग्र राज्य को प्रकाशित करता है वैसे आप (असि) हैं जिस कारण न्याय और विनय से राज्य को (आ, भासि) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हो इसलिये सत्कार पाने योग्य हो ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सब को आनन्द देने को समर्थ होवें ॥ ३६ ॥

तत्सूर्यस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर के वि० ॥

तत्सूर्य॑स्य दे॒व॒त्वं तन्म॑हि॒त्वं म॒ध्या कर्तो॒र्वित॑त॒ꣳ सं ज॑भार।
य॒देदयु॑क्त ह॒रितः॑ स॒धस्था॒दाद्रात्री॒ वास॑स्तनुते सि॒मस्मै॑ ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर अन्तरिक्ष के (मध्या) बीच (यदा) जब (हरितः) जिन में पदार्थ हरे जाते उन दिशाओं और (विततम्) विस्तृत कार्य जगत् को (सम्, जभार) संहार अपने में लीन करता (सिमस्मै) सब के लिये (रात्री) रात्रि के तुल्य (वासः) अन्धकाररूप आच्छादन को (तनुते) फैलाता और (आत्) इस के अनन्तर (सधस्थात्) एक स्थान से अर्थात् सर्व साक्षित्वादि से निवृत्त हो के एकाग्र (इत्) ही (अयुक्त) समाधिस्थ होता है (तत्) वह (कर्त्तोः) करने को समर्थ (सूर्यस्य) चराचर के आत्मा परमेश्वर का (देवत्वम्) देवतापन (तत्) वही इस का (महित्वम्) बड़प्पन तुम लोग जानो ॥ ३७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस ईश्वर से सब जगत् रचा, धारण पालन और विनाश किया जाता है उसी को और उस की महिमा को जान के निरन्तर उसकी उपासना किया करो ॥ ३७ ॥

तन्मित्रस्येत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तन्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्याभि॒चक्षे॒ सूर्यो॑ रू॒पं कृ॑णुते॒ द्योरु॒पस्थे॑ ।
अ॒न॒न्तम॒न्यद्रुश॑दस्य॒ पाजः॑ कृ॒ष्णम॒न्यद्ध॒रितः॒ सम्भ॑रन्ति ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (द्योः) प्रकाश के (उपस्थे) निकट वर्त्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् (सूर्यः) चराचर का आत्मा (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान के (तत्) उस (रूपम्) रूप को (कृणुते) रचता है जिस से मनुष्य (अभिचक्षे) देखता जानता है (अस्य) इस परमात्मा का (रुशत्) शुद्धस्वरूप और (पाजः) बल (अनन्तम्) अपरिमित (अन्यत्) भिन्न है और (अन्यत्) (कृष्णम्) अविद्यादि मलीन गुण वाले भिन्न जगत् को (हरितः) दिशा (सम्, भरन्ति) धारण करती है ॥ ३८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अनन्त ब्रह्म वह प्रकृति और जीवों से भिन्न है । ऐसे ही प्रकृतिरूप कारण विभु है उससे जो २ उत्पन्न होता वह २ समय पाकर ईश्वर के नियम से नष्ट हो जाता है जैसे जीव प्राण उदान से सब व्यवहारों को सिद्ध करते वैसे ईश्वर अपने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयों को करता है ॥ ३८ ॥

बण्महानित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः । बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बण्म॒हाँ२॥ अ॑सि सूर्य॒ बडा॑दित्य म॒हाँ२॥ अ॑सि । म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ२॥ अ॑सि ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (सूर्य) चराचर के अन्तर्यामिन् ईश्वर ! जिस कारण आप (बट्) सत्य (महान्) महत्वादि गुणयुक्त (असि) हैं । हे (आदित्य) अविनाशी स्वरूप जिस से आप (बट्) अनन्त ज्ञानवान् (महान्) बड़े (असि) हो (सतः) सत्यस्वरूप (महः) महान् (ते) आप का (महिमा) महत्त्व (पनस्यते) लोगों से स्तुति किया जाता । हे (देव) दिव्य गुण कर्म स्वभावयुक्त ईश्वर ! जिस से आप (अद्धा) प्रसिद्ध (महान्) महान् (असि) हैं इसलिये हम को उपासना करने के योग्य हैं ॥ ३९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर के महिमा को पृथिवी सूर्यादि पदार्थ जानते हैं जो सब से बड़ा है उस को छोड़ के किसी अन्य की उपासना नहीं करनी चाहिये ॥ ३९ ॥

बट्सूर्येत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिक् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

बट् सू॑र्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ२॥ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ२॥ अ॑सि । म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे (बट्) सत्य (सूर्यः) सूर्य के तुल्य सब के प्रकाशक जिस से आप (श्रवसा) यश वा धन से (महान्) बड़े (असि) हो । हे (देव) उत्तम सुख के दाता (सत्रा) सत्य के साथ (महान्) वड़े (असि) हो । जिस से आप (देवानाम्) पृथिवी आदि वा विद्वानों के (पुरोहितः) प्रथम से हितकारी (मह्ना) महत्व से (असुर्यः) प्राणों के लिये हितैषी हुए (अदाभ्यम्) आस्तिकता से रक्षा करने योग्य (विभु) व्यापक (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप हैं इस से सत्कार के योग्य हैं ॥ ४० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जिस ईश्वर ने सब की पालना के लिये अन्नादि को

उत्पन्न करने वाली भूमि और मेघ का प्रकाश करने वाला सूर्य रचा है वही परमेश्वर उपासना करने को योग्य है ॥ ४० ॥

आयन्त इवेत्यस्य नृमेध ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आर्यन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (ओजसा) सामर्थ्य से (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले जगत् में (सूर्यम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप सब के अन्तर्यामी परमेश्वर का (आयन्तइ व) आश्रय करते हुए के समान (विश्वा) सब (वसूनि) वस्तुओं को (प्रति, दीधिम) प्रकाशित करें और (भागम्, न) सेवने योग्य अपने अंश के तुल्य सेवन करें वैसे (इत्) ही (इन्द्रस्य) उत्तम ऐश्वर्य के भाग को तुम लोग (भक्षत) सेवन करो ॥ ४१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो हम लोग परमेश्वर को सेवन करते हुए विद्वानों के तुल्य हों तो यहां सब ऐश्वर्य प्राप्त होवें ॥ ४१ ॥

अद्या देवा इत्यस्य कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

विद्वान् लोग कैसे हों इस वि० ॥

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो जिस कारण (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय होते (अद्य) आज (अंहसः) अपराध से (नः) हम को (निः) निरन्तर बचाओ और (अवद्यात्) निन्दित दुःख से (निः पिपृत) निरन्तर रक्षा करो (तत्) इस से (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अदितिः) अन्तरिक्ष (सिन्धुः) समुद्र (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) प्रकाश ये सब हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें ॥ ४२ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् मनुष्य प्राणादि के तुल्य सब को सुखी करते और अपराध से दूर रखते हैं वे जगत् को शोभित करने वाले हैं ॥ ४२ ॥

आकृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् त्रिष्टुप् छन्दः ॥

धैवतः स्वरः ॥

अथ सूर्य्यमण्डल कैसा है इस वि० ॥

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ज्योतिःस्वरूप) रमणीय स्वरूप से (कृष्णेन) आकर्षण से परस्पर सम्बद्ध (रजसा) लोकमात्र के साथ (आ, वर्त्तमानः) अपने भ्रमण की आवृत्ति करता हुआ (भुवनानि) सब लोकों को (पश्यन्) दिखाता हुआ (देवः) प्रकाशमान (सविता) सूर्य्यदेव (अमृतम्) जल वा अविनाशी आकाशादि (च) और (मर्त्यम्) मरणधर्मा प्राणिमात्र को (निवेशयन्) अपने २ प्रदेश में स्थापित करता हुआ (आ, याति) उदयास्त समय में आता जाता है सो ईश्वर का बनाया सूर्य्यलोक है ॥ ४३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे इन भूगोलादि लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण है जो वृष्टिद्वारा अमृतरूप जल को वर्षाता और जो मूर्त्त द्रव्यों को दिखाने वाला है वैसे ही सूर्य्य आदि लोक भी ईश्वर के आकर्षण से धारण किये हुए हैं ऐसा जानना चाहिये ॥४३॥

प्र वावृज इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वायु सूर्य्य कैसे हैं इस वि० ॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते । विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पूर्वहूतौ) पूर्वजों ने प्रशंसा किये हुए (सुप्रयाः) सुन्दर प्रकार चलने वाला (नियुत्वान्) शीघ्रकारी वेगादि गुणों वाला (वायुः) पवन और (पूषा) सूर्य (एषाम्) इन मनुष्यों के (स्वस्तये) सुख के लिये (प्र, वावृजे) प्रकर्षता से चलता है (विशाम्) प्रजाओं के बीच (विश्पतीव) प्रजारक्षक दो राजाओं के तुल्य (बीरिटे) अन्तरिक्ष में (आ, इयाते) आते जाते हैं वैसे (अक्तोः) रात्रि और (उषसः) दिन के (बर्हिः) जल को प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो जो वायु सूर्य्य न्यायकारी राजा के समान पालक हैं वे ईश्वर के बनाये हैं यह जानना चाहिये ॥ ४४ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

मनुष्य विद्युत् आदि पदार्थों को जान के क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्। आदित्यान्मारुतं गणम्॥ ४५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (इन्द्रवायू) बिजुली, पवन (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के रक्षक सूर्य (मित्रा) प्राण (अग्निम्) अग्नि (पूषणम्) पुष्टिकारक (भगम्) ऐश्वर्य (आदित्यान्) बारह महीनों और (मारुतम्) वायुसम्बन्धि (गणम्) समूह को जान के उपयोग में लावें वैसे तुम लोग भी उन का प्रयोग करो॥ ४५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिस्थ विद्युत् आदि पदार्थों को जान और सम्यक् प्रयोग कर कार्यों को सिद्ध करें॥ ४५॥

वरुण इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। वरुणो देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस वि०॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः। करतां नः सुराधसः॥ ४६॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोगो! जैसे (वरुणः) उदान वायु के तुल्य उत्तम विद्वान् और (मित्रः) प्राण के तुल्य मित्र (विश्वाभिः) समग्र (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं (प्राविता) रक्षक (भुवत्) होवे वैसे आप दोनों (नः) हम को (सुराधसः) सुन्दर धन से युक्त (करताम्) कीजिये॥ ४६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अध्यापक और उपदेशक लोग प्राणों के तुल्य सब में प्रीति रखने वाले और उदान के समान शरीर और आत्मा के बल को देने वाले हों वे ही सब के रक्षक सब को धनाढ्य करने को समर्थ होवें॥ ४६॥

अधीत्यस्य कुत्सीदि ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत्पिपीलिका मध्या गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि०॥

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम्। इता मरुतो अश्विना। * तम्प्रत्नथा। अयं वेनः। ये देवासः। आ न इडाभिः। विश्वेभिः सोम्यं मधु। ओमासश्चर्षणीधृतः॥ ४७॥

---

* इस मन्त्र के आगे पूर्व अ० ७। मं० १२। १६। १९॥ अ० ३३। मं० ३४। १०॥ अ० ७। मं० ३३। इस क्रमपूर्वक ठिकाने में व्याख्यात हो चुके हैं यहां कर्मकाण्ड विशेष के लिये प्रतीकें दी हैं॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यदातः विद्वन्! हे (विष्णो) व्यापक ईश्वर! हे (मरुतः) मनुष्यो! तथा हे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो! तुम सब (सजात्यानाम्) हमारे सहयोगी (एषाम्) इन (नः) हमारे बीच (अधि) स्वामीपन को (इत) प्राप्त होओ ॥ ४७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् ईश्वर के समान पक्षपात छोड़ समदृष्टि से हमारे विषय में वर्त्तें उन के विषय में हम भी वैसे ही वर्त्ता करें ॥ ४७ ॥

अग्न इत्यस्य प्रतिक्षत्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥
फिर उसी वि० ॥

अग्न॒ इन्द्र॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ देवा॒ः शर्द्धः॒ प्र य॑न्त॒ मारु॑तो॒त वि॑ष्णो। उ॒भा नास॑त्या रु॒द्रो अध॒ ग्नाः पू॒षा भगः॒ सर॑स्वती जुषन्त ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या-प्रकाशक (इन्द्र) महान् ऐश्वर्य वाले (वरुण) अति श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (मारुत) मनुष्यों में वर्त्तमान जन (उत) और (विष्णो) व्यापनशील (देवाः) विद्वान् तुम लोगो! हमारे लिये (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल को (प्र, यन्त) देओ (उभा) दोनों (नासत्या) सत्यस्वरूप अध्यापक और उपदेशक (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने हारा (ग्नाः) अच्छी शिक्षित वाणी (पूषा) पोषक (भगः) ऐश्वर्यवान् (अध) और इस के अनन्तर (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री ये सब हमारा (जुषन्त) सेवन करें ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सेवन से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण कर दूसरों को भी विद्वान् करें ॥ ४८ ॥

इन्द्राग्नी इत्यस्य वत्सार ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

अध्यापक और अध्येता लोग क्या करें इस वि० ॥

इ॒न्द्रा॒ग्नी मि॒त्रावरु॒णादि॑ति॒ꣳ स्वः॑ पृथि॒वीं द्यां म॒रुतः॒ पर्व॑ताँ२॥ अ॒पः। हु॒वे विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॒ भगं॒ नु शꣳस॑ꣳ सवि॒तार॑मू॒तये॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (इन्द्राग्नी) संयुक्त बिजुली और अग्नि (मित्रावरुणा) मिले हुए प्राण उदान (अदितिम्) अन्त-

रिक्ष (पृथिवीम्) भूमि (द्याम्) सूर्य (मरुतः) विचारशील मनुष्यों (पर्वतान्) मेघों वा पहाड़ों (अपः) जलों (विष्णुम्) व्यापक ईश्वर (पूषणम्) पुष्टिकर्त्ता (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड वा वेद के पालक ईश्वर (भगम्) ऐश्वर्य (शंसम्) प्रशंसा के योग्य (सवितारम्) ऐश्वर्यकारक राजा और (स्वः) सुख को (नु) शीघ्र (हुवे) स्तुति करूं वैसे उन की तुम भी प्रशंसा करो ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—अध्यापक और अध्येता को चाहिये कि प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्य्यन्त पदार्थों को रक्षा आदि के लिये जानें ॥ ४९ ॥

अस्मे इत्यस्य प्रगाथ ऋषिः । महेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजपुरुष कैसे हों इस वि० ॥

अ॒स्मे रु॒द्रा मे॒हना॒ पर्व॑तासो वृत्र॒हत्ये॒ भर॑हूतौ स॒जोषाः॑ । यः शंस॑ते स्तुव॒ते धायि॑ प॒ज्र इन्द्र॑ज्येष्ठा अ॒स्माँ२॥ अ॑वन्तु दे॒वाः ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पज्रः) संचित धन वाला जन जिन की (शंसते) प्रशंसा और (स्तुवते) स्तुति करता और जिसने धन को (धायि) धारण किया है उस और (अस्मान्) हमारी जो (अस्मे) हमारे बीच (मेहना) धनादि को छोड़ने (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने और (पर्वतासः) उत्सवों वाले (वृत्रहत्ये) दुष्ट को मारने के लिये (भरहूतौ) संग्राम में बुलाने के विषय में (सजोषाः) एकसी प्रीति वाले (इन्द्रज्येष्ठाः) सभापति राजा जिन में बड़ा है ऐसे (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) रक्षा करें वे तुम्हारी भी रक्षा करें ॥ ५० ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करने वाले श्रेष्ठों के रक्षक दुष्टों के ताड़क युद्ध में प्रीति रखने वाले मेघ के तुल्य पालक प्रशंसा के योग्य हैं वे सबको सेवन योग्य होते हैं ॥ ५० ॥

अर्वाञ्च इत्यस्य कूर्म ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒र्वाञ्चो॑ अ॒द्या भ॑वता यजत्रा॒ आ वो॒ हार्दि॒ भय॑मानो व्ययेयम् । त्राध्वं॑ नो देवा नि॒जुरो॒ वृक॑स्य॒ त्राध्वं॑ क॒र्त्ताद॑व॒पदो॑ यजत्राः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संगति करने हारे (देवाः) विद्वानो तुम लोग (अद्य) आज (अर्वाञ्चः) हमारे सन्मुख (भवत) हूजिये अर्थात् हम से विरुद्ध विमुख मत रहिये

(भयमानः) डरता हुआ मैं (वः) तुम्हारे (हार्दि) मनोगत को (आ, व्ययेयम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं (नः) हम को (निजुरः) हिंसक (वृकस्य) चोर वा व्याघ्र के सम्बन्ध से (त्राध्वम्) बचाओ । हे (यजत्राः) विद्वानों का सत्कार करने वाले लोगो ! तुम (अवपदः) जिस में गिर पड़ते उस (कर्त्तात्) कूप वा गढ़े से हमारी (त्राध्वम्) रक्षा करो ॥ ५१ ॥

भावार्थः—प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि हे पूज्य राजपुरुष विद्वानो ! तुम सदैव हमारे अविरोधी कपटादि रहित और भय के निवारक होओ । चोर व्याघ्रादि और मार्ग शोधने से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो ॥ ५१ ॥

विश्व इत्यस्य लुश ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वे॑ अ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नयः॒ समि॑द्धाः ।
विश्वे॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ अ॒स्मे ॥ ५२ ॥

पदार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! (अद्य) आज जैसे (विश्वे) सब आप लोग (विश्वे) सब (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्य और (विश्वे) सब (समिद्धाः) प्रदीप्त (अग्नयः) अग्नि (ऊती) रक्षण क्रिया से (नः) हमारे रक्षक (भवन्तु) होवें (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) रक्षा आदि के साथ (नः) हम को (आ, गमन्तु) प्राप्त हों वैसे (विश्वम्) सब (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्मे) इस मनुष्य के लिये (अस्तु) प्राप्त होवे ॥ ५२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जैसा सुख अपने लिये चाहें वैसा ही औरों के लिये भी, इस जगत् में जो विद्वान् हों वे आप अधर्माचरण से पृथक् हो के औरों को भी वैसे करें ॥ ५२ ॥

विश्वेदेवा इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या २ करना चाहिये इस वि० ॥

विश्वे॑ देवाः शृणु॒तेम॑ᳫं॒ हवं॑ मे॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ य उप॒ द्यवि॒ष्ठ । ये
अ॑ग्निजि॒ह्वा उ॒त वा॒ यज॑त्रा आ॒सद्या॒स्मिन्ब॒र्हिषि॑ मादयध्वम् ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोगो ! तुम (ये) (अन्तरिक्षे) आकाश में (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) जिह्वा के तुल्य जिन

के अग्नि हैं वे (उत) और (वा) अथवा (यजत्राः) संगति करने वाले पूजनीय पदार्थ हैं उन के जानने वाले (स्थ) हूजिये (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) पढ़ने पढ़ाने रूप व्यवहार को (उप, शृणुत) निकट से सुनो (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) सभा वा आसन पर (आसद्य) बैठ कर (मादयध्वम्) आनन्दित होओ ॥ ५३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जितने भूमि अन्तरिक्ष और प्रकाश में पदार्थ हैं उन को जान विद्वानों की सभा कर विद्यार्थियों की परीक्षा कर विद्या सुशिक्षा को बढ़ा और आनन्दित हो के दूसरों को निरन्तर आनन्दित करो ॥ ५३ ॥

देवेभ्य इत्यस्य वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् । आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—हे (सवितः) समस्त जगत् के उत्पादक जगदीश्वर ! (हि) जिससे आप (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ सिद्धि करनेहारे (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (उत्तमम्) श्रेष्ठ (प्रथमम्) मुख्य (अमृतत्वम्) मोक्षभाव (भागम्) सेवने योग्य सुख को (सुवसि) प्रेरित करते हो (आत्, इत्) इस के अनन्तर ही (दामानम्) सुख देने वाले प्रकाश और (अनूचीना) जानने के साधन (जीविता) जीवन के हेतु कर्मों को (मानुषेभ्यः) मनुष्यों के लिये (वि, ऊर्णुषे) विस्तृत करते हो इसलिये उपासना के योग्य हो ॥ ५४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! परमेश्वर ही के योग और विद्वानों के संग से सर्वोत्तम सुख वाले मोक्ष को प्राप्त होओ ॥ ५४ ॥

प्रवायुमित्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम् । द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥ ५५ ॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) अच्छे प्रकार यज्ञ करने हारे विद्वन् ! (नियुतः) निश्चयात्मक पुरुषों को (पत्यमानः) प्राप्त होते हुए (कविः) बुद्धिमान् विद्वान् आप जो तुम्हारी (बृहती) बड़ी तेज (मनीषा) बुद्धि है उस से (बृहद्रयिम्) बहुत धनों के निमित्त

(विश्ववारम्) सब को ग्रहण करने हारे (रथप्राम्) विमानादि यानों को व्याप्त होने वाले (घृतधामा) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले (वायुम्) प्राणादि स्वरूप वायु और (कविम्) बुद्धिमान् जन का (अच्छ, प्र, इयक्षसि) अच्छे प्रकार संग करना चाहते हो इस से सब के सत्कार के योग्य हो ॥ ५५ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् को प्राप्त हो पूर्ण विद्या बुद्धि और समग्र धन को प्राप्त होवें वे सत्कार के योग्य हों ॥ ५५ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) बिजुली और पवन की विद्या को जानने वाले विद्वानो ! तुम्हारे लिये (इमे) ये (सुताः) सिद्ध किये हुए पदार्थ हैं (हि) जिस कारण (इन्दवः) सोमादि ओषधियों के रस (वाम्) तुमको (उशन्ति) चाहते अर्थात् वे तुम्हारे योग्य हैं इस से (प्रयोभिः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों के सहित उन को (उप, आ, गतम्) निकट से अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ५६ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस कारण तुम लोग हमारे ऊपर कृपा करते हो इसलिये सब लोग तुम को मिलना चाहते हैं ॥ ५६ ॥

मित्रमित्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मित्रꣳ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीꣳ साधन्ता ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (धियम्) बुद्धि तथा (घृताचीम्) शीतलतारूप जल को प्राप्त होने वाली रात्रि को (साधन्ता) सिद्ध करते हुए (पूतदक्षम्) शुद्ध बलयुक्त (मित्रम्) मित्र और (रिशादसम्) दुष्ट हिंसक को मारने हारे (वरुणम्) धर्मात्मा जन को (हुवे) स्वीकार करता हूं वैसे इनको तुम लोग भी स्वीकार करो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्राण और उदान बुद्धि और रात्रि को सिद्ध करते वैसे विद्वान् लोग सब उत्तम साधनों का ग्रहण कर कार्य्यों को सिद्ध करें ॥ ४७ ॥

दस्रेत्यस्य मधुच्छन्दा ऋषिः। अश्विनौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आयातꣳ रुद्रवर्त्तनी। तम्मुतनथां। अयं वेनः। * ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण से पृथक् (रुद्रवर्त्तनी) दुष्ट रोदक न्यायाधीश के तुल्य आचरण वाले (दस्रा) दुष्टों के निवारक विद्वानो! जो (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ से पृथक् अर्थात् भोजनार्थ (युवाकवः) तुम को चाहने वाले (सुताः) सिद्ध किये पदार्थ हैं उनको तुम लोग (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ५८ ॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि जो विद्याओं की कामना करते हैं उनको विद्या देवें ॥ ५८ ॥

विदद्यदीत्यस्य कुशिक ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब स्त्री क्या करे इस वि० ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः। अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(यदि) जो (सरमा) पति के अनुकूल रमण करने हारी (प्रथमा) प्रख्यात (सुपदी) सुन्दर पगों वाली (अक्षराणाम्) अकारादि वर्णों के (रवम्) बोलने को (जानती) जानती हुई (रुग्णम्) रोगी प्राणी को (विदत्) जाने (अग्रम्) आगे (नयत्) पहुंचाने वाला (सध्र्यक्) साथ प्राप्त होता (पूर्व्यम्) प्रथम के लोगों से प्राप्त किये (महि) महागुणयुक्त (अद्रेः) मेघ से उत्पन्न हुए (पाथः) अन्न को (कः) करे अर्थात् भोजनार्थ सिद्ध करे और पति को (अच्छ) अच्छे प्रकार (गात्) प्राप्त होवे तो वह सुख को पावे ॥ ५९ ॥

भावार्थः—जो स्त्री वैद्य के तुल्य सब की हितकारिणी ओषधि के तुल्य अन्न बनाने को समर्थ हो और यथायोग्य बोलना भी जाने वह उत्तम सुख को निरन्तर पावें ॥ ५९ ॥

*(अ० ७ मं० १२। १६) में कहे दो मन्त्रों की प्रतीकें यहां कर्म्मकाण्ड विशेष में काम आने के लिये रक्खी हैं।

नहीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अथ मनुष्य कैसे मोक्ष को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥

पदार्थः—जो (अमृताः) आत्मस्वरूप से मरणधर्म रहित (देवाः) विद्वान् लोग (अमर्त्यम्) नित्य व्यापक रूप (वैश्वानरम्) सब के चलाने वाले (एनम्) इस अग्नि को (क्षैत्रजित्याय) जिस क्रिया से खेतों को जीतते उस भूमि राज्य के होने के लिये (आ, अवृधन्) अच्छे प्रकार बढ़ाते हैं वे (ईम्) सब ओर से (अस्मात्) इस (वैश्वानरात्) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नेः) अग्नि से (पुरएतारम्) पहिले पहुंचाने वाले (अन्यम्) भिन्न किसी को (स्पशम्) दूत (नहि) नहीं (अविदन्) जानते हैं ॥ ६० ॥

भावार्थः—जो उत्पत्ति नाश रहित मनुष्य देहधारी जीव विजय के लिये उत्पत्ति नाश रहित जगत् के स्वामी परमात्मा की उपासना कर उससे भिन्न की उसके तुल्य उपासना नहीं करते हैं वे बन्ध को छोड़ मोक्ष को प्राप्त होवें ॥ ६० ॥

उग्रेत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सभा सेनापति क्या करें इस वि० ॥

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडात ईदृशे ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम जिन (उग्र) अधिक बली तेजस्वी स्वभाव वाले (मृधः) और हिंसकों को (विघनिना) विशेष कर मारने हारे (इन्द्राग्नी) सभा सेनापति को (हवामहे) बुलाते हैं (ता) वे (ईदृशे) इस प्रकार के संग्रामादि व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृडातः) सुखी करते हैं ॥ ६१ ॥

भावार्थः—जो सभा और सेना के अध्यापक पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं वे सब को सुख देने वाले होते हैं ॥ ६१ ॥

उपास्मादित्यस्य देवल ऋषिः । सोमो देवता । निचृद्गायत्री छन्दः

षड्जः स्वरः ॥

अथ पढ़ने पढ़ाने वाले कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

उपा॑स्मै गायता नरः पव॑मानायेन्द॑वे। अ॒भि दे॒वाँ२॥ इय॑क्षते ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक अध्यापकादि लोगो तुम लोग (देवान्) विद्वानों का (अभि) सब ओर से (इयक्षते) सत्कार करना चाहते हुए (अस्मै) इस (पवमानाय) पवित्र करने हारे (इन्दवे) कोमल विद्यार्थी के लिये (उपगायत) निकटस्थ हो के शास्त्रों को पढ़ाया करो ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे जिज्ञासु लोग अध्यापकों को सन्तुष्ट करना चाहते हैं वैसे अध्यापक लोग भी उन को पढ़ाने की इच्छा रक्खा करें ॥ ६२ ॥

ये त्वेत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्म वि० ॥

ये त्वा॑हिह॒त्ये म॑घवन्न॒वर्द्ध॒न्ये शा॑म्ब॒रे ह॑रिवो॒ ये गवि॑ष्टौ । ये त्वा॑ नू॒नम॑नु॒मद॑न्ति॒ विप्राः॒ पिबे॑न्द्र॒ सोम॑ᳬ स॒गणो॑ म॒रुद्भिः॑ ॥ ६३ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम पूजित धन वाले सेनापति ! (ये) जो (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (अहिहत्ये) जहां मेघ का काटना और (गविष्टौ) किरणों की संगति हो उस संग्राम में जैसे किरणें सूर्य्य के तेज को वैसे (त्वा) आप को (अवर्धन्) उत्साहित करें । हे (हरिवः) प्रशंसित किरणों के तुल्य चिलकते घोड़ों वाले शूरवीर जन ! (ये) जो लोग (शाम्बरे) मेघ सूर्य के संग्राम में बिजुली के तुल्य (त्वा) आप को बढ़ावें (ये) जो (नूनम्) निश्चय कर आप को (अनु, मदन्ति) अनुकूलता से आनन्दित होते हैं और (ये) जो आप की रक्षा करते हैं । हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले जन ! (मरुद्भिः) जैसे वायु के (सगणः) गण के साथ सूर्य रस को ग्रहण करे वैसे मनुष्यों के साथ (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधि-रस को (पिब) पीजिये ॥ ६३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे मेघ और सूर्य्य के संग्राम में सूर्य का ही विजय होता है वैसे मूर्ख और विद्वानों के संग्राम में विद्वानों का ही विजय होता है ॥६३॥

जनिष्ठा इत्यस्य गौरीवितिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

जनि॑ष्ठा उ॒ग्रः सह॑से तु॒राय॑ म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो बहु॒लाभि॑मानः । अव॑र्द्ध॒न्निन्द्रं॑ म॒रुत॑श्चि॒दत्र॑ मा॒ता यद्वी॒रं द॒धन॒द्धनि॑ष्ठा ॥ ६४ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (धनिष्ठा) अत्यन्त धनवती (माता) माता (यत्) जिस (वीरम्) शूरतादि गुण युक्त आप पुत्र को (दधनत्) पुष्ट करती रही और (चित्) जैसे (इन्द्रम्) सूर्य्य को (मरुतः) वायु वढ़ावे वैसे सभासद् लोग जिस आप को (अवर्धन्) योग्यतादि से वढ़ावें सो आप (अत्र) इस राज्यपालनरूप व्यवहार में (सहसे) वल और (तुराय) शीघ्रता के लिये (उग्रः) तेजस्वि स्वभाव वाले (मन्द्रः) स्तुति प्रशंसा को प्राप्त आनन्ददाता (ओजिष्ठः) अतिशय पराक्रमी और (बहुलाभिमानः) अनेक प्रकार के पदार्थों के अभिमान वाले हुए सुख को (जनिष्ठाः) उत्पन्न कीजिये ॥ ६४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्मवलयुक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाव वाला श्रेष्ठ के विषय भिन्न स्वभाव वाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यों से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करे वह सब ओर से वढ़े ॥ ६४ ॥

आ तू न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ तू न॑ इन्द्र वृत्रहन्नस्माक॑मर्द्धमा ग॑हि । महान्महीभि॑रूतिभिः॑ ॥ ६५ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के विनाशक (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य वाले राजन् ! आप (अस्माकम्) हम लोगों की (अर्द्धम्) वृद्धि उन्नति को (आ, गहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (महान्) अत्यन्त पूजनीय हुए (महीभिः) वड़ी (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (नः) हम को (तु, आ, दधनत्) शीघ्र अच्छे प्रकार पुष्ट कीजिये ॥ ६५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से (दधनत्) इस पद की अनुवृत्ति आती है हे राजन् ! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं वैसे हम लोग भी आप को वढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिल के दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें ॥ ६५ ॥

त्वमिन्द्रेत्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमि॑न्द्र प्र॒तूर्त्तिष्व॒भि विश्वा॑ असि॒ स्पृधः॑ । अ॒श॒स्ति॒हा ज॑नि॒ता वि॑श्व॒तूर॑सि॒ त्वन्तू॑र्य तरुष्य॒तः ॥ ६६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) उत्तम ऐश्वर्य देने वाले राजन् ! जिस कारण (त्वम्) आप

(प्रतूर्त्तिषु) जिस में मारना होता उन संग्रामों में (विश्वाः) शत्रुओं की सब (स्पृधः) ईर्ष्यायुक्त सेनाओं (अभि, असि) तिरस्कार करते हो तथा (अशस्तिहा) जिन की कोई प्रशंसा न करे उन दुष्टों के हन्ता (जनिता) सुखों के उत्पन्न करने हारे (विश्वतूः) सब शत्रुओं को मारने वाले हुए (त्वम्) आप विजय वाले (असि) हो इस से (तरुष्यतः) हनन करने वाले शत्रुओं को (तूर्य) मारिये ॥ ६६ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष अधर्मयुक्त कर्मों के निवर्तक सुखों के उत्पादक और युद्धविद्या में कुशल हों वे शत्रुओं को जीतने को समर्थ हों ॥ ६६ ॥

अनु ते शुष्ममित्यस्य नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा । विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक राजन् ! जिस (ते) आपके (तुरयन्तम्) शत्रुओं को मारते हुए (शुष्मम्) शत्रुओं को सुखाने हारे बल को (शिशुम्) बालक को (मातरा) माता पिता (न) के समान (क्षोणी) अपनी पराई भूमि (अनु, ईयतुः) अनुकूल प्राप्त होती उस (ते) आप के (मन्यवे) क्रोध से (विश्वाः, स्पृधः) सब शत्रुओं की ईर्ष्या करने हारी सेना (श्नथयन्त) नष्ट भ्रष्ट मारी जाती हैं (यत्) जिस (वृत्रम्) न्याय के निरोधक शत्रु को आप (तूर्वसि) मारते हो वह पराजित हो जाता है ॥ ६७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिन राजपुरुषों की हृष्ट पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवें ॥ ६७ ॥

यज्ञ इत्यस्य कुत्स ऋषिः । आदित्या देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८ ॥

पदार्थः—हे (आदित्यासः) सूर्यवत्तेजस्वी पूर्णविद्या वाले लोगो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों का (यज्ञः) संगति के योग्य संग्रामादि व्यवहार (सुम्नम्) सुख करने को (प्रत्येति) उलटा प्राप्त होता है वैसे (मृडयन्तः) सुखी करने वाले (भवत) होवो । जैसे (वः) तुम्हारी (वरिवोवित्तरा) अत्यन्त सेवा को प्राप्त (अर्वाची) हमारे अनु-

कूल (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (आ, ववृत्यात्) अच्छे प्रकार वर्त्ते (अंहोः) अपराधी की (चित्) भी वैसे सुख करने वाली हमारे अनुकूल बुद्धि (असत्) होवे ॥ ६८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस देश में पूर्ण विद्या वाले राज-कर्मचारी हों वहां सब की एकमति होकर अत्यन्त सुख बढ़े ॥ ६८ ॥

अदब्धेभिरित्यस्य भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥६९॥

पदार्थः—हे (सवितः) अनेक पदार्थों के उत्पादक तेजस्वि विद्वन् राजन्! (त्वम्) आप (अदब्धेभिः) अहिंसित (शिवेभिः) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षाओं से (अद्य) आज (नः) हमारे (गयम्) प्रशंसा के योग्य सन्तान, धन और घर की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी वाले हुए आप (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिस से (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करने वाला दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ होवे ॥ ६९ ॥

भावार्थः—प्रजाजनों को राजपुरुषों से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे सन्तान, धन, घर और पदार्थों की रक्षा से नवीन २ ऐश्वर्य को प्राप्त करा के हम को पीड़ा देने हारे दुष्टों से दूर रक्खो ॥ ६९ ॥

प्रवीरयेत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः । वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ ७० ॥

पदार्थः—हे राज-प्रजा-जनो ! जो (वाम्) तुम दोनों के (मधुमन्तः) प्रशंसित ज्ञानयुक्त (सुतासः) विद्या और उत्तम शिक्षा से सिद्ध किये गये (शुचयः) पवित्र मनुष्य (अध्वर्युभिः) हिंसा और अन्याय से पृथक् रहने वालों के साथ (वीरया) वीर

पुरुषों से युक्त सेना से शत्रुओं को (प्र, दद्रिरे) अच्छे प्रकार विदीर्ण करते हैं उन के साथ हे (वायो) वायु के सदृश वर्त्तमान वलिष्ठ राजन् ! आप (नियुतः) निरन्तर संयुक्त वियुक्त होने वाले वायु आदि गुणों को (वह) प्राप्त कीजिये। और (अच्छ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (मदाय) आनन्द के लिये (सुतस्य) सिद्ध किये हुए (अन्धसः) अन्न के रस को (पिब) पीजिये ॥ ७० ॥

भावार्थः—जो पवित्र आचरण करने वाले राजप्रजा के हितैषी विद्वान युक्त पुरुष वीरों की सेना से शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं उनको प्राप्त हो के राजा आनन्दित होवे। राजा जैसा अपने लिये आनन्द चाहे वैसा राज प्रजाजनों के लिये भी चाहे ॥ ७० ॥

गाव इत्यस्य वसिष्ठ ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अथ पृथिवी सूर्य्य कैसे हैं इस वि० ॥

गाव॒ उपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ । उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ ७१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (रप्सुदा) सुन्दर रूप देने वाले (उभा) दोनों (कर्णा) कार्यसाधक (हिरण्यया) ज्योतिःस्वरूप (मही) महत्परिमाण वाले सूर्य पृथिवी (यज्ञस्य) संगत संसार के (अवतम्) कूप के तुल्य रक्षा करने वाले होते और (गावः) किरण भी रक्षक होवें। वैसे इन की तुम लोग (उप, अवत) रक्षा करो ॥ ७१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे किसान लोग कूप के जल से खेतों और वाटिकाओं की सम्यक् रक्षा कर बलवान् होते वैसे पृथिवी सूर्य सब के धनकारक होते हैं ॥ ७१ ॥

काव्ययोरित्यस्य दक्ष ऋषिः। विद्वान् देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अथ अध्यापक और उपदेशक के वि० ॥

का॒व्य॒योरा॒जाने॑षु॒ क्रत्वा॒ दक्ष॑स्य दुरो॒णे । रि॒शाद॑सा स॒धस्थ॒ आ ॥ ७२ ॥

पदार्थः—हे (रिशादसा) अविद्यादि दोषों के नाशक अध्यापक उपदेशक लोगो ! (काव्ययोः) कवि विद्वानों ने बनाये व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादक ग्रन्थों के (आजानेषु) जिन से विद्वान् होते उन पठनपाठनादि व्यवहारों में (क्रत्वा) बुद्धि से वा कर्म

१२८

करके (दक्षस्य) कुशल पुरुष के (सधस्थे) जिस में साथ मिल कर बैठें उस (दुरोणे) घर में तुम लोग (आ) आया करो ॥ ७२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अध्यापक तथा उपदेशक लोग राज प्रजा जनों को बुद्धिमान् बलयुक्त नीरोग आपस में प्रीति वाले धर्मात्मा और पुरुषार्थी करें वे पिता के तुल्य सत्कार करने योग्य हैं ॥ ७२ ॥

दैव्यावित्यस्य दक्ष ऋषिः । अध्वर्यू देवते । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब यान बनाने का वि० ॥

दैव्या॑वध्वर्यू॒ आ ग॑तꣳ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा । मध्वा॑ य॒ज्ञꣳ सम॑ञ्जाथे * तम्प्र॒त्नथा॑ । अ॒यं वे॒नः ॥ ७३ ॥

पदार्थः—हे (दैव्यौ) विद्वानों में कुशल प्रवीण (अध्वर्यू) अपने आत्मा को अहिंसा धर्म चाहते हुए विद्वानो ! तुम दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के तुल्य कान्ति वाले (रथेन) आनन्द के हेतु यान से (आ, गतम्) आया करो और आदर (मध्वा) मधुर भाषण से (यज्ञम्) चलने रूप व्यवहार को (सम्, अञ्जाथे) सम्यक् प्रकट किया करो ॥ ७३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में ले चलने वाले उत्तम शोभायमान सूर्य के तुल्य प्रकाशित यानों को बनावें और उन से अभीष्ट कामनाओं को सिद्ध करें ॥ ७३ ॥

तिरश्चीन इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः । सूर्यो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बिजुली के वि० ॥

ति॒र॒श्चीनो॒ वित॑तो र॒श्मिरे॑षाम॒धः स्वि॑दा॒सी३दु॒परि॑ स्विदासी३त् । रे॒तो॒धा आ॑सन्महि॒मान॑ आसन्त्स्व॒धा अ॒वस्ता॒त्प्रय॑तिः प॒रस्ता॑त् ॥७४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (एषाम्) इन विद्युत् और सूर्य आदि की (तिरश्चीनः) तिरछे गमन वाली (विततः) विस्तारयुक्त (रश्मिः) किरण वा दीप्ति (अधः) नीचे (स्वित्) भी (आसीत्) है (उपरि) ऊपर (स्वित्) भी (आसीत्) है तथा

* यहां भी (अ० ७ । मं० १२ । १६) में पूर्व कहे दो मन्त्रों की प्रतीकें कर्मकाण्ड विशेष के लिये रक्खी हैं ॥

(अवस्तात्) इधर से और (परस्तात्) उधर से (प्रयतिः) प्रयत्न वाली है उस के विज्ञान से (रेतोधाः) पराक्रम को धारण करने वाले (आसन्) हों तथा (महिमानः) पूज्य और (स्वधा) अपने धनादि पदार्थ के धारक होते हुए आप लोग उपकारी (आसन्) हूजिये ॥ ७४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस बिजुली की दीप्ति सब के भीतर रहती हुई सब दिशाओं में व्याप्त है वही सब को धारण करती है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ७४ ॥

आरोदसीत्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् । सो अध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो विद्युत् रूप अग्नि (रोदसी) सूर्य पृथिवी और (महत्) महान् (जातम्) प्रसिद्ध (स्वः) अन्तरिक्ष को (आ, अपृणात्) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (एनम्) इस अग्नि को (अपसः) कर्म (आ, अधारयन्) अच्छे प्रकार धारण करते तथा जो (कविः) शब्द होने का हेतु अग्नि (अध्वराय) अहिंसानामक शिल्पविद्यारूप यज्ञ के तथा (वाजसातये) वेग के सम्यक् सेवन के लिये (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होने वाले घोड़े के (न) समान विद्वानों ने (परि, नीयते) प्राप्त किया है (सः) वह (चनोहितः) पृथिवी आदि अन्न के लिये हितकारी है ऐसा तुम लोग जानो ॥ ७५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अनेक प्रकार के विज्ञान और कर्मों से बिजुली रूप अग्नि की विद्या को प्राप्त होके भूमि आदि में व्याप्त विभागकर्त्ता साधन किया हुआ यान आदि को शीघ्र पहुंचाने वाले अग्नि को कार्यों में उपयुक्त करें ॥ ७५ ॥

उक्थेभिरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सत्कार के योग्य हों इस वि० ॥

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(या) जो (मन्दाना) आनन्द देने वाले (वृत्रहन्तमा) धर्म का निरोध करने हारे पापियों के नाशक सभा सेनापति के (चित्) समान (गिरा) वाणी (आङ्गू-

सूवैः) अच्छे घोष और (उक्थेभिः) प्रशंसा योग्य स्तुतियों के साधक वेद के भागरूप मन्त्रों से शिल्प विज्ञान का (आविवासतः) अच्छे प्रकार सेवन करते हैं उन अध्यापक उपदेशकों की मनुष्यों को (आ) अच्छे प्रकार सेवा करनी चाहिये ॥ ७६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सभा सेनाध्यक्ष के तुल्य विद्यादि कार्यों के साधक सुन्दर उपदेशों से सब को विद्वान् करते हुए प्रवृत्त हों वे ही सब को सत्कार करने योग्य हों ॥ ७६ ॥

उप न इत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों के प्रति क्या करें इस वि० ॥

उप॑ नः सू॒नवो॒ गिरः॑ शृ॒ण्वन्त्व॒मृत॑स्य॒ ये । सु॒मृ॒डी॒का भ॑वन्तु नः ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सन्तान (अमृतस्य) नाशरहित परमेश्वर के सम्बन्ध की वा नित्य वेद की (गिरः) वाणियों को (उप, शृण्वन्तु) अध्यापकादि के निकट सुनें वे (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुख करने हारे (भवन्तु) होवें ॥ ७७ ॥

भावार्थः—जो माता पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेदविद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा के बल वाले करें तो उन सन्तानों के लिये अत्यन्त हितकारी हों ॥ ७७ ॥

ब्रह्माणीत्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रमरुतौ देवते । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

ब्रह्मा॑णि मे म॒तयः॒ शꣳ सु॒तासः॒ शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रिः॑ । आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्य॒न्त्युक्थे॒मा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥ ७८ ॥

पदार्थः—हे (सुतासः) विद्या और सुन्दर शिक्षा से युक्त ऐश्वर्य वाले (मतयः) बुद्धिमान् लोग (मे) मेरे लिये जिन (ब्रह्माणि) धनों की (प्रति, हर्यन्ति) प्रतीति से कामना करते और (इमा) इन (उक्था) प्रशंसा के योग्य वेदवचनों की (आ, शासते) अभिलाषा करते हैं और (शुष्मः) बलकारी (प्रभृतः) अच्छे प्रकार हवनादि से

पुष्ट क्रिया (अद्रिः) मेघ (मे) मेरे लिये जिस (शम्) सुख को (इयर्ति) पहुंचाता (ता) उनको (नः) हमारे लिये (हरी) हरणशील अध्यापक और अध्येता (अच्छ, वहतः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ ७८ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस कर्म से विद्या और मेघ की उन्नति हो उसकी क्रिया करो । जो लोग तुम से विद्या और सुशिक्षा चाहते हैं उन को प्रीति से देओ और जो आप से अधिक विद्या वाले हों उन से तुम विद्या ग्रहण करो ॥ ७८ ॥

अनुत्तमित्यस्य अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर वि० ॥

अनु॑त्तमा ते॑ मघवृन्नकि॒र्नु न त्वावाँ२॥ अस्ति देवता विदा॑नः । न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णु॒हि प्र॑वृद्ध ॥ ७६ ॥

पदार्थः—हे (प्रवृद्ध) सब से श्रेष्ठ सर्वपूज्य (मघवन्) बहुत धन वाले ईश्वर ! जिस (ते) आपका (अनुत्तम्) अप्रेरित स्वरूप है (त्वावान्) आपके सदृश (देवता) पूज्य इष्ट देव (विदानः) विद्वान् (नु) निश्चय से कोई (न) नहीं है आप (जायमानः) उत्पन्न होने वाले (न) नहीं और (जातः) उत्पन्न हुए भी (न) नहीं हैं (यानि) जिन जगत् की उत्पत्ति आदि कर्मों को (करिष्या) करोगे तथा (कृणुहि) करते हो उनको कोई भी (नकिः) नहीं (आ, नशते) स्मरणशक्ति से व्याप्त होता, सो आप सब के उपास्य देव हो ॥ ७६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर समस्त ऐश्वर्य वाला किसी के सदृश नहीं अनन्त विद्यायुक्त, न उत्पन्न होता न हुआ न होगा और सब से बड़ा उसी की तुम लोग निरन्तर उपासना करो ॥ ७६ ॥

तदित्यस्य वृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञ उ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः । स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑ ॥ ८० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यतः) जिससे (उग्रः) तेज स्वभाव वाला (त्वेषनृम्णः) सुन्दर प्रकाशित धन से युक्त वीर पुरुष (जज्ञे) उत्पन्न हुआ, जो (जज्ञानः) उत्पन्न हुआ (शत्रून्) शत्रुओं को (सद्यः) शीघ्र (निरिणाति) निरन्तर मारता है, (विश्वे) सब (ऊमाः) रक्षादि कर्म करने वाले लोग (यम्) जिसके (अनु) पीछे (मदन्ति)

आनन्द करते हैं (तत्, इत्) वही ब्रह्म परमात्मा (भुवनेषु) लोकलोकांतरों में (ज्येष्ठम्) सब से बड़ा, मान्य और श्रेष्ठ (आस) है, ऐसा तुम जानो ॥ ८० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस की उपासना से शूरवीरता को प्राप्त हो शत्रुओं को मार सकते हैं, जिस की उपासना कर विद्वान् लोग आनन्दित हो के सब को आनन्दित करते हैं उसी सब से उत्कृष्ट सब के उपास्य परमेश्वर का सब लोग निश्चय करें ॥ ८० ॥

इमा इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम । पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ८१ ॥

पदार्थः—हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों में वास करने हारे परमात्मन् ! (याः) जो (इमाः) ये (मम) मेरी (गिरः) वाणी आपको (उ) निश्चय कर (वर्द्धन्तु) बढ़ावें उन को प्राप्त हो के (पावकवर्णाः) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले तेजस्वी (शुचयः) पवित्र हुए (विपश्चितः) विद्वान् लोग (स्तोमैः) पदार्थ विद्याओं की प्रशंसाओं से (अभि, अनूषत) सब ओर से प्रशंसा करें ॥ ८१ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उस ईश्वर की सत्ता के प्रतिपादन तथा अभ्यास और सत्यभाषण से अपनी वाणियों को शुद्ध कर विद्वान् हो के सब पदार्थविद्याओं को प्राप्त होवें ॥ ८१ ॥

यस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ राजधर्म वि० ॥

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः । तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ॥ ८२ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यस्य) जिस आपका (अयम्) यह (विश्वः) सब (आर्यः) धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला पुरुष (दासः) सेवकवत् आज्ञाकारी (शेवधिपाः) धरोहर धन का रक्षक अर्थात् धर्मादि कार्य वा राजकर देने में व्यय करने द्वारा जन (अरिः) और शत्रु (पवीरवि) धनादि की रक्षा के लिये शस्त्र को प्राप्त होने वाले और (रुशमे) हिंसक व्यवहार वा (अर्ये) धनस्वामी वैश्य आदि के निमित्त (तिरः) छिपनेवाला

(चित्) भी (तुभ्यम्) आप के लिये (इत्) निश्चय से है (सः) वह आप (रयिः) धन के समान (अज्यते) प्राप्त होते हैं ॥ ८२ ॥

भावार्थः—जिस राजा के सब आर्य्य राज्यरक्षक और आज्ञापालक हैं जो धनादि कर का अदाता शत्रु उस से भी जिन आप ने धनादि कर ग्रहण किया वे आप सब से उत्तम शोभा वाले हों ॥ ८२ ॥

अयमित्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृत्सतो बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ८३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह सभापति राजा (ऋषिभिः) वेदार्थवेत्ता राजर्षियों के साथ (सहस्रम्) असंख्य प्रकार के ज्ञान को प्राप्त (सहस्कृतः) बल से संयुक्त (सत्यः) और श्रेष्ठ व्यवहारों वा विद्वानों में उत्तम चतुर है (अस्य) इस का (महिमा) महत्त्व (समुद्रइव) समुद्र वा अन्तरिक्ष के तुल्य (पप्रथे) प्रसिद्ध होता है तो (सः) वह पूर्वोक्त मैं प्रजाजन इस राजा के (यज्ञेषु) संगत राजकार्यों और (विप्रराज्ये) बुद्धिमानों के राज्य में (शवः) बल की (गृणे) स्तुति करता हूं ॥ ८३ ॥

भावार्थः—जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के संग में प्रीति करने वाले साहसी सत्य गुण, कर्म, स्वभावों से युक्त बुद्धिमानों के राज्य में अधिकार को पाये हुए संगत न्याय और विनय से युक्त कामों को करें उन को आकाश के सदृश कीर्त्ति विस्तार को प्राप्त होती है ॥ ८३ ॥

अदब्धेभिरित्यस्य भारद्वाज ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ८४ ॥

पदार्थः—हे (सवितः) समग्र ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! (त्वम्) आप (अद्य) आज (अदब्धेभिः) न बिगाड़ने योग्य (शिवेभिः) मंगलकारी (पायुभिः) अनेक

प्रकार के रक्षा के उपायों से (नः) हमारी (गयम्) प्रजा की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये (हिरण्यजिह्वः) सब के हित में रमण करने योग्य वाणी से युक्त हुए (नव्यसे) अतिशय कर नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के अर्थ (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये जिस से (अघशंसः) दुष्ट चोर हम पर (माकिः) न (ईशत) समर्थ वा शासक हों ॥ ८४ ॥

भावार्थः—राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों को ब्रह्मचर्य, विद्यादान और स्वयम्बर विवाह करा के और डाकुओं से रक्षा कर के उन्नति करें ॥ ८४ ॥

आ नो इत्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । विराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ नो॑ य॒ज्ञं दि॑वि॒स्पृशं॒ वायो॑ या॒हि सु॒मन्म॑भिः । अ॒न्तः प॒वित्र॑ उ॒परि॑ श्रीणा॒नो॒ऽयꣳ शु॒क्रो अ॑यामि ते ॥ ८५ ॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के तुल्य वर्त्तमान राजन् ! जैसे मैं (अन्तः) अन्तःकरण में (पवित्रः) शुद्धात्मा (उपरि) उन्नति में (श्रीणानः) आश्रय करता हुआ (अयम्) यह (शुक्रः) शीघ्रकारी पराक्रमी हुआ (सुमन्मभिः) सुन्दर विज्ञानों से (ते) आप के (दिविस्पृशम्) विद्या-प्रकाशयुक्त (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार को (अयामि) प्राप्त होता हूं वैसे आप (नः) हमारे विद्या-प्रकाशयुक्त उत्तम व्यवहार को (आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥ ८५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है वैसे ही भाव से प्रजा राजा के विषय में वर्त्ते । ऐसे दोनों मिल के सब न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें ॥ ८५ ॥

इन्द्रवायू इत्यस्य तापस ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्र॑वायू सु॒सं॒दृशा॑ सु॒हवे॒ह ह॑वामहे । यथा॑ नः॒ सर्व॒ इज्जनो॑ऽनमी॒वः स॒ङ्गमे॑ सु॒मना॒ अस॑त् ॥ ८६ ॥

पदार्थः—हम लोग जिन (सुसंदृशा) सुन्दर प्रकार से सम्यक् देखने वाले (सुहवा) सुन्दर बुलाने योग्य (इन्द्रवायू) राजप्रजाजनों को (इह) इस जगत् में (हवामहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जैसे (सङ्गमे) संग्राम वा समागम में (नः)

हमारे (सर्व, इत्) सभी (जनः) मनुष्य (अनमीवः) नीरोग (सुमनाः) प्रसन्न चित्त वाले (असत्) होवें, वैसे क्रिया करें ॥ ८६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वैसे ही राजप्रजा-पुरुष प्रयत्न करें जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी नीरोग प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों ॥ ८६ ॥

ऋधगित्यस्य जमदग्निर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः ॥

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ऋधंगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये । यो नूनं मित्रावरुणाव्भिष्टंय आचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥

पदार्थः—(यः) जो (देवतातये) विद्वानों वा दिव्यगुणों के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् (मर्त्यः) मनुष्य (अभीष्टये) अभीष्ट सुख की प्राप्ति के अर्थ तथा (हव्यदातये) ग्रहण करने योग्य पदार्थों की प्राप्ति के लिये (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के तुल्य राजप्रजाजनों का (नूनम्) निश्चित (आचक्रे) सेवन करता (सः) वह जन (इत्था) इस उक्त हेतु से (शशमे) शान्त उपद्रवरहित होता है ॥ ८७ ॥

भावार्थः—जो शम दम आदि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख की सिद्धि के लिये प्रयत्न करें अवश्य समृद्धिमान् होवें ॥ ८७ ॥

आ यातमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्बृहती छन्दः ।

मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आ यातमुपं भूषतं मध्वः पिबतमश्विना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ८८ ॥

पदार्थः—हे (वृषणा) पराक्रम वाले (जेन्यावसु) जयशील जनों को वसाने वाले वा जीतने योग्य अथवा जीता है धन जिन्होंने ऐसे (अश्विना) विद्यादि शुभ गुणों में व्याप्त राजप्रजाजन तुम दोनों सुख को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ प्रजाओं को (उप, भूषतम्) सुशोभित करो (मध्वः) वैद्यकशास्त्र की रीति से सिद्ध किये मधुर रस को (पिबतम्) पिओ (पयः) जल को (दुग्धम्) पूर्ण करो अर्थात् कोई जल विना दुःखी न रहे (नः) हम को (मा) मत (मर्धिष्टम्) मारो और धर्म से विजय को (आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥ ८८ ॥

भावार्थः—जो राजप्रजाजन सब को विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें सर्वत्र

नहर आदि के द्वारा जल पहुंचावें श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें वे जीतने वाले हुए अतोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥ ८८ ॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (नः) हम को (ब्रह्मणः, पतिः) धन वा वेद का रक्षक अधिष्ठाता विद्वान् (प्र, एतु) प्राप्त होवे (सूनृता) सत्य लक्षणों से उज्ज्वल (देवी) शुभ गुणों से प्रकाशमान वाणी (प्र, एतु) प्राप्त हो (नर्य्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पङ्क्तिराधसम्) समूह की सिद्धि करने हारे (यज्ञम्) सङ्गत धर्मयुक्त व्यवहारकर्त्ता (वीरम्) शूरवीर पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (अच्छ, नयन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें वैसे हम को प्राप्त होओ ॥ ८९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग विद्वानों, सत्यवाणी और सर्वोपकारी वीर पुरुषों को प्राप्त हों वे सम्यक् सुख की उन्नति करें ॥ ८९ ॥

चन्द्रमा इत्यस्य त्रित ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ९० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जैसे (सुपर्णः) सुन्दर चालों से युक्त (चन्द्रमाः) शीतकारी चन्द्रमा (कनिक्रदत्) शीघ्र शब्द करते हींसते हुए (हरिः) घोड़ों के तुल्य (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) बीच (आ, धावते) अच्छे प्रकार शीघ्र चलता है और (पुरुस्पृहम्) बहुतों से चाहने योग्य (बहुलम्) बहुत (पिशङ्गम्) सुवर्णादि के तुल्य वर्णयुक्त (रयिम्) शोभा कान्ति को (एति) प्राप्त होता है वैसे पुरुषार्थी हुए वेग से लक्ष्मी को प्राप्त होओ ॥ ९० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से प्रकाशित चन्द्र आदि लोक अन्तरिक्ष में जाते आते हैं जैसे उत्तम घोड़ा ऊंचा शब्द करता हुआ शीघ्र भागता है वैसे हुए तुम लोग अत्युत्तम अपूर्व शोभा को प्राप्त होके सब को सुखी करो ॥ ९० ॥

देवन्देवमित्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर राजधर्म वि० ॥

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये । देवन्देवꣳ हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ ६१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देव्या) प्रकाशमान (धिया) बुद्धि वा कर्म से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग जैसे (वः) तुम्हारे (अवसे) रक्षादि के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् २ वा उत्तम २ पदार्थ को (हुवेम) बुलावें वा ग्रहण करें तुम्हारे (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् २ वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को तथा तुम्हारे (वाजसातये) वेगादि के सम्यक् सेवन के लिये (देवन्देवम्) विद्वान् २ वा उत्तम प्रत्येक पदार्थ को बुलावें वा स्वीकार करें वैसे तुम लोग भी ऐसा हमारे लिये करो ॥ ६१ ॥

भावार्थः—जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इन से सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं वे उत्तम कीर्त्ति और बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ६१ ॥

दिवीत्यस्य मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् । क्ष्मया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥ ६२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (दिवि) आकाश में (पृष्ठः) स्थित (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का हितकारी (क्ष्मया) पृथिवी के साथ (वृधानः) बढ़ा हुआ (ओजसा) बल से (बृहत्) महान् (चनोहितः) ओषधियों को पकाने रूप सामर्थ्य से अन्नादि का धारक (अग्निः) सूर्यरूप अग्नि (ज्योतिषा) अपने प्रकाश से (तमः) रात्रिरूप अन्धकार को (बाधते) निवृत्त करता है (अरोचत) प्रकाशित होता है वैसे उत्तम गुणों से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करके तुम लोग भी प्रकाशित कीर्त्ति वाले हो ॥ ६२ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो विद्वान् लोग सूर्य अन्धकार को जैसे वैसे दुराचार और अविद्यान्धकार को निवृत्त कर विद्या को प्रकाशित करें वे सूर्य के तुल्य सर्वत्र प्रकाशित प्रशंसा वाले हों ॥ ६२ ॥

इन्द्राग्नीत्यस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । भुरिगनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
अथ उषा के वि० ॥

इन्द्राग्नी अपादियम्पूर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वी शिरो जिह्वया वावदुच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥ ९३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) अध्यापक उपदेशक लोगो ! जो (इयम्) यह (अपात्) बिना पग की (पद्वतीभ्यः) बहुत पगों वाली प्रजाओं से (पूर्वा) प्रथम उत्पन्न होने वाली (आ, अगात्) आती है (शिरः) शिर को (हित्वी) छोड़ के अर्थात् बिना शिर की हुई प्राणियों की (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) शीघ्र बोलती अर्थात् कुक्कुट आदि के बोल से उषःकाल की प्रतीत होती इससे बोलना धर्म उषा में आरोपण किया जाता है (चरत्) विचरती है और (त्रिंशत्) तीस (पदा) प्राप्ति के साधन मुहूर्तों को (नि, अक्रमीत्) निरन्तर आक्रमण करती है वह उषा प्रातः की वेला तुम लोगों को जाननी चाहिये ॥ ९३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वेग वाली पाद शिर आदि अवयवों से रहित प्राणियों के जगने से पहिले होने वाली जागने का हेतु प्राणियों के मुखों से शीघ्र बोलती हुई सी तीस मुहूर्त (साठ घड़ी) के अनन्तर प्रत्येक स्थान को आक्रमण करती है वह उषा निद्रा आलस्य को छोड़ तुम को सुख के लिये सेवन करनी चाहिये ॥ ९३ ॥

देवास इत्यस्य मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥
कौन मनुष्य विद्वान् हो सकते हैं इस वि० ॥

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः । ते नो अद्य ते अपरन्तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ ९४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सरातयः) बराबर दाता (समन्यवः) तुल्य क्रोध वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग (साकम्) साथ मिल के (अद्य) आज (नः) हमारे (मनवे) मनुष्य के लिये (स्म) प्रसिद्ध (वरिवोविदः) सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले (भवन्तु) हों (तु) और (ते) वे (अपरम्) भविष्यत् काल में (नः) हमारे (तुचे) पुत्र पौत्रादि सन्तान के अर्थ हमारे लिये सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों (ते, हि) वे ही तुम लोगों के लिये भी सत्कार के जानने वा धन के प्राप्त कराने वाले हों ॥ ९४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य एक दूसरे के लिये सुख देवें जो मिल कर दुष्टों पर क्रोध

करें वे पुत्र पौत्र वाले हो के मनुष्यों के सुख की उन्नति के लिये समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं ॥ ६४ ॥

अपाधमदित्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिक् बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अथ कौन मनुष्य दुःखनिवारण में समर्थ हैं इस वि० ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्। देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण॥ ६५॥

पदार्थः—हे (बृहद्भानो) महान् किरणों के तुल्य प्रकाशित कीर्ति वाले (मरुद्गण) मनुष्यों या पवनों के समूह से कार्य्यसाधक (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देने वाले सभापति राजा (देवाः) विद्वान् लोग (ते) आप की (सख्याय) मित्रता के अर्थ (येमिरे) संयम करते हैं और (द्युम्नी) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य वाले आप (अभि) (अशस्तीः) सब ओर से हिंसाओं को (अप, अधमत्) दूर धमकाते हो (अशस्तिहा) दुष्टों के नाशक (अभवत्) हूजिये ॥ ६५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं वे यशस्वी होकर सब दुःखनिवारण के लिये सूर्य के तुल्य होते हैं ॥ ६५ ॥

प्र व इत्यस्य नृमेध ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत। वृत्रꣳ हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा॥ ६६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो ! जो (शतक्रतुः) असंख्य प्रकार की बुद्धि वा कर्मों वाला सेनापति (शतपर्वणा) जिस से असंख्य जीवों का पालन हो ऐसे (वज्रेण) शस्त्र अस्त्र से (वृत्रहा) जैसे मेघहन्ता सूर्य (वृत्रम्) मेघ को वैसे (बृहते) बड़े (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये शत्रुओं को (हनति) मारता है और (वः) तुम्हारे लिये (ब्रह्म) धन वा अन्न को प्राप्त करता है उसका तुम लोग (प्र, अर्चत) सत्कार करो ॥ ६६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो लोग मेघ को सूर्य के तुल्य शत्रुओं को मार के तुम्हारे लिये ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं उन का सत्कार तुम करो। सदा कृतज्ञ हो के कृतघ्नता को छोड़ के प्राप्त हुए महान् ऐश्वर्य को प्राप्त होओ ॥ ६६ ॥

अस्येत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः। महेन्द्रो देवता। स्वराड् सतोबृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परमात्मा की स्तुति करने योग्य है इस वि० ॥

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यꣳ शवो मदे सुतस्य विष्णवि। अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥ * इमा उ त्वा। यस्याऽयम्। अयꣳ सहस्रम्। ऊर्ध्व ऊ षु णः ॥ ९७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त राजा (विष्णवि) व्यापक परमात्मा में (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अस्य) इस संसार के (मदे) आनन्द के लिये (वृष्ण्यम्) पराक्रम (शवः) बल तथा जल को (अद्य) इस वर्त्तमान समय में (वावृधे) बढ़ाता है (अस्य) इस परमात्मा के (इत्) ही (महिमानम्) महिमा को (पूर्वथा) पूर्वज लोगों के तुल्य (आयवः) अपने कर्म फलों को प्राप्त होने वाले मनुष्य लोग (अनु, स्तुवन्ति) अनुकूल स्तुति करते हैं (तम्) उस की तुम लोग भी स्तुति करो ॥ ९७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो तुम लोग सर्वत्र व्यापक सब जगत् के उत्पादक सबों के आधार और उत्तम ऐश्वर्य के प्रापक ईश्वर की आज्ञा और महिमा को जान के सब संसार का उपकार करो तो तुम को निरन्तर आनन्द प्राप्त होवे ॥ ९७ ॥

इस अध्याय में अग्नि, प्राण, उदान, दिन, रात, सूर्य, अग्नि, राजा, ऐश्वर्य, उत्तम यान, विद्वान्, लक्ष्मी, वैश्वानर, ईश्वर, इन्द्र, बुद्धि, वरुण, अश्वि, अन्न, सूर्य, राजप्रजा, परीक्षक, इन्द्र और वायु आदि पदार्थों के गुणों का वर्णन है इस से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तेंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* यहां इन चार (अ० ३३। मं० ८१—८३ तथा अ० ११। मं० ४२ क्रम से पूर्व आचुके) मन्त्रों की प्रतीकें कर्मकाण्ड विशेष में कार्य्य के लिये रक्खी हैं ॥

ओ३म् ॥

अथ चतुस्त्रिंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

यज्जाग्रत इत्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब मन को वश करने का वि० ॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा राजन् ! आप की कृपा से (यत्) जो (दैवम्) आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन (दूरंगमम्) दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला (ज्योतिषाम्) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को (ज्योतिः) प्रवृत करने हारा (एकम्) एक (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरम्) दूर २ (उत्, एति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुए का (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) सङ्कल्प विकल्पात्मक मन (शिवसंकल्पम्) कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का सेवन और विद्वानों का सङ्ग करके अनेक विध सामर्थ्ययुक्त मन को शुद्ध करते हैं जो जागृतावस्था में विस्तृत व्यवहार वाला वही मन सुषुप्ति अवस्था में शान्त होता है। जो वेग वाले पदार्थों में अतिवेगवान् ज्ञान के साधन होने से इन्द्रियों के प्रवर्त्तक मन को वश में करते हैं वे अशुभ व्यवहार को छोड़ शुभ व्यवहार में मन को प्रवृत्त कर सके हैं ॥ १ ॥

येन कर्माणीत्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः । मनो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वन्! जब आप के संग से (येन) जिस (अपसः) सदा कर्म धर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्निहोत्रादि वा धर्मसंयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान संबन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुणकर्मस्वभाव वाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिवसंकल्पम्) धर्मेष्ट (अस्तु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना सुन्दर विचार विद्या और सत्संग से अपने अन्तःकरण को अधर्माचरण से निवृत्त कर धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें ॥ २ ॥

यत्प्रज्ञानमित्यस्य शिवसंकल्प ऋषिः। मनो देवता। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वन्! आपके जताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्यस्वरूप (च) और लज्जादि कर्मों का हेतु (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशकस्वरूप (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधनरूप मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है उसको न्याय और सत्य आचरण में प्रवृत्त कर पक्षपात अन्याय और अधर्माचरण से तुम लोग निवृत्त करो ॥ ३ ॥

येनेदमित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (येन) जिस (अमृतेन) नाशरहित परमात्मा के साथ युक्त होने वाले मन से (भूतम्) व्यतीत हुआ (भुवनम्) वर्त्तमान काल सम्बन्धी और (भविष्यत्) होने वाला (सर्वम्, इदम्) यह सब त्रिकालस्थ वस्तुमात्र (परिगृहीतम्) सब ओर से गृहीत होता अर्थात् जाना जाता है (येन) जिस से (सप्तहोता) सात मनुष्य होता वा पांच प्राण छठा जीवात्मा और अव्यक्त सातवां ये सात लेने देने वाले जिस में हों वह (यज्ञः) अग्निष्टोमादि वा विज्ञानरूप व्यवहार (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) योगयुक्त चित्त (शिवसङ्कल्पम्) मोक्षरूप सङ्कल्प वाला (अस्तु) होवे ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो चित्त योगाभ्यास के साधन और उपसाधनों से सिद्ध हुआ भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान तीनों काल का ज्ञाता सब सृष्टि का जानने वाला कर्म उपासना और ज्ञान का साधक है उस को सदा ही कल्याण में प्रिय करो ॥ ४ ॥

यस्मिन्नित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

फिर उसी वि० ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ५ ॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस मन में (रथनाभाविव, अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद (प्रतिष्ठिता) सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिस में अथर्ववेद स्थित है (यस्मिन्) जिस में (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थसम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोगों को चाहिये जिस मन के स्वस्थ रहने में ही वेदादि विद्याओं का आधार और जिस में सब व्यवहारों का ज्ञान एकत्र होता है उस अन्तःकरण को विद्या और धर्म के आचरण से पवित्र करो ॥ ५ ॥

सुषारथिरित्यस्य शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

पदार्थः—(यत्) जो मन (सुषारथिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि गाड़ीवान् (अश्वानिव) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र २ इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः) वेग वाले घोड़ों को सारथि वश में करता वैसे नियम में रखता (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेगवान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) मंगलमय नियम में इष्ट (अस्तु) होवे ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालं०—जो मनुष्य जिस पदार्थ में आसक्त है वही बल से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे प्राणियों को ले जाता और लगाम से सारथि घोड़ों को जैसे वैसे वश में रखता, सब मूर्खजन जिस के अनुकूल वर्त्तते और विद्वान् अपने वश में करते हैं जो शुद्ध हुआ सुखकारी और अशुद्ध हुआ दुःखदायी जो जीता हुआ सिद्धि को और न जीता हुआ असिद्धि को देता है वह मन मनुष्यों को अपने वश में रखना चाहिये ॥ ६ ॥

पितुमित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अन्नं देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य शत्रुओं को जीत सकता है इस वि० ॥

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ७ ॥

पदार्थः—मैं (यस्य) जिसके (पितुम्) अन्न (महः) महान् (धर्माणम्) पक्षपातरहित न्यायाचरणरूप धर्म और (तविषीम्) बलयुक्त सेना को (नु) शीघ्र (स्तोषम्) स्तुति करता हूं वह राजपुरुष (त्रितः) तीनों काल में जैसे सूर्य्य (ओजसा) जल के साथ वर्त्तमान (विपर्वम्) जिस की बादल रूप गांठ भिन्न २ हों उस (वृत्रम्) मेघ को (वि, अर्दयत्) विशेष कर नष्ट करता है वैसे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिसने सत्यधर्म, बलवती सेना और पुष्कल अन्नादि सामग्री धारण की है वह जैसे सूर्य मेघ को वैसे शत्रुओं को जीत सकता है ॥ ७ ॥

अन्विदित्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शञ्च नस्कृधि । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण आयूंषि तारिषः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे (अनुमते) अनुकूल बुद्धि वाले सभापति विद्वन्! (त्वम्) आप जिस को (शम्) सुखकारी (अनु, मन्यासै) अनुकूल मानो उस से युक्त (नः) हम को (कृधि) करो (क्रत्वे) बुद्धि (दक्षाय) बल वा चतुराई के लिये (नः) हम को (हिनु) बढ़ाओ (च) और (नः) हमारी (आयूंषि) अवस्थाओं को (इत्) निश्चय कर (प्र, तारिषः) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये ॥ ८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे स्वार्थ-सिद्धि के अर्थ प्रयत्न किया जाता वैसे अन्यार्थ में भी प्रयत्न करें जैसे आप अपने कल्याण की वृद्धि चाहते हैं वैसे औरों की भी चाहैं, इस प्रकार सब की पूर्ण अवस्था सिद्ध करें ॥ ८ ॥

अनु न इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । अनुमतिर्देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मर्यः ॥ ९ ॥

पदार्थः—जो (अनुमतिः) अनुकूल विज्ञानवाला जन (अद्य) आज (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे (यज्ञम्) सुख देने के साधनरूप व्यवहार को (अनु, मन्यताम्) अनुकूल माने यह (च) और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी वा अग्निविद्या का विद्वान् तुम दोनों (दाशुषे) दाता के लिये (मयः) सुखकारी (भवतम्) होओ ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्कर्मों के अनुष्ठान में अनुमति देने और दुष्टकर्मों के अनुष्ठान का निषेध करने वाले हैं वे अग्नि आदि की विद्या से सब के लिये सुख देवें ॥ ९ ॥

सिनीवालीत्यस्य गृत्समद ऋषिः । सिनीवाली देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अथ विदुषी कुमारी क्या करें इस वि० ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा। जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (सिनीवालि) प्रेमयुक्त बल करने हारी (पृथुष्टुके) जिस की विस्तृत स्तुति, सिर के बाल वा कामना हो ऐसी (देवि) विदुषी कुमारी (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों की (स्वसा) बहिन (असि) है तो (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (आहुतम्) अच्छे प्रकार वर दीक्षादि कर्मों से स्वीकार किये पति का (जुषस्व) सेवन कर और (नः) हमारे लिये (प्रजाम्) सुन्दर सन्तानरूप प्रजा को (दिदिड्ढि) दे ॥ १० ॥

भावार्थः—हे कुमारियो ! तुम ब्रह्मचर्य्य आश्रम के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त हो युवति होके अपने को अभीष्ट स्वयं परीक्षा किये वरने योग्य पतियों को प्राप्त करो उन पतियों के साथ आनन्द कर प्रजा पुत्रादि को उत्पन्न किया करो ॥ १० ॥

पञ्चेत्यस्य गृत्समद ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ ११ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि (सस्रोतसः) एक मनरूप प्रवाहों वाली (पञ्च) पांच (नद्यः) नदी के तुल्य प्रवाहरूप ज्ञानेन्द्रियों की वृत्ति जिस (सरस्वतीम्) प्रशस्त विज्ञानयुक्त वाणी को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं (सा, उ) वह भी (सरित्) चलने वाली (सरस्वती) वाणी (देशे) अपने निवासस्थान में (पञ्चधा) पांच ज्ञानेन्द्रियों के शब्दादि पांच विषयों का प्रतिपादन करने से पांच प्रकार की (तु) ही (अभवत्) होती है ऐसा जानें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जो वाणी पांच शब्दादि विषयों के आश्रित हुई नदी के तुल्य प्रवाहयुक्त वर्त्तमान है उस को जानके यथावत् प्रचार कर मधुरतादि से प्रयुक्त करें ॥ ११ ॥

त्वमग्न इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ मनुष्यों को ईश्वराज्ञा पालनी चाहिये इस वि० ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ । तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सो॒ऽजाय॑न्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् ! जिस कारण (त्वम्) आप (प्रथमः) प्रख्यात (अङ्गिराः) अवयवों के सारभूत रस के तुल्य वा जीवात्माओं को सुख देने वाले (देवानाम्) विद्वानों के बीच (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (शिवः) कल्याणकारी (सखा) मित्र (ऋषिः) ज्ञानी (अभवः) होवें इस से (तव) आप के (व्रते) स्वभाव वा नियम में (विद्मनापसः) प्रसिद्ध कर्मों वाले (भ्राजदृष्टयः) सुन्दर हथियारों से युक्त (कवयः) बुद्धिमान् (मरुतः) मनुष्य (अजायन्त) प्रकट होते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थः—यदि मनुष्य सब के मित्र विद्वान् जन और सब के हितैषी परमात्मा को मित्र मान विज्ञान के निमित्त कर्मों को कर प्रकाशित आत्मावाले हों तो वे विद्वान् होकर परमेश्वर की आज्ञा में वर्त्त सकें ॥ १२ ॥

त्वम इत्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

राजा और ईश्वर की कैसी सेवा करनी चाहिये इस वि० ॥

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य । त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषꣳ॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (देव) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त (अग्ने) राजन् वा ईश्वर (तव) आपके (व्रते) उत्तम नियम में वर्त्तमान (मघोनः) बहुत धनयुक्त हम लोगों को (तव) आपके (पायुभिः) रक्षादि के हेतु कर्म्मों से (त्वम्) आप (रक्ष) रक्षा कीजिये (च) और (नः) हमारे (तन्वः) शरीरों की रक्षा कीजिये । हे (वन्द्य) स्तुति के योग्य भगवन् ! जिस कारण आप (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रक्षा करते हुए (तोकस्य) सन्तान पुत्र (तनये) पौत्र और (गवाम्) गो आदि के (त्राता) रक्षक (असि) हैं इसलिये हम लोगों को सर्वदा सत्कार और उपासना के योग्य हैं ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालं०—जो मनुष्य ईश्वर के गुणकर्म स्वभावों और आज्ञा की अनुकूलता में वर्त्तमान हैं और जिन की ईश्वर और विद्वान् लोग निरन्तर रक्षा करने वाले हैं वे लक्ष्मी दीर्घावस्था और सन्तानों से रहित कभी नहीं होते ॥ १३ ॥

उत्तानायामित्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर विद्वान् क्या करें इस वि० ॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान । अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! आप जैसे (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (प्रवीता) कामना करने हारा विद्वान् जन (उत्तानायाम्) उत्कर्षता के साथ विस्तीर्ण भूमि वा अन्तरिक्ष में (वृषणम्) वर्षा के हेतु यज्ञ को (जजान) प्रकट करता और (अरुषस्तूपः) रक्षक लोगों की उन्नति करने वाला (इडायाः) प्रशंसित स्त्री का (पुत्रः) पुत्र (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) प्रसिद्ध होता और (अस्य) इस का (रुशत्) सुन्दर रूपयुक्त (पाजः) बल प्रसिद्ध होता है वैसे (सद्यः) शीघ्र (अव, भर) अपनी ओर पुष्ट कर ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि मनुष्य इस सृष्टि में ब्रह्मचर्य आदि के सेवन से कन्या पुत्रों को द्विज करें तो वे शीघ्र विद्वान् हो जावें ॥ १४ ॥

इडाया इत्यस्य देवश्रवदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा मनुष्य राज्य के अधिकार पर स्थापित करने योग्य है इस वि० ॥

इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि । जातवेदो निधीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्पन्न बुद्धिवाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन् ! (वयम्) अध्यापक तथा उपदेशक हम लोग (इडायाः) प्रशंसित वाणी की (पदे) व्यवस्था तथा (पृथिव्याः) विस्तृत भूमि के (अधि) ऊपर (नाभा) मध्यभाग में (त्वा) आपको (हव्याय) देने योग्य पदार्थों को (वोढवे) प्राप्त करने वा कराने के लिये (नि, धीमहि) निरन्तर स्थापित करते हैं ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे विद्वन् राजन् ! जिस अधिकार में आप को हम लोग स्थापित करें उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये ॥ १५ ॥

प्रमन्मह इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को विद्या और धर्म बढ़ाने चाहियें इस वि० ॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (सुवृक्तिभिः) निर्दोष क्रियाओं से (शवसानाय) विज्ञान के अर्थ (गिर्वणसे) सुशिक्षित वाणियों से युक्त (ऋग्मियाय) ऋचाओं को पढ़ने वाले (विश्रुताय) विशेष कर जिस में गुण सुने जावें (स्तुवते) शास्त्र के अभिप्रायों को कहने (नरे) नायक मनुष्य के लिये (आङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (आङ्गूषम्) विद्या शास्त्र के बोधरूप (शूषम्) बल को (प्र, मन्महे) चाहते हैं और इस (प्रकर्म) पूजनीय पुरुष का (अर्चाम) सत्कार करें वैसे इस विद्वान् के प्रति तुम लोग भी वर्त्तो ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म्म को निरन्तर बढ़ाया करें ॥ १६ ॥

अथ इत्यस्य नोधा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कौन पितर लोग हैं इस वि० ॥

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्य॑ꣳ शवसा॒नाय॒ साम॑ । येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पदज्ञाः) जानने वा प्राप्त होने योग्य आत्मस्वरूप को जानने वाले (नः) हमारा (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (अङ्गिरसः) सब सृष्टि की विद्या के अवयवों को जानने वाले (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) रक्षक ज्ञानी लोग (येन) जिस से (महे) बड़े (शवसानाय) ब्रह्मचर्य और उत्तम शिक्षा से शरीर और आत्मा के बल से युक्त जन और (वः) तुम लोगों के अर्थ (आङ्गूष्यम्) सत्कार वा बल के लिये उपयोगी (साम) सामवेद और (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अविन्दन्) प्राप्त करावें उसी से उन के लिये तुम लोग (महि) महत्सत्कार के लिये (नमः) उत्तम कर्म वा अन्न को (प्र,भरध्वम्) धारण करो ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग तुम को विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा करें उन्हीं प्रथमपठित लोगों को तुम पितर जानो ॥ १७ ॥

इच्छन्तीत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । इन्द्रो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आप्त का लक्षण कहते हैं ॥

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभाध्यक्ष राजन्! जो (सोम्यासः) ऐश्वर्य होने में उत्तम स्वभाव वाले (सखायः) मित्र हुए (सोमम्) ऐश्वर्यादि को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयांसि) चाहने योग्य विज्ञानादि गुणों को (दधति) धारण करते और (जनानाम्) मनुष्यों के (अभिशस्तिम्) दुर्वचन वाद विवाद को (आ, तितिक्षन्ते) अच्छे प्रकार सहते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिये (हि) जिस कारण (त्वत्) आप से (प्रकेतः) उत्तम बुद्धिमान् (कः, चन) कोई भी नहीं है इस से (त्वा) आप को सब लोग (इच्छन्ति) चाहते हैं ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस संसार में निन्दा स्तुति और हानि लाभादि को सहने वाले पुरुषार्थी सब के साथ मित्रता का आचरण करते हुए प्राप्त हों वे सब को सेवने और सत्कार करने योग्य हैं तथा वे ही सब के अध्यापक और उपदेशक होवें ॥ १८ ॥

न त इत्यस्य देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी। इन्द्रो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर सभाध्यक्ष राजा क्या करे इस वि० ॥

न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्। स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥१९॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशस्त घोड़ों वाले राजन्! जैसे (समिधाने) प्रदीप्त किये हुए (अग्नौ) अग्नि में (इमा, सवना) ये प्रातःसवनादि यज्ञकर्म (कृता) किये जाते हैं (तु) इसी हेतु से (ग्रावाणः) गर्जना करने वाले मेघ (युक्ताः) इकट्ठे होके आते हैं वैसे (स्थिराय) दृढ़ (वृष्णे) सुखदायी विद्यादि पदार्थ के लिये (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण के वेगरूप गुणों से युक्त घोड़ों वा जल और अग्नि से (आ, प्र, याहि) अच्छे प्रकार आइये। इस प्रकार करने से (परमा) दूरस्थ (चित्) भी (रजांसि) स्थान (ते) आप के (दूरे) दूर (न) नहीं होते हैं ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वान् लोगो! जैसे अग्नि से उत्पन्न किये हुए वर्षा के मेघ पृथिवी के समीप होते आकर्षण से दूर भी जाते हैं वैसे अग्नि के

यानों से गमन करने में कोई देश दूर नहीं होता इस प्रकार पुरुषार्थ करके सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को उत्पन्न करो ॥ १९ ॥

अषाढमित्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्म वि० ॥

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रि॑ꣳ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् । भ॒रे॒षु॒जाꣳ सु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (सोम) समस्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् वा सेनापते ! हम लोग जिन (युत्सु) युद्धों में (अषाढम्) असह्य (पृतनासु) मनुष्य की सेनाओं में (पप्रिम्) पूर्ण बल विद्यायुक्त वा रक्षक (स्वर्षाम्) सुख का सेवन करने वा (अप्साम्) जलों वा प्राणों को देने वाले (वृजनस्य) बल के (गोपाम्) रक्षक (भरेषुजाम्) धारण करने योग्य संग्रामों में जीतने वाले (सुक्षितिम्) पृथिवी के सुन्दर राज्य वाले (सुश्रवसम्) सुन्दर अन्न वा कीर्त्तियों से युक्त (जयन्तम्) शत्रुओं को जीतने वाले (त्वाम्) आपको (अनु, मदेम) अनुमोदित करें ॥ २० ॥

भावार्थः—जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजापुरुष प्रसन्न रहें और जिन की प्रसन्नता में राजा प्रसन्न हो वहां दृढ़ विजय उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होती है ॥ २० ॥

सोम इत्यस्य गोतम ऋषिः । सोमो देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सोमो॑ धे॒नुꣳ सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुꣳ सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॒ ददाति । सा॒द॒न्यं॒ वि॒द॒थ्यꣳ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥ २१ ॥

पदार्थः—जो प्रजास्थ मनुष्य (अस्मै) इस धर्मिष्ठ राजा वा अध्यापक वा उपदेशक के लिये उचित पदार्थ (ददाशत्) देता है उस के लिये (सोमः) ऐश्वर्ययुक्त उक्त पुरुष (धेनुम्) विद्या की आधाररूप वाणी को (ददाति) देता (सोमः) सत्याचरण में प्रेरणा करने हारा राजादि जन (अर्वन्तम्) वेग से चलने वाले तथा (आशुम्) मार्ग को शीघ्र व्याप्त होने वाले घोड़े को देता और (सोमः) शरीर तथा आत्मा के बल से युक्त राजादि (कर्मण्यम्) कर्मों से युक्त पुरुषार्थी (सादन्यम्) बैठाने आदि में प्रवीण (विदथ्यम्) यज्ञ करने में कुशल (पितृश्रवणम्) आचार्य पिता से विद्या पढ़ने वाले (सभेयम्) सभा में बैठने योग्य (वीरम्) शत्रुओं के बलों को व्याप्त होने वाले शूरवीर पुरुष को देता है ॥ २१ ॥

१४१

भावार्थः—जो अध्यापक उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी, अग्नि आदि की तत्त्वविद्या पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सब के लिये देवें वे सब को सत्कार करने योग्य हों ॥ २१ ॥

त्वमित्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

त्वमि॒मा ओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो अ॑जनय॒स्त्वं गाः। त्वमा त॑तन्थो॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे (सोम) उत्तम सोमवल्ली ओषधियों के तुल्य रोगनाशक राजन्! (त्वम्) आप (इमाः) इन (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों को (त्वम्) आप सूर्य के तुल्य (अपः) जलों वा कर्म को और (त्वम्) आप (गाः) पृथिवी वा गौओं को (अजनयः) उत्पन्न वा प्रकट कीजिये (त्वम्) आप सूर्य के समान (उरु) बहुत अवकाश को (आ, ततन्थ) विस्तृत करते तथा (त्वम्) आप सूर्य जैसे (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकार को दवाता वैसे न्याय से अन्याय को (वि, ववर्थ) आच्छादित वा निवृत्त कीजिये, सो आप हम को माननीय हैं ॥ २२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगों को वैसे दुःखों को हर लेते हैं प्राणों के तुल्य बलों को प्रकट करते तथा जो राजपुरुष सूर्य रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करते हैं वे जगत् के पूज्य क्यों नहीं हों? ॥ २२ ॥

देवेनेत्यस्य गोतम ऋषिः। सोमो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दे॒वेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गꣳ स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य। मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) अधिकतर सेनादि बल वाले (सोम) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के प्रापक (देव) दिव्य गुणों से युक्त राजन्! जो आप (देवेन) उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त (मनसा) मन से (रायः) धन के (भागम्) अंश को (नः) हमारे लिये (अभि, युध्य) सब ओर से प्राप्त कीजिये जिस से आप (वीर्यस्य) वीर कर्म करने को (ईशिषे) समर्थ होते हो इस से (त्वा) आप को कोई (मा) न (आ, तनत्) दबावे सो आप (गविष्टौ) सुख विशेष की इच्छा के होते (उभयेभ्यः) दोनों इस लोक परलोक के

सुखों के लिये (प्र, चिकित्स) रोग-निवारण के तुल्य विघ्न निवृत्ति के उपाय को किया कीजिये ॥ २३ ॥

भावार्थः—राजादि विद्वानों को चाहिये कि कपटादि दोषों को छोड़ शुद्ध भाव से सब के लिये सुख की चाहना करके पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति तथा सुख की वृद्धि इस लोक परलोक में हो उस के करने में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ २३ ॥

अष्टावित्यस्याऽऽङ्गिरसो हिरण्यस्तूपऋषिः । सविता देवता । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सूर्य क्या करता है इस वि० ॥

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न् । हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (हिरण्याक्षः) नेत्र के समान रूप दर्शाने वाली ज्योतियों वाला (देवः) प्रेरक (सविता) सूर्य (दाशुषे) दानशील प्राणियों के लिये (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (रत्ना) पृथिवी के उत्तम पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ (त्री) तीन (धन्व) अवकाशरूप (योजना) अर्थात् बारह कोश और (सप्त) सात (सिन्धून्) पृथिवी के समुद्र से लेके मेघ के ऊपरले अवयवों पर्यन्त समुद्रों को तथा (पृथिव्याः) पृथिवी-सम्बन्धिनी (अष्टौ) आठ (ककुभः) दिशाओं को (वि, अख्यत्) प्रसिद्ध प्रकाशित करता है वैसे ही तुम लोग होओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से पृथिवी तक १२ कोश पर्य्यन्त हलके भारीपन से युक्त सात प्रकार के जल के अवयव और दिशा विभक्त होती तथा वर्षादि से सब को सुख दिया जाता वैसे शुभ गुण कर्म और स्वभावों से दिशाओं में कीर्त्ति फैला के अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को देने से मनुष्यादि प्राणियों को निरन्तर सुखी करो ॥ २४ ॥

हिरण्यपाणिरित्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते । अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्‌ृ॑णोति ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हिरण्यपाणिः) हाथों के तुल्य जलादि के ग्राहक प्रकाशरूप किरणों से युक्त (विचर्षणिः) विशेष कर सब को दिखाने वाला (सविता) सब पदार्थों की उत्पत्ति का हेतु (सूर्य्यम्) सूर्य्यलोक जब (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) आकाश भूमि के (अन्तः) बीच (ईयते) उदय होकर घूमता है तब (अमीवाम्) व्याधिरूप अन्धकार को (अप, बाधते) दूर करता और जब (वेति) अस्त समय को प्राप्त होता तब (कृष्णेन) (रजसा) काले अन्धकाररूप से (द्याम्) आकाश को (अभि, ऋणोति) सब ओर से व्याप्त होता है उस सूर्य्य को तुम लोग जानो ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपने समीपवर्त्ती लोकों का आकर्षण कर धारण करता है वैसे ही अनेक लोकों से शोभायमान सूर्यादि सब जगत् को सब ओर से व्याप्त हो और आकर्षण करके ईश्वर धारण करता है ऐसा जानो क्योंकि ईश्वर के विना सब का स्रष्टा तथा धर्त्ता अन्य कोई भी नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

हिरण्यहस्त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

हिर॑ण्यहस्तो॒ असु॑रः सुनी॒थः सु॑मृडी॒कः स्ववाँ॑ यात्व॒र्वाङ् । अ॒प॒सेध॑न्र॒क्षसो॑ यातु॒धाना॒नस्था॑द्दे॒वः प्र॑तिदो॒षं गृ॑णा॒नः ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (हिरण्यहस्तः) हाथों के तुल्य प्रकाशों वाला (सुनीथः) सुन्दर प्रकार प्राप्ति कराने (असुरः) जलादि को फेंकने वाला (सुमृडीकः) सुन्दर सुखकारी (स्ववान्) अपने प्रकाशादि के गुणों से युक्त (देवः) प्रकाशक सूर्यलोक (यातुधानान्) अन्याय से दूसरों के पदार्थों के धारण करने वाले (रक्षसः) डाकू चोर आदि को (अपसेधन्) निवृत्त करता अर्थात् डाकू चोर आदि सूर्योदय होने पर अपना काम नहीं बना सकते किन्तु प्रायः रात्रि को ही अपना काम बनाते हैं और (प्रतिदोषम्) मनुष्यों के प्रति जो दोष उसको (गृणानः) प्रकट करता हुआ (अस्थात्) उदित होता है वह (अर्वाङ्) अपने समीपवर्त्ती पदार्थों को प्राप्त होने वाला हमारे सुख के अर्थ (यातु) प्राप्त होवे वैसे तुम होओ ॥ २६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! मांगने वालों के लिये उदारता से सुवर्णादि दे तथा दुष्टाचारियों का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य के तुल्य प्रशंसित होओ ॥२६॥

ये त इत्यस्याङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः। सविता देवता। विराट् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ अध्यापक और उपदेशक वि० ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे। तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे (सवितः) सूर्य के तुल्य ऐश्वर्य देने वाले (देव) विद्या और सुख के दाता आप्त विद्वान् पुरुष ! जिस (ते) आप के जैसे सूर्य के (अन्तरिक्षे) आकाश में गमन के शुद्ध मार्ग हैं वैसे (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्वज आप्तजनों ने सेवन किये (अरेणवः) धूलि आदि रहित (सुकृताः) सुन्दर सिद्ध किये (पन्थाः) मार्ग हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुखपूर्वक जिन में चलें ऐसे (पथिभिः) मार्गों से (अद्य) आज (नः) हम लोगों को चलाइये उन मार्गों से चलते हुए हमारी (रक्ष) रक्षा (च) भी कीजिये (च) तथा (नः) हम को (अधि, ब्रूहि) अधिकतर उपदेश कीजिये इसी प्रकार सब को चेतन कीजिये ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! तुम को चाहिये कि जैसे सूर्य के आकाश में निर्मल मार्ग हैं वैसे ही उपदेश और अध्यापन से विद्या धर्म और सुशीलता के दाता मार्गों का प्रचार करें ॥ २७ ॥

उभेत्यस्य प्रस्कण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा के तुल्य अध्यापक उपदेशको ! (उभा) दोनों तुम लोग जिस जगह पर उत्तम रस को (पिबतम्) पियो उस (शर्म) उत्तम आश्रय स्थान वा सुख को (उभा) दोनों तुम (अविद्रियाभिः) छिद्ररहित (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से रक्षित घर को (नः) हमारे लिये (यच्छतम्) देओ ॥ २८ ॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि सदा उत्तम घर बनाने के और निवास के उपदेशों को कर जहां पूर्ण रक्षा हो उस विषय में सब को प्रेरणा करें ॥२८॥

अप्नस्वतीमित्यस्य कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। विराट् त्रिष्टुप् छन्दः।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् । अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २९ ॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख के नाशक (वृषणा) सुख के वर्षाने वाले (अश्विना) सब विद्याओं में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों (अस्मे) हमारी (वाचम्) वाणी (च) और (मनीषाम्) बुद्धि को (अप्नस्वतीम्) प्रशस्त कर्मों वाली (कृतम्) करो (नः) हमारे (अद्यूत्ये) द्यूतरहित स्थान में हुए कर्म में (अवसे) रक्षा के लिये स्थित करो (वाजसातौ) धन का विभाग करने हारे संग्राम में (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भवतम्) उद्यत होओ जिन (वाम्) तुम्हारी (नि,ह्वये) निरन्तर स्तुति करता हूं वे दोनों आप मेरी उन्नति करो ॥ २९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य निष्कपट आप्त दयालु विद्वानों का निरन्तर सेवन करते हैं वे प्रगल्भ धार्मिक विद्वान् होके सब ओर से बढ़ते और विनयी होते हुए सब के लिये सुखदायी होते हैं ॥ २९ ॥

द्युभिरित्यस्य कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सभासेनाधीश क्या करें इस वि० ॥

द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३० ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सभासेनाधीशो ! जैसे (अदितिः) पृथिवी (सिन्धुः) सात प्रकार का समुद्र (पृथिवी) आकाश (उत) और (द्यौः) प्रकाश (तत्) वे (नः) हमारा (मामहन्ताम्) सत्कार करें वैसे (मित्रः) मित्र तथा (वरुणः) दुष्टों को बांधने वा रोकने वाले तुम दोनों (द्युभिः) दिन (अक्तुभिः) रात्रि (अरिष्टेभिः) अहिंसित (सौभगेभिः) श्रेष्ठ धनों के होने से (अस्मान्) हमारी (परि, पातम्) सब ओर से रक्षा करो ॥ ३० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदि तत्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे ही बढ़े हुए ऐश्वर्यों से दिन रात सब मनुष्यों को बढ़ावें ॥ ३० ॥

आकृष्णेनेत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । सूर्यो देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब विद्युत् से क्या सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जो (आ, कृष्णेन) आकर्षित हुए (रजसा) लोकसमूह के साथ (वर्त्तमानः) वर्त्तमान निरन्तर (अमृतम्) नाशरहित कारण (च) और (मर्त्यम्) नाशसहित कार्य्य को (निवेशयन्) अपनी २ कक्षा में स्थित करता हुआ (हिरण्ययेन) तेजःस्वरूप (रथेन) रमणीयस्वरूप के सहित (सविता) ऐश्वर्य का दाता (देवः) देदीप्यमान विद्युत्रूप अग्नि (भुवनानि) संसारस्थ वस्तुओं को (याति) प्राप्त होता है उस को (पश्यन्) देखते हुए सम्यक् प्रयुक्त कीजिये ॥ ३१ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुली कार्य और कारण को सम्यक् प्रकाशित कर सर्वत्र अभिव्याप्त तेजः स्वरूप शीघ्रगामिनी सब का आकर्षण करने वाली है उस को देखते हुए सम्यक् प्रयोग में अभीष्ट स्थानों को शीघ्र जाया करो ॥ ३१ ॥

आ रात्रीत्यस्य कुत्स ऋषिः । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ रात्रि का वर्णन अ० ॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदांꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (बृहती) बड़ी (रात्रि) रात (दिवः) प्रकाश के (सदांसि) स्थानों को (वि, तिष्ठसे) व्याप्त होती है, जिस रात्रि ने (पितुः) अपने तथा सूर्य के मध्यस्थ लोक के (धामभिः) सब स्थानों के साथ (पार्थिवम्) पृथिवी सम्बन्धी (रजः) लोक को (आ, अप्रायि) अच्छे प्रकार पूर्ण किया है और जिसका (त्वेषम्) अपनी कान्ति से बढ़ा हुआ (तमः) अन्धकार (आ) (वर्त्तते) आता जाता है उस का युक्ति के साथ सेवन करो ॥ ३२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पृथिव्यादि की छाया रात्रि में प्रकाश को रोकती अर्थात् सब का आवरण करती है उस का आप लोग यथावत् सेवन करें ॥ ३२ ॥

उष इत्यस्य गोतम ऋषिः । उषर्देवता । निचृत्परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उषःकाल का वर्णन अ० ॥

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ३३ ॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवति) बहुत अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त (उषः) प्रातः समय की वेला के तुल्य कान्ति सहित वर्तमान स्त्री ! जैसे अधिकतर अन्नादि ऐश्वर्य की हेतु प्रातःकाल की वेला जिस प्रकार के (चित्रम्) आश्चर्य स्वरूप को धारण करती (तत्) वैसे रूप को तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आ, भर) अच्छे प्रकार पुष्ट कर (येन) जिस से हम लोग (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक (च) और (तनयम्) कुमारावस्था के लड़के को (च) भी (धामहे) धारण करें ॥ ३३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जैसे सब शोभा से युक्त मंगल देने वाली प्रभात समय की वेला सब व्यवहारों का धारण करने वाली है यदि वैसी स्त्रियां हों तो ये सदा अपने २ पति को प्रसन्न कर पुत्र पौत्रादि के साथ आनन्द को प्राप्त होवें ॥ ३३ ॥

प्रातरित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्र॑ꣳ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ । प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रꣳ हु॑वेम ॥ ३४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (प्रातः) प्रातःकाल (अग्निम्) पवित्र वा स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा वा अग्नि को (प्रातः) प्रातः समय (इन्द्रम्) उत्तम ऐश्वर्य को (प्रातः) प्रभात समय (मित्रावरुणा) प्राण उदान को और (प्रातः) प्रभात समय (अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक को (हवामहे) ग्रहण करें वा बुलावें (प्रातः) प्रातः समय (भगम्) सेवन करने योग्य भाग (पूषणम्) पुष्टिकारक भोग (ब्रह्मणस्पतिम्) धन को वा वेद के रक्षक को (प्रातः) प्रभात समय (सोमम्) सोमादि ओषधिगण (उत) और (रुद्रम्) जीव को (हुवेम) ग्रहण वा स्वीकृत करें वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥ ३४ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रातःकाल परमेश्वर की उपासना, अग्निहोत्र, ऐश्वर्य की उन्नति का उपाय, प्राण और अपान की पुष्टि करना, अध्यापक उपदेशक विद्वानों तथा ओषधि का सेवन और जीवात्मा को प्राप्त होने वा जानने को प्रयत्न करते हैं वे सब सुखों से सुशोभित होते हैं ॥ ३४ ॥

प्रातर्जितमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्य लोग ऐश्वर्य्य का सम्पादन करें इस वि० ॥

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳहुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता। आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥ ३५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम लोग (प्रातः) प्रभात समय (यः) जो (विधर्त्ता) विविध पदार्थों को धारण करने हारा (आध्रः) न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र (चित्) भी (यम्) जिस ऐश्वर्य को (मन्यमानः) विशेष कर जानता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (चित्) भी (राजा) शोभायुक्त राजा है (यम्) जिस (भगम्) ऐश्वर्य को (चित्) भी (भक्षि, इति, आह) तू सेवन कर इस प्रकार ईश्वर उपदेश करता है उस (अदितेः) अविनाशी कारण के समान माता के (पुत्रम्) पुत्र रक्षक (जितम्) अपने पुरुषार्थ से प्राप्त (उग्रम्) उत्कृष्ट (भगम्) ऐश्वर्य को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे तुम लोग स्वीकार करो ॥ ३५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! तुम लोगों को सदा प्रातःकाल से लेकर सांते समय तक यथाशक्ति सामर्थ्य से विद्या और पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति कर आनन्द भोगना और दरिद्रों के लिये सुख देना चाहिये यह ईश्वर ने कहा है ॥ ३५ ॥

भग इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः। भगवान् देवता। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अथ ईश्वर की प्रार्थना आदि वि० ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे (भग) ऐश्वर्ययुक्त! (प्रणेतः) पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर वा हे (भग) ऐश्वर्य के दाता! (सत्यराधः) विद्यमान पदार्थों में उत्तम धनों वाले (भग) सेवने योग्य विद्वान् आप (नः) हमारी (इमाम्) इस वर्त्तमान (धियम्) बुद्धि को (ददत्) देते हुए (उत्, अव) उत्कृष्टता से रक्षा कीजिये। हे (भग) विद्यारूप ऐश्वर्य के दाता ईश्वर वा विद्वान्! आप (गोभिः) गौ आदि पशुओं (अश्वैः) घोड़े आदि सवारियों और (नृभिः) नायककुल-निर्वाहक मनुष्यों के साथ (नः) हम को (प्र, जनय) प्रकट कीजिये। हे (भग) सेवा करते हुए विद्वान् जिससे हम लोग (नृवन्तः) प्रशस्त मनुष्यों वाले (प्रस्याम) अच्छे प्रकार हों वैसे कीजिये ॥ ३६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जब २ ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का सङ्ग करें तब २ बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें ॥ ३६ ॥

१४२

उतेदानीमित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ऐश्वर्य की उन्नति का वि० ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानाᳬ सुमतौ स्याम ॥ ३७ ॥

पदार्थः—हे (मघवन्) उत्तम धनयुक्त ईश्वर वा विद्वन्! (वयम्) हम लोग (इदानीम्) वर्त्तमान समय में (उत) और (प्रपित्वे) पदार्थों की प्राप्ति में (उत) और भविष्यत् काल में (उत) और (अह्नाम्) दिनों में (मध्ये) बीच (भगवन्तः) (स्याम) समस्त ऐश्वर्य से युक्त हों (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय समय तथा (देवानाम्) विद्वानों की (सुमतौ) उत्तम बुद्धि में समस्त ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वर्त्तमान और भविष्यत् काल में योग के ऐश्वर्यों की उन्नति से लौकिक व्यवहार के बढ़ाने और प्रशंसा में निरन्तर प्रयत्न करें ॥ ३७ ॥

भग इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । भगवान् देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

भग एव भगवाँ२॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥ ३८ ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो! जो (भगः, एव) सेवनीय ही (भगवान्) प्रशस्त ऐश्वर्य्ययुक्त (अस्तु) होवे (तेन) उस ऐश्वर्य्यरूप ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के साथ (वयम्) हम लोग (भगवन्तः) समग्र शोभायुक्त (स्याम) होवें । हे (भग) संपूर्ण शोभायुक्त ईश्वर! (तम्, त्वा) उन आप को (सर्वः, इत्) समस्त ही जन (जोहवीति) शीघ्र पुकारता है । हे (भग) सकल ऐश्वर्य के दाता! (सः) सो आप (इह) इस जगत् में (नः) हमारे (पुर, एता) अग्रगामी (भव) हूजिये ॥ ३८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! तुम लोग जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है उसके और जो उस के उपासक विद्वान् हैं उन के साथ सिद्ध तथा श्रीमान् होओ, जो जगदीश्वर माता पिता के समान हम पर कृपा करता है उसकी भक्तिपूर्वक इस संसार में मनुष्यों को ऐश्वर्य वाले निरन्तर किया करो ॥ ३८ ॥

समध्वराय इत्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । भगो देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय । अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आवहन्तु ॥ ३६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (उषसः) प्रभात समय (दधिक्रावेव) अच्छे चलाये धारण करने वाले घोड़े के तुल्य (शुचये) पवित्र (पदाय) प्राप्त होने योग्य (अध्वराय) हिंसारूप अधर्मरहित व्यवहार के लिये (सम्, नमन्त) सम्यक् नमते अर्थात् प्रातः समय सत्य गुण की अधिकता से सब प्राणियों के चित्त शुद्ध नम्र होते हैं (अश्वा) शीघ्रगामी (वाजिनः) घोड़े जैसे (रथमिव) रमणीय यान को वैसे (नः) हम को (अर्वाचीनम्) इस समय के (वसुविदम्) अनेक प्रकार के धन-प्राप्ति के हेतु (भगम्), ऐश्वर्ययुक्त जन को प्राप्त करें वैसे इनको आप लोग (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार चलावें ॥ ३६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं०—जो मनुष्य प्रभात वेला के तुल्य विद्या और धर्म का प्रकाश करते और जैसे घोड़े यानों को, वैसे शीघ्र समस्त ऐश्वर्य को पहुंचाते हैं वे पवित्र विद्वान् जानने योग्य हैं ॥ ३६ ॥

अश्वावतीरित्यस्य वशिष्ठ ऋषिः । उषा देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

अब विदुषी स्त्रियां क्या करें इस वि० ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४० ॥

पदार्थः—हे विदुषी स्त्रियो ! जैसे (अश्वावतीः) प्रशस्त व्याप्तिशील जलों वाली (गोमतीः) बहुत किरणों से युक्त (वीरवतीः) बहुत वीर पुरुषों से संयुक्त (भद्राः) कल्याणकारिणी (घृतम्) शुद्ध जल को (दुहानाः) पूर्ण करती हुई (विश्वतः) सब ओर से (प्रपीताः) प्रकर्षता से बढ़ी हुई (उषासः) प्रभात वेला हमारी (सदम्) सभा को प्राप्त होतीं अर्थात् प्रकाशित वा प्रवृत्त करती हैं वैसे हमारी सभा को आप लोग (उच्छन्तु) समाप्त करो और (नः) हमारी (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता देने वाले सुखों से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥ ४० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रभात वेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने

वाली होती है वैसे विदुषी स्त्रियां कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ा के सदैव उन कन्याओं को आनन्दित किया करें ॥ ४० ॥

पूषन्नित्यस्य सुहोत्र ऋषिः । पूषा देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ ईश्वर और आप्तजन के सेवक कैसे होते हैं इस वि० ॥

पूषन्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न । स्तो॒तार॑स्त इ॒ह स्म॑सि ॥ ४१ ॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमेश्वर वा आप्तविद्वन् ! (वयम्) हम लोग (तव) आप के (व्रते) स्वभाव वा नियम में इस से वर्त्तें कि जिससे (कदा, चन) कभी भी (न) न (रिष्येम) चित्त बिगाड़ें (इह) इस जगत् में (ते) आप के (स्तोतारः) स्तुति करने वाले हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं ॥ ४१ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर के वा आप्त विद्वान् के गुणकर्मस्वभाव के अनुकूल वर्त्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते हैं ॥ ४१ ॥

पथस्पथइत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः । पूषा देवता । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो अ॒भ्या॑नड॒र्कम् । स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियं सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वचस्या) वचन और (कामेन) कामना करके (कृतः) सिद्ध (पूषा) पुष्टिकर्त्ता जगदीश्वर वा आप्त जन (शुरुधः) शीघ्र दुःखों को रोकने वाले (चन्द्राग्राः) प्रथम से ही आनन्दकारी साधनों को (नः) हमारे लिये (रासत्) देवे (धियंधियम्) प्रत्येक बुद्धि वा कर्म को (प्रसीषधाति) प्रकर्षता से सिद्ध करे (सः) वह शुभ गुण कर्म स्वभावों को (अभि, आनट्) सब ओर से व्याप्त होता उस (अर्कम्) पूजनीय (पथस्पथः) प्रत्येक मार्ग के (परिपतिम्) स्वामी की हम लोग स्तुति करें ॥४२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब के सुख के लिये वेद के प्रकाश की और आप्त पुरुष पढ़ाने की इच्छा करता जो सब के लिये श्रेष्ठ बुद्धि उत्तम कर्म और शिक्षा को देते हैं उन सब श्रेष्ठ मार्गों के स्वामियों का सदा सत्कार करना चाहिये ॥ ४२ ॥

त्रीणीत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ ईश्वर के विषय में० ॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अदाभ्यः) अहिंसा धर्म वाला होने से दयालु (गोपाः) रक्षक (विष्णुः) चराचर जगत् में व्याप्त परमेश्वर (धर्माणि) पुण्यरूप कर्मों वा धारक पृथिव्यादि को (धारयन्) धारण करता हुआ (अतः) इस कारण से (त्रीणि) तीन (पदा) जानने वा प्राप्त होने योग्य कारण सूक्ष्म और स्थूलरूप जगत् का (वि, चक्रमे) आक्रमण करता है वही हम लोगों को पूजनीय है ॥ ४३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया, सब को धारण किया और रक्षित किया है वही उपासना के योग्य इष्टदेव है ॥ ४३ ॥

तद्विप्रास इत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जागृवांसः) अविद्यारूप निद्रा से उठ के चेतन हुए (विपन्यवः) विशेष कर स्तुति करने योग्य वा ईश्वर की स्तुति करने हारे (विप्रासः) बुद्धिमान् योगी लोग (विष्णोः) सर्वत्र अभिव्यापक परमात्मा का (यत्) जो (परमम्) उत्तम (पदम्) प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है (तत्) उस को (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं उन के सङ्ग से तुम लोग भी वैसे होओ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—जो योगाभ्यासादि सत्कर्म करके शुद्ध मन और आत्मा वाले धार्मिक पुरुषार्थी जन हैं वे ही व्यापक परमेश्वर के स्वरूप को जानने और उस को प्राप्त होने योग्य होते हैं अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

घृतवतीत्यस्य भरद्वाज ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा । द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (वरुणस्य) सब से श्रेष्ठ जगदीश्वर के (धर्मणा) धारण करने रूप सामर्थ्य से (मधुदुघे) जल को पूर्ण करने वाली (सुपेशसा) सुन्दर रूप युक्त (पृथ्वी) विस्तारयुक्त (उर्वी) बहुत पदार्थों वाली (घृतवती) बहुत जल के परिवर्त्तन से युक्त (अजरे) अपने स्वरूप से नाशरहित (भूरिरेतसा) बहुत जलों से युक्त वा अनेक वीर्य वा पराक्रमों की हेतु (भुवनानाम्) लोक लोकान्तरों की (अभिश्रिया) सब ओर से शोभा करने वाली (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (विष्कभिते) विशेष कर धारण वा दृढ़ किये हैं उसी को उपासना के योग्य तुम लोग जानो ॥ ४५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को जिस परमेश्वर ने प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप दो प्रकार के जगत् को बना और धारण कर के पालित किया है वही सर्वदा उपासना के योग्य है ॥ ४५ ॥

येन इत्यस्य विहव्य ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्म वि० ॥

ये नः॑ स॒पत्ना॒ अप॒ ते भ॑वन्त्विन्द्रा॒ग्निभ्या॒मव॑ बाधामहे॒ तान् ।
वस॑वो रु॒द्रा आ॑दि॒त्या उ॑परि॒स्पृशं॑ मो॒ग्रं चे॒त्तार॑मधिरा॒जम॑क्रन् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रु लोग हों (ते) वे (अप, भवन्तु) दूर हों अर्थात् पराजय को प्राप्त हों जैसे (ताम्) उन शत्रुओं को हम (इन्द्राग्निभ्याम्) वायु और विद्युत् के शस्त्रों से (अव, बाधामहे) पीड़ित करें और जैसे (वसवः) पृथिवी आदि वसु (रुद्राः) दश प्राण ग्यारहवां आत्मा और (आदित्याः) बारह महीने (उपरिस्पृशम्) उच्च स्थान पर बैठने (उग्रम्) तेजस्वभाव और (चेत्तारम्) सत्यासत्य को यथावत् जानने वाले (मा) मुझ को (अधिराजम्) अधिपति स्वामी समर्थ (अक्रन्) करें वैसे उन शत्रुओं का तुम लोग निवारण और मेरा सत्कार करो ॥ ४६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस के अधिकार में पृथिवी आदि पदार्थ हों वही सब के ऊपर राजा होवे। जो राजा होवें वह शस्त्र अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे ॥ ४६ ॥

आनासत्येत्यस्य हिरण्यस्तूप ऋषिः । अश्विनौ देवते ।
जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ कौन जगत् के हितैषी हों इस वि० ॥

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतᳬ सेधतं द्वेषो भवतᳬ सचाभुवा ॥ ४७ ॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (अश्विना) राज्य और प्रजा के विद्वानो ! जैसे तुम (इह) इस जगत् में (त्रिभिः) (एकादशैः) तेंतीस (देवेभिः) उत्तम पृथिवी आदि (आठ वसु, प्राणादि ग्यारह रुद्र, बारह महीनें तथा बिजुली और यज्ञ) तेंतीस देवताओं के साथ (मधुपेयम्) गुणों से युक्त पीने योग्य ओषधियों के रस को (आ, यातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ वा उस के लिये आया करो (रपांसि) पापों को (मृक्षतम्) शुद्ध किया करो (द्वेषः) द्वेषादि दोषयुक्त प्राणियों का (निः, सेधतम्) खण्डन वा निवारण किया करो (सचाभुवा) सत्य पुरुषार्थ के साथ कार्यों में संयुक्त (भवतम्) होओ और (आयुः) जीवन को (प्र, तारिष्टम्) अच्छे प्रकार बढ़ाओ वैसे हम लोग होवें ॥ ४७ ॥

भावार्थः—वे ही लोग जगत् के हितैषी हैं जो पृथिवी आदि सृष्टि की विद्या को जान के दूसरों को ग्रहण करावें दोषों को दूर करें और अधिक काल जीवन के विधान का प्रचार किया करें ॥ ४७ ॥

एष व इत्यस्यागस्त्य ऋषिः । मरुतो देवता । पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य लोग क्या करें इस वि० ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मरण धर्म वाले मनुष्यो ! (मान्दार्यस्य) प्रशस्त कर्मों के सेवक उदारचित्त वाले (मान्यस्य) सत्कार के योग्य (कारोः) पुरुषार्थी कारीगर का (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा और (इयम्) यह (गीः) वाणी (वः) तुम्हारे लिये उपयोगी होवे तुम लोग (इषा) इच्छा वा अन्न के निमित्त से (वयाम्) अवस्था वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरादि की रक्षा के लिये (आ, यासीष्ट) अच्छे प्रकार प्राप्त हुआ करो और हम लोग (जीरदानुम्) जीवन के हेतु (इषम्) विज्ञान वा अन्न तथा (वृजनम्) दुःखों के वर्जने वाले बल को (विद्याम्) प्राप्त हों ॥ ४८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव प्रशंसनीय कर्मों का सेवन और शिल्पविद्या के विद्वानों का सत्कार करके जीवन बल और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥ ४८ ॥

सहस्तोमा इत्यस्य प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः । ऋषयो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अब ऋषि कौन होते हैं इस वि० ॥

सहस्तो॑माः सहछ॑न्दस आ॒वृतः॒ सहप्र॑मा॒ ऋष॑यः स॒प्त दैव्याः॑ ।
पूर्वे॑षां॒ पन्था॑मनु॒दृश्य॒ धीरा॑ अ॒न्वाले॑भिरे र॒थ्यो॒ न र॒श्मीन् ॥ ४९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सहस्तोमाः) प्रशंसाओं के साथ वर्त्तमान वा जिन की शास्त्रस्तुति एक साथ हो (सहछन्दसः) वेदादि का अध्ययन वा स्वतन्त्र सुखभोग जिन का साथ हो (आवृतः) ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्या पढ़ और गुरुकुल से निवृत्त हो के घर आये (सहप्रमाः) साथ ही जिन का प्रमाणादि यथार्थ ज्ञान हो (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (दैव्याः) उत्तम गुण कर्म स्वभावों में प्रवीण ध्यान वाले योगी (ऋषयः) वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता लोग (रथ्यः) सारथी (न) जैसे (रश्मीन्) लगाम की रस्सी को ग्रहण करता वैसे (पूर्वेषाम्) पूर्वज विद्वानों के (पन्थाम्) मार्ग को (अनु, दृश्य) अनुकूलता से देख के (अन्वालेभिरे) पश्चात् प्राप्त होते हैं । वैसे होकर तुम लोग भी आप्तों के मार्ग को प्राप्त होओ ॥ ४९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो रागद्वेषादि दोषों को दूर से छोड़ आपस में प्रीति रखने वाले हों, ब्रह्मचर्य से धर्म के अनुष्ठानपूर्वक समस्त वेदों को जान के सत्य असत्य का निश्चय कर सत्य को प्राप्त हो और असत्य को छोड़ के आप्तों के भाव से वर्त्तते हैं वे सुशिक्षित सारथियों के समान अभीष्ट धर्मयुक्त मार्ग में जाने को समर्थ होते और वे ही ऋषिसंज्ञक होते हैं ॥ ४९ ॥

आयुष्यमित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥

अब ऐश्वर्य और जय आदि सम्पादन वि० ॥

आ॒यु॒ष्यं॑ वर्च॒स्य॒ꣳ रा॒यस्पोष॒मौद्भि॑दम् । इ॒दꣳ हिर॑ण्यं॒ वर्च॑स्व॒ज्जैत्रा॒याऽऽवि॑शतादु॒ माम् ॥ ५० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (औद्भिदम्) दुःखों के नाशक (आयुष्यम्) जीवन के लिये हितकारी (वर्चस्यम्) अध्ययन के उपयोगी (रायः, पोषम्) धन की पुष्टि करने हारे (वर्चस्वत्) प्रशस्त अन्नों के हेतु (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप सुवर्णादि ऐश्वर्य (जैत्राय) जय होने के लिये (माम्) मुझ को (आ,विशतात्) आवेश करे अर्थात् मेरे

निकट स्थिर रहे वह तुम लोगों के निकट भी स्थिर होवे ॥ ५० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने तुल्य सब को जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं वे दीर्घ अवस्था पूर्ण विद्याओं समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं ॥ ५० ॥

न तदित्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

अथ ब्रह्मचर्य की प्रशंसा का वि० ॥

न तद्रक्षांꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳह्येतत् । यो बिभर्त्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳस देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) विद्वानों का (प्रथमजम्) प्रथम अवस्था वा ब्रह्मचर्य्य आश्रम में उत्पन्न हुआ (ओजः) बल पराक्रम है (तत्) उसको (न, रक्षांसि) न अन्यों को पीड़ा विशेष देकर अपनी ही रक्षा करने हारे और (न, पिशाचाः) न प्राणियों के रुधिरादि को खाने वाले हिंसक म्लेच्छाचारी दुष्ट जन (तरन्ति) उल्लंघन करते (यः) जो मनुष्य (एतत्) इस (दाक्षायणम्) चतुर को प्राप्त होने योग्य (हिरण्यम्) तेजःस्वरूप ब्रह्मचर्य्य को (बिभर्ति) धारण वा पोषण करता है (सः) वह (देवेषु) विद्वानों में (दीर्घम्, आयुः) अधिक अवस्था को (कृणुते) प्राप्त होता और (सः) वह (मनुष्येषु) मननशील जनों में (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को (कृणुते) प्राप्त करता है ॥ ५१ ॥

भावार्थः—जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण विद्या पढ़ते हैं उनको न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है जो विद्वान् इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म के साथ वर्त्तते हैं वे विद्वानों और मनुष्यों में बड़ी अवस्था को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते और दूसरों को आनन्दित करते हैं ॥ ५१ ॥

यदेत्यस्य दक्ष ऋषिः । हिरण्यन्तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः । तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—जो (दाक्षायणाः) चतुराई और विज्ञान से युक्त (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए सज्जन लोग (शतानीकाय) सैकड़ों सेना वाले (मे) मेरे लिये (यत्) जिस (हिरण्यम्) सत्याऽसत्य प्रकाशक विज्ञान का (आ, अबध्नन्) निबन्धन करें (तत्) उस को मैं (शतशारदाय) सौ वर्ष तक जीवन के लिये (आ, बध्नामि) नियत करता हूं। हे विद्वान् लोगो ! जैसे मैं (युष्मान्) तुम लोगों को प्राप्त होके (जरदष्टिः) पूर्ण अवस्था को व्याप्त होने वाला (असम्) होऊं वैसे तुम लोग मेरे प्रति उपदेश करो ॥ ५२ ॥

भावार्थः—एक ओर सैकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देने वाली होती है। जो लोग बहुत काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण करके विद्वानों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण कर उस के अनुकूल वर्त्तते हैं वे थोड़ी अवस्था वाले कभी नहीं होते ॥ ५२ ॥

उत न इत्यस्य ऋजिश्व ऋषिः। लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब कौन सब के रक्षक होते हैं इस वि० ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥ ५३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ के तुल्य और (पृथिवी) तथा (समुद्रः) अन्तरिक्ष के तुल्य (एकपात्) एक प्रकार के निश्चल अव्यभिचारी बोध वाला (अजः) जो कभी उत्पन्न नहीं होता वह परमेश्वर (नः) हमारे वचनों को (शृणोतु) सुने तथा (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (हुवानाः) स्पर्द्धा करते हुए (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उत) और (कविशस्ताः) बुद्धिमानों से प्रशंसा किये हुए (स्तुता) स्तुति के प्रकाशक (मन्त्राः) विचार के साधक मन्त्र हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी आदि पदार्थ, मेघ और परमेश्वर सब की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और विद्वान् लोग सब को पालते हैं ॥५३॥

इमेत्यस्य कूर्मगार्त्समद ऋषिः। आदित्या देवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब वाणी का वि० ॥

इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि। शृणोतु मित्रो अर्य्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥५४॥

पदार्थः—मैं (आदित्येभ्यः) तेजस्वी (राजभ्यः) राजाओं से जिन (इमाः) इन सत्य (गिरः) वाणियों को (जुहू) ग्रहण के साधन से (सनात्) नित्य (जुहोमि) ग्रहण स्वीकार करता हूं उन (घृतस्नूः) जल के तुल्य अच्छे व्यवहार को शोधने वाली (नः) हम लोगों की वाणियों को (मित्रः) मित्र (दक्षः) चतुर (अंशः) विभागकर्त्ता और (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (शृणोतु) सुने ॥ ५४ ॥

भावार्थः—विद्यार्थी लोगों ने आचार्यों से जिन सुशिक्षित वाणियों को ग्रहण किया उन को अन्य आप्त लोग सुन और अच्छे प्रकार परीक्षा करके शिक्षा करें ॥ ५४ ॥

सप्तेत्यस्य कण्व ऋषिः । अध्यात्मं प्राणा देवताः । भुरिग्जगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥
अथ शरीर व इन्द्रियों का वि० ॥

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् । सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ॥ ५५ ॥

पदार्थः—जो (सप्त, ऋषयः) विषयों अर्थात् शब्दादि को प्राप्त कराने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और बुद्धि ये सात ऋषि इस (शरीरे) शरीर में (प्रतिहिताः) प्रतीति के साथ स्थिर हुए हैं वे ही (सप्त) सात (अप्रमादम्) जैसे प्रमाद अर्थात् भूल न हो वैसे (सदम्) ठहरने के आधार शरीर की (रक्षन्ति) रक्षा करते वे (स्वपतः) सोते हुए जन के (आपः) शरीर को व्याप्त होने वाले उक्त (सप्त) सात (लोकम्) जीवात्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं (तत्र) उस लोकप्राप्ति-समय में (अस्वप्नजौ) जिन को स्वप्न कभी नहीं होता (सत्रसदौ) जीवात्माओं की रक्षा करने वाले (च) और (देवौ) दिव्य उत्तम गुणों वाले प्राण और अपान (जागृतः) जागते हैं ॥ ५५ ॥

भावार्थः—इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों के जानने वाले अन्तःकरण के सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय हो निरन्तर शरीर की रक्षा करते और जब जीव सोता है तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते किन्तु बाह्य विषय का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये ॥ ५५ ॥

उत्तिष्ठेत्यस्य कण्व ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

विद्वान् पुरुष क्या करें इस वि० ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे । उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ ५६ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः) धन के (पते) रक्षक (इन्द्र) ऐश्वर्यकारक विद्वन् ! (देवयन्तः) दिव्य विद्वानों की कामना करते हुए हम लोग जिस (त्वा) आपकी (ईमहे) याचना करते हैं जिस आपको (सुदानवः) सुन्दर दान देने वाले (मरुतः) मनुष्य (उप, प्र, यन्तु) समीप के प्रयत्न के साथ प्राप्त हों सो आप (उत्, तिष्ठ) उठिये और (सचा) सत्य के सम्बन्ध से (प्राशूः) उत्तम भोग करने हारे (भव) हूजिये ॥ ५६ ॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जो लोग विद्या की कामना करते हुए आपका आश्रय लेवें उनके अर्थ विद्या देने के लिये आप उद्यत हूजिये ॥ ५६ ॥

प्रनूनमित्यस्य कण्व ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर के वि० ॥

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥ ५७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस परमात्मा में (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य (वरुणः) जल वा चन्द्रमा (मित्रः) प्राण वा अन्य अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवाः) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकांसि) निवासों को (चक्रिरे) किये हुए हैं वह (ब्रह्मणः) वेदविद्या का (पतिः) रक्षक जगदीश्वर (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय पदार्थों में श्रेष्ठ (मन्त्रम्) वेदरूप मन्त्रभाग को (नूनम्) निश्चय कर (प्र, वदति) अच्छे प्रकार कहता है ऐसा तुम जानो ॥ ५७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा में कार्यकारणरूप सब जगत् जीव वसते हैं तथा जो सब जीवों के हितसाधक वेद का उपदेश करता हुआ, उसी की तुम लोग भक्ति, सेवा, उपासना करो ॥ ५७ ॥

ब्रह्मणस्पत इत्यस्य गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व । विश्वन्तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः । * य इमा विश्वा । विश्वकर्मा । यो नः पिता । अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ॥ ५८ ॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पते) रक्षक ईश्वर ! (देवाः) विद्वान् लोग (विदथे) प्रकट करने योग्य व्यवहार में (यत्) जिस की रक्षा वा उपदेश करते हैं और जिस को (सुवीराः) सुन्दर उत्तम वीर पुरुष हम लोग (बृहत्) बड़ा श्रेष्ठ (वदेम) कहें उस (अस्य) इस (सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहने योग्य वचन के (त्वम्) आप (यन्ता) नियमकर्त्ता हूजिये (च) और (तनयम्) विद्या का शुद्ध विचार करने हारे पुत्रवत् प्रियपुरुष को (बोधि) बोध कराइये तथा (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणकारी (विश्वम्) सब जीवमात्र को (जिन्व) तृप्त कीजिये ॥ ५८ ॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले हूजिये हमारे सन्तानों को विद्यायुक्त कीजिये सब जगत् की यथावत् रक्षा, न्याययुक्त धर्म, उत्तम शिक्षा और परस्पर प्रीति कीजिये ॥ ५८ ॥

इस अध्याय में मन का लक्षण, शिक्षा, विद्या की इच्छा, विद्वानों का सङ्ग कन्याओं का प्रबोध, चेतनता, विद्वानों का लक्षण, रक्षा की प्रार्थना, बल ऐश्वर्य की इच्छा, सोम ओषधि का लक्षण, शुभ कर्म की इच्छा, परमेश्वर और सूर्य का वर्णन, अपनी रक्षा, प्रातःकाल का उठना, पुरुषार्थ से ऋद्धि और सिद्धि पाना, ईश्वर के जगत् का रचना, [illegible]ओं का वर्णन, ईश्वर के गुणों का कथन, अवस्था का बढ़ाना, विद्वान् और प्राणों का लक्षण [illegible] का कर्त्तव्य कहा है । इस से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जान[illegible]िये ॥

यह चौंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

---

* अत्र पूर्वोक्तमन्त्राणां चत्वारि प्रतीकानि, य इमा विश्वा १७ । १७ । विश्वकर्मा ११ । २६ । यो नः पिता १७ । २७ । अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि ११ । ८३ । विशेषकर्माणि [illegible]ार्थं धृतानि ॥

ओ३म् ॥

अथ पञ्चत्रिंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

अपेत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । पितरो देवताः । पूर्वस्य पिपीलिका मध्या-गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । द्युभिरित्युत्तरस्य प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब व्यवहार और जीव की गति वि० ॥

अपे॒तो य॑न्तु प॒णयोऽसु॑म्ना देवपी॒यवः॑ । अ॒स्य लो॒कः सु॒ताव॑तः ।
द्युभि॒रहो॑भिर॒क्तुभि॒र्व्य॑क्तं य॒मो द॑दात्वव॒सान॑मस्मै ॥ १ ॥

पदार्थः—जो (देवपीयवः) विद्वानों के द्वेषी (पणयः) व्यवहारी लोग दूसरों के लिये (असुम्ना) दुःखों को देते हैं वे (इतः) यहां से (अप, यन्तु) दूर जावें (लोकः) देखने योग्य (यमः) सब का नियन्ता परमात्मा (द्युभिः) प्रकाशमान (अहोभिः) दिन (अक्तुभिः) और रात्रियों के साथ (अस्य) इस (सुतावतः) वेद वा विद्वानों से प्रेरित प्रशस्त कर्मों वाले जनों के सम्बन्धी (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (व्यक्तम्) प्रसिद्ध (अवसानम्) अवकाश को (ददातु) देवे ॥ १ ॥

भावार्थः—जो लोग आप्त सत्यवादी धर्मात्मा विद्वानों से द्वेष करते हैं वे [illegible] दुःख को प्राप्त होते हैं, जो जीव शरीर छोड़ के [illegible] यथायोग्य अवकाश देकर उनके कर्मानुसार [illegible] सुख दुःख फल देता है ॥ १ ॥

सविता त इत्यस्य देवा ऋषयः । सविता देवता । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

फिर ईश्वर के कर्त्तव्य वि० ॥

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑रेभ्यः पृथि॒व्यां लो॒कमि॑च्छतु । तस्मै॑ युज्यन्ता॒मु॒स्रियाः॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे जीव ! (सविता) परमात्मा जिस (ते) तेरे (शरीरेभ्यः) जन्मान्तर के शरीरों के लिये (पृथिव्याम्) अन्तरिक्ष वा भूमि में (लोकम्) कर्मों के अ

सुख दुःख के साधन प्रापक स्थान को (इच्छतु) चाहे (तस्मै) उस तेरे लिये (उस्रियाः) प्रकाशरूप किरण (युज्यन्ताम्) अर्थात् उपयोगी हों ॥ २ ॥

भावार्थः—हे जीवो ! जो जगदीश्वर तुम्हारे लिये सुख चाहता है और किरणों के द्वारा लोकलोकान्तर को पहुंचाता है वही तुम लोगों को न्यायकारी मानना चाहिये ॥ २ ॥

वायुरित्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । सविता देवता । उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

जीवों की कर्मगति का वि० ॥

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा । विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (वायुः) पवन (अग्नेः) बिजुली की (भ्राजसा) दीप्ति से (सूर्यस्य) सूर्य के (वर्चसा) तेज से जिन हम लोगों को (पुनातु) पवित्र करे (सविता) सूर्य (पुनातु) पवित्र करे (उस्रियाः) किरण (मुच्यन्ताम्) छोड़ें ॥ ३ ॥

भावार्थः—जब जीव शरीरों को छोड़ के विद्युत् सूर्य के प्रकाश और वायु आदि को प्राप्त होकर जाते हैं और गर्भ में प्रवेश करते हैं तब किरण उन को छोड़ देती हैं ॥ ३ ॥

अश्वत्थ इत्यस्य आदित्या देवा ऋषयः । वायुः सविता देवते । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे जीवो ! जिस जगदीश्वर ने (अश्वत्थे) कल ठहरेगा वा नहीं ऐसे अनित्य संसार में (वः) तुम लोगों की (निषदनम्) स्थिति की (पर्णे) पत्ते के तुल्य चञ्चल जीवन में (वः) तुम्हारा (वसतिः) निवास (कृता) किया (यत्) जिस (पुरुषम्) सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को (किल) ही (सनवथ) सेवन करो उसके साथ (गोभाजः) पृथिवी वाणी इन्द्रिय वा किरणों का सेवन करने वाले (इत्) ही तुम लोग प्रयत्न के साथ धर्म में स्थिर (असथ) होओ ॥ ४ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अनित्य संसार में अनित्य शरीरों और पदार्थों को प्राप्त होके क्षणभंगुर जीवन में धर्माचरण के साथ नित्य परमात्मा की उपासना कर आत्मा और परमात्मा के संयोग से उत्पन्न हुए नित्य सुख को प्राप्त हों ॥ ४ ॥

सवितेत्यस्यादित्य देवा वा ऋषयः । वायुसवितारौ देवते । अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कन्या क्या करे इस वि० ॥

सुविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु । तस्मै पृथिवी शं भव ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवी) भूमि के तुल्य सहनशील कन्या तू जिस (ते) तेरे (शरीराणि) आश्रयों को (मातुः) माता के तुल्य मान्य देने वाली पृथिवी के (उपस्थे) समीप में (सविता) उत्पत्ति करने वाला पिता (आ, वपतु) स्थापित करे सो तू (तस्मै) उस पिता के लिये (शम्) सुखकारिणी (भव) हो ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे कन्याओ ! तुम को उचित है कि विवाह के पश्चात् भी माता और पिता में प्रीति न छोड़ो क्योंकि उन्हीं दोनों से तुम्हारे शरीर उत्पन्न हुए और पाले गये हैं इससे ॥ ५ ॥

प्रजापतावित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । उष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ।

ईश्वर की उपासना का वि० ॥

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ । अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे जीव ! जो (असौ) यह लोक (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र सुखा देवे उस (प्रजापतौ) प्रजा के रक्षक (देवतायाम्) पूजनीय परमेश्वर में तथा (उपोदके) उपगत समीपस्थ उदक जिस में हो (लोके) दर्शनीय स्थान में (त्वा) आप को (निदधामि) निरन्तर धारण करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर उपासना किया हुआ पापाचरण से पृथक् कराता है उसी में भक्ति करने के लिये तुम को मैं स्थिर करता हूं जिससे सदैव तुम लोग श्रेष्ठ सुख के देखने को प्राप्त होओ ॥ ६ ॥

परं मृत्यवित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः । यमो देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजाᳬरीरिषो मोत वीरान् ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) जिस मार्ग से विद्वान् लोग चलते उससे (इतरः) भिन्न (अन्यः) और मार्ग है उस (पन्थाम्) मार्ग को (मृत्यो) मृत्यु (परा, इहि) दूर जावे जिस कारण तू (परम्) उत्तम देवमार्ग को (अनु) अनुकूलता से प्राप्त हो इसी से (चक्षुष्मते) उत्तम नेत्रवाले (शृण्वते) सुनते हुए (ते) तेरे लिये (ब्रवीमि) उपदेश करता हूं जैसे मृत्यु (नः) हमारी प्रजा को न मारे और वीर पुरुषों को भी न मारे वैसे तू (प्रजाम्) सन्तानादि को (मा, रीरिषः) मत मार वा विषयादि से नष्ट मत कर (उत) और (वीरान्) विद्या और शरीर के बल से युक्त वीर पुरुषों को (मा) मत नष्ट कर ॥ ७ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जीवनपर्यन्त विद्वानों के मार्ग से चल के उत्तम अवस्था को प्राप्त हों और ब्रह्मचर्य के विना स्वयंवर विवाह करके कभी न्यून अवस्था की प्रजा सन्तानों को न उत्पन्न करें और न इन सन्तानों को ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से अलग रक्खें ॥ ७ ॥

शं वात इत्यस्य आदित्या देवा वा ऋषयः । विश्वे देवा देवताः ।
अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
सृष्टि के पदार्थ मनुष्यों को कैसे सुखकारी हों इस वि० ॥

शं वातः शᳬहि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः । शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (वातः) वायु (शम्) सुखकारी हो (घृणिः) किरणयुक्त सूर्य (शम्, हि) सुखकारी हो (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईंटें तेरे लिये (शम्) सुखदायिनी (भवन्तु) हों (पार्थिवासः) पृथिवी पर प्रसिद्ध (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि (ते) तेरे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवन्तु) होवें, ये सब (त्वा) तुझ को (मा, अभि, शूशुचन्) सब ओर से शीघ्र शोककारी न हों ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे जीवो ! वैसे ही तुम को धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तना चाहिये जैसे जीने वा मरने बाद भी तुम को सृष्टि के वायु आदि पदार्थ सुखकारी हों ॥ ८ ॥

कल्पन्तामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । विश्वे देवा देवताः । विराड् बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः । अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे जीव ! (ते) तेरे लिये (दिशः) पूर्व आदि दिशा (शिवतमाः) अत्यन्त सुखकारिणी (कल्पन्ताम्) समर्थ हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (आपः) प्राण वा जल अतिसुखकारी हों (तुभ्यम्) तेरे लिये (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र अति सुखकारी (भवन्तु) होवें (तुभ्यम्) तेरे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाश (शिवम्) कल्याणकारी हो और (ते) तेरे लिये (सर्वाः) सब (दिशः) ईशानादि विदिशा अत्यन्त कल्याणकारी (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो लोग अधर्म को छोड़ कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं इन के लिये पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मंगलकारी होते हैं ॥ ९ ॥

अश्मन्वतीत्यस्य सुचीक ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कौन लोग दुःख के पार होते हैं इस वि० ॥

अश्मन्वती रीयते सꣳ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः । अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो जो (अश्मन्वती) बहुत मेघों वा पत्थरों वाली सृष्टि वा नदी प्रवाह से (रीयते) चलती है उस के साथ जैसे (वयम्) हम लोग (ये) जो (अत्र) इस जगत् में वा समय में (अशिवाः) अकल्याणकारी (असन्) हैं उन को (जहीमः) छोड़ते हैं तथा (शिवान्) सुखकारी (वाजान्) अत्युत्तम अन्नादि के भागों को (अभि, उत्, तरेम) सब ओर से पार करें अर्थात् भोग चुकें वैसे तुम लोग (संरभध्वम्) सम्यक् आरम्भ करो (उत्तिष्ठत) उद्यत होओ और (प्रतरत) दुःखों का उल्लंघन करो ॥ १० ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बड़ी नौका से समुद्र के जैसे पार हों वैसे अशुभ आचरणों और दुष्ट जनों के पार हो प्रयत्न के साथ उद्यमी होके मङ्गलकारी आचरण करें वे दुःख-सागर के सहज से पार होवें ॥ १० ॥

अपाघमित्यस्य शुनःशेप ऋषिः । आपो देवताः । विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य पवित्र करने वाले हैं इस वि० ॥

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः। अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यꣳ सुव ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे (अपामार्ग) अपामार्ग ओषधि जैसे रोगों को दूर करती वैसे पापों को दूर करने वाले सज्जन पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मत्) हमारे निकट से (अघम्) पाप को (अप, सुव) दूर कीजिये (किल्बिषम्) मन की मलीनता को आप दूर कीजिये (कृत्याम्) दुष्क्रिया को (अप) दूर कीजिये (रपः) बाह्य इन्द्रियों के चंचलता रूप अपराध को (अपो) दूर कीजिये और (दुष्वप्न्यम्) बुरे प्रकार की निद्रा में होने वाले बुरे विचार को (अप) दूर कीजिये ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०-जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियां रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती हैं वैसे आप सब दोषों से पृथक् हो के अन्य मनुष्यों को अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते और दूसरों को करते हैं वे ही मनुष्यादि को पवित्र करने वाले हैं ॥ ११ ॥

सुमित्रियान इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः। आपो देवताः। निचृदनुष्टुप्छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमादि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य हितकारिणी (सन्तु) होवें तुम्हारे लिये भी वैसी हों (यः) जो (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करता (च) और (यम्) जिस दुष्टाचारी से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) अप्रीति करें (तस्मै) उस के लिये वे पदार्थ (दुर्मित्रियाः) शत्रुओं के तुल्य दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो रागद्वेष आदि दोषों को छोड़ कर सब में अपने आत्मा के तुल्य वर्त्ताव करते हैं उन धर्मात्माओं के लिये सब जल ओषधि आदि पदार्थ सुखकारी होते और जो स्वार्थ में प्रीति तथा दूसरों से द्वेष करने वाले हैं उन अधर्मियों के लिये ये सब उक्त पदार्थ दुःखदायी होते हैं मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्माओं के साथ प्रीति और दुष्टों के साथ निरन्तर अप्रीति करें, परन्तु उन दुष्टों का भी चित्त से सदा कल्याण ही चाहें ॥ १२ ॥

अनड्वानित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । कृषीवला देवताः । स्वराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं इस वि० ॥

अनड्वाहंमन्वारंभामहे सौरंभेयꣳ स्वस्तये । स न इन्द्रं इव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (वह्निः) शीघ्र पहुंचाने वाला अग्नि (नः, देवेभ्यः) हम विद्वानों के लिये (सन्तरणः) सम्यक् मार्गों से पार करने वाला होता है उस (सौरभेयम्) सुरा गौ के सन्तान (अनड्वाहम्) गाड़ी आदि को खींचने वाले बैल के तुल्य वर्त्तमान अग्नि के हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (अन्वारभामहे) यान बना के उन में प्राणियों को स्थिर करें (सः) वह आप के लिये (इन्द्र इव) बिजुली के तुल्य (भव) होवें ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली आदि अग्नि की विद्या से यान बनाने आदि कार्य्यों के करने का अभ्यास करते हैं वे अतिबली बैलों से खेती करने वालों के समान कार्य्यों को सिद्ध कर सकते और विद्युत् अग्नि के तुल्य शीघ्र इधर उधर जा सकते हैं ॥ १३ ॥

उद्वयन्तमित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । सूर्यो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कौन मोक्ष को पाते हैं इस वि० ॥

उद्वयन्तमंसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (तमसः) अन्धकार से परे (स्वः) स्वयं प्रकाशरूप सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (देवत्रा) विद्वानों वा प्रकाशमय सूर्यादि पदार्थों में (देवम्) विजयादि लाभ के देने वाले (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशमयस्वरूप (उत्तमम्) सब से बड़े (उत्तरम्) दुःखों से पार करने वाले (सूर्य्यम्) अन्तर्यामी रूप से अपनी व्याप्ति कर सब चराचर के स्वामी परमात्मा को (पश्यन्तः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ जानें उसी को तुम लोग भी जानो ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य को देखते हुए दीर्घावस्था वाले धर्मात्मा जन सुख को प्राप्त होते वैसे ही धर्मात्मा योगीजन महादेव सब के

प्रकाशक जन्ममृत्यु के क्लेश आदि से पृथक् वर्त्तमान सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को साक्षात् जान मोक्ष को पाकर निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ १४ ॥

इममित्यस्य सङ्कुसुक ऋषिः। ईश्वरो देवता। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम्। शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

पदार्थः—मैं परमेश्वर (एषाम्) इन जीवों के (एतम्) परिश्रम से प्राप्त किये (अर्थम्) द्रव्य को (अपरः) अन्य कोई (मा) नहीं (नु) शीघ्र (गात्) प्राप्त कर लेवे इस प्रकार (इमम्) इस (जीवेभ्यः) जीवों के लिये (परिधिम्) मर्यादा को (दधामि) व्यवस्थित करूं इस प्रकार आचरण करते हुए आप लोग (पुरूचीः) बहुत वर्षों के सम्बन्धी (शतम्) सौ (शरदः) शरद् ऋतुओं भर (जीवन्तु) जीवो (पर्वतेन) ज्ञान वा ब्रह्मचर्यादि से (मृत्युम्) मृत्यु को (अन्तः) (दधताम्) दबाओ अर्थात् दूर करो ॥ १५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग, परमेश्वर ने नियत किया कि धर्म का आचरण करना और अधर्म का आचरण छोड़ना चाहिये, इस मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते अन्याय से दूसरे के पदार्थों को नहीं लेते वे नीरोग होकर सौ वर्ष तक जी सकते हैं और ईश्वराज्ञा-विरोधी नहीं। जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ कर धर्म का आचरण करते हैं उन को मृत्यु मध्य में नहीं दबाता ॥ १५ ॥

अग्न इत्यस्यादित्या देवा ऋषयः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

कौन मनुष्य दीर्घ अवस्था वाले होते हैं इस वि० ॥

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वन् आप (आयूंषि) अन्नादि पदार्थों वा अवस्थाओं को (पवसे) पवित्र करते (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) बल (च) और (इषम्) विज्ञान को (आ, सुव) अच्छे प्रकार उत्पन्न कीजिये तथा (दुच्छुनाम्) कुत्तों के तुल्य हुए हिंसक प्राणियों को (आरे) दूर वा समीप में (बाधस्व) ताड़ना विशेष दीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्टों का आचरण और संग छोड़ के परमेश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् की सेवा करते हैं वे धनधान्य से युक्त हुए दीर्घ अवस्था वाले होते हैं ॥ १६ ॥

आयुष्मानित्यस्य वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ राजधर्म वि० ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि । घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्वी राजन् ! जैसे (हविषा) घृतादि से (वृधानः) बढ़ा हुआ (घृतप्रतीकः) जलको प्रसिद्ध करने वाला (घृतयोनिः) प्रदीप्त तेज जिस का कारण वा घर है वह अग्नि बढ़ता है वैसे (आयुष्मान्) बहुत अवस्था वाले आप (एधि) हूजिये (मधु) मधुर (चारु) सुन्दर (गव्यम्) गौ के (घृतम्) घी को (पीत्वा) पी के (पुत्रम्) पुत्र की (पितेव) पिता जैसे वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (इमान्) इन प्रजास्थ मनुष्यों की (अभि) सन्मुख (रक्षतात्) रक्षा कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्यादि रूप से अग्नि बाहर भीतर रह कर सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा पिता के तुल्य वर्त्तमान करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ १७ ॥

परीम इत्यस्य भरद्वाजः शिरिम्बिठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत । देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ२॥ आ दधर्षति ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे राजपुरुषो ! जो (इमे) ये तुम लोग (गाम्) वाणी वा पृथिवी को (परि, अनेषत) स्वीकार करो (अग्निम्) अग्नि को (परि, अहृषत) सब ओर से हरो अर्थात् कार्य में लाओ । इन (देवेषु) विद्वानों में (श्रवः) अन्न को (अक्रत) करो इस प्रकार के आप लोगों को (कः) कौन (आ, दधर्षति) धमका सकता है ॥ १८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजपुरुष पृथिवी के समान धीर अग्नि के तुल्य तेजस्वी अन्न के समान अवस्थावर्द्धक होते हुए धर्म से प्रजा की रक्षा करते हैं वे अतुल राजलक्ष्मी को पाते हैं ॥ १८ ॥

क्रव्यादमित्यस्य दमन ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

क्रव्यादम॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॑म॒राज्यं॑ गच्छतु रिप्रवा॒हः ।
इ॒हैवायमित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥ १९ ॥

पदार्थः-(प्रजानन्) अच्छे प्रकार जानता हुआ मैं (क्रव्यादम्) कच्चे मांस को खाने और (अग्निम्) अग्नि के तुल्य दूसरों को दुःख से तपाने वाले जिस दुष्ट को (दूरम्) दूर (प्र, हिणोमि) पहुंचाता और जिन (रिप्रवाहः) पाप उठाने वाले दुष्टों को दूर पहुंचाता हूं और वे सब पापी (यमराज्यम्) न्यायाधीश राजा के न्यायालय में (गच्छतु) जावें और (इह) इस जगत् में (इतरः) दूसरा (अयम्) यह (जातवेदाः) धर्मात्मा विद्वान् जन (देवेभ्यः) धार्मिक विद्वानों से (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य विज्ञान को (एव) ही (वहतु) प्राप्त होवे ॥ १९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे न्यायाधीश राजपुरुषो ! तुम लोग दुष्टाचारी जनों को सम्यक् ताड़ना देकर प्राणों से भी छुड़ा के और श्रेष्ठ का सत्कार करके इस सृष्टि में साम्राज्य अर्थात् चक्रवर्त्ती राज्य करो ॥ १९ ॥

वह वपामित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । जातवेदा देवता । स्वराड् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ पितृ लोगों का सेवन वि० ॥

वह॑ व॒पां जा॑तवेदः पि॒तृभ्यो॒ यत्रै॑नान्वे॒त्थ निहि॑तान्परा॒के ।
मेद॑सः कु॒ल्या उप॒ तान्त्स्र॑वन्तु स॒त्या ए॑षामा॒शिषः॒ सं न॑मन्ता॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुए जन आप (यत्र) जहां (एनान्) इन (पराके) दूर (निहितान्) स्थित पितृजनों को (वेत्थ) जानते हो वहां (पितृभ्यः) जनक या विद्या शिक्षा देने वाले सज्जन पितृयों से (वपाम्) खेती होने के योग्य भूमि को (वह) प्राप्त हूजिये जैसे (मेदसः) उत्तम (कुल्याः) जल के प्रवाह से युक्त नदी वा नहरें (तान्) उन सज्जनों को (उप, स्रवन्तु) निकट प्राप्त हों वैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (एषाम्) इन लोगों की (आशिषः) इच्छा (सत्याः) यथार्थ (सम्, नमन्ताम्) सम्यक् प्राप्त होवें ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो दूर रहने वाले पितृ और विद्वानों को बुला-बार सत्कार करते हैं जैसे बाग बगीचों के वृक्षादि को जल वायु बढ़ाते वैसे उन की इच्छा सत्य हुई सब ओर से बढ़ती हैं ॥ २० ॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । निचृद् गायत्री अपन-इतिप्राजापत्या गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कुलीन स्त्री कैसी होवे इस वि० ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः । अप नः शोशुचदघम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्री ! तू जैसे (अनृक्षरा) कण्टक आदि से रहित (निवेशनी) बैठने का आधार भूमि (स्योना) सुख करने वाली होती वैसे (नः) हमारे लिये (शर्म) सुख को (यच्छ) दे जैसे न्यायाधीश (नः) हमारे (अघम्) पाप को (अप, शोशुचत्) शीघ्र दूर करे वा शुद्ध करे वैसे तू अपराध को दूर कर ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली क्रूरता आदि दोषों से अलग बहुत प्रशंसित दूसरे के दोषों को निवारण करने हारी है वही घर के कार्य्यों में योग्य होती है ॥ २१ ॥

अस्मादित्यस्यादित्या देवा ऋषयः । अग्निर्देवता । स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्मात्) इस लोक से अर्थात् वर्त्तमान मनुष्यों से (अधि) सर्वोपरि (जातः) प्रसिद्ध विराजमान (असि) इस से (अयम्) यह पुत्र (त्वत्) आप से (पुनः) पीछे (असौ) विशेष नाम वाला (स्वाहा) सत्य क्रिया से (लोकाय) देखने योग्य (स्वर्गाय) विशेष सुख भोगने के लिये (जायताम्) प्रकट समर्थ होवे ॥ २२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिये कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिये प्रयत्न करो और यही मनुष्यजन्म की सफलता है ऐसा जानो ॥ २२ ॥

इस अध्याय में व्यवहार, जीव की गति, जन्म, मरण, सत्य, आशीर्वाद, अग्नि और सत्य इच्छा आदि का व्याख्यान होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

अथ षट्त्रिंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ १ ॥

ऋचमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अब छत्तीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के संग से क्या होता है इस विषय को कहते हैं ॥

ऋचं॒ वाचं॒ प्र प॑द्ये॒ मनो॒ यजुः॒ प्र प॑द्ये॒ साम॑ प्रा॒णं प्र प॑द्ये॒ चक्षुः॒ । श्रोत्रं॒ प्र प॑द्ये । वागोजः॑ स॒हौजो॒ मयि॑ प्राणापा॒नौ ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (मयि) मेरे आत्मा में (प्राणापानौ) प्राण और अपान ऊपर नीचे के श्वास दृढ़ हों मेरी (वाक्) वाणी (ओजः) मानस बल को प्राप्त हो उस वाणी और उन श्वासों के (सह) साथ में (ओजः) शरीर बल को प्राप्त होऊं (ऋचम्) ऋग्वेद रूप (वाचम्) वाणी को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (मनः) मनन करने वाले अन्तःकरण के तुल्य (यजुः) यजुर्वेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (प्राणम्) प्राण की क्रिया अर्थात् योगाभ्यासादिक उपासना के साधक (साम) सामवेद को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं (चक्षुः) उत्तम नेत्र और (श्रोत्रम्) श्रेष्ठ कान को (प्र, पद्ये) प्राप्त होऊं वैसे तुम लोग इन सब को प्राप्त होओ ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! तुम लोगों के संग से मेरी ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसनीय वाणी, यजुर्वेद के समान मन, सामवेद के सदृश प्राण और सत्रह तत्त्वों से युक्त लिङ्गशरीर स्वस्थ, सब उपद्रवों से रहित और समर्थ होवे ॥ १ ॥

यन्मे छिद्रमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

अथ ईश्वर प्रार्थना वि० ॥

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

पदार्थः—(यत्) जो (मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की वा (हृदयस्य) अन्तःकरण की (छिद्रम्) न्यूनता (वा) वा (मनसः) मन की (अतितृण्णम्) व्याकुलता है (तत्) उस को (बृहस्पतिः) बड़े आकाशादि का पालक परमेश्वर (मे) मेरे लिये (दधातु) पुष्ट वा पूर्ण करे (यः) जो (भुवनस्य) सब संसार का (पतिः) रक्षक है वह (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी (भवतु) होवे ॥ २ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि परमेश्वर की उपासना और आज्ञापालन से अहिंसा धर्म को स्वीकार कर जितेन्द्रियता को सिद्ध करें ॥ २ ॥

भूर्भुवः स्वरित्यस्य विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । दैवी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

तत्सवितुरित्यस्य निचृद्गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का वि० ॥

भूर्भुवः स्वः । तत्संवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (भूः) कर्मकाण्ड की विद्या (भुवः) उपासनाकाण्ड की विद्या और (स्वः) ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़के (यः) जो (नः) हमारी (धियः) धारणावती बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे उस (देवस्य) कामना के योग्य (सवितुः) समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के (तत्) उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष (भर्गः) सब दुःखों के नाशक तेजस्वरूप का (धीमहि) ध्यान करें वैसे तुम लोग भी इस का ध्यान करो ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य कर्म उपासना और ज्ञान-सम्बन्धिनी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म अनैश्वर्य और दुःखरूप मलों को छुड़ा के धर्म ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं उन को अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है ॥ ३ ॥

कया न इत्यस्य वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कया॑ नश्चि॒त्र आ भु॑वदू॒ती स॒दावृ॑धः॒ सखा॑। कया॒ शचि॑ष्ठया वृ॒ता ॥ ४ ॥

पदार्थः—वह (सदावृधः) सदा बढ़ने वाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त हो (चित्रः) आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभावों से युक्त परमेश्वर (नः) हम लोगों का (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (सखा) मित्र (आ, भुवत्) होवे तथा (कया) किस (वृता) वर्त्तमान (शचिष्ठया) अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हम को शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे ॥ ४ ॥

भावार्थः—हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हम को प्रेरणा करता है कि जिस के सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं ॥ ४ ॥

कस्त्वेत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः। दृ॒ढा चि॑दा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (मदानाम्) आनन्दों के बीच (मंहिष्ठः) अत्यन्त बढ़ा हुआ (कः) सुखस्वरूप (सत्यः) विद्यमान पदार्थों में श्रेष्ठतम प्रजा का रक्षक परमेश्वर (अन्धसः) अन्नादि पदार्थ से (त्वाम्) तुझ को (मत्सत्) आनन्दित करता और (आरुजे) दुःखनाशक तेरे लिये (चित्) भी (दृढा) दृढ़ (वसु) धनों को देता है ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्नादि और सत्य के जताने से धनादि पदार्थ देके सब को आनन्दित करता है उस सुखस्वरूप परमात्मा की ही तुम लोग नित्य उपासना किया करो ॥ ५ ॥

अभी षु ण इत्यस्य वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। पादनिचृद्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒भी षु णः॒ सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम्। श॒तं भ॑वास्यू॒तिभिः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (शतम्) असंख्य ऐश्वर्य देते हुए (अभि, ऊतिभिः) सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओं से (नः) हमारे (सखीनाम्) मित्रों और (जरि-

नृणाम्) सत्य स्तुति करने वालों के (अविता) रक्षा करने वाले (सु, भवासि) सुन्दर प्रकार हूजिये इस से आप हम को सत्कार करने योग्य हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो रागद्वेषरहित किन्हीं से वैरभाव न रखने अर्थात् सब से मित्रता रखने वाले सब मित्र मनुष्यों को असंख्य ऐश्वर्य और अधिकतर विज्ञान देके सब ओर से रक्षा करता है उसी परमेश्वर की नित्य सेवा किया करो ॥ ६ ॥

कथा त्वमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । इन्द्रो देवता । वर्द्धमाना गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

कथा त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कथा स्तोतृभ्य आ भर ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सब ओर से सुखों को वर्षाने वाले ईश्वर (त्वम्) आप (कथा) किस (ऊत्या) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम को (अभि, प्र, मन्दसे) सब ओर से आनन्दित करते और (कथा) किस रीति से (स्तोतृभ्यः) आपकी प्रशंसा करने वाले मनुष्यों के लिये सुख को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे भगवन् परमात्मन् ! जिस युक्ति से आप धर्मात्माओं को आनन्दित करते उन की सब ओर से रक्षा करते हैं उस युक्ति को हम को जताइये ॥ ७ ॥

इन्द्र इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । इन्द्रो देवता । द्विपाद्विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजुली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आप की कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे जगदीश्वर ! जिस से आप सर्वत्र सब ओर से अभिव्याप्त मनुष्य पश्वादि का सुख चाहने वाले हैं इस से सब को उपासना करने योग्य है ॥ ८ ॥

शन्न इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । मित्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

मनुष्यों को अपने दूसरों के लिये सुख चाहना करनी चाहिये इस वि० ॥

शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शन्नो॑ भवत्वर्य्य॒मा । शन्न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (नः) हमारे लिये (मित्रः) प्राण के तुल्य प्रिय मित्र (शम्) सुखकारी (भवतु) हो (वरुणः) जल के तुल्य शान्ति देने वाला जन (शम्) सुखकारी हो (अर्यमा) पदार्थों के स्वामी वा वैश्यों को मानने वाला न्यायाधीश (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् (बृहस्पतिः) महती वेद-रूप वाणी का रक्षक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत शीघ्रता करने वाला (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी होवे वैसे हम लोगों के लिये भी होवें ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-मनुष्यों को योग्य है कि जैसे अपने लिये सुख चाहें वैसे दूसरों के लिये भी और जैसे आप सत्सङ्ग करना चाहें वैसे इस में अन्य लोगों को भी प्रेरणा किया करें ॥ ६ ॥

शन्नो वात इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । वातादयो देवताः । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

शन्नो॒ वातः॑ पवता॒ᳪ शन्न॑स्तपतु॒ सूर्य्यः॑ । शन्नः॒ कनि॑क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्यो॑ अ॒भि व॑र्षतु ॥ १० ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! वा विद्वान् पुरुष ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्य्यः) सूर्य्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुख-कारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुण युक्त विद्युत्रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि, वर्षतु) सब ओर से वर्षा करे वैसे हम को शिक्षा कीजिये ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जिस प्रकार से वायु सूर्य्य बिजुली और मेघ सब को सुखकारी हों वैसा अनुष्ठान किया करो ॥ १० ॥

अहानि शमित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अहा॑नि॒ शं भव॑न्तु नः॒ शꣳरात्रीः॒ प्रति॑ धीयताम् । शन्न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शन्न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या । शन्न॑ इन्द्रा॒पू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शंयोः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान् जन ! जैसे (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु) हों (रात्रिः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हम को धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजुली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधियां (शम्) सुखकारिणी हों वैसे हमको आप अनुकूल शिक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जो ईश्वर और आप्त सत्यवादी विद्वान् लोगों की शिक्षा में आप लोग प्रवृत्त रहो तो दिन रात तुम्हारे भूमि आदि सब पदार्थ सुखकारी होवें ॥ ११ ॥

शन्नो देवीरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

कैसे मनुष्य सुखों से युक्त होते हैं इस वि० ॥

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ । शंयोर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! जैसे (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हम को (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभि, स्रवन्तु) सब ओर से करें वैसे उपदेश करो ॥ १२ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञादि से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं उन पर सुखरूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है ॥ १२ ॥

स्योनेत्यस्य मेधातिथिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । पिपीलिका मध्या निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

पतिव्रता स्त्री कैसी हो इस वि० ॥

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान क्षमाशील स्त्रि ! जैसे (अनृक्षरा) कांटे गढ़े आदि से रहित (निवेशनी) नित्य स्थिर पदार्थों का स्थापन करने हारी (पृथिवी) भूमि (नः) हमारे लिये होती है वैसे तू हो यह पृथिवी (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान (नः) हमारे लिये (शर्म) स्थान देवे वैसे (स्योना) सुख करने हारी तू (नः) हमारे लिये घर के सुख को (यच्छ) दे ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सब प्राणियों को सुख ऐश्वर्य देने वाली पृथिवी वर्त्तमान है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि को आनन्द देने वाली होती है ॥ १३ ॥

आप इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (आपः) जलों के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियो ! जैसे (मयोभुवः) सुख उत्पन्न करने हारे जल (हि) जिस कारण (नः) हम को (महे) बड़े (रणाय, चक्षसे) प्रसिद्ध संग्राम के लिये वा (ऊर्जे) बल पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें वैसे इन को तुम लोग धारण करो और प्यारी (स्थ) होओ ॥ १४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां सब ओर से सब को सुखी करती वैसे जलादि पदार्थ सब को सुखकारी होते हैं ऐसा जानो ॥ १४ ॥

यो व इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ स्त्रियो ! (यः) जो (वः) तुम्हारा (शिवतमः) अतिशय कल्याणकारी (रसः) आनन्दवर्द्धक स्नेहरूप रस है (तस्य) उस का (इह) इस जगत् में

(नः) हम को (उशतीरिव, मातरः) पुत्रों की कामना करने वाली माताओं के तुल्य (भाजयत) सेवा कराओ ॥ १५ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो होम आदि से जल शुद्ध किये जावें तो ये माता जैसे सन्तानों वा पतिव्रता स्त्रियां अपने पतियों को सुखी करती हैं वैसे सब प्राणियों को सुखी करते हैं ॥ १५ ॥

तस्मा इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

तस्मा॒ अरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! जैसे तुम लोग (नः) हम को (आपः) जलों के तुल्य शान्त (जनयथ) प्रकट करो वैसे (वः) तुम को हम लोग शान्त प्रकट करें (च) और तुम लोग (यस्य) जिस पति के (क्षयाय) निवास के लिये (जिन्वथ) उस को तृप्त करो (तस्मै) उस के लिये हम लोग (अरम्) पूर्ण सामर्थ्य युक्त (गमाम) प्राप्त होवें ॥ १६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि परस्पर आनन्द के लिये जल के तुल्य सरलता से वर्त्तें और शुभ आचरणों के साथ परस्पर सुशोभित ही रहें ॥ १६ ॥

द्यौरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिक् शक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

मनुष्यों को कैसे प्रयत्न करना चाहिये इस वि० ॥

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॒रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्तिः॑ । वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑ दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒ शान्तिः॒ सर्व॒ꣳ शान्तिः॒ शान्ति॑रे॒व शान्तिः॒ सा मा॒ शान्ति॑रेधि ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (शान्तिः, द्यौः) प्रकाशयुक्त पदार्थ शान्तिकारक (अन्तरिक्षम्) दोनों लोक के बीच का आकाश (शान्तिः) शान्तिकारी (पृथिवी) भूमि (शान्तिः) सुखकारी निरुपद्रव (आपः) जल वा प्राण (शान्तिः) शान्तिदायी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (शान्तिः) सुखदायी (वनस्पतयः) वट आदि

वनस्पति (शान्तिः) शान्तिकारक (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग (शान्तिः) उपद्रवनिवारक (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शान्तिः) सुखदायी (सर्वम्) सम्पूर्ण वस्तु (शान्तिरेव) शान्ति ही (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) प्राप्त होवें (सः) वह (शान्तिः) शान्ति तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥ १७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाश आदि पदार्थ शान्ति करने वाले होवें वैसे तुम लोग प्रयत्न करो ॥ १७ ॥

दृते इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब कौन मनुष्य धर्मात्मा हो सकते हैं इस वि० ॥

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (दृते) अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक जगदीश्वर वा विद्वन् जिस से (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (मा) मुझ को (सम्, ईक्षन्ताम्) सम्यक् देखें (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (सर्वाणि, भूतानि) सब प्राणियों को (समीक्षे) सम्यक् देखूं इस प्रकार सब हम लोग परस्पर (मित्रस्य) मित्र की (चक्षुषा) दृष्टि से (समीक्षामहे) देखें इस विषय में हम को (दृंह) दृढ़ कीजिये ॥ १८ ॥

भावार्थः—वे ही धर्मात्मा जन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानें किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सब का सदा सत्कार करें ॥ १८ ॥

दृते दृꣳहमेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । पादनिचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते । संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे (दृते) समग्र मोह के आवरण का नाश करने हारे उपदेशक विद्वन् वा परमेश्वर ! जिस से मैं (ते) आप के (संदृशि) सम्यक् देखने वा ज्ञान में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवें (ते) आप के (संदृशि) समान दृष्टि विषय में (ज्योक्) निरन्तर (जीव्यासम्) जीवन व्यतीत करें उस जीवन विषय में (मा) मुझ को (दृंह) दृढ़ कीजिये ॥ १९ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर की आज्ञा पालने और युक्त आहार विहार से सौ वर्ष तक जीवन का उपाय करें ॥ १९ ॥

नमस्ते हरस इत्यस्य लोपामुद्रा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिग् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना वि० ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

पदार्थः—हे भगवन् ईश्वर ! (हरसे) पाप हरने वाले (शोचिषे) प्रकाशक (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार तथा (अर्चिषे) स्तुति के योग्य (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त होवे (ते) आपकी (हेतयः) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था (अस्मत्) हम से (अन्यान्) भिन्न अन्यायी शत्रुओं को (तपन्तु) दुःख देवें आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पावकः) पवित्रकर्त्ता (शिवः) कल्याणकारी (भव) हूजिये ॥ २० ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हम लोग आप के शुभ गुण कर्म स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आप को नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते हैं कि अधर्मियों को आप की शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है इस मङ्गलस्वरूप आप की ही हम लोग उपासना करते हैं ॥ २० ॥

नमस्त इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवताः । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (भगवन्) अनन्त ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! (यतः) जिस कारण आप हमारे लिये (स्वः) सुख देने के अर्थ (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हैं इस से (विद्युते) बिजुली के समान अभिव्याप्त (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो (स्तनयित्नवे) अधिकतर गर्जने वाले विद्युत् के तुल्य दुष्टों को भय देने वाले (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो और सब की सब प्रकार रक्षा करने हारे (ते) तेरे लिये (नमः) निरन्तर नमस्कार करें ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिस कारण ईश्वर हमारे लिये

सदा आनन्द के अर्थ सब साधन उपसाधनों को देता है इस से हम को सेवा करने योग्य है ॥ २१ ॥

यतोयत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यतो॑यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु । शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे भगवन् ईश्वर ! आप अपने कृपाकटाक्ष से (यतोयतः) जिस २ स्थान से (समीहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस २ से (नः) हम को (अभयम्) भयरहित (कुरु) कीजिये (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं से और (नः) हमारे (पशुभ्यः) गौ आदि पशुओं से (शम्) सुख और (अभयम्) निर्भय (कुरु) कीजिये ॥ २२ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप जिस कारण सब में अभिव्याप्त हैं इससे हम को और दूसरों को सब कालों और सब देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिये ॥ २२ ॥

सुमित्रियेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सोमो देवता । विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कैसे पदार्थ हितकारी होते हैं इस वि० ॥

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ आप॒ ओष॑धयः सन्तु दुर्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु । यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो ये (आपः) प्राण वा जल (ओषधयः) जौ आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्र के समान वर्त्तमान (सन्तु) होवें वेही (यः) जो अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करें (च) और (यम्) जिस से (वयम्) हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये (दुर्मित्रियाः) शत्रु के तुल्य विरुद्ध (सन्तु) होवें ॥ २३ ॥

भावार्थः—जैसे अनुकूलता से जीते हुए इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देशकाल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुःखदायी होते हैं ॥ २३ ॥

तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ईश्वर की प्रार्थना का वि० ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) पूर्वकाल अर्थात् अनादि काल से (उत्, चरत्) उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म आप को (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) प्राणों को धारण करें जीवें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (शृणुयाम) शास्त्रों वा मङ्गल वचनों को सुनें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें (शतम्, शरदः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (अदीनाः) दीनतारहित (स्याम) हों (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें जीवें सुनें पढ़ें उपदेश करें और अदीन रहें ॥ २४ ॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप की कृपा और आप के विज्ञान से आप की रचना को देखते हुए आप के साथ युक्त नीरोग और सावधान हुए हम लोग समस्त इन्द्रियों से युक्त सौ वर्ष से भी अधिक जीवें सत्य शास्त्रों और आप के गुणों को सुनें वेदादि को पढ़ावें सत्य का उपदेश करें कभी किसी वस्तु के विना पराधीन न हों सदैव स्वतन्त्र हुए निरन्तर आनन्द भोगें और दूसरों को आनन्दित करें ॥ २४ ॥

इस अध्याय में परमेश्वर की प्रार्थना, सब के सुख का भान, आपस में मित्रता करने की आवश्यकता, दिनचर्य्या का शोधन, धर्म का लक्षण, अवस्था का बढ़ाना और परमेश्वर का जानना कहा है इससे इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

देवेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृद्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है इसके पहिले मन्त्र में
मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
आ द॑दे॒ नारि॑रसि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस कारण आप (नारिः) नायक (असि) हैं इस से (सवितुः) जगत् के उत्पादक (देवस्य) समस्त सुख के दाता (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशक के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम से (पूष्णः) पुष्टि-कर्त्ता जन के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) आप को (आ, ददे) अच्छे प्रकार ग्रहण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग उत्तम विद्वानों को प्राप्त हो के उन से विद्या शिक्षा ग्रहण कर इस सृष्टि में नायक हो ॥ १ ॥

युञ्जत इत्यस्य श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥
अथ योगाभ्यास का वि० ॥

यु॒ञ्जते॒ मन॑ उ॒त यु॑ञ्जते॒ धियो॒ विप्रा॒ विप्र॑स्य बृह॒तो वि॑प॒श्चितः॑ ।
वि होत्रा॑ दधे वयुना॒विदेक॒ इन्म॒ही दे॒वस्य॑ सवि॒तुः परि॑ष्टुतिः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वयुनावित्) उत्कृष्ट ज्ञानों में प्रवीण (एकः) अद्वितीय जगदीश्वर सब को (वि, दधे) रचता जिस (सवितुः) सर्वान्तर्यामी (देवस्य) समग्र जगत् के प्रकाशक ईश्वर की यह (मही) बड़ी (परिष्टुतिः) सब ओर से स्तुति प्रशंसा है (होत्राः) शुभ गुणग्रहीता (विप्राः) अनेक प्रकार की बुद्धियों में व्याप्त बुद्धिमान्

योगी जन जिस (बृहतः) सब से बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्या वाले (विप्रस्य) विशेष कर सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर के बीच (मनः) सङ्कल्प विकल्प रूप मन को (युञ्जते) समाहित करते (उत) और (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (युञ्जते) युक्त करते हैं (इत्) उसी की तुम लोग उपासना किया करो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो योगी जनों को ध्यान करने योग्य जिसकी प्रशंसा के हेतु सूर्य्य आदि दृष्टान्त वर्त्तमान हैं जो सर्वज्ञ असहायी सच्चिदानन्दस्वरूप है जिस के लिये सब धन्यवाद देने योग्य हैं उसी को इष्टदेव तुम लोग मानो ॥ २ ॥

देवीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अथ यज्ञ वि० ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

पदार्थः—(देवी) उत्तम गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्त्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो ! (अद्य) इस समय (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वाम्) तुम दोनों के (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव को मैं (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध करूं (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को और (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् सिद्ध करूं ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! इस जगत् में जैसे सूर्य भूमि उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान हैं वैसे आप लोग सब से उत्तम वर्त्तो जिस से सब सङ्गतियों का आश्रय यज्ञ पूर्ण होवे ॥ ३ ॥

देव्य इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ विदुषी स्त्री कैसी होवें इस वि० ॥

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे (प्रथमजाः) पहिले से हुई (वम्र्यः) थोड़ी अवस्था वाली (देव्यः) तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो (भूतस्य) उत्पन्न सिद्ध हुए (मखस्य) यज्ञ की सम्बन्धिनी (पृथिव्याः) पृथिवी के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वान् लोग

संगति करते हैं (अद्य) आज (वः) तुम लोगों को (शिरः) शिर के तुल्य मैं (राध्यासम्) सम्यक् सिद्ध किया करूं (मखस्य) यज्ञ का निर्माण करने वाली (त्वा) तुझ को और (मखाय, शीर्ष्णे) शिर के तुल्य वर्त्तमान यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को सम्यक् उद्यत वा सिद्ध करूं ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब तक स्त्रियां विदुषी नहीं होतीं तब तक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती है ॥ ४ ॥

इयतीत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ॥

अथ अध्यापक वि० ॥

इयत्यग्रं आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! मैं (अग्रे) पहिले (मखाय) सत्कारस्वरूप यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) संगतिकरण की (शीर्ष्णे) उत्तमता के लिये (त्वा) तुझ को (राध्यासम्) सिद्ध करूं जिस (ते) आप के (मखस्य) यज्ञ का (शिरः) उत्तम गुण (आसीत्) है उस आप को (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के बीच (इयति) इतने (देवयजने) विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थः—वे ही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सब को उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं ॥ ५ ॥

इन्द्रस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगतिजगती छन्दः ।
निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

इन्द्रस्यौज॑। स्थ मखस्य॑ वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्त पुरुष के (ओजः) पराक्रम को (राध्यासम्) सिद्ध करूं वैसे (अद्य) आज (पृथिव्याः) भूमि के (देवयजने) उस स्थान में जहां विद्वानों का पूजन होता हो (शिरः) उत्तम अवयव के समान (वः) तुम लोगों को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) शिर सम्बन्धी (मखाय) धर्मात्माओं के सत्कार के

निमित्त वचन के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) प्रिय आचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) उत्तम गुणों के प्रचारक (मखाय) शिल्प यज्ञ के विधान के लिये (त्वा) आप का (मखस्य) सत्याचरणरूप व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं (शीर्ष्णे) उत्तम (मखाय) विज्ञान की प्रकटता के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) विद्या को बढ़ाने हारे व्यवहार के सम्बन्धी (त्वा) आप को सिद्ध करूं। वैसे तुम लोग भी पराक्रमी (स्थ) होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्य्यों को करते हैं वे सब के शिरोमणि होते हैं ॥ ६ ॥

प्रैत्वित्यस्य कण्व ऋषिः। ईश्वरो देवता। निचृद्बृहतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों इस वि० ॥

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसन्देवा यज्ञं नयन्तु नः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जिस (वीरम्) सब दुःखों को हटाने वाले (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (पंक्तिराधसम्) समुदायों को सिद्ध करने वाले (यज्ञम्) सुखप्राप्ति के हेतु जन को (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हम को (नयन्तु) प्राप्त करें (ब्रह्मणः, पतिः) धन का रक्षक जन (प्र, एतु) प्रकर्षता से प्राप्त हो (सूनृता) सत्य बोलना आदि सुशीलता वाली (देवी) विदुषी स्त्री (अच्छ) (प्र, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे उस (त्वा) तुझ को (मखाय) विद्यावृद्धि के लिये (मखस्य) सुख रक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) धर्माचरण निमित्त के लिये (त्वा) आप के (मखस्य) धर्म रक्षा के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को (मखाय) सब सुख करने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सब सुख बढ़ाने वाले के सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम सुखदायी जन के लिये (त्वा) आप का आश्रय करें ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य और जो स्त्रियां स्वयं विद्यादि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त कराके विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं वे पुरुष और स्त्रियां निरन्तर आनन्दित होते हैं ॥ ७ ॥

मखस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराडतिधृतिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग विद्वान् के साथ कैसे वर्त्तें इस वि० ॥

मुखस्य शिरोऽसि मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखस्य शिरोऽसि मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखस्य शिरोऽसि मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे। मुखाय त्वा मुखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जिस कारण आप (मखाय) ब्रह्मचर्य्य आश्रम रूप यज्ञ के (शिरः) शिर के तुल्य (असि) हैं इस से (मखाय) विद्या ग्रहण के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ज्ञानसम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम व्यवहार के लिये (त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) विचाररूप यज्ञ के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) हैं इस से (मखाय) गृहस्थों के व्यवहार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आप को जिस कारण आप (मखस्य) गृहाश्रम के (शिरः) उत्तम अवयव के समान (असि) हैं इस से (मखाय) गृहस्थों के कार्य्यों को सङ्गत करने के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम शिर के समान अवयव के लिये (त्वा) आप को सेवन करें। इससे (मखाय) उत्तम व्यवहार की सिद्धि के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सत् व्यवहार की सिद्धि-सम्बन्धी (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के तुल्य वर्त्तमान होने के लिये (त्वा) आप को (मखाय) योगाभ्यास के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) सांगोपाङ्ग योग के (शीर्ष्णे) सर्वोपरि वर्त्तमान विषय के लिये (त्वा) आप को (मखाय) ऐश्वर्य देने वाले के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) ऐश्वर्य देने वाले के (शीर्ष्णे) सर्वोत्तम कार्य के लिये (त्वा) आप का हम लोग सेवन करें ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं वे दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों ॥ ८ ॥

अश्वस्येत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। विद्वान् देवता। पूर्वस्योत्तरस्य च अतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

कौन मनुष्य सुखी होते हैं इस वि० ॥

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवय-

जने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! जैसे मैं (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (देवयजने) विद्वानों के यज्ञस्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) अग्नि आदि के (शक्ना) दुर्गन्ध के निवारण में समर्थ धूम आदि से (त्वा) तुझ को (मखाय) वायु की शुद्धि करने के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) शोधक पुरुष के (शीर्ष्णे) शिर रोग की निवृत्ति के अर्थ (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच विद्वानों के (देवयजने) यज्ञस्थल में (वृष्णः) वेगवान् (अश्वस्य) घोड़े की (शक्ना) लेंडी लीद से (त्वा) तुझ को (मखाय) पृथिव्यादि के ज्ञान के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) तत्त्वबोध के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञ-सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं (पृथिव्याः) भूमि के बीच (देवयजने) विद्वानों की पूजा स्थल में (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) शीघ्रगामी अग्नि के (शक्ना) तेज आदि से (त्वा) आप को (मखाय) उपयोग के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) उपयुक्त कार्य के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) तुझ को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आप को और (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) तुझ को (धूपयामि) सम्यक् तपाता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पुनरुक्ति अधिकता जताने के अर्थ है । जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का सम्प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं ॥ ९ ॥

ऋग्वेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वांसो देवता । स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

कौन बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

ऋजवे॑ त्वा साधवे॑ त्वा सुक्षित्यै त्वा॑ । मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे । मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे । मखाय॑ त्वा मखस्य॑ त्वा शीर्ष्णे ॥ १० ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (ऋजवे) सरल स्वभाव वाले (त्वा) आपको (मखाय) विद्वानों के सत्कार के लिये (त्वा) आप को (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आपको (साधवे) परोपकार को सिद्ध करने वाले के लिये (त्वा) आपको (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आपको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) शिर के लिये (त्वा) आपको (सुक्षित्यै) उत्तम भूमि के लिये (त्वा) आपको (मखाय) यज्ञ के लिये (त्वा) आपको (मखस्य) यज्ञ के (शीर्ष्णे) उत्तम अवयव के लिये (त्वा) आपको हम लोग स्थापित करते हैं ॥ १० ॥

भावार्थः—जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥

यमायेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ सज्जन कैसे होते हैं इस वि० ॥

यमाय॑ त्वा मखाय॑ त्वा सूर्य॑स्य त्वा तप॑से । देवस्त्वा॑ सविता मध्वा॑नक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृश॑स्पाहि । अर्चिर॑सि शोचिर॑सि तपो॑ऽसि ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! (सविता) ऐश्वर्यकर्त्ता (देवः) दानशील पुरुष (मखाय) न्याय के अनुष्ठान के लिये (यमाय) नियम के अर्थ (त्वा) आपको (सूर्यस्य) प्रेरक ईश्वर-सम्बन्धी (तपसे) धर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) आपको ग्रहण करे (पृथिव्याः) भूमिसम्बन्धी (त्वा) आपको (मध्वा) मधुरता से (अनक्तु) संयुक्त करे सो आप (संस्पृशः) सम्यक् स्पर्श से (पाहि) रक्षा कीजिये जिस कारण आप (अर्चिः) तेजस्वी (असि) हैं (शोचिः) अग्नि की लपट के तुल्य पवित्र (असि) हैं और (तपः) धर्म में श्रम करने हारे (असि) हैं इससे (त्वा) आपका सत्कार करें ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुःख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं॥११॥

अनाधृष्टेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । पृथिवी देवता । स्वराडुत्कृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः । पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः । सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः । आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः । विधृतिरुपरिष्टाद्बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः । विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! तू (अनाधृष्टा) दूसरों से नहीं धमकाई हुई (पुरस्तात्) पूर्वदेश से (अग्नेः)अग्नि के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (आयुः) जीवन के हेतु अन्न को (दाः) दे (पुत्रवती) प्रशंसित पुत्रों वाली हुई (दक्षिणतः) दक्षिण देश से (इन्द्रस्य) बिजुली वा सूर्य के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (प्रजाम्) प्रजा सन्तान (दाः) दीजिये (सुषदा) जिस के सम्बन्ध में सुन्दर प्रकार स्थित हो ऐसी हुई (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य) प्रकाशमान (सवितुः) सूर्यमंडल के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (चक्षुः) नेत्र दीजिये (आश्रुतिः) अच्छे प्रकार जिसका सुनना हो ऐसी हुई तू (उत्तरतः) उत्तर से (धातुः) धारणकर्त्ता वायु के (आधिपत्ये) मालिकपन में (मे) मेरे लिये (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (दाः) दे (विधृतिः) अनेक प्रकार की धारणाओं वाली हुई (उपरिष्टात्) ऊपर से (बृहस्पतेः) बड़े २ पदार्थों के रक्षक सूत्रात्मा वायु के (आधिपत्ये) स्वामीपन में (मे) मेरे लिये (ओजः) बल (दाः) दे । जिस कारण (मनोः) मननशील अन्तःकरण की (अश्वा) व्यापिका (असि) है इस से (विश्वाभ्यः) सब (नाष्ट्राभ्यः) नष्टभ्रष्ट स्वभाव वाली व्यभिचारिणियों से (मा) मुझ को (पाहि) रक्षित कर ॥ १२ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि जीवन को जैसे बिजुली प्रजा को जैसे सूर्य देखने को धारणकर्त्ता ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशय जन बल को देता है वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देती है उस की तुम रक्षा किया करो ॥ १२ ॥

स्वाहेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । विद्वान् देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वाहा मुरुद्भिः परि श्रीयस्व। दिवः सुᳪ स्पृशस्पाहि मधु मधु मधु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे विद्वन्! आप (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (स्वाहा) सत्क्रिया (मधु) कर्म (मधु) उपासना और (मधु) विज्ञान का (श्रीयस्व) सेवन कीजिये तथा (संस्पृशः) सम्यक् स्पर्श करने वाली (दिवः) प्रकाशरूप बिजुली से हमारी (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा कीजिये ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो लोग पूर्ण विद्वानों के साथ कर्म उपासना और ज्ञान की विद्या तथा उत्तम क्रिया को ग्रहण कर सेवन करते हैं वे सब ओर से रक्षा को प्राप्त हुए बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

गर्भ इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। ईश्वरो देवता। भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

अब ईश्वर की उपासना का वि० ॥

गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम्। सं देवो देवेन सवित्रा गत सᳪ सूर्येण रोचते ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (देवानाम्) विद्वानों वा पृथिवी आदि तेंतीस देवों के (गर्भः) बीच स्थित व्याप्य (मतीनाम्) मननशील बुद्धिमान् मनुष्यों के (पिता) पिता के तुल्य (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए पदार्थों का (पतिः) रक्षक स्वामी (देवः) स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा (सवित्रा) उत्पत्ति के हेतु (देवेन) (सूर्येण) प्रकाशक विद्वान् के साथ (सम्, रोचते) सम्यक् प्रकाशित होता है उस को तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥ १४ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जो सब का उत्पन्न करने हारा पिता के तुल्य रक्षक प्रकाशक सूर्यादि पदार्थों का भी प्रकाशक सर्वत्र अभिव्याप्त जगदीश्वर है उसी पूर्ण परमात्मा की सदैव उपासना किया करें ॥ १४ ॥

समग्निरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्ब्राह्म्यनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवे॑न सवि॒त्रा सᳪ सूर्ये॑णारोचिष्ट।

स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा सꣳ सूर्येणारुचत ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अग्निना) स्वयं प्रकाश जगदीश्वर से (अग्निः) प्रकाशक अग्नि (दैवेन) ईश्वर ने बनाये (सवित्रा) प्रेरक (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) (अरोचिष्ट) सम्यक् प्रकाशित होता है इस परमात्मा को तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सम्, गत) सम्यक् जानो और जो (अग्निः) प्रकाशक ईश्वर (दैव्येन) पृथिवी आदि में हुए (सवित्रा) ऐश्वर्य का कारक (सूर्येण) प्रेरक (तपसा) धर्मानुष्ठान से (सम्, अरुरुचत) सम्यक प्रकाशित होता है उसको तुम लोग (सम्, गत) सम्यक् प्राप्त होओ ॥ १५ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के उत्पादक के उत्पादक सूर्य के सूर्य परमात्मा को विशेष कर जानें उन के लिये इस लोक परलोक के सुख सम्यक् प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

धर्त्तेत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

धर्त्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः । वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (पृथिव्याम्) आकाश में (तपसः) सब को तपाने वाले (दिवः) प्रकाशमय सूर्य आदि का (धर्त्ता) धारणकर्त्ता जो (तपोजाः) तप से प्रकट होने वाला (अमर्त्यः) मरण धर्म रहित (देवः) प्रकाशस्वरूप (देवानाम्) पृथिव्यादि तेंतीस देवों का (धर्त्ता) धारणकर्त्ता जगदीश्वर (वि, भाति) विशेष कर प्रकाशित होता है उसके विज्ञान से (अस्मे) हमारे लिये (देवायुवम्) दिव्य गुण वाले पृथिव्यादि वा विद्वानों को सङ्गत करने वाली (वाचम्) वाणी को (नि, यच्छ) निरन्तर दीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जो परमेश्वर सब का धर्त्ता प्रकाशक तप से विशेष कर जानने योग्य है उस को जानने वाली विद्या को हमारे लिये देओ ॥ १६ ॥

अपश्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

ईश्वर के उपासक कैसे होते हैं इस वि० ॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् । स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मैं जिस (पथिभिः) शुद्ध ज्ञान के मार्गों से (आ, चरन्तम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हुए (परा) पर भाग में भी प्राप्त होते हुए (अनिपद्यमानम्) अचल (गोपाम्) रक्षक जगदीश्वर को (अपश्यम्) देखूं (स, च) वह भी (सध्रीचीः) साथ वर्त्तमान दिशाओं (च) और (सः) वह (विषूचीः) व्याप्त उपदिशाओं को (वसानः) आच्छादित करने वाला हुआ (भुवनेषु) लोक लोकान्तरों के (अन्तः) बीच (आ, वरीवर्त्ति) अच्छे प्रकार सब का आवरण करता वा वर्त्तमान है ॥ १७ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब लोकों में अभिव्यापि अन्तर्यामिरूप से प्राप्त अधर्मी अविद्वान् और अयोगि लोगों के न जानने योग्य परमात्मा को जानकर अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वे सब धर्मयुक्त मार्गों को प्राप्त होकर शुद्ध होते हैं ॥ १७ ॥

विश्वासामित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अत्यष्टिश्छन्दः ।

गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विश्वा॑सां भुवां पते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते देवश्रुत्त्वन्दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॒ प्रावी॑रनु॒ वान्दे॒ववी॑तये । मधु॒ माध्वी॑भ्यां॒ मधु॒ माधू॑चीभ्याम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (विश्वासाम्) सब (भुवाम्) पृथिवियों के (पते) स्वामिन् (विश्वस्य) सब (मनसः) संकल्प विकल्प आदि वृत्तियुक्त अन्तःकरण के (पते) रक्षक (विश्वस्य) समस्त (वचसः) वेदवाणी के पते पालक (सर्वस्य) संपूर्ण वचनमात्र के (पते) रक्षक (धर्म) प्रकाशक (देव) सब सुखों के दाता जगदीश्वर ! (देवश्रुत्) विद्वानों को सुननेहारे (देवः) रक्षक हुए (त्वम्) आप (अत्र) इस जगत् में (देवान्) धार्मिक विद्वानों को (पाहि) रक्षा कीजिये (माध्वीभ्याम्) मधुरादि गुणयुक्त विद्या और उत्तम शिक्षा के (मधु) मधुर विज्ञान को (प्र, अवीः) प्रकर्ष के साथ दीजिये (माधूचीभ्याम्) विष को विनाशने वाली मधुविद्या को प्राप्त होने वाले अध्यापक उपदेशकों के साथ (देववीतये) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये विद्वानों की (अनु) अनुकूल रक्षा कीजिये इस प्रकार हे अध्यापक उपदेशको ! (वाम्) तुम्हारे लिये मैं उपदेश को करूं ॥ १८ ॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग सब देव आत्मा और मनों के स्वामी सब सुनने वाले सब के रक्षक परमात्मा को जान और उत्तम सुख को प्राप्त होकर दूसरों को सुख प्राप्त करो ॥ १८ ॥

हृदे त्वेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जिस (हृदे) हृदय की चेतनता के लिये (त्वा) आप को (मनसे) विज्ञानवान् अन्तःकरण होने के अर्थ (त्वा) आपको (दिवे) विद्या के प्रकाश वा विद्युत् विद्या की प्राप्ति के लिये (त्वा) आपको (सूर्याय) सूर्यादि लोकों के ज्ञानार्थ (त्वा) आपका हम लोग ध्यान करें सो (ऊर्ध्वः) सब से उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानों में (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ का (धेहि) प्रचार कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्यभाव से आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि के लिये और सृष्टिविद्या के अर्थ ईश्वर की उपासना करते हैं उनका वह कृपालु ईश्वर विद्या और धर्म के दान से सब दुःखों से उद्धार करता है ॥ १६ ॥

पिता न इत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । निचृदतिजगती छन्दः ॥ निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः । त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान्पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहꣳ सहपत्या भूयासम् ॥ २० ॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप (नः) हमारे (पिता) पिता के समान (असि) हैं (पिता) राजा के तुल्य रक्षक हुए (नः) हमको (बोधि) बोध कराइये (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे आप (मा) मुझ को (मा, हिंसीः) मत हिंसायुक्त कीजिये (त्वष्टृमन्तः) बहुत स्वच्छ प्रकाशरूप पदार्थों वाले हम (त्वा) आप से (सपेम) सम्बन्ध करें । आप (पुत्रान्) पवित्र गुण कर्म स्वभाव वाले सन्तानों को तथा (पशून्) गौ आदि पशुओं को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कीजिये तथा (अस्मासु) हम में (प्रजाम्) प्रजा को (धेहि) धारण कीजिये जिससे (अहम्) मैं (अरिष्टा) अहिंसित हुई (सहपत्या) पति के साथ (भूयासम्) होऊं ॥ २० ॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप हमारे पिता स्वामी बन्धु मित्र और रक्षक हैं इस

से आपकी हम निरन्तर उपासना करते हैं हे स्त्रियो ! तुम परमेश्वर ही की उपासना नित्य किया करो जिससे सब सुखों को प्राप्त होओ ॥ २० ॥

अहः केतुनेत्यस्याथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अहः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषताᳬ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा विदुषी स्त्रि ! आप (स्वाहा) सत्य क्रिया से (केतुना) उत्कट ज्ञान वा जागृत अवस्था से और (ज्योतिषा) सूर्यादि वा धर्मादि के प्रकाश से (अहः सुज्योतिः) दिन और विद्या को (जुषताम्) सेवन कीजिये (स्वाहा) सत्यवाणी (केतुना) बुद्धि वा सुन्दर कर्म और (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर ज्योति युक्त रात्रि हमको (जुषताम्) सेवन करे ॥ २१ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष दिन के सोने और रात्रि के अति जागने को छोड़ युक्त आहार विहार करने हारे ईश्वर की उपासना में तत्पर होवें उन को दिन रात सुखकर वस्तु प्राप्त होती है इससे जैसे बुद्धि बढ़े वैसा अनुष्ठान करना चाहिये ॥ २१ ॥

इस अध्याय में ईश्वर, योगी, सूर्य, पृथिवी, यज्ञ, सन्मार्ग, स्त्री पति और पिता के तुल्य वर्त्तमान परमेश्वर का वर्णन तथा युक्त आहार विहार का अनुष्ठान कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

१४८

ओ३म् ॥

अथाऽष्टत्रिंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥ १ ॥

देवस्येत्यस्याथर्वण ऋषिः । सविता देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥
अब अड़तीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में स्त्री को कैसी
होना चाहिये इस वि० ॥

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
आद॑दे॒ऽदित्यै॑ रास्ना॑सि ॥ १ ॥

पदार्थः—हे विदुषि स्त्री ! जिस कारण तू (अदित्यै) नाशरहित नीति के लिये (रास्ना) दानशील (असि) है इस से (सवितुः) समस्त जगत् के उत्पादक (देवस्य) कामना के योग्य परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न होने वाले जगत् में (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के (बाहुभ्याम्) बल पराक्रम के तुल्य बाहुओं से (पूष्णः) पोषक वायु के (हस्ताभ्याम्) गमन और धारण के समान हाथों से (त्वा) तुझ को (आ, ददे) ग्रहण करूं ॥ १ ॥

भावार्थः—हे स्त्री ! जैसे सूर्य्य भूगोलों का, प्राण शरीर का और अध्यापक उपदेशक सत्य का ग्रहण करते हैं वैसे ही तुझ को मैं ग्रहण करता हूं तू निरन्तर अनुकूल सुख देने वाली हो ॥ १ ॥

इड इत्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥
स्त्री पुरुष कैसे विवाह करें इस वि० ॥

इड॒ एह्यदि॑त॒ एहि॒ सर॑स्व॒त्येहि॑ । असा॒वेह्यसा॒वेह्यसा॒वेहि॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे (इडे) सुशिक्षित वाणी के तुल्य स्त्रि ! तू मुझ को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को प्राप्त हो उसको तू (एहि) प्राप्त हो । हे (अदिते) अखण्डित आनन्द देने वाली ! तू अखण्डित आनन्द को (एहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह तुझ को अखण्डित आनन्द देवे उस को (एहि) प्राप्त हो । हे (सरस्वति) प्रशस्त विज्ञान

युक्त स्त्रि ! तू विद्वान् को (पहि) प्राप्त हो जो (असौ) वह सुशिक्षक हो उस को (पहि) प्राप्त हो ॥ २ ॥

भावार्थः—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री और पुरुष के धर्म और आचरण को जान कर ही करें ॥ २ ॥

अदित्यै इत्यस्याथर्वण ऋषिः । पूषा देवता । भुरिक्साम्नी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

स्त्री को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे कन्ये ! जो तू (अदित्यै) नित्य विज्ञान के (रास्ना) देने वाली (असि) है (इन्द्राण्यै) परमैश्वर्य करने वाली नीति के लिये (उष्णीषः) शिरोवेष्टन पगड़ी के तुल्य (पूषा) भूमि के सदृश पोषण करने हारी (असि) है सो तू (घर्माय) प्रसिद्ध अप्रसिद्ध सुख देने वाले यज्ञ के लिये (दीष्व) दान कर ॥ ३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०-हे स्त्रि ! जैसे पगड़ी आदि वस्त्र सुख देने वाले होते हैं वैसे तू पति के लिये सुख देने वाली हो ॥ ३ ॥

अश्विभ्यामित्यस्याथर्वण ऋषिः । सरस्वती देवता । आर्ची पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व । स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत्स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

भावार्थः—हे विदुषि स्त्रि ! तू (इन्द्रवत्) परम ऐश्वर्ययुक्त वस्तु को ग्रहण कर (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अश्विभ्याम्) सूर्य्य चन्द्रमा के लिये (पिन्वस्व) तृप्त हो (इन्द्रवत्) चेतना के गुणों से संयुक्त शरीर को पाकर (स्वाहा) सत्यवाणी से (सरस्वत्यै) सुशिक्षित वाणी के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो (इन्द्रवत्) विद्युत् विद्या को जानकर (स्वाहा) सत्यता से (इन्द्राय) परमोत्तम ऐश्वर्य के लिये (पिन्वस्व) संतुष्ट हो ॥ ४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष विद्युत् आदि विद्या से ऐश्वर्य की उन्नति करें वे सुख को भी प्राप्त होवें ॥ ४ ॥

यस्त इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वाग् देवता । निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे (सरस्वति) बहुत विज्ञान वाली स्त्रि! (यः) जो (ते) तेरा (शशयः) जिस के आश्रय से बालक सोवे वह (स्तनः) दूध का आधार थन तथा (यः) जो (मयोभूः) सुख सिद्ध करने हारा (यः) जो (रत्नधाः) उत्तम २ गुणों का धारणकर्त्ता (वसुवित्) धनों को प्राप्त होने वाला और (यः) जो (सुदत्रः) सुन्दर दान देने वाला पति कि (येन) जिस के आश्रय से (विश्वा) सब (वार्य्याणि) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उस को (इह) इस संसार में वा घर में (धातवे) धारण करने वा दूध पिलाने को नियत (अकः) कर । उस से मैं (उरु) अधिकतर (अन्तरिक्षम्) आकाश का (अन्वेमि) अनुगामी होऊं ॥ ५ ॥

भावार्थः—जो स्त्री न होवे तो बालकों की रक्षा होना भी कठिन होवे जिस स्त्री से पुरुष बहुत सुख और पुरुष से स्त्री भी अधिकतर आनन्द पावे वे ही दोनों आपस में विवाह करें ॥ ५ ॥

गायत्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर भी स्त्री पुरुष का कैसा सम्बन्ध हो इस वि० ॥

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिगृह्णाम्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुष ! जैसे आप (गायत्रम्) गायत्री छन्द से प्रकाशित (छन्दः) स्वतन्त्र आनन्दकारक अर्थ के समान हृदय को प्रिय स्त्री को प्राप्त (असि) हैं (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुप्छन्द से व्याख्यात हुए (छन्दः) स्वतन्त्र अर्थमात्र के समान प्रशंसित पत्नी को प्राप्त हुए (असि) हैं वैसे मैं (त्वा) तुम को देखकर (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य भूमि से अति शोभायमान प्रिया स्त्री को (परि, गृह्णामि) सब ओर से स्वीकार करता हूं और (अन्तरिक्षेण) हाथ में जल लेकर प्रतिज्ञा कराई हुई को (उप, यच्छामि) स्त्रीत्व के साथ ग्रहण करता हूं । हे (अश्विना) प्राण अपान के तुल्य कार्य्यसाधक स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी वैसे ही वर्त्ता करो । हे (वसवः) पृथिवी वसुओं के तुल्य प्रथम

कक्षा के विद्वानो ! तुम लोग (स्वाहा) सत्य क्रिया से (मधुनः, सारघस्य) मक्खियों ने बनाये मधुरादि गुणयुक्त शहद और (घर्मम्) सुख पहुंचाने वाले यज्ञ की (पात) रक्षा करो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (वृष्टिवनये) वर्षा का विभाग करने वाले (रश्मये) संशोधक किरण के लिये (वाट्) अच्छे प्रकार (यजत) संगत होओ ॥ ६ ॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०-जैसे शब्दों का अर्थों के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध, सूर्य्य के साथ पृथिवी का, किरणों के साथ वर्षा का, यज्ञ के साथ यजमान और ऋत्विजों का सम्बन्ध है वैसे ही विवाहित स्त्रीपुरुषों का सम्बन्ध होवे ॥ ६ ॥

समुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । वातो देवता । भुरिगुष्णिक्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर विवाह किये स्त्रीपुरुष क्या करें इस वि० ॥

स॒मु॒द्राय॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ । स॒रि॒राय॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ । अ॒ना॒धृ॒ष्याय॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ । अ॒प्र॒ति॒धृ॒ष्याय॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ । अ॒व॒स्यवे॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ । अ॒शि॒मि॒दाय॑ त्वा॒ वाता॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्यक्रिया से (समुद्राय) आकाश में चलने के अर्थ (वाताय) वायुविद्या वा वायु के शोधन के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सरिराय) जल के तथा (वाताय) घर के वायु के शोधने के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यवाणी से (अनाधृष्याय) भय और धमकाने से रहित होने के लिये तथा (वाताय) ओषधिस्थ वायु के जानने को (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्य वाणी वा क्रिया से (अप्रतिधृष्याय) नहीं धमकाने योग्यों के प्रति वर्त्तमान के अर्थ (वाताय) वायु के वेग की गति जानने के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अवस्यवे) अपनी रक्षा चाहने वाले के अर्थ तथा (वाताय) प्राणशक्ति को विशेष जानने के लिये (त्वा) तुझ को और (स्वाहा) सत्यक्रिया से (अशिमिदाय) भोग्य अन्न जिस में स्नेह करने वाला है उस रस और (वाताय) उदान वायु के लिये (त्वा) तुझ को समीप स्वीकार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र में से (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । विवाह किये हुए स्त्री पुरुष सृष्टिविद्या की उन्नति के लिये प्रयत्न किया करें ॥ ७ ॥

इन्द्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा। सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्वदेव्यावते स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! मैं (स्वाहा) सत्यवाणी से (वसुमते) बहुत धनयुक्त (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य वाले सन्तान के अर्थ (त्वा) तुझ को (स्वाहा) उत्तम क्रिया से (आदित्यवते) समस्त विद्याओं की पण्डिताई से युक्त (रुद्रवते) बहुत प्राणों के बल वाले (इन्द्राय) दुःखनाशक सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्य वाणी से (अभिमातिघ्ने) शत्रुओं को मारने वाले (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य देने वाले सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सवित्रे) सूर्यविद्या के ज्ञाता (ऋभुमते) अनेक बुद्धिमानों के साथी (विभुमते) विभु आकाशादि पदार्थों को जिसने जाना है (वाजवते) पुष्कल अन्न वाले सन्तान के अर्थ (त्वा) तुझ को और (स्वाहा) सत्य-वाणी से (बृहस्पतये) बड़ी वेदरूप वाणी के रक्षक (विश्वदेव्यावते) समस्त विद्वानों के हितकारी पदार्थों वाले सन्तान के लिये (त्वा) तुझ को ग्रहण करता वा करती हूं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) इन पदों की अनुवृत्ति आती है । जो स्त्री पुरुष पृथिवी आदि वसुओं और चैत्रादि महीनों से अपने ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे विघ्नों को नष्ट कर बुद्धिमान् सन्तानों को प्राप्त होकर सब की रक्षा करने को समर्थ होते हैं ॥ ८ ॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आयुर्देवता । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा घर्माय । स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! (घर्मः) यज्ञ के तुल्य प्रकाशमान मैं (स्वाहा) सत्य-वाणी से (अङ्गिरस्वते) विद्युत् आदि विद्या जानने वाले (यमाय) न्यायाधीश के अर्थ (पितृमते) रक्षक ज्ञानी जनों से युक्त सन्तान के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया से (घर्माय) यज्ञ के लिये और (स्वाहा) सत्यक्रिया से (पित्रे) रक्षक के लिये (त्वा) तुझ को स्वीकार करती वा करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में भी (उप, यच्छामि) पदों की अनुवृत्ति आती है। जो स्त्री पुरुष प्राण के तुल्य न्याय, पितरों और विद्वानों का सेवन करें वे यज्ञ के तुल्य सब को सुखकारी होवें ॥ ९ ॥

आश्रा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवते। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर अध्यापक उपदेशक क्या करें इस वि० ॥

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह। स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक उपदेशक लोगो ! तुम (इह) इस जगत् में (स्वाहाकृतस्य) सत्य क्रिया से सिद्ध हुए (घर्मस्य, मधोः) मधुरादि गुणयुक्त यज्ञ के अवशिष्ट भाग को (पिबतम्) पिओ जैसे यह (दक्षिणसत्) वेदी से दक्षिण दिशा में बैठने वाला आचार्य (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं तथा (विश्वान्) समस्त (देवान्) उत्तम गुणों वा विद्वानों का (अयाट्) संग वा सेवन पूजन करे ॥ १० ॥

भावार्थः—जैसे उपदेशक शिक्षा करें और अध्यापक पढ़ावें वैसे ही सब लोग ग्रहण करें ॥ १० ॥

दिवि धा इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवता। विराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः। स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! वा पुरुष ! तू (यजुर्भ्यः) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों से (स्वाहा) सत्यक्रिया के साथ (अग्नये) (यज्ञियाय) यज्ञकर्म के योग्य अग्नि के लिये (दिवि) सूर्यादि के प्रकाश में (इमम्) इस (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को (शम्) सुखपूर्वक (धाः) धारण कर (दिवि) विज्ञान के प्रकाश में (इमम्) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी (यज्ञम्) विद्वानों के सङ्गरूप यज्ञ को सुखपूर्वक (धाः) धारण कर ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्यायुक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर वेद-रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥ ११ ॥

अश्विनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । आर्ची पङ्क्तिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः। तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सुशिक्षित स्त्रीपुरुषो ! तुम (अहः) प्रतिदिन (दिवाभिः) दिनरात वर्त्तमान (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं से (तन्त्रायिणे) शिल्पविद्या के शास्त्रों को जानने वा प्राप्त होने के लिये (हार्द्वानम्) हृदय को प्राप्त हुए ज्ञानसम्बन्धी (घर्मम्) यज्ञ की (पातम्) रक्षा करो और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और आकाश के सम्बन्ध से शिल्प-शास्त्रज्ञ पुरुष के लिये (नमः) अन्न को देओ ॥ १२ ॥

भावार्थः—जैसे भूमि और सूर्य परस्पर उपकारी हुए साथ वर्त्तमान हैं वैसे मित्रभाव से युक्त स्त्रीपुरुष निरन्तर वर्त्ता करें ॥ १२ ॥

अपातामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अश्विनौ देवते । त्रिष्टुबुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमꣳसाताम् । इहैव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सुन्दर रीति से वर्त्तमान स्त्री पुरुषो ! तुम वायु और बिजुली के तुल्य (घर्मम्) गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान की (अपाताम्) रक्षा करो (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि के समान गृहाश्रम व्यवहार के अनुष्ठान का (अनु, अमंसाताम्) अनुमान किया करो जिस से कि (इह) इस गृहाश्रम में (रातयः) विद्यादिजन्य सुखों के दान (एव) ही (सन्तु) होवें ॥ १३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु और बिजुली तथा सूर्य और भूमि साथ वर्त्तकर सुख देते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति के साथ वर्त्तमान हुए सब के लिये अतुल सुख देवें ॥ १३ ॥

इषपिन्वस्वेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । द्यावापृथिवी देवते । अतिशक्करी छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥
फिर उसी वि० ॥

इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व

द्यावा॑पृथि॒वीभ्यां॒ पि॑न्वस्व। धर्मा॑सि सु॒धर्मामे॑न्यस्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय ॥ १४ ॥

पदार्थः—हे (धर्म) सत्य के धारक (सुधर्म) सुन्दर धर्मयुक्त पुरुष वा स्त्रि ! तू (अमेनि) हिंसा धर्म से रहित (असि) है जिससे (अस्मे) हमारे लिये (नृम्णानि) धनों को (धारय) धारण कर (ब्रह्म) वेद वा ब्राह्मण को (धारय) धारण कर (क्षत्रम्) क्षत्रिय वा राज्य को (धारय) धारण कर (विशम्) प्रजा को (धारय) धारण कर उससे (इषे) अन्नादि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ऊर्जे) बल आदि के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (ब्रह्मणे) वेद विज्ञान परमेश्वर वा वेदज्ञ ब्राह्मण के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर (क्षत्राय) राज्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर और (द्यावापृथिवीभ्याम्) भूमि और सूर्य के लिये (पिन्वस्व) सेवन कर ॥ १४ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष अहिंसक धर्मात्मा हुए आप ही धन, विद्या, राज्य और प्रजा को धारण करें वे अन्न, बल, विद्या और राज्य को पाकर भूमि और सूर्य के तुल्य प्रत्यक्ष सुख वाले होवें ॥ १४ ॥

स्वाहा पूष्ण इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। पूषादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराड् जगती छन्दः। निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रतिर॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिर्भ्यो घर्म॒पावे॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ ॥ १५ ॥

पदार्थः—स्त्री पुरुषों को योग्य है कि (पूष्णे) पुष्टिकारक (शरसे) हिंसक के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया अर्थात् अधर्म से बचाने का उपाय (प्रतिरवेभ्यः) शब्द के प्रति शब्द कहने हारों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (ग्रावभ्यः) गर्जने वाले मेघों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यः) उत्तम कक्षा तक पढ़े हुए (घर्मपावभ्यः) यज्ञ से संसार को पवित्र करने हारे (पितृभ्यः) रक्षक ऋतुओं के तुल्य वर्त्तमान सज्जनों के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और आकाश के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (विश्वेभ्यः) पृथिव्यादि वा विद्वानों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया वा सत्यवाणी का सदा प्रयोग किया करें ॥ १५ ॥

१४६

भावार्थः—स्त्री पुरुषों को चाहिये कि सत्यविज्ञान और सत्यक्रिया से ऐसा पुरुषार्थ करें जिस से सब को पुष्टि और आनन्द होवे ॥ १५ ॥

स्वाहा रुद्रायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । रुद्रादयो देवताः । भुरिगतिधृतिश्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः । अहः केतुना जुषताᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषताᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । मधु हुतमिन्द्रतमे अग्नावश्याम ते देव घर्म नमस्ते अस्तु मा मा हिᳪंसीः ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे स्त्रि वा पुरुष ! आप (केतुना) बुद्धि से (रुद्रहूतये) प्राण वा जीवों की स्तुति करने वाले (रुद्राय) जीव के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी से (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (ज्योतिः) प्रकाश को (स्वाहा) सत्यक्रिया से युक्त (ज्योतिषा) सत्यविद्या के उपदेश रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) सुन्दर विद्यादि सद्गुणों के प्रकाश तथा (अहः) दिन को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (सम्, जुषताम्) सम्यक् सेवन करो (केतुना) संकेतरूप चिन्ह और (ज्योतिषा) मन्त्रादि रूप प्रकाश के साथ (सुज्योतिः) धर्मादि रूप सद्गुणों के प्रकाश और (रात्रिः) रात्रि को (स्वाहा) सत्यक्रिया से (जुषताम्) सेवन करो । हे (घर्म) प्रकाशमान (देव) विद्वान् जन जिससे (ते) आप के लिये (इन्द्रतमे) अतिशय ऐश्वर्य हेतु के विद्युद्रूप (अग्नौ) अग्नि में (हुतम्) होम किये (मधु) मधुरादि गुणयुक्त घृतादि पदार्थ को प्राण द्वारा (अश्याम) प्राप्त होवें (ते) आपके लिये (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त हो आप (मा) मुझ को (मा) मत (हिंसीः) मारिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि प्राण जीवन और समाज की रक्षा के लिये विज्ञान के साथ कर्म और दिन रात्रि का युक्ति से सेवन करें और प्रतिदिन प्रातः सायंकाल में कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत को अग्नि में होम कर वायु आदि की शुद्धि द्वारा नित्य आनन्दित होवें ॥ १६ ॥

अग्नेमेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अ॒ग्नीमं म॑हि॒मा दि॒वं विप्रो॑ बभूव स॒प्रथाः॑ । उ॒त श्रव॑सा पृथि॒वीᳬ सᳬ सी॑दस्व म॒हाँ२॥ अ॑सि॒ रोच॑स्व देव॒वीत॑मः । वि धू॒मम॑ग्ने अरु॒षं मि॑येध्य सृ॒ज प्र॑शस्त द॒र्श॑तम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे (प्रशस्त) प्रशंसा को प्राप्त (मियेध्य) दुष्टों को दूर करने हारे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान तेजस्वी विद्वन् ! (महिमा) महागुणविशिष्ट (सप्रथाः) प्रसिद्ध उत्तम कीर्त्ति वाले (विप्रः) बुद्धिमान् आप (इमम्) इस (दिवम्) अविद्यादि गुणों के प्रकाश को (अभि, बभूव) तिरस्कृत करते हैं (उत) और (श्रवसा) सुनने वा अन्न के साथ (पृथिवीम्) भूमि पर (सम्, सीदस्व) सम्यक् बैठिये जिस कारण (देववीतमः) दिव्य गुणों वा विद्वानों को अतिशय कर प्राप्त होने वाले (महान्) महात्मा (असि) हैं जिससे (रोचस्व) सब ओर से प्रसन्न हूजिये और (अरुषम्) थोड़े लाल रंग से युक्त इसी से (दर्शतम्) देखने योग्य (धूमम्) धुएं को होम द्वारा (वि, सृज) विशेष कर उत्पन्न कीजिये ॥ १७ ॥

भावार्थः—यही मनुष्यों की महिमा है जो ब्रह्मचर्य के साथ विद्या को प्राप्त हो सर्वत्र फैलाकर शुभ गुणों का प्रचार करके सृष्टिविद्या की उन्नति करते हैं ॥ १७ ॥

यात इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । भुरिगाकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस वि० ॥

या ते॑ घर्म दि॒व्या शुग्या गा॑य॒त्र्याᳬ ह॑वि॒र्धाने॑ । सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ । या ते॑ घर्मा॒न्तरि॑क्षे शुग्या त्रि॒ष्टुभ्या॒ग्नीध्रे॑ । सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ । या ते॑ घर्म पृथि॒व्याᳬ शुग्या जग॑त्याᳬ सद॒स्या᳖ । सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥ १८ ॥

पदार्थः—हे (घर्म) प्रकाशस्वरूप विद्वन् वा विदुषी स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (गायत्र्याम्) पढ़ने वालों की रक्षक विद्या और (हविर्धाने) होमने योग्य पदार्थों के धारण में (शुक्) विचार की साधनरूप क्रिया और (या) जो (दिव्या) दिव्य गुणों में हुई क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) सब ओर से बढ़े और (नि, ष्ट्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे । हे (घर्म) दिन के तुल्य प्रकाशित विद्या वाले जन ! वा स्त्रि ! (या) जो (ते) तेरी (अन्तरिक्षे) आकाश विषय में (शुक्) सूर्य्य की दीप्ति

के समान विमानादि की गमन क्रिया और (या) जो (अग्नीध्रे) अग्नि के आश्रय में तथा (त्रिष्टुभि) त्रिष्टुप्छन्द से निकले अर्थ में विचार रूप क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (नि, स्त्यायताम्) निरन्तर संयुक्त होवे (तस्यै) उस क्रिया और (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे । हे (घर्म) बिजुली के प्रकाश के तुल्य वर्त्तमान स्त्रि वा पुरुष ! (या) जो (ते) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर और (या) जो (सदस्या) सभा में हुई (जगत्याम्) चेतन प्रजायुक्त सृष्टि में (शुक्) प्रकाशयुक्त क्रिया है (सा) वह (ते) तेरी (आ, प्यायताम्) बढ़े और (नि, स्त्यायताम्) निरन्तर सम्बद्ध होवे (तस्यै) उस क्रिया तथा (ते) तेरे लिये (स्वाहा) सत्यवाणी होवे ॥ १८ ॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष दिव्य क्रिया शुद्ध उपासना और पवित्र विज्ञान को पाकर प्रकाशित होते हैं वे ही मनुष्यजन्म के फल से युक्त होते हैं औरों को भी वैसा ही करें ॥ १८ ॥

क्षत्रस्येत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृदुपरिष्टाद्बृहती छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

अब राजा और प्रजा क्या करें इस वि० ॥

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि । विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥ १९ ॥

पदार्थः—हे राजन् वा राणि ! आप (परस्पाय) जिस कर्म से दूसरों की रक्षा हो इस के लिये (क्षत्रस्य) क्षत्रिय कुल वा राज्य के तथा (ब्राह्मणः) वेदवित् ब्राह्मणकुल के सम्बन्धी (त्वा) आप के (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा किये जैसे (वयम्) हम लोग (नव्यसे) नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (धर्मणा) धर्म के साथ (अनुक्रामाम) अनुकूल चलें वैसे ही धर्म के साथ वर्त्तमान (त्वा) आपके अनुकूल (विशः) प्रजाजन चलें ॥ १९ ॥

भावार्थः—राजा और राजपुरुषों को योग्य है कि धर्म के साथ विद्वानों और प्रजाजनों की रक्षा करें । वैसे ही प्रजा और राजपुरुषों को चाहिये कि राजा की सदैव रक्षा करें । इस प्रकार न्याय तथा विनय के साथ वर्त्तकर राजा नवीन २ ऐश्वर्य की उन्नति किया करें ॥ १९ ॥

चतुःस्रक्तिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥ २० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (चतुः स्रक्तिः) चार कोन वाली (नाभिः) नाभि मध्यमार्ग के तुल्य निष्पन्न (सप्रथाः) विस्तार के साथ वर्त्तमान सत्पुरुष (अन्यव्रतस्य) दूसरे सब जगत् की रक्षा करने स्वभाव वाले (ऋतस्य) सत्यस्वरूप परमात्मा की सेवा करता (सः) वह (सप्रथाः) विस्तृत कार्य्यों वाला (विश्वायुः) संपूर्ण आयु से युक्त पुरुष (नः) हम लोगों को बोधित करे (सः) वह (सप्रथाः) अधिक सुखी (सर्वायुः) समग्र अवस्था वाला पुरुष (नः) हम को ईश्वरसम्बन्धी विद्या का ग्रहण करावे जिससे हम लोग (द्वेषः) द्वेषी शत्रुओं को (अप, सश्चिम) दूर पहुंचावें और (ह्वरः) कुटिल जनों को (अप) पृथक् करें । वैसे तुम लोग भी करो ॥ २० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे रस को प्राप्त हुई नाभि रस को उत्पन्न कर शरीर के अवयवों को पुष्ट करती वैसे सेवन किये विद्वान् वा उपासना किया परमेश्वर द्वेष और कुटिलतादि दोषों को निवृत्त करा कर सब जीवों की रक्षा करते वा करता है उन विद्वानों और उस परमेश्वर की निरन्तर सेवा करनी चाहिये ॥ २० ॥

घर्मैतदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्धस्व चा च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥

पदार्थः—हे (घर्म) अत्यन्त पूजनीय सब ओर से प्रकाशमय जगदीश्वर ! वा विद्वान् जो (एतत्) यह (ते) आपका (पुरीषम्) व्याप्ति वा पालन है (तेन) उस से आप (वर्द्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये (च) और दूसरों को बढ़ाइये । आप स्वयं (आ,प्यायस्व) पुष्ट हूजिये (च) और दूसरों को पुष्ट कीजिये, आप की कृपा वा शिक्षा से जैसे हम लोग (वर्द्धिषीमहि) पूर्ण वृद्धि को पावें (च) और वैसे ही दूसरों को बढ़ावें (च) और हम लोग (आ, प्यासिषीमहि) सब ओर से बढ़ें वैसे दूसरों को निरन्तर पुष्ट करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ २१ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सर्वत्र अभिव्याप्त

ईश्वर ने सब की रक्षा वा पुष्टि की है वैसे ही बढ़े हुए पुष्ट हम लोगों को चाहिये कि सब जीवों को बढ़ावें और पुष्ट करें ॥ २१ ॥

अचिक्रददित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । परोष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः । सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृषा) वर्षा का निमित्त (हरिः) शीघ्र चलने वाला (महान्) सब से बड़ा (अचिक्रदत्) शब्द करता हुआ (मित्रः) मित्र के तुल्य (दर्शतः) देखने योग्य (सूर्येण) सूर्य के साथ (उदधिः, निधिः) जिस में पदार्थ रक्खे जाते तथा जिस में जल इकट्ठे होते उस समुद्र वा आकाश में (सम्, दिद्युतत्) सम्यक् प्रकाशित होता है वही बिजुली रूप अग्नि सबको कार्य में लाने योग्य है ॥ २२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०–हे मनुष्यो ! जैसे बैल वा घोड़े शब्द करते और जैसे मित्र मित्रों को तृप्त करता है वैसे ही सब लोकों के साथ वर्त्तमान विद्युत् रूप अग्नि सब को प्रकाशित करता है इस को जानो ॥ २२ ॥

सुमित्रिया इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आपो देवता । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सज्जन और दुर्जनों का कर्त्तव्य वि० ॥

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (आपः) प्राण वा जल तथा (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (नः) हमारे लिये (सुमित्रियाः) सुन्दर मित्रों के तुल्य सुखदायी (सन्तु) होवें (यः) जो पक्षपाती अधर्मी (अस्मान्) हम धर्मात्माओं से (द्वेष्टि) द्वेष करे (च) और (यम्) जिस दुष्ट से (वयम्) हम धर्मात्मा लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तस्मै) उस के लिये प्राण जल वा ओषधियां (दुर्मित्रियाः) दुष्ट मित्रों के समान दुःखदायी (सन्तु) होवें ॥ २३ ॥

भावार्थः—इस में वाचकलु०–जो मनुष्य दूसरों के सुपथ्य ओषधि और प्राण के तुल्य रोग दुःख दूर करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं और जो कुपथ्य दुष्ट ओषधि और मृत्यु के समान औरों को दुःख देते हैं उन को बार २ धिक्कार है ॥ २३ ॥

उद्वयमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सविता देवता । विराडनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

कैसा पुरुष सुख को प्राप्त होवे० ॥

उद्व॒यन्तम॑स॒स्परि॒ स्वः᳕ पश्य॑न्त॒ उत्त॑रम् । दे॒वं दे॑व॒त्रा सूर्य॒मग॑न्म॒ ज्योति॑रुत्त॒मम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (उत्तरम्) सब पदार्थों से उत्तर भाग में वर्त्तमान (देवत्रा) दिव्य उत्तम पदार्थों में (देवम्) उत्तम गुणकर्मस्वभाव वाले (उत्तमम्) सब से श्रेष्ठ (ज्योतिः) सब के प्रकाशक (सूर्यम्) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर को (पश्यन्तः) ज्ञानदृष्टि से देखते हुए (स्वः) सुख को (परि, उत्, अगन्म) सब ओर से उत्कृष्टता के साथ प्राप्त होवें तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥ २४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्युत् आदि विद्या को प्राप्त हो परमात्मा को साक्षात् देखें वे प्रकाशित हुए निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥ २४ ॥

एध इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ईश्वरो देवता । साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः ।
पंचमः स्वरः ॥

अब अग्नि के मिष से योगियों के कर्त्तव्य वि० ॥

एधो॑ऽस्येधिषी॒महि॑ स॒मिद॑सि॒ तेजो॑ऽसि॒ तेजो॒ मयि॑ धेहि ॥ २५ ॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! जो आप हमारे आत्माओं में (एधः) प्रकाश करने वाले इन्धन के तुल्य प्रकाशक (असि) हैं (समित्) सम्यक् प्रदीप्त समिधा के समान (असि) हैं (तेजः) प्रकाशमय बिजुली के तुल्य सब विद्या के दिखाने वाले (असि) हैं सो आप (मयि) मुझ में (तेजः) तेज को (धेहि) धारण कीजिये आप को प्राप्त होकर हम लोग (एधिषीमहि) सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होवें ॥ २५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे इन्धन से और घी से अग्नि की ज्वाला बढ़ती है वैसे उपासना किये जगदीश्वर से योगियों के आत्मा प्रकाशित होते हैं ॥ २५ ॥

यावतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । इन्द्रो देवता । स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस वि० ॥

याव॑ती॒ द्यावा॑पृथि॒वी याव॑च्च स॒प्त सिन्ध॑वो वित॒स्थिरे । ताव॑न्तमिन्द्र ते॒ ग्रह॑मू॒र्जा गृ॑ह्णा॒म्यक्षि॑तं॒ मयि॑ गृह्णा॒म्यक्षि॑तम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्युत् के समान वर्त्तमान परमेश्वर ! (ते) आप की (यावती)

जितनी (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि (च) और (यावत्) जितने बड़े (सप्त, सिन्धवः) सात समुद्र (वितस्थिरे) विशेष कर स्थित हैं (तावन्तम्) उतने (अक्षितम्) नाशरहित (ग्रहम्) ग्रहण के साधन रूप सामर्थ्य को (ऊर्जा) बल के साथ मैं (गृह्णामि) स्वीकार करता तथा उतने (अक्षितम्) नाशरहित सामर्थ्य को मैं (मयि) अपने में (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं ॥ २६ ॥

भावार्थः—विद्वानों को योग्य है कि जहां तक हो सके वहां तक पृथिवी और बिजुली आदि के गुणों को ग्रहण कर अक्षय सुख को प्राप्त होवें ॥ २६ ॥

मयि त्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या वस्तु सुख देता है इस वि० ॥

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः । घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥ २७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (विराजा) विशेष कर प्रकाशक (ज्योतिषा) प्रदीप्त ज्योति के (सह) साथ और (ब्रह्मणा, तेजसा) तीक्ष्ण कार्यसाधक धन के (सह) साथ (त्रिशुक्) कोमल मध्यम और तीव्र दीप्तियों वाला (घर्मः) प्रताप (विराजति) विशेष प्रकाशित होता है वैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (बृहत्) बड़े (त्यत्) उस (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रिय (मयि) मुझ में (दक्षः) बल और (मयि) मुझ में (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म विशेष कर प्रकाशित होता है वैसे तुम लोगों के बीच भी यह विशेष कर प्रकाशित होवे ॥ २७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि विद्युत् और सूर्यरूप से तीन प्रकार का प्रकाश जगत् को प्रकाशित करता है वैसे उत्तम, बल, कर्म, बुद्धि धर्म से संचित धन जीता गया इन्द्रिय महान् सुख को देता है ॥ २७ ॥

पयस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराड् धृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या २ करें इस वि० ॥

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳬं समाम् । त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः । इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ॥ २८ ॥

पदार्थः—हे (सुपुष्पा) शोभन सुखयुक्त जन ! जैसे आप ने जिस (पयसः) जल वा दूध के (रेतः) पराक्रम को (आभृतम्) पुष्ट वा धारण किया (तस्य) उस की (दोहम्) पूर्णता तथा (उत्तरामुत्तराम्) उत्तर २ (समाम्) समय को (अशीमहि) प्राप्त होवें । उस (ते) आप की (क्रत्वे) बुद्धि के लिये (त्विषः) प्रकाशित (दक्षस्य) बल के और (ते) आप की पुष्टि वा धारणा को प्राप्त होवें (सुपुष्णस्य) सुन्दर सुख देने वाले (इन्द्रपीतस्य) सूर्य्य वा जीव ने ग्रहण किये (प्रजापतिभक्षितस्य) प्रजारक्षक ईश्वर ने सेवन वा जीव ने भोजन किये (उपहूतस्य) समीप लाये हुए दूध वा जल के दोषों को (संसृक्) सम्यक् अलग करने वाला (उपहूतः) समीप बुलाया गया और (अग्निहुतः) अग्नि में होम करने वाला मैं भोजन वा सेवन करूं ॥ २८ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें विद्यादि शुभगुणों का धारण करें । प्रतिदिन सुख बढ़ावें जैसे अपना सुख चाहें वैसे औरों के लिये भी सुख की आकांक्षा किया करें ॥ २८ ॥

इस अध्याय में इस सृष्टि में शुभगुणों का ग्रहण, अपना और दूसरों का पोषण, यज्ञ से जगत् के पदार्थों का शोधन, सर्वत्र सुख-प्राप्ति का साधन, धर्म का अनुष्ठान, पुष्टि का बढ़ाना, ईश्वर के गुणों की व्याख्या, सब ओर से बल बढ़ाना और सुखभोग कहा है इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्याय आरभ्यते ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

स्वाहा प्राणेभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः ।
पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उनतालीसवें अध्याय का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अन्त्येष्टि
कर्म का विषय कहते हैं ॥

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहा-न्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को योग्य है कि (साधिपतिकेभ्यः) इन्द्रियादि के अधिपति जीव के साथ वर्त्तमान (प्राणेभ्यः) जीवन के तुल्य प्राणों के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (पृथिव्यै) भूमि के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (अग्नये) अग्नि के अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया (अन्तरिक्षाय) आकाश में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी (वायवे) वायु की प्राप्ति के अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया (दिवे) विद्युत् की प्राप्ति के अर्थ (स्वाहा) सत्यवाणी और (सूर्याय) सूर्यमण्डल की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया को यथावत् संयुक्त करो ॥ १ ॥

भावार्थः—इस अध्याय में अन्त्येष्टिकर्म जिस को नरमेध, पुरुषमेध और दाहकर्म भी कहते हैं । जब कोई मनुष्य मरे तब शरीर की बराबर तोल घी लेकर उस में प्रत्येक सेर में एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर और चन्दन आदि काष्ठों को यथायोग्य सम्भाल के जितना ऊर्ध्वबाहु पुरुष होवे उतनी लम्बी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी और इतनी ही गहरी एक बिलस्त नीचे तले में वेदी बनाकर उस में नीचे से अधवर तक समिधा भरकर उस पर मुर्दे को धर कर फिर मुर्दे के इधर उधर और ऊपर से अच्छे प्रकार समिधा चुनकर वक्षःस्थल आदि में कपूर धर कपूर से अग्नि को जलाकर चिता में प्रवेश कर जब अग्नि जलने लगे तब इस अध्याय के इन स्वाहान्त मंत्रों की वार २ आवृत्ति से घी का होमकर मुर्दे को सम्यक् जलावें इस प्रकार करने में दाह करने वालों को यज्ञकर्म के फल की

प्राप्ति होवे और मुर्दे को न कभी भूमि में गाड़ें, न वन में छोड़ें, न जल में डुबावें, विना दाह किये सम्बन्धी लोग महापाप को प्राप्त होवें क्योंकि मुर्दे के बिगड़े शरीर से अधिक दुर्गन्ध बढ़ने के कारण चराचर जगत् में असंख्य रोगों की उत्पत्ति होती है इससे पूर्वोक्त विधि के साथ मुर्दे के दाह करने में ही कल्याण है अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

दिग्भ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। दिगादयो लिङ्गोक्ता देवताः। भुरिगनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

दिग्भ्यः स्वाहा॑ चन्द्राय॒ स्वाहा॒ नक्ष॑त्रेभ्यः॒ स्वाहा॒ऽद्भ्यः स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॒ नाभ्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ताय॒ स्वाहा॑ ॥ २ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग शरीर के जलाने में (दिग्भ्यः) दिशाओं में हुत द्रव्य के पहुंचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (चन्द्राय) चन्द्रलोक की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नक्षत्रेभ्यः) नक्षत्रलोकों के प्रकाश की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (अद्भ्यः) जलों में चलने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (वरुणाय) समुद्रादि में जाने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (नाभ्यै) नाभि के जलाने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया और (पूताय) पवित्र करने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया को सम्यक् प्रयुक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य लोग पूर्वोक्त विधि से शरीर जला कर सब दिशाओं में शरीर के अवयवों को अग्निद्वारा पहुंचावें ॥ २ ॥

वाचे इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः। प्राणादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

वा॒चे स्वाहा॑ प्रा॒णाय॒ स्वाहा॑ प्रा॒णाय॒ स्वाहा॑। चक्षु॑षे॒ स्वाहा॒ चक्षु॑षे॒ स्वाहा॑। श्रोत्रा॑य॒ स्वाहा॒ श्रोत्रा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग मरे हुए शरीर के (वाचे) वाणी इन्द्रिय सम्बन्धी होम के लिये (स्वाहा) सुन्दरक्रिया (प्राणाय) शरीर के अवयवों को जगत् के प्राण वायु में पहुंचाने को (स्वाहा) सत्यक्रिया (प्राणाय) धनंजय वायु को प्राप्त होने के लिये (स्वाहा) सत्यक्रिया (चक्षुषे) एक नेत्र गोलक के जलाने के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (चक्षुषे) दूसरे नेत्र गोलक के जलाने को (स्वाहा) अच्छी आहुति)

(श्रोत्राय) एक कान के विभाग के लिये (स्वाहा) सुन्दर आहुति (श्रोत्राय) दूसरे कान के विभाग के लिये (स्वाहा) यह शब्द कर घी की आहुति चिता में छोड़ो ॥ ३ ॥

भावार्थः—जो लोग सुगन्धित युक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें वे पुण्यसेवी होते हैं ॥ ३ ॥

मनस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । श्रीर्देवता । निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय । पशूनाᳬ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (स्वाहा) सत्यक्रिया से ऐसे आगे पीछे कहे प्रकार से मरे हुए शरीरों को जलाके (मनसः) अन्तःकरण और (वाचः) वाणी के (सत्यम्) विद्यमानों में उत्तम (कामम्) इच्छापूर्त्ति (आकूतिम्) उत्साह (पशूनाम्) गौ आदि के (रूपम्) सुन्दर स्वरूप को (अशीय) प्राप्त होऊं जैसे (मयि) मुझ जीवात्मा में (अन्नस्य) खाने योग्य अन्नादि के (रसः) मधुरादि रस (यशः) कीर्त्ति (श्रीः) शोभा वा ऐश्वर्य (श्रयताम्) आश्रय करें वैसे ही तुम इसको प्राप्त होओ और ये तुम में आश्रय करें ॥ ४ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सुन्दर विज्ञान उत्साह और सत्य वचनों से मरे शरीरों को विधिपूर्वक जलाते हैं वे पशु प्रजा धनधान्य आदि को पुरुषार्थ से पाते हैं ॥ ४ ॥

प्रजापतिरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । कृतिश्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः संᳬसन्नो घर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन् । मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने (सम्भ्रियमाणः) सम्यक् पोषण वा धारण किया हुआ (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (वैश्वदेवः) सब उत्तम जीव वा पदार्थों के सम्बन्धी (संसन्नः) सम्यक् प्राप्त होता हुआ (घर्मः) घाम रूप (तेजः) प्रकाश तथा (प्रवृक्तः) शरीर से पृथक् हुआ (उद्यतः) ऊपर को चढ़ता हुआ (आश्विनः)

प्राण अपान सम्बन्धी तेज (आनीयमाने) अच्छे प्रकार प्राप्त हुए (पयसि) जल में (पौष्णः) पृथिवीसम्बन्धी तेज (विस्पन्दमाने) विशेष कर प्राप्त हुए समय में (मारुतः) मनुष्यदेह सम्बन्धी तेज (क्लथन्) हिंसा करता हुआ (मैत्रः) मित्र प्राण सम्बन्धी तेज (सन्ताय्यमाने) विस्तार किये वा पालन किये (शरसि) तलाव में (वायव्यः) वायु-सम्बन्धी तेज (ह्रियमाणः) हरण किया हुआ (आग्नेयः) अग्नि देवता सम्बन्धी तेज (हूयमानः) बुलाया हुआ (वाक्) बोलने वाला (हुतः) शब्द किया तेज और (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जीव (सम्भृतः) सम्यक् पोषण वा धारण किया है उसी परमात्मा को तुम लोग उपासना करो ॥ ५ ॥

भावार्थः—जब यह जीव शरीर को छोड़ सब पृथिव्यादि पदार्थों में भ्रमण करता जहां तहां प्रवेश करता और इधर उधर जाता हुआ कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से जन्म पाता है तब ही सुप्रसिद्ध होता है ॥ ५ ॥

सवितेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । सवितादयो देवताः । विराड्धृतिश्छन्दः ।

धैवतः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

सविता प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्चतुर्थे चन्द्रमाः पञ्चम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वे देवा द्वादशे ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! इस जीव को (प्रथमे) शरीर छोड़ने के पहिले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीये) दूसरे दिन (अग्निः) अग्नि (तृतीये) तीसरे (वायुः) वायु (चतुर्थे) चौथे (आदित्यः) महीना (पञ्चमे) पांचवें (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (षष्ठे) छठे (ऋतुः) वसन्तादि ऋतु (सप्तमे) सातवें (मरुतः) मनुष्यादि प्राणी (अष्टमे) आठवें (बृहस्पतिः) बड़ों का रक्षक सूत्रात्मा वायु (नवमे) नववें में (मित्रः) प्राण (दशमे) दशवें में (वरुणः) उदान (एकादशे) ग्यारहवें में (इन्द्रः) बिजुली और (द्वादशे) बारहवें दिन (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य उत्तम गुण प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब ये जीव शरीर को छोड़ते हैं तब सूर्यप्रकाश आदि पदार्थों को प्राप्त होकर कुछ काल भ्रमण कर अपने कर्मों के अनुकूल गर्भाशय को प्राप्त हो शरीर धारण कर उत्पन्न होते हैं तभी पुण्य पाप कर्म से सुखदुःखरूप फलों को भोगते हैं ॥ ६ ॥

उग्रश्चेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । मरुतो देवताः । भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

फिर कौन जीव किस गुण वाले हैं इस वि० ॥

उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॑ ध्वा॒न्तश्च॒ धुनि॑श्च । सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिपः॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! मरण को प्राप्त हुआ जीव (स्वाहा) अपने कर्म से (उग्रः) तीव्र स्वभाव वाला (च) शान्त (भीमः) भयकारी (च) निर्भय (ध्वान्तः) अन्धकार को प्राप्त (च) प्रकाश को प्राप्त (धुनिः) कांपता (च) निष्कंप (सासह्वान्) शीघ्र सहनशील (च) न सहने वाला (अभियुग्वा) सब ओर से नियमधारी (च) सबसे अलग और (विक्षिपः) विक्षेप को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जीव पापाचरणी हैं वे कठोर जो धर्मात्मा हैं वे शान्त जो भय देने वाले वे भीम शब्द वाच्य जो भय को प्राप्त हैं वे भीत शब्द वाच्य जो अभय देने वाले हैं वे निर्भय जो अविद्यायुक्त हैं वे अन्धकार से ढंपे जो विद्वान् योगी हैं वे प्रकाशयुक्त । जो जितेन्द्रिय नहीं हैं वे चंचल जो जितेन्द्रिय हैं वे चंचलतारहित अपने २ कर्मफलों को सहते भोगते संयुक्त विक्षेप को प्राप्त हुए इस जगत् में नित्य भ्रमण करते हैं ऐसा जानो ॥ ७ ॥

अग्निमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्न्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । निचृदत्यष्टिश्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

कौन मनुष्य दोनों जन्म में सुख पाते हैं इस वि० ॥

अ॒ग्निꣳ हृद॑येना॒शनि॑ꣳ हृदया॒ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्नहृद॑येन भ॒वं य॒क्ना । श॒र्वं मत॑स्नाभ्या॒मीशा॑नं म॒न्युना॑ महादे॒वम॑न्तःपर्श॒व्ये॑नो॒ग्रं दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसिष्ठ॒हनुः॑ शि॒ङ्गीनि॑ को॒श्याभ्या॑म् ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो वे मरे हुए जीव (हृदयेन) हृदयरूप अवयव से (अग्निम्) अग्नि को (हृदयाग्रेण) हृदय के ऊपरले भाग से (अशनिम्) बिजुली को (कृत्स्नहृदयेन) संपूर्ण हृदय के अवयवों से (पशुपतिम्) पशुओं के रक्षक जगत् धारणकर्त्ता सब के जीवनहेतु परमेश्वर को (यक्ना) यकृत्‌रूप शरीर के अवयव से (भवम्) सर्वत्र होने वाले ईश्वर को (मतस्नाभ्याम्) हृदय के इधर उधर के अवयवों से (शर्वम्) विज्ञानयुक्त ईश्वर को (मन्युना) दुष्टाचारी और पाप के प्रति वर्त्तमान क्रोध से (ईशानम्) सब जगत् के स्वामी ईश्वर को (अन्तः पर्शव्येन) भीतरली पसुरियों के अवयवों में हुए विज्ञान से (महादेवम्) महादेव (उग्रम्, देवम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले प्रकाशमान

ईश्वर को (वनिष्ठुना) अति विशेष से (वसिष्ठहनुः) अत्यन्त वास के हेतु राजा के तुल्य ठोडी वाले जन को (कोश्याभ्याम्) पेट में हुए दो मांसपिंडों से (शिङ्गीनि) जानने वा प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को प्राप्त होते हैं ऐसा तुम लोग जानो ॥ ८ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य शरीर के सब अंगों से धर्माचरण विद्याग्रहण सत्संग और जगदीश्वर की उपासना करते हैं वे वर्त्तमान और भविष्यत् जन्मों में सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

उग्रमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । उग्रादयो लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिगष्टिश्छन्दः ।
मध्यमः स्वरः ॥

मनुष्य लोग कैसे उग्रस्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा । भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत् ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! गर्भाशय में स्थित वा बाहर रहने वाले जीव (लोहितेन) शुद्ध रुधिर से (उग्रम्) तीव्र गुण (सौव्रत्येन) श्रेष्ठ कर्म से (मित्रम्) प्राण के तुल्य प्रिय (दौर्व्रत्येन) दुष्टाचरण से (रुद्रम्) रुलाने हारे (प्रक्रीडेन) (इन्द्रम्) उत्तम क्रीड़ा से परम ऐश्वर्य वा बिजुली (बलेन) बल से (मरुतः) उत्तम मनुष्यों को (प्रमुदा) उत्तम आनन्द से (साध्यान्) साधने योग्य पदार्थों को (भवस्य) प्रशंसा को प्राप्त होने वाले के (कण्ठ्यम्) कण्ठ में हुए स्वर (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने हारे जन को (अन्तः पार्श्व्यम्) भीतर पसुरी में हुए (महादेवस्य) महादेव विद्वान् के (यकृत्) हृदय में स्थित कालखण्ड (शर्वस्य) सुखप्रापक मनुष्य का (वनिष्ठुः) अति विशेष (पशुपतेः) पशुओं के रक्षक पुरुष के (पुरीतत्) हृदय की नाड़ी को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

भावार्थः-हे मनुष्यो ! जैसे देहधारी रुधिर आदि से तेजस्वी स्वभाव आदि को प्राप्त होते हैं वैसे ही गर्भाशय में भी प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

लोमभ्य इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । आकृतिश्छन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ॥

मनुष्यों को भस्म होने तक शरीर का मन्त्रों से दाह करना चाहिये इस वि० ॥

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा

लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा माꣳसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि दाहकर्म में घी आदि से (लोमभ्यः) त्वचा के ऊपरले वालों के लिये (स्वाहा) इस शब्द को (लोमभ्यः) नख आदि के लिये (स्वाहा) (त्वचे) शरीर की त्वचा जलाने को (स्वाहा) (त्वचे) भीतरली त्वचा जलाने के लिये (स्वाहा) (लोहिताय) रुधिर जलाने को (स्वाहा) (लोहिताय) हृदयस्थ रुधिर पिण्ड के जलाने को (स्वाहा) (मेदोभ्यः) चिकने धातुओं के जलाने को (स्वाहा) (मेदोभ्यः) सब शरीर के अवयवों को आर्द्र करने वाले भागों के जलाने को (स्वाहा) (मांसेभ्यः) वाहरले मांसों के जलाने को (स्वाहा) (मांसेभ्यः) भीतरले मांसों के जलाने के लिये (स्वाहा) (स्नावभ्यः) स्थूल नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा) (स्नावभ्यः) सूक्ष्म नाड़ियों के जलाने को (स्वाहा) (अस्थभ्यः) शरीरस्थ कठिन अवयवों के जलाने के लिये (स्वाहा) (अस्थभ्यः) सूक्ष्म अस्थिरूप अवयवों के जलाने को (स्वाहा) (मज्जभ्यः) हाड़ों के भीतर के धातुओं के लिये (स्वाहा) (मज्जभ्यः) उस के अन्तर्गत भाग के जलाने को (स्वाहा) (रेतसे) वीर्य के जलाने को (स्वाहा) और (पायवे) गुदारूप अवयव के दाह के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब तक लोम से लेकर वीर्यपर्यन्त उस मृतशरीर को भस्म न हो तब तक घी और इंधन डाला करो ॥ १० ॥

आयासायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को जन्मान्तर में सुख के लिये क्या कर्त्तव्य है इस वि० ॥

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (आयासाय) अच्छे प्रकार प्राप्त होने को (स्वाहा) इस शब्द का (प्रायासाय) आने के लिये (स्वाहा) (संयासाय) सम्यक् चलने के लिये (स्वाहा) (वियासाय) विविध प्रकार वस्तुओं की प्राप्ति को (स्वाहा) (उद्यासाय) ऊपर को जाने के लिये (स्वाहा) (शुचे) पवित्र के लिये (स्वाहा) (शोचते) शुद्धि करने वाले के लिये (स्वाहा) (शोचमानाय) विचार के प्रकाश के लिये (स्वाहा) और (शोकाय) जिस में शोक करते हैं उस के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ ११ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ सिद्धि के लिये सत्य वाणी बुद्धि और क्रिया का अनुष्ठान करें जिससे देहान्तर और जन्मान्तर में मंगल हो ॥ ११ ॥

तपस इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को किन साधनों से सुख प्राप्त करना चाहिये इस वि० ॥

तप॑से॒ स्वाहा॒ तप्य॑ते॒ स्वाहा॒ तप्य॑मानाय॒ स्वाहा॑ त॒प्ताय॒ स्वाहा॑ घ॒र्माय॒ स्वाहा॑ । निष्कृ॑त्यै॒ स्वाहा॒ प्राय॑श्चित्त्यै॒ स्वाहा॑ भेष॒जाय॒ स्वाहा॑ ॥ १२ ॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये (तपसे) प्रताप के लिये (स्वाहा) (तप्यते) संताप को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) (तप्यमानाय) ताप गर्मी को प्राप्त होने वाले के लिये (स्वाहा) (तप्ताय) तपे हुए के लिये (स्वाहा) (घर्माय) दिन के होने को (स्वाहा) (निष्कृत्यै) निवारण के लिये (स्वाहा) (प्रायश्चित्यै) पापनिवृत्ति के लिये (स्वाहा) और (भेषजाय) सुख के लिये (स्वाहा) इस शब्द का निरन्तर प्रयोग करें ॥ १२ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्राणायाम आदि साधनों से सब किल्बिष का निवारण करके सुख को स्वयं प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावें ॥ १२ ॥

यमायेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस वि० ॥

य॒माय॒ स्वाहान्त॑काय॒ स्वाहा॑ मृ॒त्यवे॒ स्वाहा॒ ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ब्रह्मह॒त्यायै॒ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪ स्वाहा॑ ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग (यमाय) नियन्ता न्यायाधीश वा वायु के लिये (स्वाहा) इस शब्द का (अन्तकाय) नाशकर्त्ता काल के लिये (स्वाहा) (मृत्यवे)

प्राणत्याग कराने वाले समय के लिये (स्वाहा) (ब्रह्मणे) बृहत्तम अति बड़े परमात्मा के लिये वा ब्राह्मण विद्वान् के लिये (स्वाहा) (ब्रह्महत्यायै) ब्रह्म वेद वा ईश्वर वा विद्वान् की हत्या के निवारण के लिये (स्वाहा) (विश्वेभ्यः) सब (देवेभ्यः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों वा जलादि के लिये (स्वाहा) और (द्यावापृथिवीभ्याम्) और सूर्यभूमि के शोधन के लिये (स्वाहा) इस शब्द का प्रयोग करो ॥ १३ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य न्यायव्यवस्था का पालन कर अल्पमृत्यु को निवारण कर ईश्वर और विद्वानों का सेवन कर ब्रह्महत्यादि दोषों को छुड़ा के सृष्टिविद्या को जान के अन्त्येष्टि कर्म विधि करते हैं वे सब के मङ्गल देने वाले होते हैं सब काल में इस प्रकार मृतक शरीर को जलाके सब सुख की उन्नति करनी चाहिये ॥ १३ ॥

इस अध्याय में अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह उनतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

ओ३म्

अथ चत्वारिंशाऽध्यायारम्भः ॥

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ १ ॥

ईशावास्यमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता ।
अनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चालीसवें अध्याय का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में मनुष्य
ईश्वर को जानके क्या करें इस वि० ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन
भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (यत्) जो (इदम्) प्रकृति से लेकर पृथिवीपर्यन्त (सर्वम्) सब (जगत्याम्) प्राप्त होने योग्य सृष्टि में (जगत्) चरप्राणीमात्र (ईशा) संपूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से (वास्यम्) आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है (तेन) उस (त्यक्तेन) त्याग किये हुए जगत् से (भुञ्जीथाः) पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु (कस्य, स्वित्) किसी के भी (धनम्) वस्तुमात्र की (मा) मत (गृधः) अभिलाषा कर ॥ १ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हम को सदा सब ओर से देखता है यह जगत् ईश्वर से व्याप्त और सर्वत्र ईश्वर विद्यमान है इस प्रकार व्यापक अन्तर्यामी परमात्मा का निश्चय करके भी अन्याय के आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण नहीं किया चाहते वे धर्मात्मा होकर इस लोक के सुख और परलोक में मुक्तिरूप सुख को प्राप्त करके सदा आनन्द में रहें ॥ १ ॥

कुर्वन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । भुरिगनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वेदोक्त कर्म की उत्तमता अ० ॥

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

पदार्थः—मनुष्य (इह) इस संसार में (कर्माणि) धर्मयुक्त वेदोक्त निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ (एव) ही (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (जिजीविषेत्) जीवन की इच्छा करे (एवम्) इस प्रकार धर्मयुक्त कर्म में प्रवर्त्तमान (त्वयि) तुझ (नरे) व्यवहारों को चलाने हारे जीवन के इच्छुक होते हुए (कर्म) अधर्मयुक्त अवैदिक काम्य कर्म (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (इतः) इस से जो और प्रकार से (न,अस्ति) कर्म लगाने का अभाव नहीं होता है ॥ २ ॥

भावार्थः—मनुष्य आलस्य को छोड़ के सब देखनेहारे न्यायाधीश परमात्मा और करने योग्य उस की आज्ञा को मानकर शुभ कर्मों को करते हुए ब्रह्मचर्य के सेवने से विद्या और अच्छी शिक्षा को पाकर उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से पराक्रम को बढ़ाकर अल्पमृत्यु को हटावें, युक्त आहार विहार से सौ वर्ष की आयु को प्राप्त होवें जैसे २ मनुष्य सुकर्मों में चेष्टा करते हैं वैसे २ ही पापकर्म से बुद्धि की निवृत्ति होती और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है ॥ २ ॥

असुर्या इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः स्वरः ॥

अब आत्मा के हननकर्त्ता अर्थात् आत्मा को भूले हुए जन कैसे होते हैं इस वि० ॥

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—जो (लोकाः) देखने वाले लोग (अन्धेन) अन्धकाररूप (तमसा) ज्ञान का आवरण करने हारे अज्ञान से (आवृताः) सब ओर से ढंपे हुए (च) और (ये) जो (के) कोई (आत्महनः) आत्मा के विरुद्ध आचरण करने हारे (जनाः) मनुष्य हैं (ते) वे (असुर्याः) अपने प्राणपोषण में तत्पर अविद्यादि दोषयुक्त लोगों के सम्बन्धी उनके पाप कर्म करने वाले (नाम) प्रसिद्ध में होते हैं (ते) वे (प्रेत्य)

मरने के पीछे (अपि) और जीते हुए भी (तान्) उन दुःख और अज्ञानरूप अन्धकार से युक्त भोगों को (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते वाणी से और बोलते और करते कुछ और ही हैं वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को नहीं प्राप्त हो सकते । और जो आत्मा मन वाणी और कर्म निष्कपट एकसा आचरण करते हैं वे ही देव आर्य सौभाग्यवान् सब जगत् को पवित्र करते हुए इस लोक और परलोक में अतुल सुख भोगते हैं ॥ ३ ॥

अनेजदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । ब्रह्म देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

कैसा जन ईश्वर को साक्षात् करता है इस वि० ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जो (एकम्) अद्वितीय (अनेजत्) नहीं कंपने वाला अर्थात् अचल अपनी अवस्था से हटना कंपन कहाता है उससे रहित (मनसः) मन के वेग से भी (जवीयः) अति वेगवान् (पूर्वम्) सब से आगे (अर्षत्) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चलकर जावे वहां प्रथम ही सर्वत्रव्याप्ति से पहुंचता हुआ ब्रह्म है (एनत्) इस पूर्वोक्त ईश्वर को (देवाः) चक्षु आदि इन्द्रिय (न) नहीं (आप्नुवन्) प्राप्त होते (तत्) वह परब्रह्म अपने आप (तिष्ठत्) स्थिर हुआ अपनी अनन्तव्याप्ति से (धावतः) विषयों की ओर गिरते हुए (अन्यान्) आत्मा के स्वरूप से विलक्षण मन वाणी आदि इन्द्रियों का (अति, एति) उल्लंघन कर जाता है (तस्मिन्) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राणों को धारण करने हारे वायु के तुल्य जीव (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है यह जानो ॥ ४ ॥

भावार्थः—ब्रह्म के अनन्त होने से जहां २ मन जाता है वहां २ प्रथम से ही अभिव्याप्त पहिले से ही स्थिर ब्रह्म वर्त्तमान है उसका विज्ञान शुद्ध मन से होता है चक्षु आदि इन्द्रियों और अविद्वानों से देखने योग्य नहीं है । वह आप निश्चल हुआ सब जीवों को नियम से चलाता और धारण करता है । उस के अतिसूक्ष्म इन्द्रियगम्य न होने के कारण धर्मात्मा विद्वान् योगी को ही उसका साक्षात् ज्ञान होता है अन्य को नहीं ॥ ४ ॥

तदेजतीत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
विद्वानों के निकट और अविद्वानों के ब्रह्म दूर है इस वि० ॥

तदे॑जति॒ तन्नैज॑ति॒ तद्दू॒रे तद्व॑न्ति॒के । तद॒न्तर॑स्य॒ सर्व॑स्य॒ तदु॒ सर्व॑स्यास्य बाह्य॒तः ॥ ५ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तत्) वह ब्रह्म (एजति) मूर्खों की दृष्टि से चलायमान होता (तत्) (न, एजति) अपने स्वरूप से न चलायमान और न चलाया जाता (तत्) वह (दूरे) अधर्मात्मा अविद्वान् अयोगियों से दूर अर्थात् क्रोड़ों वर्ष में भी नहीं प्राप्त होता (तत्) वह (उ) ही (अन्तिके) धर्मात्मा विद्वान् योगियों के समीप (तत्) वह (अस्य) इस (सर्वस्य) सब जगत् वा जीवों के (अन्तः) भीतर (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है ॥ ५ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वह ब्रह्म मूढ़ की दृष्टि में कम्पता जैसा है वह आप व्यापक होने से कभी नहीं चलायमान होता जो जन उस की आज्ञा से विरुद्ध हैं वे इधर उधर भागते हुए भी उस को नहीं जानते और जो ईश्वर की आज्ञा का अनुष्ठान करने वाले हैं वे अपने आत्मा में स्थित अतिनिकट ब्रह्म को प्राप्त होते हैं जो ब्रह्म सब प्रकृति आदि के बाहर भीतर अवयवों में अभिव्याप्त हो के अन्तर्यामिरूप से सब जीवों के सब पाप पुण्यरूप कर्मों को जानता हुआ यथार्थ फल देता है वही सब को ध्यान में रखना चाहिये और उसी से सब को डरना चाहिये ॥ ५ ॥

यस्त्वित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥
अथ ईश्वर वि० ॥

यस्तु सर्वा॑णि भू॒तान्या॒त्मन्ने॒वानु॒पश्य॑ति । स॒र्व॒भू॒तेषु॑ चा॒त्मानं॒ ततो॒ न वि चि॑कित्सति ॥ ६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् जन (आत्मन्) परमात्मा के भीतर (एव) ही (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी अप्राणियों को (अनु) (पश्यति) विद्या धर्म और योगाभ्यास करने पश्चात् ध्यान दृष्टि से देखता है (तु) और जो (सर्वभूतेषु) सर्व प्रकृत्यादि पदार्थों में (आत्मानम्) आत्मा को (च) भी देखता है वह विद्वान् (ततः) तिस पीछे (न) नहीं (विचिकित्सति) संशय को प्राप्त होता ऐसा तुम जानो ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग सर्वव्यापी न्यायकारी सर्वज्ञ सनातन सब के आत्मा अन्तर्यामी सब के द्रष्टा परमात्मा को जान कर सुख दुःख हानि लाभों में अपने आत्मा के तुल्य सब प्राणियों को जान कर धार्मिक होते हैं वे ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

यस्मिन्नित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब कौन अविद्यादि दोषों को त्यागते हैं इस वि० ॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस परमात्मा, ज्ञान, विज्ञान वा धर्म में (विजानतः) विशेष कर ध्यान दृष्टि से देखते हुए को (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणीमात्र (आत्मा, एव) अपने तुल्य ही सुख दुःख वाले (अभूत्) होते हैं (तत्र) उस परमात्मा आदि में (एकत्वम्) अद्वितीय भाव को (अनु, पश्यतः) अनुकूल योगाभ्यास से साक्षात् देखते हुए योगी जन को (कः) कौन (मोहः) मूढ़ावस्था और (कः) कौन (शोकः) शोक वा क्लेश होता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ॥ ७ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् संन्यासी लोग परमात्मा के सहचारी प्राणिमात्र को अपने आत्मा के तुल्य जानते हैं अर्थात् जैसे अपना हित चाहते वैसे ही अन्यों में भी वर्त्तते हैं । एक अद्वितीय परमेश्वर के शरण को प्राप्त होते हैं उनको मोह शोक और लोभादि कदाचित् प्राप्त नहीं होते । और जो लोग अपने आत्मा को यथावत् जान कर परमात्मा को जानते हैं वे सुखी सदा होते हैं ॥ ७ ॥

स पर्य्यगादित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

फिर परमेश्वर कैसा है इस वि० ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्ररहित और नहीं छेद करने

योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (परि, अगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वत्र (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और (स्वयम्भूः) अनादिस्वरूप जिस की संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सन्तान अनादिस्वरूप अपने २ स्वरूप से उत्पत्ति और विनाशरहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है वही परमेश्वर तुम लोगों को उपासना करने के योग्य है ॥ ८ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अनन्तशक्तियुक्त अजन्मा निरन्तर सदामुक्त न्यायकारी, निर्मल, सर्वज्ञ, सब का साक्षी नियन्ता अनादिस्वरूप ब्रह्म कल्प के आरम्भ में जीवों को अपने कहे वेदों से शब्द अर्थ और उनके सम्बन्ध को जनाने वाली विद्या का उपदेश न करे तो कोई विद्वान् न होवे और धर्म अर्थ काम और मोक्ष के फलों के भोगने को समर्थ हो इसलिये इसी ब्रह्म की सदैव उपासना करो ॥ ८ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥
कौन मनुष्य अन्धकार को प्राप्त होते हैं इस वि० ॥

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याᳬरताः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(ये) जो लोग परमेश्वर को छोड़ कर (असम्भूतिम्) अनादि अनुत्पन्न सत्व रज और तमोगुणमय प्रकृतिरूप जड़ वस्तु को (उपासते) उपास्यभाव से जानते हैं वे (अन्धम्, तमः) आवरण करने वाले अन्धकार को (प्रविशन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होते और (ये) जो (सम्भूत्याम्) महत्तत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं (ते) वे (उ) वितर्क के साथ (ततः) उससे (भूय इव) अधिक जैसे वैसे (तमः) अविद्यारूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

भावार्थः—जो मनुष्य समस्त जड़ जगत् के अनादि नित्य कारण को उपासना भाव से स्वीकार करते हैं वे अविद्या को प्राप्त होकर क्लेश को प्राप्त होते और जो उस

कारण से उत्पन्न स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणाख्य अनित्य संयोगजन्य कार्य जगत् को इष्ट उपास्य मानते हैं वे गाढ़ अविद्या को पाकर अधिकतर क्लेश को प्राप्त होते हैं इसलिये सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा की ही सब सदा उपासना करें ॥ ९ ॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस वि० ॥

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (धीराणाम्) मेधावि योगी विद्वानों से जो वचन (शुश्रुमः) सुनते हैं (ये) जो वे लोग (नः) हमारे प्रति (विचचक्षिरे) व्याख्यानपूर्वक कहते हैं वे लोग (सम्भवात्) संयोगजन्य कार्य्य से (अन्यत् , एव) और ही कार्य्य या फल (आहुः) कहते (असम्भवात्) उत्पन्न नहीं होने वाले कारण से (अन्यत्) और (आहुः) कहते हैं (इति) इस बात को तुम भी सुनो ॥ १० ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग कार्य्यकारण रूप वस्तु से भिन्न २ वक्ष्यमाण उपकार लेते और लिवाते हैं तथा उन कार्यकारण के गुणों को जानकर जनाते हैं । ऐसे ही तुम लोग भी निश्चय करो ॥ १० ॥

सम्भूतिमित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

फिर मनुष्यों को कार्य कारण से क्या २ सिद्ध करना चाहिये इस वि० ॥

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह । विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् (सम्भूतिम्) जिस में सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्यरूप सृष्टि (च) और उसके गुण, कर्म, स्वभावों को तथा (विनाशम्) जिस में पदार्थ नष्ट होते उस कारणरूप जगत् (च) और उसके गुण, कर्म, स्वभावों को (सह) एक साथ (उभयम्) दोनों (तत्) उन कार्य्य और कारण स्वरूपों को (वेद) जानता है वह विद्वान् (विनाशेन) नित्यस्वरूप जाने हुए कारण के साथ (मृत्युम्) शरीर छूटने के दुःख से (तीर्त्वा) पार होकर (सं-

मृत्या) शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त कराने वाली सृष्टि के साथ (अमृतम्) मोक्ष सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! कार्य्यकारणरूप वस्तु निरर्थक नहीं है किन्तु कार्य कारण के गुण कर्म और स्वभावों को जान कर धर्म आदि मोक्ष के साधनों में संयुक्त करके अपने शरीरादि के कार्य कारण को नित्यत्व से जान के मरण का भय छोड़ कर मोक्ष की सिद्धि करो । इस प्रकार कार्य्यकारण से अन्य ही फल सिद्ध करना चाहिये इन कार्य्यकारण का निषेध परमेश्वर के स्थान में जो उपासना उस प्रकरण में करना चाहिये ॥ ११ ॥

अन्धन्तम इत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृदनुष्टुप्छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ॥

अब विद्या अविद्या की उपासना का फल कहते हैं ॥

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायांᳬ रताः ॥ १२ ॥

पदार्थः—(ये) जो मनुष्य (अविद्याम्) अनित्य में नित्य, अशुद्ध में शुद्ध, दुःख में सुख और अनात्मा शरीरादि में आत्मबुद्धिरूप अविद्या उस को अर्थात् ज्ञानादि गुणरहित कारणरूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धम्, तमः) दृष्टि के रोकने वाले अन्धकार और अत्यन्त अज्ञान को (प्र, विशन्ति) प्राप्त होते हैं और (ये) जो अपने आत्मा को पण्डित मानने वाले (विद्यायाम्) शब्द, अर्थ और इनके सम्बन्ध के जानने मात्र अवैदिक आचरण में (रताः) रमण करते (ते) वे (उ) भी (ततः) उस से (भूय इव) अधिकतर (तमः) अज्ञानरूपी अन्धकार में प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो २ चेतन ज्ञानादि गुणयुक्त वस्तु है वह जानने वाला जो अविद्यारूप है वह जानने योग्य है और जो चेतन ब्रह्म तथा विद्वान् का आत्मा है वह उपासना के योग्य है जो इस से भिन्न है वह उपास्य नहीं है किन्तु उपकार लेने योग्य है । जो मनुष्य अविद्या अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश नामक क्लेशों से युक्त हैं वे परमेश्वर को छोड़ इस से भिन्न जड़ वस्तु की उपासना कर महान् दुःखसागर में डूबते हैं और जो शब्द अर्थ का अन्वयमात्र संस्कृत पढ़कर सत्यभाषण पक्षपातरहित न्याय का आचरणरूप धर्म नहीं करते अभिमान में आरूढ़ हुए विद्या का तिरस्कार कर अविद्या को ही मानते हैं वे अत्यन्त तमोगुणरूप दुःखसागर में निरन्तर पीड़ित होते हैं ॥१२॥

अन्यदित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब जड़ चेतन का भेद कहते हैं ॥

अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायाः । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग (नः) हमारे लिये (विचचक्षिरे) व्याख्यापूर्वक कहते थे (विद्यायाः) पूर्वोक्त विद्या का (अन्यत्) अन्य ही कार्य वा फल (आहुः) कहते थे (अविद्यायाः) पूर्व मन्त्र से प्रतिपादन की अविद्या का (अन्यत्) अन्य फल (आहुः) कहते हैं इस प्रकार उन (धीराणाम्) आत्मज्ञानी विद्वानों से (तत्) उस वचन को हम लोग (शुश्रुम) सुनते थे ऐसा जानो ॥ १३ ॥

भावार्थः—अनादि गुणयुक्त चेतन से जो उपयोग होने योग्य है वह अज्ञानयुक्त जड़ से कदापि नहीं और जो जड़ से प्रयोजन सिद्ध होता है वह चेतन से नहीं । सब मनुष्यों को विद्वानों के संग, योग, विज्ञान और धर्माचरण से इन दोनों का विवेक करके दोनों से उपयोग लेना चाहिये ॥ १३ ॥

विद्यामित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

फिर उसी वि० ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

पदार्थः-(यः) जो विद्वान् (विद्याम्) पूर्वोक्त विद्या (च) और उस के सम्बन्धी साधन उपसाधन (अविद्याम्) पूर्व कही अविद्या (च) और इसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यानगम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) शरीरादि जड़ पदार्थसमूह से किये पुरुषार्थ से (मृत्युम्) मरणदुःख के भय को (तीर्त्वा) उल्लंघन कर (विद्यया) आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के संयोग में जो धर्म उस से उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शनरूप विद्या से (अमृतम्) नाशरहित अपने स्वरूप वा परमात्मा को (अश्नुते) प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थः-जो मनुष्य विद्या और अविद्या को उनके स्वरूप से जानकर इन के जड़ चेतन साधक हैं ऐसा निश्चय कर सब शरीरादि जड़ पदार्थ और चेतन आत्मा को धर्म

अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये साथ ही प्रयोग करते हैं वे लौकिक दुःख को छोड़ परमार्थ के सुख को प्राप्त होते हैं जो जड़ प्रकृति आदि कारण वा शरीरादि कार्य्य न हो तो परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति और जीव कर्म उपासना और ज्ञान के करने को कैसे समर्थ हों ? इससे न केवल जड़ न केवल चेतन से अथवा न केवल कर्म से तथा न केवल ज्ञान से कोई धर्मादि पदार्थों की सिद्धि करने में समर्थ होता है ॥ १४ ॥

वायुरित्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । स्वराडुष्णिक् छन्दः ।
ऋषभः स्वरः ॥
अब देहान्त के समय क्या करना चाहिये इस वि० ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् । ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर ॥ १५ ॥

पदार्थः—हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव तू शरीर छूटते समय (ओम्) इस नाम वाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिये परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर । इस संस्कार का (वायुः) धनंजयादिरूप वायु (अनिलम्) कारणरूप वायु को कारणरूप वायु (अमृतम्) अविनाशी कारण को धारण करता (अथ) इसके अनन्तर (इदम्) यह (शरीरम्) नष्ट होने वाला सुखादि का आश्रय शरीर (भस्मान्तम्) अन्त में भस्म होने वाला होता है ऐसा जानो ॥ १५ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसी मृत्यु समय में चित्त की वृत्ति होती है और शरीर से आत्मा का पृथक् होना होता है वैसे ही इस शरीर को जलाने पर्यन्त क्रिया करें । जलाने पश्चात् शरीर का कोई संस्कार न करें । वर्त्तमान समय में एक परमेश्वर की ही आज्ञा का पालन उपासना और अपने सामर्थ्य को बढ़ाया करें । किया हुआ कर्म निष्फल नहीं होता ऐसा मानकर धर्म में रुचि और अधर्म में अप्रीति किया करें ॥ १५ ॥

अग्ने नयेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ॥
ईश्वर किन मनुष्यों पर कृपा करता है इस वि० ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य स्वरूप (अग्ने) प्रकाशस्वरूप करुणामय जगदीश्वर ! जिससे हम लोग (ते) आप के लिये (भूयिष्ठाम्) अधिकतर (नम उक्तिम्) सत्कार-पूर्वक प्रशंसा का (विधेम) सेवन करें । इससे (विद्वान्) सब को जानने वाले आप (अस्मत्) हम लोगों से कुटिलता रूप (एनः) पापाचरण को (युयोधि) पृथक् कीजिये (अस्मान्) हम जीवों को (राये) विज्ञान धन वा धन से हुए सुख के लिये (सुपथा) धर्मानुकूल मार्ग से (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त ज्ञानों को (नय) प्राप्त कीजिये ॥ १६ ॥

भावार्थः—जो सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते यथाशक्ति उसकी आज्ञा का पालन करते और सर्वोपरि सत्कार के योग्य परमात्मा को मानते हैं उनको दयालु ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चला के विज्ञान देकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है इससे एक अद्वितीय ईश्वर को छोड़ किसी की उपासना कदापि न करें ॥ १६ ॥

हिरण्मयेनेत्यस्य दीर्घतमा ऋषिः । आत्मा देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अन्त में मनुष्यों को ईश्वर उपदेश करता है ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (हिरण्मयेन) ज्योतिस्वरूप (पात्रेण) रक्षक मुझ से (सत्यस्य) अविनाशी यथार्थ कारण के (अपिहितम्) आच्छादित (मुखम्) मुख के तुल्य उत्तम अङ्ग का प्रकाश किया जाता (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) प्राण वा सूर्यमण्डल में (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है (सः) वह (असौ) परोक्षरूप (अहम्) मैं (खम्) आकाश के तुल्य व्यापक (ब्रह्म) सब से गुण कर्म और स्वरूप करके अधिक हूं (ओ३म्) सब का रक्षक जो मैं उस का (ओ३म्) ऐसा नाम जानो ॥ १७ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों के प्रति ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! जो मैं यहां हूं वही अन्यत्र सूर्यादि लोक में जो अन्यस्थान सूर्यादि लोक में हूं वही यहां हूं सर्वत्र परिपूर्ण आकाश के तुल्य व्यापक मुझ से भिन्न कोई बड़ा नहीं मैं ही सब से बड़ा हूं । मेरे सुलक्षणों से युक्त पुत्र के तुल्य प्राणों से प्यारा मेरा निज का नाम "ओ३म्" यह है जो मेरा प्रेम और सत्याचरणभाव से शरण लेता उसकी अन्तर्यामीरूप से मैं अविद्या

का विनाश कर उस के आत्मा का प्रकाश करके शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला कर सत्य-स्वरूप का आवरण स्थिर कर योग से हुए विज्ञान को दे और सब दुःखों से अलग करके मोक्ष-सुख को प्राप्त करता हूं। इति ॥ १७ ॥

इस अध्याय में ईश्वर के गुणों का वर्णन अधर्म त्याग का उपदेश सब काल में सत् कर्म के अनुष्ठान की आवश्यकता, अधर्माचरण की निन्दा, परमेश्वर के अतिसूक्ष्म स्वरूप का वर्णन, विद्वान् को जानने योग्य का होना, अविद्वान् को अज्ञेयपन का होना, सर्वत्र आत्मा जान के अहिंसा धर्म की रक्षा, उससे मोह शोकादि का त्याग, ईश्वर का जन्मादि दोषरहित होना, वेदविद्या का उपदेश, कार्य्य कारण रूप जड़ जगत् की उपासना का निषेध, उन कार्य कारणों से मृत्यु का निवारण करके मोक्षादि सिद्धि करना, जड़वस्तु की उपासना का निषेध, चेतन की उपासना की विधि, उन जड़ चेतन दोनों के स्वरूप के जानने की आवश्यकता, शरीर के स्वभाव का वर्णन, समाधि से परमेश्वर को अपने आत्मा में धरके शरीर त्यागना, शरीर-दाह के पश्चात् अन्य क्रिया के अनुष्ठान का निषेध, अधर्म के त्याग और धर्म के बढ़ाने के लिये परमेश्वर की प्रार्थना, ईश्वर के स्वरूप का वर्णन और सब नामों से "ओम्" इस नाम की उत्तमता का प्रतिपादन किया है। इससे इस अध्याय में कहे अर्थ की पूर्व अध्याय में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

यजुर्वेद का भाषाभाष्य समाप्त हुआ ॥

———:o:———

॥ ओ३म् ॥

आर्य्यसमाज के नियम ॥

(१)—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(२)—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३)—वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

(४)—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५)—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

(६)—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७)—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

(८)—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९)—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०)—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥